ग़ालिब के पत्र

ग़ालिब के पत्र

लिप्यन्तरकार तथा सम्पादक

श्रीराम शर्म्मा

रामनिवास शर्म्म

१९५८

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

उत्तर प्रदेश-इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद की ओर से संपादक-द्वय श्री राम शर्मा तथा श्री राम निवास शर्मा द्वारा लिप्यन्तरित एवं संपादित "ग़ालिब के पत्र" का प्रकाशन हर्ष का विषय है।

एकेडेमी का निश्चय था कि भारतीय साहित्य के मूर्धन्य साहित्यिकों के वैयक्तिक पत्रों का संग्रह कर उन्हें प्रकाशित किया जावे। निश्चय के अनुसार श्री बैजनाथ सिंह "विनोद" द्वारा संकलित एवं संपादित "द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" को प्रकाशित किया गया। पत्र साहित्य को प्रस्तुत करने की दिशा में "ग़ालिब के पत्र" एक अगला कदम है। हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा ग़ालिब के कुछ पत्रों का संकलन एवं प्रकाशन उर्दू में "ख़ुतूते ग़ालिब" के नाम से पहले हो चुका था, परन्तु कालान्तर में अनुभव किया गया कि देवनागरी लिपि में भी ग़ालिब के पत्र प्रकाशित किए जावें। अतः लिप्यन्तरकारों ने "ख़ुतूते ग़ालिब" की ही सामग्री को देवनागरी में पाद-टिप्पणियों के साथ प्रस्तुत किया है। विश्वास है कि शर्मा बन्धु ग़ालिब के अप्रकाशित पत्रों को भी इसी प्रकार प्रकाश में लावेंगे।

हिंदुस्तानी एकेडेमी,
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद.

धीरेन्द्र वर्मा,
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष,

भूमिका

मिर्ज़ा असदुल्ला बेग 'ग़ालिब' अपने आपको फ़ारसी का कवि मानते रहे। कई शतियों तक हमारे देश में हज़ारों परिवारों के लिए फ़ारसी केवल शासन की भाषा ही नहीं थी। इन परिवारों ने उसे सांस्कृतिक भाषा के रूप में भी स्वीकार किया था। जो मुसलमान विदेशों से आए थे उन सबकी मातृभाषा फ़ारसी नहीं थी। जो मुस्लिम राजवंश दिल्ली की गद्दी पर बैठे उनमें से अधिकांश फ़ारसी नहीं बोलते थे। फिर भी फ़ारसी का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता गया। जिन भारतीय परिवारों ने नई सभ्यता के प्रभाव को स्वीकार किया था उन्होंने भी फ़ारसी के सीखने-समझने में कम परिश्रम नहीं किया। यह गौरव की बात थी कि भारत में जन्म लेकर कुछ व्यक्तियों ने फ़ारसी में इतनी उत्कृष्ट कविता लिखी है कि उनकी गिनती ईरान में उत्पन्न होने वाले फ़ारसी के श्रेष्ठतम कवियों के साथ की जा सकती है। इन कवियों की परम्परा अमीर ख़ुसरो से प्रारम्भ होती है। ग़ालिब भी इसी परम्परा के कवि थे।

ग़ालिब की युवावस्था में ही देश में बड़े-बड़े परिवर्त्तन हो रहे थे। दिल्ली और लखनऊ के राजवंश अपना प्रभाव खो चुके थे। जनता का बहुत बड़ा वर्ग साहित्य में रुचि लेने लगा था। देश की वर्त्तमान भाषाएँ बड़ी तीव्र-गति से समुन्नत हो रही थीं। ग़ालिब के मित्रों ने यह सुझाव रखा था कि वे उर्दू में भी लिखें, जिससे साधारण जनता उनकी रचनाओं से लाभ उठा सके। इस प्रकार के सुझाव के सम्बन्ध में आरम्भ में ग़ालिब का विचार था—"मैं उर्दू में अपना कमाल क्या ज़ाहिर कर सकता हूँ। उसमें गुंजायश इबारत आराई (अलंकरण) की कहाँ है? बहुत होगा तो ये होगा के मेरा उर्दू बनिस्बत औरों के उर्दू के फ़सीह होगा। ख़ैर, बहरहाल कुछ

करूँगा और उर्दू में अपना ज़ोरे कलम दिखाऊँगा।" ये विचार ग़ालिब ने सन् १८५८ में मुंशी शिवनारायण को लिखे गए पत्र में व्यक्त किए थे। १८६४ तक भी ग़ालिब सोचते रहे कि उन्हें उर्दू में लिखना चाहिए या नहीं।..."उर्दू क्या लिखूँ...खैर, हुई। अब मैं कहानियाँ-क़िस्से कहाँ ढूँढ़ता फिरूँ? किताब नाम को मेरे पास नहीं। पिन्सन मिल जाए, हवास ठिकाने हो जायें तो कुछ फ़िकर करूँ। पेट चढ़ी रोटियां तो सभी गलाँ मोटियाँ।" लेकिन ग़ालिब १८५७ के बाद शायद ही कभी पेट भर रोटी खा सके। और फिर उनकी अवस्था ऐसी नहीं रह गई थी कि वे व्यवस्थित रूप से उर्दू में कोई बड़ी रचना कर पाते। धीरे-धीरे शरीर ने जवाब दे दिया था। ग़ालिब उर्दू लिखने के लिए पूरी तरह प्रवृत्त न हो सके, फिर भी समय समय पर उन्होंने उर्दू में बहुत सी कविताएँ लिखीं। इन कविताओं का संकलन उनके जीवन-काल में ही प्रकाशित हो गया था। ग़ालिब ने देखा कि उनकी उर्दू कविताओं का भी उतना ही आदर हुआ जितना फ़ारसी कविताओं का हुआ था। फ़ारसी काव्य-संकलन और उर्दू-काव्यसंकलन की प्रसिद्धि में बहुत बड़ा अन्तर था। फ़ारसी-काव्यसकलन को जहां विद्वानों में प्रसिद्धि प्राप्त हुई वहाँ उर्दू संकलन ने विद्वानों के साथ-साथ साधारण जनता का ध्यान भी आकर्षित किया।

ग़ालिब से पहले उर्दू में बड़े-बड़े कवियों ने कविता लिखी थी। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के पश्चात् उसका गद्य भी बहुत कुछ विकसित हो चुका था, किन्तु ग़ालिब ने अनजाने ही उसे एक नया मोड़ दिया। वे एक युग प्रवर्तक के रूप में उर्दू साहित्य में स्थान प्राप्त करते हैं। ग़ालिब फारसी कवियों की जिस परम्परा में उत्पन्न हुए थे, वह परम्परा समास-बहुलभाषा और वर्णन-प्रधानशैली के प्रयोग की परम्परा थी। गालिब ने फ़ारसी में इस परम्परा को निभाने का प्रयत्न भी किया किन्तु उन्होंने अनुभव किया—उर्दू में इस परम्परा की आवश्यकता नहीं। "उसमें गुंजायश इबारत आराई की कहाँ है" इस अनुभूति ने ग़ालिब की उर्दू-रचना में एक नया कमाल पैदा

किया। इस कमाल को आगे चलकर ग़ालिब पहचान गए थे। इसीलिए तो उन्होंने कहा—"हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे, कहते हैं के ग़ालिब का है अन्दाज़े बयाँ और।" यह 'अन्दाज़े बयाँ और' क्या है? ग़ालिब ने उर्दू में कृत्रिमता से बचने का भरसक प्रयत्न किया। यह बात हम भाषा में भी देखते हैं और भावों में भी। उनका यह 'अन्दाज़' उनके गद्य में अधिक निखरा है।

ग़ालिब ने इस अन्दाज़ को लेकर उर्दू में कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं लिखी। संभवत: वे कोई कहानी लिखने की बात सोचते रहे हों। उनके गद्य का स्वरूप उनके पत्रों में देखा जा सकता है। ये पत्र एक समय में एक व्यक्ति को नहीं लिखे गए। उन्नीसवीं शती के पाँचवे दशक से ग़ालिब हिन्दी में (ग़ालिब अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले तक उर्दू के लिए हिन्दी शब्द का ही प्रयोग करते रहे) पत्र लिखने लगे। इससे पहले वे फ़ारसी में ही पत्र लिखा करते थे। सम्भवत: उनका अन्तिम पत्र सन् १८६८ का है। ग़दर के बाद उन्होंने फ़ारसी लिखना बहुत कम कर दिया था।

ग़ालिब फ़ारसी के कवि थे। फ़ारसी भाषा पर उनका आश्चर्यजनक अधिकार था। अपने समय में वे फ़ारसी के श्रेष्ठतम कवि थे और भाषा ज्ञान तथा काव्य-शास्त्र की दृष्टि से बहुत बड़े आचार्य थे। उनका जीवन दिल्ली के अन्तिम मुगल सम्राट् और बड़े बड़े सामन्तों के साथ व्यतीत हुआ था। उस समय के पढ़े लिखे लोगों के मनोभावों का प्रभाव भी ग़ालिब पर कम नहीं था, किन्तु इतना सब होते हुए भी उन्होंने जब उर्दू में लिखना शुरू किया तो एक साथ ही समूची परम्परा समाप्त हो गई। उन्होंने एक नई शैली को जन्म दिया। ग़ालिब इस नई शैली में इतने निष्णात् थे कि अनेक व्यक्तियों ने इस शैली को अपनाया किन्तु वे ग़ालिब का अनुकरण नहीं कर सके।

ग़ालिब के पत्र हिन्दी और उर्दू की मिली-जुली सम्पत्ति है। हमारे देश की भाषाओं में पत्र-साहित्य की बड़ी कमी है। गालिब के ये पत्र एक अंश में इस कमी को पूरा करते हैं। ग़ालिब ने पत्र लिखते समय नए प्रभावों को स्वीकार किया है। पुराने जमाने में "सिद्ध श्री सर्वोपमान, सकल गुण निधान,

विराजमान" आदि का लम्बा चौड़ा सम्बोधन लिखकर "यहाँ सब सकुशल है, आपकी कुशलता श्री परमात्मा से चाहते हैं" में ही पत्र का दो तिहाई अंश चला जाता था। उर्दू में भी इसी प्रकार की रूढि का पालन किया जाता था। हम ग़ालिब के किसी भी पत्र में इस प्रकार का शिष्टाचार नहीं देखते। वे इस रूढि पर यथास्थान अच्छा व्यंग कसते हैं। एक मित्र को पत्र लिखते समय उन्होंने लिखा था—"तुम मेरे हमउम्र नहीं जो सलाम लिखूँ। मै फ़क़ीर नहीं जो दुआ लिखूँ। तुम्हारा दिमाग़ चल गया है, लिफ़ाफ़े को करेदा करो। मसविदे के काग़ज को बराबर देखा करो, पाओगे क्या ? याने तुमको वो मुहम्मदशाही रविशें पसन्द हैं, यहाँ ख़ैरियत है, वहाँ की आफ़ियत (कुशलता) मतलूब (अभीष्ट) है। ख़त तुम्हारा बहुत दिन के बाद पहुँचा। जी ख़ुश हुआ।··हमेशा इसी तरह ख़त भेजते रहो। क्यों, सच कहिए। अगले के ख़ुतूत (पत्र) की तहरीर (लेखन) की यही तर्ज़ थी या और ? हाय क्या अच्छा शेवा (ढंग) है। जब तक यों न लिखो वो ख़त ही नहीं है··अगर तुम्हारी ख़ुश-नूदी (प्रसन्नता) उसी तरह की निगारिश (लेखन) पर मुन्हसिर (आधारित) है तो भाई साढ़े तीन सतरें वैसी भी मैंने लिख दीं।"

प्राचीन रूढि का पालन करते हुए जो पत्र लिखा जाता था उन्हें ग़ालिब पसंद नहीं करते थे, "····क्या ख़त लिखा है! इस ख़ुराफ़ात के लिखने का फ़ायदा, बात इतनी ही है के मेरा पलंग मुझको मिला। मेरा बिछौना मुझको मिला। मेरा हमाम मुझको मिला···"

ग़ालिब के ये पत्र शैली और भाव की दृष्टि से इतने उच्चकोटि के क्यों हैं ? ऐसे कौन-से तत्व हैं जिन्होंने गालिब को पत्र-साहित्य में उच्च स्थान प्रदान किया है ? इन प्रश्नों का उत्तर उस समय मिलता है जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि ग़ालिब ने किस उद्देश्य से प्रेरित होकर ये पत्र लिखे हैं। उन्होंने अपने पत्र अपनी विद्वत्ता के प्रदर्शन के लिए नहीं लिखे। वास्तव में यह साधन एक बड़े उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए स्वीकार किया गया था—"मैंने

वो अन्दाज़े तहरीर (लिखने का ढंग) ईजाद किया है (निकाला है) के मुरासिले (पत्र) को मुकालिमा (बातचीत) बना दिया है। हज़ार कोस से बज़बानें क़लम (लेखनी की जिह्वा) से बातें किया करो। हिज्र (वियोग) में विसाल (मिलन) के मज़े लिया करो।" जब पत्र-लेखक का उद्देश्य इतना ऊँचा हो तो कृत्रिमता को कहाँ स्थान मिल सकता था। सरनामे से लेकर अन्त तक उन्होंने कृत्रिमता से बचने का प्रयत्न किया है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये पत्र एक समय मे नही लिखे गए। पत्र प्राप्त करने वालों की योग्यता भी एक जैसी नहीं है। जिन लोगों को पत्र लिखे गए हैं, उनमे से अधिकांश व्यक्ति साहित्यिक हैं, किन्तु उनकी रुचियों में समानता नहीं है, उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति भी भिन्न है और उन लोगों के साथ ग़ालिब का सम्बन्ध भी एक जैसा नहीं है। ग़ालिब जिन लोगों से बहुत स्नेह करते हैं, उनके पत्र के लिए तरसते हैं, किन्तु जिन लोगों से वे अधिक सम्बन्ध नही रखते उनका पत्र पाकर उन्हें प्रसन्नता नही होती। क़ाज़ी अब्दुल जमील को (१८५५ ई० मे) पत्र लिखते समय उन्होंने लिखा था—"जवाब लिखने में जो मेरी तरफ़ से क़ुसूर वाक़ै होता है, उसके दो सबब हैं। एक तो ये के हज़रत महीना भर में नौ पते लिखते हैं, मैं कहाँ तक याद रखूँ। दूसरा सबब ये के शौक़िया ख़ुतूत का जवाब कहाँ तक लिखूँ और क्या लिखूँ? मैंने आईने नामानिगार (पत्र लेखन का विधान) छोड़कर मतलब नवीसी पर मदार (आधार) रखा है। जब मतलब ज़रूरी उल तहरीर (लिखने की आवश्यकता) न हो तो क्या लिखूँ?" किन्तु अपने प्रिय-जन अथवा समान रुचि रखने वाले व्यक्ति से पत्र मिलते ही लिखते "ख़त आया, मुझको बातें करने का मज़ा मिला।" अपने प्रिय-जन का पत्र पाते ही तुरन्त उत्तर लिखते। कई स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे ग़ालिब पत्र लिखने के लिए अवसर की राह देख रहे हैं। ग़ालिब को पत्र लिखने का चसका था। वे जिस तरह अच्छा पत्र लिखते थे, उसी तरह अच्छा पत्र पाना भी चाहते थे।

कई बार वे शोक के अथाह सागर में डूबे होते थे कि प्रिय-जन का पत्र पाते ही सारा दु:ख न जाने कहाँ चला जाता था। पत्र पाते ही उन्हें इस प्रकार की प्रसन्नता होती थी--"अगर आज मेरे सब दोस्त व अजीज यहाँ फ़राहम होते और हम और वो बाहम होते तो मैं कहता के आओ और रस्मे तहनियत (बधाई की रस्म) बजा लाओ। ख़ुदा ने फिर वो दिन दिखाया के डाक का हरकारा अनवरद्दौला का ख़त लाया।" कई बार लिफ़ाफ़े के लिए पैसे न रहते। टिकट खरीदना ग़ालिब के लिए संभव न होता, फिर भी वे पत्र लिखते थे। पत्र लिखने से उनकी आत्मा को अपूर्व सन्तोष मिलता था, इसीलिए वे अपने मित्रों को बैरंग पत्र भी भेजते थे और इस सन्तोष से वंचित होना नहीं चाहते थे।

ग़ालिब के पत्रों में एक विशेषता यह है कि प्राय: सभी पत्र अपने में एक सजीव वातावरण रखते हैं। लेखक ने अपने युग को, अपने स्थान और समय को जैसे शब्दों में अंकित कर दिया है "...सुबह का वक़्त है। जाड़ा ख़ूब पड़ रहा है। अँगीठी सामने रखी हुई है। दो हर्फ़ लिखता हूँ, आग तापता जाता हूँ।" जो पत्र प्राप्त करता है वह अनुभव करता है जैसे पत्र लेखक सामने बैठा हुआ बातें कर रहा है। किसी पत्र की उत्कृष्टता के लिए यही सब से बड़ा गुण है। इस पत्र में लेखक की भावना कितने अच्छे ढंग से व्यक्त हुई है--" लो भाई, अब तुम चाहो बैठे रहो चाहे जाओ अपने घर। मैं तो रोटी खाने जाता हूँ। अन्दर-बाहर सब रोज़ेदार हैं। यहाँ तक के बड़ा लड़का बाक़रअलीख़ाँ भी। सिर्फ़ एक मैं और एक मेरा प्यारा बेटा हुसेनख़ाँ ये हम रोज़ाख़ार हैं। वही हुसेनअलीख़ाँ जिसका रोज़मर्रा है, "खिलौने मँगा दो, मैं भी बाज़ार जाऊँगा।"

१८५७ का प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम ग़ालिब ने अपनी आँखों से देखा था। सन् १८५७ से सन् १८६२ तक दिल्ली पर न जाने क्या क्या विपत्तियाँ आईं। ग़ालिब के अधिकांश मित्र और सम्बन्धी या तो लड़ते हुए मारे गए या फाँसी पर लटका दिए गए। यह ऐसा परिवर्त्तन था, इतना बड़ा आघात

था कि उसे सहकर अपनी बुद्धि को सन्तुलित रख सकना किसी के लिए भी सभव न होता। ग़ालिब दिल्ली से बेहद प्यार करते थे। उन्होंने अपने जीवन के सान्ध्यकाल में देखा——उस दिल्ली की बड़ी-बड़ी इमारतें ढाई जा रही हैं, दिल्ली के साहित्यिकों का समाज तितर-बितर हो गया। ऐसी स्थिति में ग़ालिब यदि अपने आपको जीवित अवस्था में भी मृत मानते थे तो उनके कथन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। भारतीय इतिहास की यह अत्यन्त करुणाजनक घटना ग़ालिब के बहुत से पत्रों में चित्रित हुई है। अति-वर्षा, वृद्धावस्था, रुग्णता, मृत्यु आदि के सम्बन्ध में जहाँ कहीं ग़ालिब ने लिखा है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनका व्यथित हृदय निरावरण हो हमारे सामने अपनी विह्वलता प्रकट कर रहा है।

इन पत्रों में कहीं वे समकालीन परिस्थिति का चित्रण करते है, कहीं किसी दुःखी व्यक्ति के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं। कही भाषा, व्याकरण और साहित्य शास्त्र सम्बन्धी गंभीर चर्चा में निमग्न दिखाई देते हैं, कहीं अपने पारिवारिक जीवन का चित्रण उपस्थित करते हैं। कहीं पर ये पत्र धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं और कहीं व्यावहारिक समस्याओं के सम्बन्ध में अनुभव प्रकट करते हैं।

ग़ालिब उच्चकोटि के कवि होने के साथ-साथ एक अनोखा व्यक्तित्व रखते थे। उनका व्यक्तित्व जैसे प्रत्येक पत्र मे मुखरित होता है। उनकी निरपेक्षता, मृत्यु के प्रति निश्चिन्तता, आर्थिक कठिनाइयों में रहते हुए भी उनके हृदय की उदारता इन सब बातों से हम अनायास परिचित हो जाते हैं।

विषय की विविधता की तरह पत्र लिखने का ढंग भी बदलता जाता है। एक पत्र एक ढंग से लिखा गया है तो दूसरा पत्र दूसरे ढंग से। एक पत्र प्रारंभ होता है——"अहा, हा हा ! मेरा प्यारा मीर मेहदी आया। आओ भाई, मिजाज़ तो अच्छा है ? बैठो। ये रामपूर है···!" दूसरा पत्र प्रारम्भ होता है——"आओ साहब, मेरे पास बैठ जाओ।" एक जगह प्रारम्भ इस प्रकार है——

"कोई है ? ज़रा यूसुफ़ मिर्ज़ा को बुलाइयो। लो साहब वो आए। मियाँ, मैंने कल खत तुमको भेजा है मगर...।"

जो पत्र कविता के संशोधन से सम्बन्धित हैं, उन्हें छोड़कर सभी पत्रों में समान भाषा प्रयुक्त हुई है। यह भाषा अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है— "जो ज़बान पर आए वह क़लम लिखे" इस बात का पालन ग़ालिब ने अक्षरशः किया है। दिल्ली की ठेठ खड़ी बोली ग़ालिब के इन पत्रों में देखने को मिलती है। जहाँ कहीं फ़ारसी के समासित शब्दों का प्रयोग हुआ है, उन अंशों को यदि न भी समझा जाए तब भी पत्र के भावार्थ के समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

ये पत्र पूरी तरह व्यक्तिगत थे। ग़ालिब इस बात की कल्पना भी नहीं करते थे कि ये पत्र किसी समय प्रकाशित होंगे। इन पत्रों को वे अपनी स्थिति के अनुरूप भी नहीं मानते थे। सब से पहले मुंशी हरगोपाल तफ़्ता ने ग़ालिब से आग्रह किया था कि इन पत्रों को छपवा दिया जाए। ग़ालिब ने इन पत्रों की छपाई का निषेध करते हुए लिखा था—"रुक़्क़ात (पत्र) के छापे जाने में हमारी खुशी नहीं है। लड़कों की-सी ज़िद न करो, और अगर तुम्हारी इसी में खुशी है तो साहब मुझसे न पूछो।" (सन् १८५८ ई०)। सन् १८५८ में ही मुंशी शिवनारायण को जो पत्र ग़ालिब ने लिखा था, उसमें भी यही भाव प्रकट किया गया है—"उर्दू के खतूत जो आप छापा चाहते हैं, ये भी जायद बात है। कोई रुक़्क़ा ऐसा होगा जो मैंने क़लम संभाल कर और दिल लगा कर लिखा होगा, वर्ना सिर्फ़ तहरीर सरसरी है। उसकी शोहरत मेरी सुखन-वरी के शुकूह (शान) के मनाफ़ी (विरुद्ध) है। इससे क़तै नज़र (इस बात को ध्यान में न रखा जाए तब भी), क्या ज़रूर है के हमारे आपस के मामलात औरों पर ज़ाहिर हों।"

गालिब जिन कारणों से अपने पत्रों को प्रकाश में नहीं लाना चाहते थे, उन्हीं कारणों ने इन पत्रों को महत्व प्रदान किया। अपने अन्तिम दिनों में

ग़ालिब ने इन पत्रों के महत्व को समझ लिया था। उनके जीवन-काल में ही 'ऊदे हिन्दी' नाम से ग़ालिब के पत्रों का एक संकलन छपा। 'ऊदे हिन्दी' में छापे की बहुत-सी गलतियाँ रह गई थीं। ग़ालिब इस संकलन से प्रसन्न नहीं हुए। उनकी सम्मति से एक प्रामाणिक संकलन तैयार किया गया 'जो उर्दू ए मुअल्ला' के नाम से उनकी मृत्यु के कुछ दिन बाद ही प्रकाशित हुआ। 'उर्दू ए मुअल्ला' में प्रत्येक पत्र के साथ लेखन-तिथि दी गई और छपाई में सावधानी बरती गई। रामपुर मे सम्बन्धित ग़ालिब के सभी पत्रों का संकलन 'मकातिबे ग़ालिब' नाम से छपा। स्वर्गीय मौलवी महेश प्रसाद ने इन संकलनों के आधार पर और व्यक्तिगत पत्रों के अध्ययन के पश्चात् ग़ालिब के पत्रों का संकलन 'ख़ुतूते ग़ालिब' के नाम से सम्पादित किया। इस सकलन का प्रथम भाग 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' की ओर से छपा। मौलवी महेश प्रसाद जी ने इन पत्रों को इतने अच्छे ढंग से सम्पादित किया है कि कम से कम जो पत्र प्रकाश में आ चुके हैं, उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम नहीं रह गया। विराम चिह्नों तक पर विशेष ध्यान दिया गया है। अभी हाल में पाकिस्तान से भी ग़ालिब के पत्रों का एक संकलन 'ख़ुतूते ग़ालिब' के नाम से दो खंडों मे छपा है। इस संकलन में कुछ नई सामग्री प्रकाश में आई है---कुछ दिन हुए पाकिस्तान से आफ़ाक़ हुसेन 'आफ़ाक़' के 'नादिराते ग़ालिब' नाम से ग़ालिब के ७४ महत्वपूर्ण किन्तु अब तक ३ प्रकाशित पत्रों का संकलन छपा है।

इन पत्रों का महत्व केवल उर्दू के लिए ही नहीं है। हिन्दी-गद्य के लिए भी इन पत्रों का उतना ही महत्व है। सौ वर्ष पहले हिन्दी-गद्य का इतना परिमार्जित रूप अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकता। खड़ी-बोली के विकास को समझने में ये पत्र अत्यन्त सहायक सिद्ध होंगे। खड़ी बोली की जो परम्रपा विकसित हुई हैं, ग़ालिब के पत्रों की भाषा उसी परम्परा की कड़ी है।

ग़ालिव के पत्रों का यह हिन्दी-रूपान्तर मौलवी महेश प्रसाद जी द्वारा सम्पादित संकलन के आधार पर किया गया है। अतः इस संकलन में जो अच्छाइयाँ हैं उन सब का श्रेय स्वर्गीय मौलवी साहब को है। हम लोगों को

प्रामाणिक सामग्री अनायास ही प्राप्त हो गई। ऐसे शब्दों का अर्थ दे दिया गया है, जो हिन्दी भाषियों के लिए अपरिचित है। ग़ालिब ने स्थान-स्थान पर अपनी तथा अन्य कवियों की फ़ारसी कविता उद्धृत की है। इस प्रकार के सभी उद्धरणों का हिन्दी में अर्थ दिया गया है। निस्सन्देह यह संकलन हिन्दी में पत्र-साहित्य की कमी को दूर करने में सहायक सिद्ध होगा।

इस संकलन में फारसी और अरबी के उद्धरणों के अतिरिक्त सर्वत्र शब्दों को उच्चारण के अनुसार लिखा गया है। हिन्दी के शब्दों का भी वही रूप दिया गया है जो उर्दू में बोला जाता है। उदाहरण के लिए हिन्दी का 'कि' उर्दू में 'के' के समान उच्चरित होता है। 'के' के लघुत्व को सूचित करने वाला कोई चिह्न नहीं है, अतः 'के' ही लिखा गया है। कुछ स्थलों पर फ़ारसी के षष्ठ तत्पुरुष का सूचक एकार और द्वन्द्व समास का 'व' अथवा ओकार नहीं दिया गया है।

मौलवी महेश प्रसाद ने ग़ालिब के पत्रों का जो संकलन तैयार किया था उसका प्रथम खंड ही हिन्दुस्तानी एकेडेमी की ओर से छप सका। हम लोगों ने इस प्रथम खंड की सामग्री ही इस सकलन में दी है। हम लोग इस का प्रयत्न करेंगे कि इधर ग़ालिब के जो नये पत्र प्रकाश में आये हैं, उनका संकलन भी इस संग्रह के द्वितीय खंड के रूप में शीघ्र ही प्रकाशित हो।

फ़ारसी ग़ज़लों के अर्थ देने में हम लोगों को हैदराबाद के फ़ारसी के वयोवृद्ध विद्वान् शेख मुहम्मद साहब से सहायता मिली है। मौलवी अब्दुल-रज़ाक साहब ने भी हम लोगों की सहायता की है, अतः हम लोग दोनों महानुभावों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के मन्त्री डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के प्रति हम लोग कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनके कारण इस संकलन का प्रकाशन संभव हो सका। एकेडेमी के सहायक मन्त्री डाक्टर सत्यव्रत सिन्हा ने प्रूफ आदि के सम्बन्ध में जो सहायता की है, उसके लिए भी हम लोग आभारी हैं।

चार कमान
हैदराबाद—२
१३-६-५७

लिप्यन्तरकार

पत्र-सूची

मुंशी हरगोपाल तफ़्ता के नाम

१

(अगस्त १८४९ ई०)

महाराज,

आपका मेहरबानीनामा पहुंचा। दिल मेरा अगरचे ख़ुश न हुआ, लेकिन नाख़ुश भी न रहा। बहर हाल, मुझको, के नालायक व जलील[1]तरीन खलायक़[2] हूँ, अपना दुआगो[3] समझते रहो। क्या करूँ? अपना शेवा[4] तर्क[5] नहीं किया जाता। वो रविश[6] हिन्दुस्तानी फ़ारसी लिखने वालों की मुझको नहीं आती के बिल्कुल भाटों की तरह बिकना शुरू करें। मेरे क़सीदे देखो, तशबीब[7] के शेर बहुत पाओगे और मदह[8] के शेर कमतर। नस्र[9] में भी यही हाल है। मुस्तफ़ाख़ां के तज़किरे[10] की तक़रीज़[11] को मुलाहिज़ा करो के उनकी मदह कितनी है। मिर्ज़ा रहीमुद्दीन बहादुर 'हया' तख़ल्लुस के दीवान के दीबाचे को देखो। वो जो तक़रीज़ 'दीवाने हाफ़िज़' की बमूजिबे[12] फ़रमाइश जान जाकूब बहादुर के लिखी है उसको देखो के फ़क्त एक बैत में उनका नाम और उनकी मदह आई है और बाक़ी सारी नस्र में कुछ और है। और मतलब है। वल्लाह[13] बिल्लाह अगर किसी शहज़ादे या अमीरज़ादे के दीवान का दीबाचा[14] लिखता, तो उसकी इतनी मदह न करता

---

१. नीचतम। २. मनुष्य। ३. पुरोहित, पाठ पूजा करने वाला। ४. ढंग। ५. छोड़ा नहीं जा सकता। ६. चाल चलन। ७. सौन्दर्य, प्रेमिका की प्रशंसा। ८. प्रशंसा। ९. गद्य। १०. समालोचन। ११. आलोचना। १२. अनुसार। १३. ईश्वर की सौगन्ध। १४. भूमिका।

के जितनी तुम्हारी मदह् की है। अब हमको और हमारी रविश को अगर पह्चानते तो इतनी मदह् को बहुत जानते। क़िस्सा[1] मुख़्तसर तुम्हारी ख़ातिर की और एक फ़िक़रा तुम्हारे नाम का बदल कर उसके एवज़ एक फ़िक़रा और लिख दिया है। इससे ज्यादा भटई मेरी रविश नहीं। ज़ाहिरा तुम ख़ुद फ़िक्र नहीं करते, और हज़रात[2] के बहकाने में आ जाते हो। वो साहब, तो बेशतर[3] इस नज़्म व नस्र को मोहमल[4] कहेंगे, किस वास्ते के उनके कान इस आवाज से आशना[5] नहीं। जो लोग के "क़तील" को अच्छे लिखने वालों में जानेंगे वो नज़्म[6] व नस्र की ख़ूबी को क्या पहचानेंगे ?

हमारे शफ़ीक़[7] मुंशी नबीबख़्श साह्ब को क्या आरिज़ा[8] है के जिसको तुम लिखते हो के मौलजुब्न[9] से भी न गया। एक नुस्ख़ा "तिबे मुहम्मद हुसेन ख़ानी" में लिखा है और वो बहुत बेज़रर और बहुत सूदमन्द है मगर असर उसका देर में ज़ाहिर होता है। वो नुस्ख़ा ये है के पान-सात सेर पानी लेवें और उसमें सेर पीछे तोला भर चोव चीनी कूट कर मिला दें और उसको जोश[10] करे, इस क़दर के चेहारुम[11] पानी जल जावे। फिर उस बाक़ी पानी को छान कर कोरी ठिलिया[12] में भर रखे और जब बासी हो जावे उसको पिएँ। जो ग़िज़ा[13] खाया करते हैं, खाया करें, पानी दिन रात, जब प्यास लगे, यही पिएँ। तबरीद[14] की हाजत[15] पड़े, इसी पानी में पिएँ। रोज़ जोश करवा कर, छनवा कर रख छोड़ें। बरस दिन में इसका फ़ायदा मालूम होगा। मेरा सलाम कह्कर ये नुस्ख़ा अर्ज़ कर देना। आगे उनको अख़्तियार है।

---

१. कहानी संक्षेप में। २. हज़रत (ब० व०)। ३. अधिकतर। ४. निरर्थक, भ्रान्तियुक्त। ५. परिचित। ६. कविता, पद्य। ७. प्रियकारी। ८. बीमारी। ९. बीमार को देने के लिए फाड़ा गया दूध। १०. उबालें। ११. चौथाई। १२. मिट्टी की हंडी। १३. भोजन, खाद्य पदार्थ। १४. ठंडाई, शर्बत आदि। १५. आवश्यकता।

२

अगस्त १८५० ई०

भाई,

ये मिसरा[1] जो तुमको बहम पहुँचा है, फ़न[2] तारीख़गोई में इसको 'करामत' और 'एजाज़' कहते हैं। ये मिसरा 'सलमाने' सावजी व 'ज़हीर' का सा है। चार लफ़्ज़ और चारों वाक़ये के मुनासिब। ये मिसरा कह कर और मिसरे की फ़िक्र करनी किस वास्ते? वाह वाह, सुभान[3] अल्लाह!

और ये जो तुमको 'फ़र' के लफ़्ज़ में तरद्दुद[4] हुआ और एक सूखा-सहमा शेर 'ज़हूरी' का लिखा, बड़ा ताज्जुब है। ये लफ़्ज़ मेरे हाँ[5] 'पंज आहंग'[6] में दस हज़ार जगह आया होगा। 'फ़र' और 'फ़र्रह' लफ्ज फ़ारसी हैं, मुरादिफ़[7] 'जाह' के। पस[8] 'जाह' को और इसको किसने कहा है के बग़ैर तरकीब दिए न लिखिए? 'आलीजाह' और 'सिकन्दरजाह' और 'मुज़फ़्फ़र फ़र' और 'फ़रीदूँ फ़र' यों भी दुरुस्त, और सिर्फ़ 'जाह' और 'फ़र' यों भी दुरुस्त।

और एक बात तुमको मालूम रहे के इस पूरे ख़िताब को 'ख़िताबे बहादुरी' कहना बहुत बेजा है। सुनो, ख़िताब के मरातिब[9] में पहले तो 'ख़ानी' का ख़िताब है और ये बहुत ज़ईफ़[10] है और बहुत कम है। मसलन[11] एक शख़्स का नाम है "मीर मुहम्मद अली" या 'शेख़ मुहम्मद अली' या 'मुहम्मद अली बेग'

१. कविता की पंक्ति, एक चरण। २. तारीख़ कहने की कला (फ़ारसी तथा उर्दू में किसी के जन्म-मरण अथवा किसी घटना का संवत्सर कविता बद्ध करते हैं। उर्दू वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर की संख्या निश्चित है। इन अक्षरों के आधार पर ही घटना का संवत् दिया जाता है)। ३. ईश्वर पवित्र है। ४. सन्देह। ५. ग़ालिब ने 'यहाँ' के स्थान पर 'हाँ' का प्रयोग भी किया है। ६. ग़ालिब की एक रचना का नाम। ७. प्रताप। ८. बस। ९. प्रतिष्ठा, पद। १०. वृद्ध, पुराना। ११. उदाहरण स्वरूप।

ग्रौर उसको खानदानी भी 'खानी' नहीं हासिल। पस जब उसको बादशाहे[१] वक्त 'मुहम्मद ग्रली खाँ' कह दे, तो गोया उसको 'खानी' का खिताब मिला। ग्रौर जो शख्स के उसका नाम ग्रसली 'मुहम्मद ग्रली खाँ'[२] है, या तो वो क़ौमे ग्रफ़गान है या 'खानी' उसकी खानदानी है, बादशाह ने उसको 'मुहम्मद ग्रली खाँ बहादुर' कहा। पस, ये खिताब 'बहादुरी' का है, इसको बहादुरी का खिताब कहते हैं, इससे बढ कर खिताब 'दौलगी' का है, याने मसलन "मुहम्मद ग्रली खाँ बहादुर" उसको मुनीरुद्दौला मुहम्मद ग्रलीखाँ बहादुर" कहा, ग्रब ये खिताब दौलगी का हुग्रा, इसको 'बहादुरी' का खिताब नही कहते, ग्रब इस खिताब पर ग्रफ़ज़ायश[३] 'जंग' की होती है "मुनीरुद्दौला मुहम्मद ग्रली खाँ बहादुर शौकत जंग"। ग्रभी खिताब पूरा नहीं, पूरा जब होगा के जब 'मुल्क' भी हो। पस, पूरे खिताब को 'खिताबे बहादुरी' लिखना गलत है। ये वास्ते तुम्हारे मालूम रहने के लिखा गया है।

ग्रब ग्राप इस सात बैत के क़ते को ग्रपने दीवान मे दाखिल ग्रौर शामिल कर दीजिये ! याने क़तों में लिख दीजिये। जब तुम्हारा दीवान[४] छापा जावेगा, ये क़ता भी छप जावेगा। मगर हाँ, मुंशी साहब के सामने इसको पढ़िये ग्रौर उनसे इस्तदुग्रा[५] कीजिए के इसको ग्रागरे भेजिये ताके छापा हो जावे 'ग्रसदल ग्रखबार' मे ग्रौर 'जुब्दतुल ग्रखबार' मे। यक़ीन है के वो तुम्हारे कहने से ग्रमल में लावेगे। मुझको क्या ज़रूर है के मै लिखूँ ? मैने यहाँ 'सादिक़ुल ग्रखबार' में छपवा दिया है।

३

(१८५१ ई०)

मै तुमको खत भेज चुका हूँ। पहुँचा होगा ? कल एक रुक़्क़ा मेरे पास ग्राया। कोई साहब है ग्रताउल्लाखाँ, ग्रौर 'नामी' तखल्लुस[६] करते हैं। खुदा

१. समकालीन शासक। २. ग्रफ़गानिस्तानी। ३. ग्राधिक्य, शोभा। ४. कविता संग्रह। ५. प्रार्थना। ६. काव्यनाम।

जानें, कहाँ है और कौन हैं। एक दोस्त ने वो रुक्क़ा मेरे पास भेजा, मैंने उसका जबाब लिख कर उसी दोस्त के पास भेज दिया, रुक्क़ा तुमको भेजता हूँ, पढ़ कर हाल मालूम करोगे। तुम्हारे शेर मे जो तरद्दुद था उसका जवाब मैंने ये लिखा है, तुमको भी मालूम रहे—

रफ़्त[1] उंचे ब मंसूर शनीदी तू वो मन हम
अै दिल सख़ुने हस्त निगाहदार ज़बाँ रा

तरद्दुद ये के "उंचे ब मंसूर रफ़्त" नहीं देखा। 'उंचे बर मंसूर रफ़्त' दुरुस्त है। जवाब—बाए[2] मौहहेदा 'अला' बाए[3] 'अला' के माने भी देती है। पस जो कुछ 'बर' से मुराद थी, वो बाये मौहहेदा से हासिल हो गई और अगर बाये मौहहेदा के माने मैयत[2] के लें तो भी दुरुस्त है, नज़ीरी कहता है,—"[3]शादी के ग़बन मी कशी दम न मी जनी, दर शहर ईं मामल बाहर गदा रवद" अगर कोई ये कहे के यहाँ 'मामला' है और उस शेर में मामले का लफ़्ज़ नही, जवाब इसका ये है के सरासर दोनों शेरों की सूरत एक है। नज़ीरी के हाँ 'मामला' मज़कूर है और तफ़्ता के यहाँ मुक़द्दर है। 'रफ़्त' का सिला और 'तादिया' बाए मौहहेदा के साथ दोनों जगह है। [4]वस्सलाम।

असदुल्लाह

४

(सोमवार ४ जनवरी १८५२)

क्यों महाराज,

कोल[5] में आना और मुंशी नबी बख़्श साहब के साथ गजलख़ानी करनी

१. मसूर के सम्बन्ध में हम लोगों ने जो कुछ सुना वह हो चुका, अरे हृदय, मै एक बात कहता हूँ, सुन ले, अपनी जिव्हा को काबू मे रख। २. उर्दू वर्णमाला के ऐसे अक्षर जिनमें एक बिन्दु लगता है। ३. साथी। ४. ईश्वर कल्याण करे। ५. अलीगढ़ का पुराना नाम।

और हमको याद न लाना ! मुझ से पूछ के मैंने क्यों कर जाना के तुम मुझको भूल गए। कोल में आए और मुझको अपने आने की इत्तला न दी, न लिखा के मैं क्यों कर आया हूँ और कब आया हूँ और कब तक रहूँगा और कब जाऊँगा और बाबूसाहब से कहाँ जा मिलूँगा। ख़ैर, अब जो मैंने बेहयाई करके तुमको ख़त लिखा है, लाज़िम है के मेरा क़ुसूर माफ़ करो और मुझको आप अपनी सारी हक़ीकत लिखो।

तुम्हारे हात की लिखी हुई ग़ज़लें, बाबू साहब की, मेरे पास मौजूद हैं। और इस्लाह[1] पा चुकी हैं। अब मैं हैरान हूँ के कहाँ भेजूँ ? हर चन्द उन्होंने लिखा है के अकबराबाद[2], हाशिम अली खाँ को भेज दो, लेकिन मैं न भेजूँगा। जब वो अजमेर या भरतपूर पहुँच कर मुझको ख़त लिखेंगे तो मैं उनको वो औराक़[3] इरसाल[4] करूँगा या तुम जो लिखोगे उस पर अमल करूँगा।

भाई, एक दिन शराब न पीओ या कम पीओ और हमको दो-चार सतरें लिख भेजो के हमारा ध्यान तुममें लगा हुआ है। रक़मज़दा[5] यक[6]शंबा चारुम[7] जनवरी सन् १८५२ ई०।

—असदुल्लाह

५

(२१ फरवरी १८५२ ई०)

शफ़ीक़[8] बित्तहक़ीक़ मुन्शी हरगोपाल 'तफ़्ता' हमेशा सलामत रहें। आपका वो ख़त जो आपने कानपुर से भेजा था पहुँचा। बाबूसाहब के सैरो[9] सफ़र का हाल और आपका लखनऊ जाना और वहाँ के शोअरा[10] से मिलना सब

---

१. सुधार, संशोधन। २. आगरा। ३. पृष्ठ (वर्क ब० व०)। ४. दूँगा। ५. लिखित। ६. रविवार। ७. चौथी। ८. असन्दिग्ध प्रेमी। ९. यात्रा। १०. कवियों से।

मालूम हुआ। अशार[1] जनाब 'रिन्द' के पहुँचने के एक हफ़्ते के बाद दुरुस्त हो गए और इस्लाह और इशारे और फ़वायद जैसा के मेरा शेवा है, अमल में आया। जब तक के उनका या तुम्हारा ख़त न आवे और इक़ामतगाह[2] मालूम न हो मैं वो कवाग़ज़[3] ज़रूरी कहाँ भेजूँ और क्यों कर भेजूँ और क्यों भेजूँ ? अब जो तुम्हारे लिखने से जाना के १९ फ़रवरी तक अकबराबाद आओगे तो मैंने यह ख़त तुम्हारे नाम लिख कर लिफ़ाफ़ा कर रखा है। आज १९ वीं है, परसों २१ वीं को लिफ़ाफ़ा आगरे रवाना होगा। बाबूसाहब को मैंने ख़त इस वास्ते नहीं लिखा के जो कुछ लिखना चाहिए था, वो ख़ातिमे[4] औराक़ अशार पर लिख दिया है। तुमको चाहिए के उनकी ख़िदमत में मेरा सलाम पहुँचाओ और सफ़र के अजाम और हुसूले[5] मराम की मुबारकबाद दो और औराके अशार गुज़रानो और ये अर्ज़ करो के जो इबारत खात्मे पर मरक़ूम[6] है उसको ग़ौर से पढ़िए और अपना दस्तूरुल[7] अमल गरदानिए[8] न ये के सरसरी देखिए और भूल जाइए। बस। तमाम हुआ वो पयाम[9] के जो बाबूसाहब की ख़िदमत में था।

अब फिर तुम से कहता हूँ के वो जो तुमने उस शख़्स कोली[10] का हाल लिखा था, मालूम हुआ। हरचन्द ऐतराज उनका लग़ो[11] और पुरसिश[12] उनकी बेमजा हो, मगर हमारा ये मनसब[13] नहीं के मौतरिज़[14] को जवाब न दें या सायल से बात न करें। तुम्हारे शेर पर ऐतराज़, इस राह से के वो हमारा देखा हुआ है, गोया हम पर है। इससे हमें काम नहीं के वो माने या न माने, कलाम हमारा अपने नफ़्स[15] में माकूल[16] व उस्तवार है। जो ज़बानदाँ होगा

---

१. शेर का (ब० व०)। २. निवास स्थान। ३. काग़ज़ का (ब० व०) ४. पृष्ठ का अन्तिम भाग। ५. सफलता। ६. लिखी हुई। ७. विधान, नियमावली। ८. पाठ कीजिए। ९. सन्देश। १०. अलीगढ़ निवासी। ११. बनावटी, निराधार। १२. पूछताछ। १३. भाव। १४. विरोधी। १५. भावना। १६. पूर्ण और उचित।

वो समझ लेगा। ग़लतफ़हम व कजअन्देश[1] लोग न समझें, न समझें। हम को तमाम ख़ल्क़[2] की तह्ज़ीब[3] व तलक़ीन से क्या इलाक़ा ? तालीम व तलक़ीन वास्ते दोस्तों के और यारों के है, न वास्ते अग़यार[4] के। तुम्हें याद होगा के मैंने तुम्हें बारहा[5] समझाया है के खुद ग़लती पर न रहो और ग़ैर की ग़लती से काम न रखो। आज तुम्हारा कलाम वो नहीं के कोई गिरफ़्त कर सके, मगर हाँ—

हसूद रा चे कुनम कूज़े ख़ुद बरंज दरस्त[6]

वस्सलाम वलअिकराम। रक़मज़दा ११ फ़रवरी व मुरसिला[7] बिस्तो[8] यकुम फ़रवरी सन् १८५२ ई०।

—असदुल्लाह

६

(२२ मार्च १८५२ ई०)

बन्दा परवर,

"बेश[9] अज बेश व कम अज कम"—ये तरकीब बहुत फ़सीह[10] है। इसको कौन मना करता है ? और "जलाले असीर" के ये बैत बहुत पाकीज़ा और ख़ूब है। इसके माने यही है के "दर[11] ज़माने मन मेहर बेश अजबेश शुद व दर जमाने तू वफ़ा कम अज कम शुद।" उस्ताद क्या कहेगा ? इसमें तो तीन टुकड़े का लफ़[12] व नश्र है—मन और तू, मेहर और वफ़ा, बेश-अजबेश और

१. दुर्बुद्धि। २. संसार। ३. सभ्यता। ४. शत्रु, पराये लोग। ५. कई बार। ६. ईर्ष्यालू के लिए हम क्या करें, वह स्वयं कष्ट उठा रहा है। ७. भेजा हुआ। ८. कल्याण और दया हो। ९. अधिक से अधिक कम से कम। १०. परिमार्जित। ११. मेरे युग मे प्रेम अधिक से अधिक था और तुम्हारे युग में वफ़ादारी कम से कम रह गई। १२. संलग्न।

कम अज़ कम ! याद रहे के बेशतर-अज़ बेश व कम तर अज कम अगर चे बहस्बे माना जायज़ है, लेकिन फ़साहत इसमें कम है। 'बेश अज़बेश व कमज़ कम' अफ़सा है। वो शेर तम्हारा ख़ूब है और हमारा देखा हुआ है।

क़ैस प्रस्तो न एम कम बले सब्र
बेशस्त तुरा कमस्त मारा[1]

लेकिन हाँ, पहले मिसरे में अगर 'कमतर' होता तो और अच्छा था। बहरहाल, इतना ख़याल रहे के ऐसी जगह 'तु' का लफ्ज अफ़सा है। चुनाचे मेरा शेर है—

जल्वा कुन मिन्नत मने अज़ जर्रा कमतर नीस्तम
हुस्न बा ई तावनाकी आफ़ताबे बेश नीस्त
वर्ना चश्मे तो चे अज़ रोजने दीदार कमस्त[2]

यहाँ बहुत ही ऊपरी मालूम होता है और निरा हिन्दी का तर्जुमा रह जाता है और फ़ारसियत नहीं रहती। "महल[3] मशमार ज़िन्देगानी रा।" मुझको याद पड़ता है के मैंने इस मतले को यों दुरुस्त कर दिया है—"रायगा नस्त[4] जिन्दगानी रा। मी तुआँ कर्द जाँ फ़िशानी रा"। और इस सूरत में यह मतला ऐसा हो गया था के मेरे दिल मे आई थी के तुमको न दूँ और खुद इस जमीन में ग़ज़ल लिखूँ, मगर फिर मैंने किस्सत न[5] की और तुमको दे दिया। हजरत ने मुलाहिज़ा नहीं फ़रमाया। ये खत जो आपने मुझे लिखा है, शराब के

१. क़ैस (मजनूँ), हम तुम से किसी बात मे कम नहीं है। अन्तर इतना ही है कि तुम मे धैर्य अधिक है और हम मे कम। २. तुम अपना प्रकाश दिखाओ। मै कण से कम नहीं हूँ। सूर्य के प्रकाश में कण प्रदीप्त हो उठता है। अन्यथा तुम्हारी आँखे द्वार के छिद्र से भी हेय है। ३. जीवन को सरल मत समझो। ४. जब तक प्रयत्न न किया जाए जीवन निरर्थक है। ५. ओछापन, कंजूसी।

नशे में लिखा है और वो इस्लाही[1] औराक़ भी इसी आलम[2] में मुलाहिज़ा फ़रमाए है। अब—

गिला[3] ताकै जे ज़िन्दगानी हा

इसको मौक़ूफ़ कीजे और वो मतला रहने दीजे के वो बहुत खूब है। बे[4]—ऐनेही, मौलाना ज़हूरी का मालूम होता है। भाई, हमारे औराक़े इस्लाही को ग़ौर से देखा करो; हमारी मेहनत तो ज़ाया[5] न जावे।

'अय्यामे चन्द' में जम उल[6] जमा ऐसी खुली हुई नहीं है, बल्के फ़क़ीर के नजदीक जमउल जमा ही नहीं है। मसलन् 'मानेचन्द' और 'अहकामेचन्द' और 'इसरारे चन्द' ये आदमी लिख सकता है, मगर हां 'आमाल हा' ये खुली सुहरट[7] है।

खता ए[8] बुज़ुर्ग गिरफ़्तन ख़तास्त।

हमको अपनी तहज़ीब से काम है। अग़लात[9] में सनद[10] क्यों ढूंडते फिरें। मसलन हज़रत हाफ़िज़ ने लिखा है—

मलाहे[11] कार कुजा वो मने ख़राब कुजा
बिबी तफ़ाउते रह अज़ कुजास्त ता व कुजा

मेरी जान, ऐसे मौक़े में ये चाहिए के बुज़ुर्गों के कलाम को हम मौरिदे[12] ऐतराज़ न करें और ख़ुद इसकी पैरवी न करें। फ़क़ीर गवारा नहीं रखने का जमा उल जमा को और बुरा न कहेगा हज़रत "सायब" को,।

शोहरत फ़लाने शख़्स से इन्तक़ाल की बग़लत। अलबत्ता मेरा भी मूजिबे[13]

१. संशोधित पृष्ठ। २. स्थिति। ३. जीवन की शिकायत कब तक करें। ४. जैसा है वैसा। ५. व्यर्थ न जाए। ६. बहुवचन का बहुवचन। ७. सोरठ। ८. बड़े लोगों की त्रुटियाँ दिखाना अपराध है। ९. ग़लत (ब० व०), अशुद्धियां। १०. प्रमाण। ११. शुभ कार्य कहाँ और मुझ जैसा बुरा व्यक्ति कहाँ ? दोनों के मार्ग में अन्तर तो देखिए। १२. आक्षेपार्ह। १३. दुःख का कारण।

मलाल है; मगर ये कौन वाक़ै[१] अज़ीमे हौलनाक है के साहेबाने अखबार इसको छापें। आप इस तरफ़ इतना ऐतना[२] न फ़रमाइए।

गर माहो[३] आफ़ताब वेमीरद अज़ा मगीर
वर तीरो ज़ुहरा कुश्ता शवद नौहाख़ां मख़ाह

मैं काले साहब के मकान से उठ आया हूँ। बल्लीमारों के महल्ले में एक हवेली किराए को लेकर उसमें रहता हूँ। वहाँ का मेरा रहना तख़फ़ीफ़े[४] किराए के वास्ते न था। सिर्फ काले साहब की मुहब्बत से रहता था वास्ते इत्तला के तुमको लिखा है. अगर चे मेरे ख़त पर हाजत मकान के निशान की नहीं है, 'दर देहली ब असदुल्लाह ब रसद'[५] काफ़ी है, मगर अब 'लाल कुआँ' न लिखा करो, मुहल्ले बल्लीमाराँ लिखा करो।

और हाँ साहब, हमारे शफ़ीक़ बाबसाहब का हाल लिखो। मुस्हिल[६] से फ़राग़त हुई और मिज़ाज कैसा है? और अब अजमेर और वहाँ से आबू पहाड़ को कब जाएँगे? मेरा सलाम भी कह दीजिएगा। वस्सलाम![७]

मुर्हरिर[८] ए दो शम्बा बिस्त व दुअम मार्च १८५२।

असदुल्लाह

७

(१८ जून १८५२)

काशान[९] ए दिल के माहे दो हफ़्ता, मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' तहरीर में क्या क्या सेहर[१०] तराज़ियां करते हैं।

१. भयानक दुखद घटना। २. भयानक घटना। ३. यदि चाँद और सूरज नष्ट हो जाएँ तो शोक मत कर, यदि बुध और जुहरा नष्ट हो जाएँ तो भी किसी मातम करने वाले को मत बुला। ४. किराए की कमी। ५. पहुँचे ६. जुल्लाब, विरेचन। ७. बाईसवीं। ८. लिखा हुआ। ९. हृदय नीड के पूर्ण चन्द्र। १०. जादू, चमत्कार।

अब ज़रूर आ पडा है के हम भी जवाब उसी अन्दाज़ से लिखें। सुनो साहब, ये तुम जानते हो के जैनुल आबदीन खाँ मरहूम[1] मेरा फ़रज़न्द[2] था। और अब उसके दोनों बच्चे, के वो मेरे पोते हैं, मेरे पास आ रहे हैं और दम बदम[3] मुझको सताते हैं और मैं तहम्मुल[4] करता हूँ। खुदा गवाह है के मैं तुमको अपने फ़रज़न्द की जगह समझता हूँ। बस, तुम्हारे नतायजे[5] तबा मेरे मानवी[6] पोते हुए। जब इन आलमे[7] सूरत के पोतों से, के मुझे खाना नहीं खाने देते, मुझको दोपहर को सोने नही देते, नंगे नंगे पाँव मेरे पलंग पर रखते हैं, कहीं पानी लुढ़ाते है, कहीं ख़ाक उड़ाते हैं, मै नही तंग आता; तो उन मानवी पोतों से, के उनमें ये बातें नहीं हैं; क्यों घबराऊँगा ? आप उनको जल्द मेरे पास ब-सबीले[8] डाक भेज दीजिए के मै उनको देखूँ। वादा करता हूँ के फिर जल्द उनको तुम्हारे पास बसवीले डाक भेज दूँगा। हक़ ताला[9] तुम्हारे आलमे सूरत के बच्चों को जीता रखे और उनको दौलत व इक़बाल दे और तुमको उनके सर पर सलामत रखे और तुम्हारे मानवी बच्चों याने नतायजे तबा को फ़रोग़ शोहरत और हुस्ने[11] क़ुबूल अता फ़रमाए। बाबू साहब के नाम का खत उनके खत के जवाब में पहुँचता है। उनको दे दीजिएगा और हाँ साहब, बाबू साहब और तुम आबू को जाने लगो तो मुझको इत्तला करना और तारीखे रवानगी लिख भेजना ताके मैं वेख़बर न रहूँ। वद्दुआ[12]।

निगाश्ता जुमा, १८ जून १८५२ ई०

—असदुल्लाह

८

(१० दिसम्बर १८५२)

कल तुम्हारा ख़त आया। राज़ेनिहानी[14] मुझ पर आशकारा[15] हुआ। मैं

---

१. स्वर्गीय। २. पुत्र। ३. प्रतिक्षण। ४. धैर्य। ५. भावनाओं के परिणाम। ६. अर्थ की दृष्टि से पौत्र। ७. प्रत्यक्ष जगत। ८. द्वारा। ९. ईश्वर। १०. पूर्ण प्रसिद्धि ११. लोकप्रियता। १२. आशीर्वाद। १३. गुप्तभेद। १४. प्रकट। १५. कोलाहल।

समझा हुआ के तुम दीवानगी और शोरिश[1] कर रहे हो। अब मालूम हुआ के हक़[2] बजानिब तुम्हारे है। मैं जा अपने अज़ीज़ को नसीहत करता हूँ तो अपने नफ़्स को मुख़ातिब[3] करके कहता हूँ के ऐ दिल, तू अपने को इस अज़ीज़ की जगह समझकर तसव्वुर[4] कर के अगर तुझ पर यह हादिसा पड़ा होता या तू इस बला में गिर-फ़्तार हुआ होता तो क्या करता ? अयाज़न बिल्लाह् !

अब मैं तुमको क्यो कर कहूँ के ये बेहुरमती[5] गवारा करो और रिफ़ाक़त[6] न छोड़ो बल्के यह भी ज़ायद है जो दोस्त से कहे के तू हमारे वास्ते इसको तर्क कर। बहर हाल दोस्त की दोस्ती से काम है, उसके अफ़आल[7] से क्या ग़रज़ ? जो मुहब्बत व अिख़लास[8] उनमें-तुममें है, बदस्तूर बल्के रोज़[9] रोज़ अफ़ज़ूँ रहे। साथ रहना और पास रहना नही है, न सही।

"वस्ले के दरॉं मलाल बाशद हिज्रॉ बेह अज़ॉं विसाल बाशद"[10]।

आमदम[11] बरसरे मुद्दआ। तुम्हारी राय हम को इस बात में पसन्द। अजब तरह का पेच पड़ा के निकल नही सकता, न तुमको समझा सकता हूँ और न उनको कुछ कह सकता हूँ। मुझे तो इस मौक़े मे सिवाय इसके के "[12]तमाशा नैरंगे क़ज़ा वो क़द्र बना रहूँ," कुछ बन नहीं आती

बबीनम[13] के ताह किर्दगारे जहाँ
दरीं आशकारा के दारद निहाँ

---

१. सत्य तुम्हारी ओर है। २. सम्बोधित। ३. कल्पना। ४. ईश्वर की शरण में जाता हूँ। ५. अपमान। ६. साथ। ७. आचरण। ८. शिष्टता। ९. नित्य वृद्धिशील। १०. जिस संयोग से दुःख होता है उससे तो वियोग अच्छा। ११. जो कुछ अभीष्ट है कहता हूँ। १२. मै एक दर्शक की भाँति विधाता का लेख क्रियान्वित होता देखता रहूँगा। १३. इस गोचर जगत में ईश्वर ने जो कुछ छिपा रखा है, मैं उसे देखता हूँ।

जपूर का अमर महज़ इत्तेफ़ाक़ी[1] है। बेक़स्द[2] व बेफ़िक्र दरपेश आया है, हवसनाकाना[3] इधर मुतवज्जे हूँ। बूढ़ा हो गया हूँ, बहरा हो गया हूँ। सरकार अंग्रेज़ी में बड़ा पाया रखता था। रईसज़ादों मे गिना जाता था। पूरा ख़लत पाता था; अब बदनाम हो गया हूँ और एक बड़ा धब्बा लग गया है। किसी रियासत में दख़्ल नहीं कर सकता, मगर हां उस्ताद या पीर या मद्दाह बन कर राहो[4] रस्म पैदा करूँ, कुछ आप फ़ायदा उठाऊँ; कुछ अपने किसी अज़ीज़ को वहाँ दाख़िल कर दूँ। देखो, क्या सूरत पैदा होती है।

ता[6] निहाले दोस्ती कै बर दिहत
हालिया रफ्तेम व तुख़्मे काश्तेम

सहाफ़ के यहां से दीवान अभी नहीं आया, आज-कल आ जाएगा, फिर उसके जुज़ो दान की तैयारी करके रवाना करूँगा। अभी कोल में आराम करो, अपने बच्चों में अपना दिल बहलाओ। अगर जी चाहे तो अकबराबाद चले जाइयो। वहाँ अपना दिल बहलाइयो। देखो इस ख़ुद्दारी[7] में उधर से क्या होता है? और वो क्या करते हैं। वस्सलाम[8]।

जुमा दहुम[9] दिसम्बर १८५२ ई० असदुल्लाह

९

परसों तुम्हारा ख़त आया। हाल जो मालूम था वो फिर मालूम हुआ।[10] ग़ज़लें देख रहा था। आज शाम को देखना तमाम[11] हुआ था। ग़ज़लों को रख दिया था। चाहता था के उनको बन्द करके रहने दूँ, कल नौ बजे—दस बजे

---

१. सांयोगिक। २. बिना संकल्प। ३. विवशतावश। ४. परिचय। ५. देखना है यह मित्रता का पौधा कब फल देगा, हम गए और हमने बीज बो दिया। ७. स्वात्मा-भिमान। ८. अभिवादन। ९. दशमी। १०. पूर्ण। ११. प्रतिष्ठा के अनुसार।

डाक में भेज दूँ। ख़त कुछ ज़रूर नहीं, मैं इसी ख़याल में था के डाक का हरकारा आया। जानीजी का ख़त लाया। उसको पढ़ा। अब मुझको ज़रूर हुआ के ख़ुलासा उसका तुमको लिखूँ। ये रुक़्क़ा लिखा—

ख़ुलासा बतरीक़े एजाज़ ये है के अर्ज़ी गुज़री। दीवान गुज़रा, रावलजी के नाम का ख़त गुज़रा। राजा साहब दीवान के देखने से ख़ुश हुए। जानाजी ने जो एक मौतमद[1] अपना सादुल्लाह ख़ाँ वकील के साथ कर दिया है, वो मुन्तज़िर जवाब का है। रावलजी नए अजंट के इस्तक़बाल[2] को गए हैं और अब अजण्ट इलाक़ ए जयपुर की राह से नहीं आता। आगरे और गवालियार, करोली होता हुआ अजमेर आएगा। और इस राह में जैपुर का अमल नहीं। पस, चाहिए के रावल जी उल्टे फिर आवें। उनके आए पर अर्ज़ी का जवाब मिलेगा और उसमें दीवान की रसीद भी होगी। भाई, जानीजी तुमको बहुत ढूंढ़ते और तुम्हारे बग़ैर बहुत बेचैन हैं।

मैं न तुमको कुछ कह सकता हूँ, न उनको समझा सकता हूँ। तुम वो करो के जिसमें साँप मरे और लाठी न टूटे। हाँ, यह भी जानीजी ने लिखा था के बहुत दिन के बाद मुंशीजी का ख़त आया है।

असद

१०

(२५ फरवरी १८५३)

भाई,

परसों शाम को डाक का हरकारा आया और एक ख़त तुम्हारा और एक जानीजी का लाया। तुम्हारे ख़त में औराक़े अशार और बाबूसाहब के ख़त में जैपूर के अख़बार। दो दिन से मुझको वजुल[3] सद्र है और मैं बहुत बेचैन हूँ। अभी अशार को देख नहीं सकता। बाबू साहब के भेजे हुए कवाग़ज़ तुम को

१. सचिव। २. स्वागत। ३. छाती का दर्द।

भेजता हूँ। अशार बाद दो चार रोज़ के भेजे जाएँगे। मुरस्सिला जुमा २५ फ़रवरी सन् १८५३ ई०।

असदुल्लाह

११

(२८ मार्च १८५३)

भाई,

आज मुझको बड़ी तशवीश है और ये ख़त मैं तुमको कमाले[1] सरासीमगी में लिखता हूँ। जिस दिन मेरा ख़त पहुँचे, अगर वक़्त डाक का हो तो उसी वक़्त जवाब लिख कर रवाना करो; और अगर वक़्त न रहा हो तो नाचार दूसरे दिन जवाब भेजो। मंशा तशवीश[2] व इज़्तराब का ये है के कई दिन से राजा भरतपूर की बीमारी की ख़बर सुनी जाती थी। कल से और बुरी ख़बर शहर में मशहूर है। तुम भरतपूर से क़रीब हो। यक़ीन है के तुमको तहक़ीके हाल मालूम होगा। जल्द लिखो के क्या सूरत है? राजा का मुझको ग़म नहीं, मुझको फ़िक्र जानीजी का है के उसी इलाक़े में तुम भी शामिल हो। साहेबाने अंग्रेज ने रियासतों के बाब[3] में एक क़ानून वज़ा किया है। याने जो रईस मर जाता है, सरकार उस रियासत पर काबिज़ व मुतसर्रिफ़ होकर रईसज़ादे के बालिग़ होने तक बँदोबस्त रियासत का अपने तौर पर रखती है। सरकारी बँदोबस्त में कोई दीमुल[4] ख़िदमत मौक़ूफ़ नहीं होता। इस सूरत में यक़ीन है के जानी साहब का इलाक़ा बदस्तूर क़ायम रहे। मगर ये वकील है, मालूम नहीं मुख़्तार कौन है और हमारे बाबू साहब में और उस मुख़्तार में सोहबत कैसी है? रानी से इनकी क्या सूरत है? तुम अगर चे बाबू साहब की मुहब्बत का इलाक़ा रखते हो, लेकिन उन्होंने अज़राहे[5] दूरन्देशी तुमको मुतवस्सिल[6] उस सरकार कर

---

१. परेशानी। २. बेचैनी और उद्विग्नता। ३. सम्बन्ध में। ४. पुराना कर्मचारी। ५. दूरदर्शिता से। ६. सम्बन्धी।

रखा है और तुम मुस्तग़नियाना[१] और लाबबालियाना[२] ज़िन्दगी बसर करते थे। ज़िन्हार[3] अब वो रविश न रखना। अब तुमको भी लाज़िम आ पड़ा है जानीजी के साथ रूशनासे[४] हुक्कामे वाला मुक़ाम होना। पस, चाहिए कोल की आरामिश[५] का तर्क करना और ख़ाही[६] न ख़ाही बाबू साहब के हमराह[७] रहना। मेरी राय में यों आया है, और मैं नहीं लिख सकता के मौक़ा क्या है और मसलिहत क्या है। जानीजी भरतपूर आए हैं या अजमेर में हैं, किस फ़िक्र में हैं और क्या कर रहे हैं? वास्ते खुदा के न मुख़्तसर[८] न सरसरी बल्के मुफ़स्सिल[९] और मुनक़्क़ह[१०] जो कुछ वाक़ै हुआ हो और जो सूरत हो मुझको लिखो और जल्द के मुझ पर ख़ाबो ख़ोर[११] हराम है। कल शाम को मैंने सुना, आज सुबह क़िले नहीं गया और ये ख़त लिख कर अज़ राहे अहतियात बैरंग रवाना किया है। तुम भी इसका जवाब बैरंग रवाना करना। आधाना ऐसी बड़ी चीज़ नहीं। डाक के लोग बैरंग ख़त को ज़रूरी समझ कर जल्द पहुँचाते हैं और पोस्ट पेड पड़ा रहता है जब उस मुहल्ले में जाना होता तो उसको भी ले जाते हैं। ज़्यादा क्या लिखूँ के परेशान हूँ।

नविश्ता चाश्तगाहे[१२] दो शंबा,[१३] २८ मार्च सन् १८५३ ई०। ज़रूरी। जवाब तलब।

१२

(५ अप्रैल १८५३)

आज मंगल के दिन पाँचवीं अप्रैल को तीन घड़ी दिन रहे डाक का हरकारा आया। एक ख़त मुंशी साहब का और एक ख़त तुम्हारा और एक ख़त बाबू साहब का लाया। बाबू साहब के ख़त से और मतालिब[१४] तो मालूम हो

---

१. निरपेक्ष। २. वीतराग। ३. सम्प्रति। ४. उच्चाधिकारियों से परिचय। ५. आराम। ६. चाहते हुए या न चाहते हुए। ७. साथ। ८. संक्षिप्त। ९. विवरण सहित। १०. स्पष्ट। ११. नींद और भोजन। १२. प्रात:काल। १३. सोमवार। १४. मतलब (ब० व०)।

गए मगर एक अम्र[1] में मैं हैरान हूँ के क्या करूँ ! याने उन्होंने एक ख़त किसी शख़्स का आया हुआ मेरे पास भेजा है और मुझको ये लिखा है के उसको उल्टा मेरे पास भेज देना । हालाँ के ख़ुद लिखते हैं के मैं अप्रैल की चौथी को सपाटू या आबू जाऊँगा और आज पाँचवीं है । बस तो वो कल रवाना हो गए । अब मैं वो ख़त किसके पास भेजूँ ? लाचार तुमको लिखता हूँ के मैं ख़त को अपने पास रहने दूँगा । जब वो आकर मुझको अपने आने की इत्तला देंगे तब वो ख़त उनको भेजूँगा । तुमको तरद्दुद न हो के क्या ख़त है । ख़त नहीं, मेढ़ूलाल कायथ गम्मास की अर्ज़ी थी बनाम महाराजा बैकुंठबाशी, मय्यात[2] बाबू साहब पर मुश्तमिल के उसने लिखा था के हरदेवसिंह जानीजी का दीवान और एक शायरे देहली का दीवान महाराजा जैपुर के पास लाया है और जानीजी की दुरुस्ती-ए-रोज़गार जैपूर की सरकार में कर रहा है । और उसके भेजने की ये वजह के पहले उनके लिखने से मुझको मालूम हुआ था के किसी ने ऐसा कहा है । मैंने उनको लिखा था के तुमको मेरे सर की क़सम अब हरदेवसिंह को बुलवालो । मैं अम्रे[3] जुज़वी के वास्ते अम्र[4] कुल्ली का बिगाड़ नहीं चाहता । इसके जवाब में उन्होंने जो अर्ज़ी भेजी और लिख भेजा के राजा मरने वाला ऐसा न था के इन बातों पर निगाह करता । उसने ये अर्ज़ी गुज़रते ही मेरे पास भेज दी थी । फ़क़त[5] । वारे, इस ख़त के आने से जानीजी की तरफ़ से मेरी ख़ातिर जमा हो गई । मगर अपनी फ़िक्र पड़ी । याने बाबूसाहब आबू होंगे । अगर हरदेवसिंह फिर कर आएगा तो वो बग़ैर उनके मिले और उनके कहे मुझ तक काहे को आएगा । ख़ैर, वो भी लिखता है के रावल कहीं गया हुआ है, उसके आए पर रुख़सत होगी । देखिए, वो कब आवे और क्या फ़र्ज़ है के उसके आते ही रुख़सत हो भी जाए । तुम्हारी ग़ज़ल पहुँची । ये अलबत्ता कुछ दर से पहुँचेगी तुम्हारे पास । घबराना नहीं । वद्दुआ ।

---

१. विषय । २. अपराध, पाप । ३. आंशिक विषय । ४. पूर्ण विषय । ५. केवल ।

मुंशी हरगोपाल तफ़्ता के नाम

निगाश्ता[1] मे शम्बा, रोज़ वरूदनामा[2]

व मुरसिला चहार शंबा शशुम अप्रैल १८५३।

जवाब तलब। अज़-असदुल्ला।

१३

(२ मई १८५३)

भाई,

तुमने मुझे कौन-सा दो-चार सौ रुपए का नौकर या पिन्सनदार क़रार दिया है जो दस बीस रुपया महीना क़िस्त आरज़ू रखते हो। तुम्हारी बातों पर कभी-कभी हँसी आती है। अगर अहियानन देहली के डिप्टी कलक्टर या वकील कम्पनी होते तो मुझको बड़ी मुश्किल पड़ती। बहरहाल खुश रहो और मुतफ़क्किर[3] न हो। पाँच रुपया महीना पिन्सन अंग्रेजी मे से क़िस्त मुक़र्रर हो गया ता अदा-ए-ज़र[4]। इब्तिदा-ए-जून[5] सन १८५३ ई० याने माहे आइन्दा से ये क़िस्त जारी होगी। बाबूसाहब का खत तुम्हारे नाम का पहुँचा। अजब तमाशा है, वो दिरंग[6] के होने से खिजिल[7] होते हैं और मैं उनके उज़्र चाहने से मरा जाता हूँ। हाय इत्तेफ़ाक़,[8] आज मैंने उनको लिखा और कल राजा के मरने की खबर सुनी। वल्लाह बिल्लाह! अगर दो दिन पहले खबर सुन लेता, तो, अगर मेरी जान पर आ बनती, तो भी उनको न लिखता। जैपूर के आए हुए रुपए की हुण्डवी इस वक़्त तक नहीं आई। शायद आज शाम तक या कल तक आ जावे। खुदा करे, वो आबू पहाड़ पर से हुण्डवी रवाना कर दें, वर्ना फिर खुदा जाने कहाँ-कहाँ जाएँगे और रुपया भेजने में

---

१. लिखा गया। २. भेजने का दिन। ३. चिन्तित। ४. रुपए की अदायगी तक। ५. जून के आरंभ। ६. विलम्ब। ७. लज्जित। ८. संयोग।

कितनी देर हो जाएगी। ख़ुदा करे, ज़रे मसारिफ़[1] हरदेवसिंह उसी में से मुजरा लें, मेरी कमाल ख़ुशी है, और ये न हो तो '२५' हरदेवसिंह को मेरी तरफ़ से ज़रूर दें। मुंशी साहब का एक ख़त हातरस से आया था। कल उसका जवाब हातरस को रवाना कर चुका हूँ। वदुआ, मुहर्रिरा दो शम्बा २ मई १८५३ ई०।

अज़-असदुल्लाह

१४

भाई,

हाँ, मैंने ज़ब्दतुल अख़बार में देखा के रानी साहब मर गईं। कल एक दोस्त का ख़त अकबराबाद से आया। वो लिखता है के राजा मरा, रानी मरी। अभी रियासत का कोई रंग क़रार नहीं पाया, सूरते इंतज़ाम जानी बैजनाथ के आने पर मौक़ूफ़ है, यहाँ तक उस दोस्त की तहरीर है। ज़ाहिरा उसको बाबूसाहब का नाम नहीं मालम। उनके भाई का नाम याद रह गया। सिर्फ़ उस दोस्त ने बतरीक़े अख़बार लिखा है। उसको मेरी और जानी की दोस्ती का भी हाल मालूम नहीं। हासिल इस तहरीर से ये है के अगर ये ख़बर सच है तो हमारे-तुम्हारे दोस्त का काम बना रहेगा। आमीन, या रब्बुल आलमीन[2]।

साहब, जैपूर का मुकदमा अब लायक़ इसके नहीं है के हम उसका ख़याल करें। एक बिना डाली थी, वो न उठी। राजा लड़का है और छिछोरा है। रावलजी और सादुल्लाहख़ाँ बने रहते तो कोई सूरत निकल आती और ये जो अब लिखते हैं के राजा तेरे दीवान को पढ़ा करता है और पेशे[3] नज़र रखता है, ये भी तो आप अज़रूए तहरीरे मुंशी हरदेव सिंह[4] कहते हैं। उनका बयान क्यों कर दिलनशी[5] हो? वो भी जो बाबूसाहब लिख चुके हैं के पान सौ

---

१. पैसा भेजने का व्यय। २. विश्वंभर इसे स्वीकार करे। ३. दृष्टिगोचर। ४. मुंशी हरदेव सिंह के लेखानुसार। ५. हृदयांकित।

रुपया नक़्द और ख़िलत मिर्ज़ा साहब के वास्ते तजवीज़ हो चुका है, होली हो चुकी और मैं लेकर चला। फागुन, चैत, बैसाख, नहीं मालूम होली किस महीने में होती है। आगे तो फागुन में होती थी।

बन्दा परवर, बाबू साहब ने पहले तो मुझको दो हुण्डवियाँ भेजी हैं—सौ सौ रुपए की। एक तो मीर अहमद हुसेन "मैकश" के वास्ते राजा साहब की तरफ़ से तारीख़े तवल्लुदे कुँअर साहब के इनाम में और एक अपनी तरफ़ से मुझको बतरीक़ नज़रे शागिर्दी बाद उसके दो हुण्डवियाँ सौ सौ रुपए की बाद चार चार पाँच पाँच महीने के आइं। मय मीर अहमद हुसेन के सिले के रुपयों के चार सौ और उसके अलावा तीन सौ, और ये के चार सौ या तीन सौ कितने दिन में आये इसका हिसाब कुअर साहब की उम्र पर हवाला है। अगर वो दो बरस के हैं तो दो बरस में, और अगर वो तीन बरस के हैं तो तीन बरस में। हाँ साहब, ये वो ही मीर कासिमअली साहब हैं, जो मेरे पुराने दोस्त हैं। परसों या तरसों जो डाक का हरकारा ख़त लाया था, वो एक ख़त मीर साहब के नाम का, कोई मियाँ हिकमतुल्ला हैं उनका, मेरे मकान के पते से लाया था, वो मैंने लेकर रख लिया है। जब मीर साहब आ जावें तो तुम उनको मेरा सलाम कहना और कहना के हज़रत अगर मेरे वास्ते नहीं तो इस ख़त के वास्ते आप दिल्ली आइये।

१५

(५ जून १८५३)

अजीब तमाशा है! बाबूसाहब लिख चुके हैं के हरदेव सिंह आ गया और पान सौ रुपये की हुण्डवी लाया मगर उसके मसारिफ़[१] की बाबत उनतीस रुपए कई आने उस हुण्डवी में महसूब[२] हो गये हैं। सो मैं अपने पास से मिला कर

---

१. व्यय। २. हिसाब में आना।

पूरे पान सौ की हुण्डवी तुझको भेजता हूँ। मैंने उनको लिखा के मसारिफ़ हरदेवसिंह के मैं मुजरा दूंगा, तकलीफ़ न करो। '२५' ये मेरी तरफ़ से हरदेवसिंह को और दे दो और बाक़ी कुछ कम साढ़े चार सौ की हुण्डवी जल्द रवाना करो। सो भाई, आज तक हुण्डवी नहीं आई। मैं हैरान हूँ। वजह हैरानी की ये के उस हुण्डवी के भरोसे पर क़र्ज़दारों से वादा जून के अवायल का किया था, आज जून की पाँचवीं है। वो तक़ाज़ा करते हैं और मैं आजकल कर रहा हूँ। शर्म के मारे बाबूसाहब को कुछ नहीं लिख सकता। जानता हूँ के दो सैकड़ा पूरा करने की फ़िक्र में होंगे। फिर वो क्यों इतना तकल्लुफ़ करे। तीस रुपए की कोन-सी ऐसी बात है? अगर मसारिफ़े हरदेवसिंह मेरे हाँ से मुजरा हुए तो क्या ग़ज़ब हुआ? २९ और २५, ५४ रुपए निकाल डालें और बाकी इरसाल करें। लिफ़ाफ़े ख़ुतूत के जो मैंने भेजे थे वो भी अभी नही आये बईंहमा[1] ये कैसी बात है के मैं ये भी नहीं जानता के बाबूसाहब कहाँ हैं? पहाड़ पर हैं या भरतपूर आये हैं? अजमेर आने की तो ज़ाहिरा कोई वजह नहीं है। नाचार कसरते इन्तेज़ार[2] से आजिज़ आकर आज तुमको लिखा है। तुम इसका जवाब मुझको लिखो और अपनी राय लिखो के वजह दिरंग की क्या है। ज़्यादा, ज़्यादा। मरक़ूमा पंजुम जून सन् १८५३ रोज़ पंजशंबा।
जवाब तलब।

असदुल्लाह

१६

(९ जून १८५३)

तुम्हारी ख़ैरो आफ़ियत[३] मालूम हुई। ग़ज़ल ने मेहनत कम ली। भाई का हातरस से आना मालूम हुआ। आवें तो मेरा सलाम कह देना। ये तुम्हारा

---

१. इतना होते हुए भी: तथापि। २. अधिक प्रतीक्षा। ३. कुशलता।

दुश्रागो श्रगरचे श्रौर उमूर[1] में पायेश्राली[2] नहीं रखता, मगर श्रेहतियाज[3] मे इसका पाया बहुत श्राली है, याने बहुत मुहताज हूँ। सौ दो सौ में मेरी प्यास नहीं बुझती। तुम्हारी हिम्मत पर सौ हज़ार श्राफ़रीं। जैपूर से मुझको श्रगर दो हज़ार हाथ श्रा जाते, तो मेरा क़र्ज़ रफ़ा हो जाता श्रौर श्रगर फिर दो चार बरस की ज़िन्दगी होती तो इतना ही क़र्ज़ श्रौर मिल जाता। ये पान सौ तो, भाई तुम्हारी जानकी क़सम, मुतफ़र्रिकात में जाकर सौ डेढ़ सौ बच रहेंगे सो वो मेरे सर्फ़ में श्रावेंगे। महाजनों का सूदी जो क़र्ज़ हैं, जो बक़दर पन्दरा सै, सोला सै के बाक़ी रहेगा श्रौर वो जो सौ बाबूसाहब से मँगवाये गए थे वो सिर्फ़ श्रंग्रेज सौदागर के देने थे क़ीमत उस चीज़ की जो हमारे मज़हब में हराम श्रौर तुम्हारे मशरब[4] में हलाल है सो वो दे दिये गये। यक़ीन है के श्राजकल में बाबूसाहब का ख़त मय हुण्डवी श्रा जावे।

बाबूसाहब के जो ख़ुतूत[5] ज़रूरी श्रौर कवाग़ज़ ज़रूरी मैंने पाए श्राये हुए थे, वो मैंने पंजशंबा, २६ मई को पार्सल में उनके पास रवाना कर दिये श्रौर उसमें लिख भेजा के हुण्डवी श्रौर मेरे भेजे हुए लिफ़ाफ़े जल्द भेज दो।

पंजशंबा पंजशंबा श्राज १५ दिन पूरे हुए।

निगाश्तां पंजशंबा, नहुम जून सन् १८५३ ई०।

अज़ा-असदुल्लाह

१७

(१४ जून १८५३)

भाई,

जिस दिन तुमको ख़त भेजा, तीसरे दिन हरदेवसिंह की श्रर्ज़ी श्रौर '२५' की रसीद श्रौर '५००' की हुण्डवी पहुँची। तुम समझे बाबूसाहब ने '२५'

---

१. विषयों में। २. उच्च स्तर। ३. लालसा, श्रावश्यकता। ४. धर्म। ५. ख़त (पत्र) का ब० व०।

हरदेवसिंह को दिये और मुझसे मुजरा न लिए। बहरहाल हुण्डवी १२ दिन की मयादी थी। ६ दिन गुज़र गए थे, ६ दिन बाक़ी थे। मुझको सब्र कहाँ ? मित्ती काट कर रुपए ले लिए। क़र्ज़ मुतफ़र्रिक़ सब अदा हुआ। बहुत सुबुकदोश हो गया। आज मेरे पास '४७' नक़्द बक्स में और चार बोतल शराब की और ३ शीशे गुलाब के तोशाख़ाने में मौजूद हैं। अलहम्दुलिल्लाह अलाएहसानेही[1]। भाई साहब आ गए हों तो मीर क़ासिम अलीख़ाँ का ख़त उनको दे दो और मेरा सलाम कहो और फिर मुझको लिखो ताके मैं उनको ख़त लिखूँ। बाबू-साहब भरतपूर आजाएँ तो आप काहिली न कीजिएगा और उनके पास जाइएगा के वो तुम्हारे जोयाए[2] दीदार हैं।

सेशम्बा १४ जून १८५३ ई०। असदुल्लाह

१८

(२१ अगस्त १८५३)

भाई,

मैंने माना तुम्हारी शायरी को। मैं जानता हूँ के कोई दम तुमको फ़िक्रे[3] सुख़न से फ़ुर्सत न होगी, पर जो तुमने इल्तेज़ाम किया है, तरसीअ[4] की सनद का और दो लख़्त शेर लिखने का, इसमें ज़रूर निशिस्त माने भी मलहूज़[5] रखा करो, और जो कुछ लिखो उसको दो बारा से बारा[6] देखा करो। क्यों साहब, य डबल ख़त पोस्ट पेड भेजना, और वो भी दिल्ली से सिकन्दराबाद को, आया हातिम के सिवा और मेरे सिवा, किसी ने किया होगा ! क्या हँसी आती है तुम्हारी बातों पर ! ख़ुदा तुमको जीता रखे और जो कुछ तुम चाहो तुमको दे। जानीजी की बड़ी फ़िक्र है। मैं तुमको लिखा चाहता था के उनका हाल लिखो।

---

१. भगवान का धन्यवाद, उसकी बड़ी कृपा है। २. देखने के इच्छुक। ३. कविता का चिन्तन। ४. अन्त्यानुप्रास। ५. लिहाज रखना। ६. तीसरी बार।

तुम्हारे ख़त से मालूम हुआ के तुमको भी नहीं मालूम के वो कहाँ है। यक़ीन है के अजमेर में होंगे, मगर ख़त नहीं भेजा जाता, के वो वहाँ मुक़ीम नही हैं। ख़ुदा जाने कब चल निकलें। बहरहाल तुम भरतपूर से क़रीब हो और उनके मुतवस्सिलों[1] को जानते हो। अगर हो सके तो किसी को लिख कर ख़बर मँगवाओ और जो कुछ तुमको मालूम हो, वो मुझको भी लिखो। मुंशी साहब मय मुंशी अब्दुल लतीफ़ कोल में आ गए। कल उनका ख़त मुझको आया था, आज उसका जवाब भी रवाना कर दिया।

एक शंबा, २१ माहे अगस्त १८५३ ई०।

असदुल्लाह

१९

साहब,

दूसरा पार्सल, जिसको तुमने बतकल्लुफ़ ख़त बनाकर भेजा है, पहुँचा। न इस्लाह को जगह, न तहरीरे सुतूर[2] का पेचोताब[3] समझ में आता है। तुमने अलग-अलग दो वर्क़ पर क्यों न लिखा? और छिदरा छिदरा क्यों न लिखा? एकाध दो वर्क़ ज़्यादा हो जाता तो हो जाता। बहरहाल अब मुझे चुनने पड़े हैं सवालात। अगर कोई सवाल मेरी नज़र न चढ़े और रह जाए तो सुतूर की मोड़ तोड़ का गुनाह समझना, मेरा क़ुसूर न जानना।

'बिला रुबा ए' इसमें ताम्मुल[4] क्या है? लफ़्ज़ सही और पूरा तो यही है, रुबा इसका मुरक़्फ़फ़[5] है।

[6]ख़ार हा दर राहश अफ़शानम के चूँ ख़ाहद शुदन, बहुत ख़ूब और माक़ूल।

---

१. सम्बन्धी। २. पंक्तियों का। ३. उलझन। ४. सोच-विचार। ५. संक्षिप्त। ६. उसके रास्ते में काँटे बिछाना चाहता हूँ, तथास्तु।

मैं उस वक़्त ख़ुदा जाने किस ख़याल में था 'चूँ ख़ाहद शुदन' व 'कुनूँ ख़ाहद शुदन' रदीफ़ व क़ाफ़िया समझा था।

लफ़्ज़ 'बेपोर' तो तूरानी[1] बच्चा हाय हिन्दी नज़ाद[2] का तराशा हुआ है। जब मैं अशार उर्दू में अपने शागिर्दों को नहीं बाँधने देता तो तुमको शेरे फ़ारसी में क्योंकर इजाज़त दूँगा? मिर्ज़ा जलाले 'असीर' अलइर्रहमा[3] मुख़्तार हैं और उनका कलाम सनद है। मेरी क्या मजाल है के उनके बाँधे हुए लफ़्ज़ को ग़लत कहूँ? लेकिन ताज्जुब है और बहुत ताज्जुब है के अमीर-ज़ादए ईरान ऐसा लफ़्ज़ लिखे।

'शिस्त बस्तन' जब ज़हूरी के हाँ है तो बाँधिए। ये रोज़मर्रा है और हम रोज़मर्रा में उनके पैरो हैं।

'बेपीर' एक लफ़्ज़ टकसाल बाहर है, वर्ना साहबे ज़बान होने में असीर भी ज़हूरी से कम नहीं।

ज़ाहिदा ईं सुख़नत हर्ज़ा के गुफ़्ती चे शुदी
हक ग़फ़ूरस्त गुनाहे शुदाअम ता चे शवद[4]

पहले ज़ाहिद से ये ये सवाल ग़लत के 'चे शुदी'[5] 'तरा[6] चे शुद' सवाल हो सकता है, फिर 'गुनाहे शुदा अम[7]' ये जवाब मुहम्मल। 'गुनाहे[8] कर्दा अम' जवाब हो सकता है। यहाँ तुम कहोगे के 'हमा[9] तन गुनाह' या 'सरापा[10] गुनाह' या 'ससासर गुनाह शुदा अम' ये जवाब उस जवाब से सरासर बेरब्त है। जब तक 'हमा तन गुनाह' न हो माने नहीं बनते हर्गिज़ हर्गिज़। इस्लाह

---

१. ईरानी। २. जो बालक भारत में उत्पन्न हुए हैं। ३. उन पर ईश्वर की कृपा हो।४. हे धार्मिक व्यक्ति, तुम्हारी ये बातें निरर्थक हैं। मुझसे जो अपराध होते हैं, ईश्वर उन्हें क्षमा कर देता है।५. क्या हुआ? ६. तुझे क्या हुआ? ७. मुझसे पाप हुआ है, ८. मैंने पाप किया। ९. सिर से पाँव तक अपराध। १०. नख से शिख तक अपराध।

दिए हुए शेर में मज़मून तुम्हारा ही रहा और टकसाल के माफ़िक़ हो गया। अजब है तुम से के सिर्फ़ 'शुदा अम' और 'ता चे शवद' के पैबन्द में उलझ कर हक़ीक़ते माना[1] ग़ाफ़िल रहे।

बा ज़ारे दिल ख़ुदज़ चुनीकार आजार चे मी कुनी दिल मरा।[2]

अहली ने ज़बर्दस्ती की है। मगर हाँ उसने एक वजह ठहराली है याने 'अज़ुर्दन' मसदर और 'आज़ारुद' मज़ारे और 'आज़ार' अम्र। अम्र बमाने इस्मे जामिद आता है और इस्मे जामिद '५ रदन' के साथ पैबन्द पाता है। ख़ैर रहने दो।

कुनद आँ आहू ए वहशी ज़ बरम फ़रमादारम[3]

ये शेर मोय्यद मेरे कलाम का है। 'बरदारम' व 'ज़रदारम' व 'सरदारम' व 'फ़रदारम' ये सब अल्फ़ाज़ एक तरह के हैं, अलिफ़े ममदूद कहीं नहीं, हाँ 'बूदारद' व 'रूदारद' व 'फ़रूदारद' तुम्हारे अक़ीदे की ताईद करता है मगर ये शेर उस्ताद का नही। मशायक़[4] में से एक बुज़ुर्ग थे मौलाना अलाउद्दीन, "मा[5] मुक़ीमाने कुए दिल दारेम" ये तरजी बन्द उन्ही का है। उनको फ़क्रो[6] फ़ना व सैरो सुलूक[7] में समझना चाहिए, न अन्दाज़े[8] कलाम में।

'परे[9] मोरस्त शमशीरे के बर मूए मियाँ दारद'

भाई, ख़ुदा की क़सम ये मिसरा तलवार की नाज़ुकी की सनद नहीं हो सकता। ये तो एक मज़मून है कमर-मोर, व तलवार-परेमोर। वजह तशबीह[10]

---

१. वास्तविक तात्पर्य। २. अपनी करुण प्रार्थना से तुम मुझे क्या कष्ट देना चाहते हो? ३. वह जंगली हिरन मेरे पास से अवश्य भागेगा। ४. गुरु वृन्द। ५. प्रेम की गली में रहते हैं। ६. चिन्तन-ध्यान। ७. मुमुक्षु। ८. कविता की शैली। ९. जिस तरह पर का सम्बन्ध चींटी से है उसी तरह तलवार का सम्बन्ध कटि से है। १०. उपमा।

इलाक़ ए परेमोर बामोर, मानिन्दे इलाक़-ए-शमशीर बाम्यान। नज़ाक़त वजह तशबीह कभी नहीं। इन्साफ़ शर्त्त है। तलवार की ख़ूबी 'तेज़ी' है या 'नाज़ुकी'? 'ये धोका न खाओ और तलवार को नाज़ुक न बाँधो। 'खो' में और 'तलवार' में मुनासिबत नहीं पाई जाती। जाने दो। शेर से हाथ उठाओ।

मियां, 'ख़मीदन' भी सही और 'चमीदन' भी सही। इसमें किसको तरद्दुद है? मगर लुग़द और मुहावरे और इस्तलाह[1] में क़यास[2] पेश नहीं जाता। हिन्दुस्तान के बातूनी लोगों को 'ख़मो चम' बोलते सुना है। आज तक किसी नज्म व नस्रे फ़ारसी में ये लफ़्ज़ नहीं देखा। लफ़्ज़ 'प्यारा' मुझको भी पसन्द; मगर क्या करूँ? जो अपने पेशवाओं से न सुना हो उसको क्यों कर सही जानूँ? 'चमीद' सेग़ा माज़ी का है, 'चमीदन' से, और 'चमीदन' एक मसदर है, सही और मुसल्लम; 'चम्द' मुज़ारअ, 'चम' अमर। इसमें क्या गुफ़्तगू है? कलाम 'ख़म व चम' में है।

सवालात ढूँढ ढूँढ कर उनका जवाब लिख दिया। अब अशार को देखता हूँ। ख़ुदा करे, मुझसे कोई सवाल बाक़ी न रह गया हो, और तुम भी जब इन औराक़े तिलस्मी[3] को देखो तो कोई इस्लाह का इशारा तुमसे बाक़ी न रह जाए। ग़रज ये है के अब फिर इस तरह कभी न लिखना। मैं बहुत घबराता हूँ।

'ख़मीदस्त' व 'रसीदस्त' में 'नज़नीदस्त' ये क़ाफ़िया दुरुस्त है मगर 'अस्त' का अलिफ़ सब जगह उडा दो और याद रहे के सिर्फ़ 'सीन' 'ते' काफ़ी है। अलिफ़ ज़रूर नहीं।

—ग़ालिब

१. परिभाषा। २. अनुमान। ३. जादू भरे पृष्ठ।

२०

तुम्हारा ख़त पहुँचा, मुझको बहुत रंज हुआ वाक़ई उन छोटे लड़कों का पालना बहुत दुश्वार होगा। देखो, मैं भी इसी आफ़त में गिरफ़्तार हूँ। सब्र करो, सब्र न करोगे तो क्या करोगे ? कुछ बन नहीं आती। मैं मुस्हिल[1] में हूँ। ये न समझना के बीमार हूँ। हिफ़्ज़े सेहत[2] के वास्ते मुस्हिल लिया है। तुम्हारे अशार ग़ौर से देख कर भाई मुंशी नबीबख्श साहब के पास लिफ़ाफ़ा तुम्हारे नाम का भेज दिया है। जब तुम आओगे तब वो तुमको देंगे। जहाँ जहाँ तरद्दुद व ताम्मुल की जगह थी, वो ज़ाहिर कर दी है और बाकी सब अशार बदस्तूर रहने दिए हैं। अब तुमको यह चाहिए के कोल पहुँच कर मुझको खत लिखो। इस लिफ़ाफ़े की रसीद और अपना सारा हाल मुफ़स्सिल लिखो। इसमें तसाहुल[3] न करो। बाबूसाहब के खत का जवाब अजमेर को रवाना कर दिया जाएगा। आपकी ख़ातिर जमा रहे। ज्यादा इससे क्या लिखूँ ?

असदुल्लाह

२१

वाह, क्या ख़ूबी-ए[4] क़िस्मत है मेरी ! बहुत दिन से ध्यान लगा हुआ था के अब मुंशीजी का ख़त आता है और उनकी खैरो आफ़ियत मालूम होती है। खत आया और खैरो आफ़ियत मालूम न हुई। याने मालूम हुआ के खैर नहीं है और पाँव में चोट लगी है। सुनो साहब, ये भी ग़नीमत है के हड्डी को सदमा नहीं पहुँचा। इतना फैलावा भी इस सबब से हुआ के कोई मालिश करने वाला न मिला और चोट कोहना[5] हो गई। अलबत्ता कुछ देर में इफ़ाक़त[6] होगी।

---

१. विरेचन। २. स्वास्थ्य रक्षा। ३. आलस्य। ४. सौभाग्य। ५. पुरानी। ६. स्वास्थ्य।

बाद इफ़ाक़त होने के तुम मुझको इत्तला करने में देर न करना, मेरा ध्यान लगा हुआ है।

बाबू साहब का ख़त आया था। फिर उन्होंने तकलीफ़ की और वो कुछ भेजा जो आगे भेजा था। तुम्हारी मुफ़ारिक़त[1] से बहुत मलूल[2] हूँ। तर्ज़ तहरीर से फ़िरावानी[3] मुहब्बत मालूम होती थी। मैंने उनको लिख भेजा है के मुंशी जी गए नहीं। ज़रूरत को क्या करें? जल्द फिर आएँगे। आप उनको अपने पास ही तसव्वुर फ़रमाइए। बाबू हरगोबिन्द सिंह तातील में कोल गए होंगे, जो आपके ख़त में उनकी बन्दगी लिखी आई। क्यों उन्होंने तकलीफ़ की? बहमा-जहत[4] दो सौ क़दम पर मेरे से उनका मकान, और वो जाते वक़्त मुझसे रुख़सत न हो गए, अब बन्दगी-सलाम क्या ज़रूर?

हाँ साहब, ये तुमने और बाबू साहब ने क्या समझा है के मेरे ख़त के सर-नामे पर 'इमली के मुहल्ले' का पता लिखते हो। मैं 'बल्लीमारों' में रहता हूँ। 'इमली का मुहल्ला' यहाँ से बेग़ुबालिग़ा[5] आध कोस है। वो तो डाक के हर-कारे मुझको जानते हैं, वर्ना ख़त हिरज़ा[6] फिरा करे। आगे काले साहब के मकान में रहता था, अब बल्लीमारों में किराए की हवेली में रहता हूँ। इमली का मुहल्ला कहाँ और मैं कहाँ?

मुंशी जी को लिखते हो के हाकिम के साथ गए हैं और फिर लिखते हो के न दौरे में बल्के अपने काम को। बहर सूरत अब आ गए होंगे? मेरा सलाम कहिएगा और अपनी ख़ैरो आफ़ियत के साथ उनकी मुआविदत[7] की ख़बर लिखिएगा वर्ना मुझको ख़त लिखने में ताम्मुल रहेगा।

'नज़र शिगुफ़्तन[8]' व 'गोश शिगुफ़्तन[9]' हम नहीं जानते। अगर चे मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' और मौलाना 'नूरुद्दीन ज़हूरी' ने लिखा हो।

---

१. वियोग। २. दुःखी। ३. आधिक्य। ४. इसी तरह। ५. निस्सन्देह। ६. व्यर्थ। ७. वापसी। ८. दृष्टि उन्मीलित होना। ९. कान उन्मीलित होना।

नज्जारा रा ज़े खूने दिलम् गुल दरास्तीं खूनश मगो के ज़ चश्मम् चमन चकीद[1]।

ये न समझना के 'चमन अज़ चश्मे चकीदन', 'शिगुफ़्तने गोशो नज़र' के मानिन्द ग़राबत[2] रखता है। ये "खूँ फ़िशानी-ए-चश्म" का इस्तेआरा[3] है और 'खूँ फ़शानी' सिफ़ते चश्म[4] हो सकती है। अगर नज़र का खुश होना और कान का शाद होना जायज़ होता तो हम उसका इस्तेआरा बाशिगुफ़्तगी[5] कर लेते। खुश होना, जब सिफ़्ते चश्म व गोश न हो तो हम क्या करें ?

याद रहे ये नुकात सिवा तुम्हारे और को मैं नहीं बताता। मेरी बात को ग़ौर कर के समझ लिया करो। मै पूछने से और तकरार से नाखुश नहीं होता, बल्के खुश होता हूँ। मगर हाँ, ऐसी तकरार जैसी 'बेश' और 'बेशतर' के बाब में की थी, नागवार गुज़रती है, के वो सरीह तोहमत[6] थी मुझ पर जो मैं आप लिखूँगा, तुमको उसके लिखने को क्यों मना करूँगा ?

ऐ[7] सद हज़ार राज़े निहाँ अन्दरीं सुख़न
गर कम सुख़न तु इ निगहत कम सुख़न मबाद
हर[8] चे बा नफ़्से खुद कुनम् जे बदी
नेकियश नाम मी तवानम कर्द

ये दोनों शेर बे सुक़्म हैं। रहने दो।

---

१. मेरे हृदय के रक्त के पुष्प अपने साथ दृश्य लिए हुए हैं, किन्तु तुम अब उसे रक्त मत कहो। कहो, मेरे नेत्रों से उद्यान टपका है। २. सम्बन्ध। ३. रूपक। ४. आँख का विशेषण। ५. प्रसन्नतापूर्वक। ६. स्पष्ट आक्षेप। ७. इस बात में सहस्त्रों रहस्य छिपे हुए हैं—"तुम अधिक नहीं बोलते तो कोई बात नहीं, किन्तु तुम्हारी दृष्टि का क्षेत्र संकीर्ण न होना चाहिए। ८. मैंने अपनी भावनाओं अथवा लालसाओं के साथ जो बुराई की है उसका नाम नेकी रख सकता हूँ।

सरे नाकामियम सलामत बाद
काम रा काम मी तवानम कर्द[1]

मैं नहीं समझा के इसके माने क्या है? 'काम' को 'काम' सब कर सकते हैं, इससे लुत्फ़ क्या है?

ज़ तुर्क ताज़ीए आँ नाज़नीं सवार हनोज़
ज़ सब्ज़ा मी दमद अंगुश्त ज़ीनहार हनोज़[2]

'हज़ीन' के इस मतले में वाक़ई एक हनोज़ ज़ायद और बेहूदा है, मुततब्बा[3] के वास्ते सनद नहीं हो सकता। ये ग़लते महज़ है। ये सुक़्म है। ये ऐब है। इसकी पैरवी कौन करेगा? हज़ीन तो आदमी था, ये मतला अगर जिब्रइल का हो तो इसको सनद न जानो और इसकी पैरवी न करो।

भाई, तुम्हारा मिसरा इस क़बील[4] से नहीं है, उसमे तो 'मकुनीद' और मुतम्मिम माना है, 'मकुनीद' ज़ायद नहीं है, मगर खराबी ये के अगर फ़ारसी रहने दो तो, और अगर हिन्दी करो तो मिसरा मोहमल और बेमाना है।

"चे गुल चे लाला चे नसरीं चे नस्तरन मकुनीद[5]"

क्या गुलाब का फूल, क्या लाला, क्या मोतिया, क्या चम्पा न करो जिन्हार न करो। याने क्या न करो? अब जब तुम्हीं कहो के साहब ज़िक्र न करो, तब कोई जाने, वर्ना कभी जाना नहीं जाता के 'ज़िक्र न करो।' ऐ, तुमने कहा भी के हमारा मक़सूद ये है के ज़िक्र न करो। हज़रत, 'ज़िक्र' मुज़ाफ़[6] क्यों कर

---

१. मेरी असफलताएँ बनी रहें। मैं तो काम को काम समझ कर करता हूँ। २. हे प्रिय, तुम्हारे घोड़े के तेज दौड़ने से यह परिणाम हुआ कि जो हरियाली छाई हुई है वह जैसे उठी हुई तर्जनी है। ३. अनुसरणा। ४. ढंग, प्रकार। ५. लाला, श्वेत गुलाब और सेवती पुष्प लेकर क्या करेंगे? ६. संयुक्त।

हो सकता है ? गुलो लाला व नसरीन व नस्तरन की तरफ़ ? कहोगे के 'ज़िक्र' का लफ़्ज़ नहीं, 'बयान' का लफ़्ज़ ऊपर के मिसरे में है। वो बयान का लफ़्ज़ रस्सों से और ज़ंजीरों से है, इन चारों लफ़्ज़ों से रब्त नहीं पाता। मतला लिखो, क़ता कहो, तरजी बन्द लिखो, ये मिसरा माने देने ही का नहीं, मुहमिले महज़ है। वस्सलाम।

असदुल्लाह

२२

साहब,

देखो, फिर तुम दंगा करते हो ! वही 'बेश' व 'बेशतर' का क़िस्सा निकला। ग़लती में जम्हूर की पैरवी क्या फ़र्ज़ है ? याद रखो याये[१] तहतानी तीन तरह पर है। जुज़ो[२] कलमा :—

(मिसरा) हुमा[३] ये बरसरे मुर्ग़ां अज़ाँ शरफ़ दारद
(मिसरा)[४] अैसरे नामा नामे तो अक़्ले गिरह कुशायरा

ये सारी ग़ज़ल और मिस्ल इसके जहाँ याये तहतानी है, जुज़्वे कलमा है। इस पर हमज़ा लिखना गोया अक़्ल को गाली देना है।

दूसरी तहतानि-ए-मुज़ाफ़ है। सिर्फ़ इज़ाफ़त का कसरा है। हमज़ा वहाँ भी मुख़िल है। जैसे 'आसिया ए चर्ख़' या 'आशना ए क़दीम'। तौसीफ़ी, इज़ाफ़ी, बयानी किसी तरह का कसरा हो, हमज़ा नहीं चाहता। 'फ़िदा-ए-तो शवम' 'रहनुमा-ए-तो शवम' ये भी इसी क़बील से है।

---

१. उर्दू वर्ण माला का एक अक्षर। २. कलमे का अंश। ३. हुमा (एक पौराणिक पक्षी जिसकी छाया पड़ने से व्यक्ति राजा बन सकता है) इस कारण सब पक्षियों में श्रेष्ठ है। ४. बुद्धि समस्त ग्रन्थियों को खोल देती है, इसी लिए तुम्हारा नाम शीर्षस्थ है।

तीसरी दो तरह पर है—या ए मसदरी, और वो मारूफ़ होगी, दूसरी तरह-तौहीद व तनकीर। वो मजहूल होगी। मसलन मसदरी—'आशनाई'। यहाँ हमज़ा ज़रूर बल्के हमज़ा न लिखना अक़्ल का क़ुसूर। तौहीदी-आशनाए याने एक आशना या कोई आशना। यहाँ जब तक हमज़ा न लिखोगे दाना न कहाओगे।

'नीम गुनाह' व 'नीम निगाह' व 'नीमनाज़' ये रोज़[1] मर्रे ए अहले ज़बान है। 'नीम' बमाने अन्दक, वर्ना 'गुनाह का आधा' और 'निगाह की अधवार' और 'नाज़ आधा' ये मुहमिलात में है। इन चीज़ों का मुनासिफ़ा[2] क्या? अगर तुमको नीम गुनाह पसन्द नहीं, 'ताज़ा गुनाह' रहने दो। ख़स्ता, बस्ता, ताज़ा, ग़ाज़ा, ख़ाना, दाना, आवारा, बेचारा, रोज़ा, बोज़ा, हज़ार लफ़्ज़ हैं के उनके आगे जब या ए तौहीद आती है तो उसकी अलामत[3] के वास्ते हमज़ा लिख देते है। ज़िरह, गिरह, कुलाह, शाह, आगाह, आगह, सुबहगाह, सुबहगह; ऐसे अल्फ़ाज़ के आगे अगर तहतानी आती है तो ज़िरहे, गिरहे, कुलाहे, शाहे, आगाहे, आगहे, गाहे, गहे लिख देते हैं।

—ग़ालिब

२३

(१३ जनवरी १८५४)

दीदमस्त ये लफ़्ज़ नया बनाया है। मक़सूद तुम्हारा मैंने तो समझ लिया है, मगर ज़िन्हार और कोई न समझेगा। "अलमाना[4] फ़ी बत्नेउल क़ायल" के यही माने हैं। 'चश्माने पुर ख़ुमार' व 'चश्माने बेहया'; इन दोनों तरकीबों में से एक लिख लो। इन सब अशार में न ऐब न लुत्फ़। देखो साहब, ख़त में

---

१. भाषाविज्ञों की व्यावहारिक भाषा। २. समान (दो टुकड़े)। ३. चिन्ह। ४. बोलने वाला अपना अर्थ स्वयं समझे।

तुम फिर वही 'बेश' व 'बेशतर' का क़िस्सा लाए हो, 'चे जुर्म' व 'चे गुनाह' पर जो सनद लाते हैं।

इश्क़स्तो[1] सदा हज़ार तमन्ना मरा चे जुर्म

इसकी हाजत क्या है? 'जानाँ मददे', 'याराँ मददे' ये तमाम ग़ज़ल इसी तरह की है। अगर ये तरक़ीब दुरुस्त न होती तो मैं सारी ग़ज़ल क्यों न काट डालता?

देखो रफ़ी उस्सौदा[2] कहता है—

न ज़रर कुफ़्र को न दीन को नुक़साँ मुझ से
बाअसे दुश्मनी ऐ गब्रो मुसलमां मुझ से

ग़ालिब कहता है—

मुझ तक कब उनकी बज़्म में आता था दौरे जाम
साक़ी ने कुछ मिला न दिया हो शराब में

याने अब जो दौर मुझ तक आया है तो मैं डरता हूँ, ये जुमला सारा मुक़द्दर[3] है। मेरा फ़ारसी का दीवान जो देखेगा वो जानेगा के जुमले के जुमले मुक़द्दर छोड़ जाता है, मगर—

हर[4] सुख़न वक़्ते व हर नुक़्ता मकाने दारद

ये फ़र्क़ अलबत्ता वजदानी[5] है, बमाना[6] नहीं।

---

१. प्रेम में सहस्रों लालसाएँ होती हैं, इसमें मेरा क्या अपराध! २. उर्दू का प्रसिद्ध कवि-सौदा। ३. पद में शब्द का प्रयोग न हो, किन्तु प्रसंग और वाच्यार्थ से उस शब्द का अस्तित्व ज्ञात हो। एक प्रकार की काकूक्ति। ४. प्रत्येक बात के लिए एक निश्चित अवसर होता है। प्रत्येक नुक़्ते का एक स्थान है। ५. निरर्थक। ६. अर्थ सहित।

अगर[1] दरयाफ़्ती, बरदानिशत बोस
वगर ग़ाफ़िल शुदी अफ़सोस अफ़सोस !

रोज़े जुमा, १३ जनवरी १८५४ ई० अज़-असदुल्लाह

२४

(२ मार्च १८५४)

बन्दा परवर,

एक मेहरबानी नामा सिकन्दराबाद से और एक अलीगढ़ से पहुँचा। यक़ीन है के बाबूसाहब तुम्हारे ख़त के जवाब में कुछ हाल लिखेंगे और तुम माफ़िक़ अपने वादे के मुझको लिखोगे। अब जब उस ख़त का जवाब तुम्हारे पास से आएगा तब तुम्हारे अशार तुमको पहुँचेंगे। हाय हाय, मीर तफ़ज़्ज़ुल हुसेनखां हाय हाय !

रफ़्तीं[2] व मरा ख़बर न करदीं
बर बेकसीयम नज़र न करदी

यहाँ य सुना गया है के मीर अहमद हुसेन, बड़ा बेटा उनका, उनके काम पर मुक़र्रर हुआ और मीर इर्शाद हुसेन बदस्तूर नायब रहे।

२३ फरवरी सन् १८५४ ई० —असदुल्लाह

२५

(२ मार्च १८५४)

मुंशी साहब,

तुम्हारा ख़त उस दिन, याने कल बुध के दिन, पहुँचा के मैं चार दिन से लरज़े में मुब्तिला हूँ और मज़ा ये है के जिस दिन से लरज़ा चढ़ा है, खाना

१. यदि तुम समझ गए हो तो अपनी बुद्धि से प्यार करो, यदि तुम असावधान रहे तो दुःख है, दुःख है। २. तुम चले गए और मझे ख़बर नहीं की, मेरी विवशता पर कोई विचार नहीं किया !

मुतलक़ मैंने नहीं खाया। आज पंजशंबा पांचवाँ दिन है के न खाना दिन को मयस्सर है और न रात को शराब। हरारत[1] मिज़ाज में बहुत है, नाचार अहतराज़[2] करता हूँ। भाई इस लुत्फ़ को देखो के पाचवां दिन है खाना खाए। हरगिज़ भूक नहीं लगी और तबियत ग़िज़ा की तरफ़ मुतवज्जह नहीं हुई। बाबूसाहब वाला मनाक़िब[3] का ख़त तुम्हारे नाम का देखा, अब उस इरसाल में वो आसानी न रही और बन्दा दुशवारी से भागता है। क्यों तकलीफ़ करें? और अगर बहरहाल, उनकी मर्ज़ी है तो ख़ैर, मैं फ़रमाँ[4] पिज़ीर हूँ। अशारे[5] साबिक़ व हाल मेरे पास अमानत हैं। बाद अच्छे होने के उनको देखूँगा और तुमको भेज दूँगा। इतनी सतरें मुझसे बहज़ार[6] जर्रे सक़ील लिखी गई हैं।

रोज पंजशंबा, २ मार्च सन् १८५४ ई०

—असदुल्लाह

२६

(जुलाई १८५४)

मेरा सलाम पहुँचे।

ख़त और काग़ज़े अशार पहुँचा। साबिक़ व हाल अभी सब यों ही धरे रहेंगे। अगरचे गर्मी रफ़ा हो गई, मेंह बरसने लगे, हवा ए सर्द चलने लगी, मगर दिल मुकद्दर[7] है और हवास ठिकाने नहीं। बादशाह का क़सीदा सारा और वली अहद[8] का क़सीदा बेख़ात्मा[9] आगे से कह रखा था, उसका ख़ात्मा

---

१. गर्मी। २. परहेज। ३. प्रतिष्ठित। ४. आज्ञापालक। ५. पहले की कविताएँ। ६. क्रेन (सामान उठाने वाला)। ७. विषण्ण। ८. युवराज। ९. अपूर्ण।

बहज़ार मशक़्क़त रमज़ान में कह लिया और ईद को दोनों पढ़ दिए। भाई मुंशी नबी बख़्श साहब को परसों या अतरसों भेजूँगा। उनसे लेकर तुम भी देखना। मैंने उनको लिखकर भेजा है के मुंशी हरगोपाल साहब को भी देना के वो पढ़ लें और चाहें तो नक़ल कर लें। इसके सिवा और जो कुछ तुम्हारे ख़त में लिखा था वो जवाब तलब नहीं और यों ही है जो तुम समझे हो।

—असदुल्लाह

२७

साहब,

दीबाचा व तक़रीज़ का लिखना ऐसा आसान नहीं है के जैसा तुमको दीवान का लिख देना। क्यों रुपया ख़राब करते हो और क्यों छपवाते हो? और अगर यों ही जी चाहता है, तो अभी कहे जाओ, आगे चल कर देख लेना। अब ये दीवान छपवाकर और तीसरे दीवान की फ़िक्र में पड़ोगे। तुम तो दो चार बरस में एक दीवान कह लोगे, मैं कहाँ तक दीबाचा लिखा करूँगा? मुद्दआ ये है इस दीवान को उस दीवान के बराबर हो लेने दो। अब कुछ क़सीदा व रुबाई की फ़िक्र किया करो। दो चार बरस में इस क़िस्म से जो कुछ फ़राहम हो जाए, दूसरे दीवान में उसको भी दर्ज करो।

साहब, जहाँ तक़्ती[1] में अलिफ़ न समाये वहाँ क्यों लिखो?

—असद

२८

५ दिसम्बर १८५७

साहब,

तुम जानते हो के ये मामला क्या है और क्या वाक़े हुआ? वो एक जनम था के जिसमें हम बाहम दोस्त थे और तरह तरह के हममें तुममें

१. परिच्छेद, आकार।

मामलाते मेहरो मुहब्बत दरपेश आये। शेर कहे, दीवान जमा किए। उसी ज़माने में एक और बुज़ुर्ग थे के वो हमारे तुम्हारे दोस्त दिली थे और मुंशी नबीबख्श उनका नाम और 'हक़ीर' तख़ल्लुस[1] था। नागाह, न वो ज़माना रहा, न वो अशख़ास,[2] न वो मामलात, न वो एख़्तलात,[3] न वो इन-बिसात[4]! बाद चन्द मुद्दत के फिर दूसरा जनम हमको मिला। अगरचे सूरत इस जनम की बेय़ैनेही[5] मिस्ल[6] पहले जनम के है याने एक ख़त मैंने मुंशी नबी-बख़्श साहब को भेजा, उसका जवाब मुझको आया और एक तुम्हारा के तुम भी मौसूम[7] बमुंशी हरगोपाल व मुतख़ल्लस[8] ब 'तफ़्ता' हो, आज आया। और मैं जिस शहर में हूँ, उसका नाम भी दिल्ली और उस मुहल्ले का नाम 'बल्ली-मारों का मुहल्ला' है, लेकिन एक दोस्त उस जनम के दोस्तों में से नहीं पाया जाता! वल्लाह! ढूँढ़ने को मुसलमान इस शहर में नहीं मिलता! क्या अमीर क्या ग़रीब, क्या अहले[9] हिर्फ़ा। अगर कुछ हैं, तो बाहर के हैं। हुनूद[10] अलबत्ता कुछ कुछ आबाद हो गये हैं। अब पूछो के तू क्यों कर मसकने[11] क़दीम में बैठा रहा। साहबे बन्दा, मैं हकीम मुहम्मद हसन खाँ मरहूम[12] के मकान में नौ दस बरस से किराए को रहता हूँ और यहाँ क़रीब क्या बल्के दीवार ब दीवार हैं घर हकीमों के, और वो नौकर हैं राजा नरेन्द्रसिंघ बहादुर वाली[13] ए-पटि-याला के। राजा ने साहबाने आलीशान से अहद[14] ले लिया था के बरवक़्त[15] ग़ारते देहली ये लोग बच रहें। चुनाचे बादे फ़तह[16] राजा के सिपाही आ बैठे और ये कूचा महफ़ूज़ रहा, वरना मैं कहाँ और ये शहर कहाँ? मुबालिग़ा[17]

१. काव्यनाम। २. शख़्स (ब० व०)। ३. मेल मिलाप। ४. प्रसन्नता। ५. यथापूर्व, ठीक ठीक। ६. समान। ७. नामवाला। ८. काव्यनाम वाला। ९. दस्तकार, उद्योग धंदो में लगे हुए व्यक्ति। १०. हिन्दू (ब० व०) ११. पुराना निवास-स्थान। १२. स्वर्गीय। १३. पटियाला नरेश। १४. वचन। १५. दिल्ली के विध्वंस के समय। १६. विजय के पश्चात्। १७. अत्युक्ति, अतिरंजन।

न जानना, अमीर-ग़रीब सब निकल गए। जो रह रहे थे, वो निकाले गए। जागीरदार, पिन्सनदार, दौलतमन्द, अह्ले हिर्फ़ा कोई भी नहीं है। मुफ़स्सल हाल लिखते हुए डरता हूँ। मुलाज़िमाने क़िला पर शिद्दत[१] है और बाज़पुर्स[२] दारोगीर में मुब्तिला हैं; मगर वो नौकर जो इस हंगामे में नौकर हुए हैं और हङ्गामे में शरीक़ रहे हैं, मैं ग़रीब शायर दस बरस से तारीख़ लिखने और शेर की इसलाह देने पर मताल्लिक़[3] हुआ हूँ। ख़ाही[४] उसको नौकरी समझो, ख़ाही मज़दूरी जानो। इस फ़ितना[५] व आशोब में किसी मसलिहत में मैंने दख़ल नहीं दिया। सिर्फ़ अशार की ख़िदमत बजा लाता रहा और नज़र अपनी बेगुनाही पर। शहर से निकल नहीं गया। मेरा शहर में होना हुक्काम[६] को मालूम है, मगर चूँके मेरी तरफ़ बादशाही दफ़्तर में से या मुख़बिरो[७] के बयान से कोई बात पाई नहीं गई, लिहाज़ा तलबी नहीं हुई। वर्ना जहाँ बड़े-बड़े जागीरदार बुलाए हुए या पकड़े हुए आए हैं मेरी क्या हक़ीक़त थी। ग़रज के अपने मकान बैठा हूँ, दरवाज़े से बाहर नहीं निकल सकता। सवार होना और कहीं जाना तो बहुत बड़ी बात है। रहा ये के कोई मेरे पास आवे, शहर में है कौन जो आवे? घर के घर बेचिराग़[८] पड़े हैं। मुजरिम[९] सियासत[१०] पाते जाते हैं। जनरैली[११] बंदोबस्त याज़्देहुम[१२] मई से आज तक याने शंबा पंजुम दिसम्बर १८५७ ई० तक बदस्तूर है। कुछ नेको बद का हाल मुझको नहीं मालूम, बल्के हनोज़[१३] ऐसे अमूर की तरफ़ हुक्काम को तवज्जह् भी नहीं। देखिए, अंजामेकार क्या होता है? यहाँ बाहर से अन्दर कोई बग़ैर टिकट के आने-जाने नहीं पाता। तुम ज़िन्हार[१४] यहाँ का इरादा न करना। अभी देखा चाहिए मुसलमानों की आबादी का हुक्म होता है या नहीं। बहरहाल, मुंशी साहब को मेरा सलाम

१. आधिक्य। २. पूछताछ। ३. सम्बन्धित। ४. चाहे। ५. संघर्ष और क्रान्ति। ६. हाकिम (अधिकारी) ब० व०। ७. समाचार देने वाला मुख़बिर। ८. निर्दीप। ९. अपराधी। १०. दंड। ११. मार्शल्ला। १२. ग्यारहवीं। १३. अभी। १४. सर्वथा, कभी।

कहना और ख़त दिखा देना। इस वक़्त तुम्हारा ख़त पहुँचा और इसी वक़्त मैंने ये ख़त लिख कर डाक के हरकारे को दिया।

शंबा ५ दिसम्बर १८५७ ई०

२९

(३० जनवरी १८५८)

आज शनीचरबार को दोपहर के वक़्त डाक का हरकारा आया और तुम्हारा ख़त लाया। मैंने पढ़ा और जवाब लिखा और कल्यान को दिया। वो डाक को ले गया। ख़ुदा चाहे तो कल पहुँच जाए। मैं तुमको पहले ही लिख चुका हूँ दिल्ली का क़स्द क्यों करो और यहाँ आकर क्या करोगे? बङ्क घर में से, ख़ुदा करे, तुम्हारा रुपया मिल जाए।

भाई, मेरा हाल ये है के दफ़्तरे शाही में मेरा नाम मुन्दर्ज नहीं निकला। किसी मुख़बिर ने बनिस्बत मेरे कोई ख़बर बदरख़्वाही[1] की नहीं दी। हुक्कामे वक़्त मेरा होना शहर में जानते हैं। फ़रारी नहीं हूँ। रूपोश नहीं हूँ। बुलाया नहीं गया। दारोगीर[2] से महफ़ूज़ हूँ। किसी तरह की बाज़पुर्स[3] हो तो बुलाया जाऊँ। मगर हाँ, जैसा के बुलाया नहीं गया ख़ुद भी ब रू ए कार[4] नहीं आया। किसी हाकिम से नहीं मिला। ख़त किसी को नहीं लिखा। किसी से दरख़ास्ते मुलाकात नहीं की। मई से पिन्सन नहीं पाया। कहाँ ये नौ-दस महीने क्यों कर गुज़रे होंगे। अंजाम कुछ नज़र आता नहीं के क्या होगा? ज़िन्दा हूँ, मगर ज़िन्दगी वबाल है। हरगोविन्द सिंघ यहाँ आए हुए हैं। एक बार मेरे पास भी आये थे। वद्दुआ।

रोज़े शंबा सिअ़म[5] जनवरी १८५८ ई० वक़्ते नीमरोज़[6]। —ग़ालिब

---

१. बुराई। २. पूछताछ। ३. जाँच पड़ताल ४. काम में। ५. ३०। ६. मध्याह्न।

३०

(३ फरवरी १८५८)

अज़ उम्रो[1] दौलत बरख़ुरदार बाशिन्द,

बुध का दिन, तीसरी तारीख़ फ़रवरी की, डेढ़ पहर दिन बाक़ी रहे, डाक का हरकारा आया और ख़त मय रजिस्ट्री लाया। ख़त खोला, सौ रुपए की हुण्डवी, बिल जो कुछ कहिए, वो मिला। एक आदमी रसीदे मुहरी लेकर 'नील के कटरे' चला गया। सौ रुपए चेहर-ए[2] शाही ले आया। आने जाने की देर हुई और बस। चौबीस रुपए दारोगा की मारफ़त उठे थे, वो दिए गए, पचास रुपए महल में भज दिए गए। २६ रुपए बाक़ी रहे, वो बक्स में रख लिए। रुपए के रखने के वास्ते बक्स खोला था सो ये रुक़्क़ा भी लिख लिया। कल्यान सौदा लेने बाज़ार गया हुआ है। अगर जल्द आ गया तो आज, वर्ना कल ये ख़त डाक में भेज दूंगा। ख़ुदा तुमको जीता रखे और अजर[3] दे। भाई, बुरी आ बनी है। अंजाम अच्छा नज़र नहीं आता। क़िस्सा मुख़्तसर ये के क़िस्सा तमाम हुआ।

चार शंबा, ३ फरवरी सन् १८५८ ई० वक़्त दोपहर

—ग़ालिब

३१

(५ मार्च १८५८ ई०)

साहब,

तुमने लिखा था के मैं जल्द आगरे जाऊँगा तुम्हारे उस ख़त का जवाब न लिख सका। जवाब तो लिख सकता था मगर कल्यान का पाँव सूज गया था।

---

१. आयु, सम्पत्ति और सन्तति प्राप्त हो। २. ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रचलित रुपया। ३. पुण्य फल।

वी चल नहीं सकता था। मुसलमान आदमी शहर में सड़क पर बिना टिकट फिर नहीं सकता। नाचार तुमको ख़त न भेज सका। बाद चन्द रोज़ के जो कहार अच्छा हुआ तो मैं तुमको आगरे में समझकर सिकन्दराबाद ख़त न भेज सका। मौलवी क़मरुद्दीन खाँ के ख़त में तुमको सलाम लिखा। कल उनका ख़त आया, वो लिखते हैं के मिर्ज़ा तफ़्ता अभी यहाँ नहीं आए, इस वास्ते आज ये रुक़्क़ा तुमको भेजता हूँ। मेरा हाल बदस्तूर है। देखिए, ख़ुदा को क्या मंज़ूर है, हाकिमे[1] अकबर ने अगर कोई नया बन्दोबस्त जारी नहीं किया। ये साहब मेरे आशना-ए-क़दीम[2] हैं, मगर मैं मिल नहीं सकता। ख़त भेज दिया है। हनोज़ कुछ जवाब नहीं आया। तुम लिखो के अकबराबाद कब जाओगे। बद्दुआ।

जुमा, ५ मार्च सन् १८५८ ई०

—ग़ालिब

३२

(६ मार्च १८५८)

जानेमन[3] व जानाने मन,

कल मैंने तुमको सिकन्दराबाद में समझकर ख़त भेजा। शाम को तुम्हारा ख़त आया। मालूम हुआ के तुम अकबराबाद पहुँचे। ख़ैर, वो ख़त पोस्ट पेड़ गया है। शायद उल्टा न फिरे। अगर फिर आएगा तो ख़ैर ये ख़त तुमको अकबराबाद भेजता हूँ। पहुँचने पर जवाब लिखना। तक़्ती रुबाई की बहुत ख़ूब। मगर ख़ैर हरेक बात का एक वक़्त है। हमको हर तरह लुत्फ़े[4] सोहबत और लुत्फ़े[5]—

---

१. सर्वोच्च अधिकारी। २. पुराने परिचित। ३. मेरे प्राण, मेरे प्रिय। ४. सत्संग का आनन्द। ५. कविता का आनन्द।

शेर उठा लेना। भाई मुंशी नबीबख़्श साहब के नाम का ख़त पढ़कर उनको दे देना और उसका मज़मून मालूम कर लेना। जिस हाकिम को मैंने ख़त और क़ता भेजा है, उसके सरिश्तेदार कोई साहब हैं, मनफूल उनका नाम है, मुझसे नाआशना[1] ए महज़ है। अगर तार्रुफ़[2] होता तो इस्तेदुआ करता के उस तहरीर को पेश कीजिए। काश तुमसे आशनाई होती, तो तुम्हें ऊपर ऊपर ख़त लिख कर उनको भेज देते के ग़ालिब एक फ़क़ीरे[3] गोशानशी और बेगुनाहे महज़ और वाजिबुर्रहम[4] है, उसके हुसूले[5] मतालिब में सई[6] से दरेग़ न करना।

मी[7] तुआँ आवुर्द इस्तेग्ना सिफ़ारिश नाम ए
चर्खे कजरौ रा अगर दानेम कजं याराने कीस्त

बाक़ी जो हाल हैं वो भाई के नाम के वर्क़ में लिख चुका हूँ। तुम पढ़ लोगे। दुबारा लिखना क्या ज़रूर।

शंबा, ६ मार्च १८५८ ई०।

जवाबतलब।

३३

(१२ मार्च १८५८)

साहब, तुम्हारी सआदतमंदी को हजार-हज़ार आफ़रीं, तुमको यों ही चाहिए था, लेकिन मैंने तो एक बात बतरीक़े तमन्ना लिखी थी, जैसा के अरबी में 'लैता'[8] और फ़ारसी में 'काश के'[9]।

---

१. सर्वथा अपरिचित। २. परिचय। ३. एकांतवासी साध। ४. दया पात्र। ५. मनोरथ प्राप्ति। ६. प्रयत्न। ७. यह टेढ़ी चाल वाला आकाश किसका मित्र है यदि हमें यह मालूम हो जाय तो हमारी निश्चिन्तता उससे सिफारिश की चिट्ठी लिखा लाए। ८, ९. ईश्वर करे।

अब तुम रूदाद सुनो--अर्ज़ी मेरी सरजान लारेन्स चीफ़ कमिश्नर बहादुर को गुज़री। उस पर दस्तख़त हुए के ये अर्ज़ी मय कवाग़ज़[1] ज़मीमा सायल[2] के पास भेज दी जाए, और ये लिखा जाए के मारफ़त साहबे दिल्ली के पेश करो। अब सरिश्तेदार को लाज़िम था के मेरे नाम माफ़िक़ दस्तूर के ख़त लिखता। ये न हुआ। वो अर्ज़ी हुक्म चढ़ी हुई मेरे पास आ गई। मैंने ख़त साहब कमिश्नर देहली चार्ल्स साण्डर्स को लिखा और वो अर्ज़ी हुक्म चढ़ी हुई उसमें मलफ़ूफ़[3] करके भेज दी। साहब कमिश्नर ने साहब कलक्टर के पास ये हुक्म चढ़ाकर भेजी के सायल के पिन्सिन की कैफ़ियत लिखो। अब वो मुक़दमा साहब कलक्टर के यहाँ आया है। अभी साहब कलक्टर ने तामील उस हुक्मकी नहीं की। परसों तो उनके हाँ ये रूबकारी[4] आई है। देखिए कुछ मुझसे पूछते है या अपने दफ़्तर से लिख भेजते हैं। दफ़्तर कहाँ रहा है जो उसको देखेंगे ! बहरहाल, ये ख़ुदा का शुक्र है के बादशाही दफ़्तर में से मेरा कुछ शुमूल[5] फ़साद में पाया नहीं गया, और मैं हुक्काम के नज़दीक यहाँ तक पाक हूँ के पिन्सिन की कैफ़ियत तलब हुई है और मेरी कैफ़ियत का ज़िक्र नहीं है। याने सब जानते हैं के इसको लगाव न था। मौलवी क़मरुद्दीन खाँ का 'कोल' न जाना और राह से फिर आना मालूम हुआ। हक़ ताला उनको ज़िन्दा और तन्दुरुस्त रखे। मेरा सलाम कहना और ये ख़त पढ़ देना। भाई मुंशी नबी बख़्श साहब को सलाम और उनके बच्चों को दुआ कहना और ये ख़त ज़रूर ज़रूर पढ़ा देना और कहना के भाई बिदायत[6] तो अच्छी है, निहायत[7] भी ख़ुदा अच्छी करें। वो इज़्ज़त और वो रब्तो ज़ब्त जो हम रईसज़ादों का था, अब कहाँ ! रोटी का टुकड़ा ही मिल जाए तो ग़नीमत है। गवर्नरी कलकत्ता और गवर्नरी आगरा और एजण्टी व कमिश्नरी व दीवानी व फ़ौजदारी व कलक्टरी

---

१. अतिरिक्त पत्र। २. प्रार्थी, प्रश्न कर्त्ता। ३. लिफ़ाफ़ में रखा हुआ। ४. कार्रवाही (अदालती)। ५. उत्पात में भाग लेना। ६. आरम्भ। ७. अंत।

देहली से जो हुक्म मेरे ख़त और अर्ज़ी पर हुआ है, मुश्तमिल उस हुक्म पर ख़त मेरे नाम आया है। हाकिम ने अब भी यही हुक्म दिया था के लिखा जावे के यों करो। अमले ने ख़त न लिखा। सिर्फ़ वो अर्ज़ी हुक्म चढ़ी हुई भेज दी। ख़ैर,[1] हर चे अज़ दोस्त मी रसद नेकोस्त।

सुनो मिर्ज़ा तफ़्ता, अब जो मैं अपना हाल तुमको लिखा करूँ, वो, तुम मेरे भाई को और मौलवी क़मरुद्दीन खाँ को दिखा दिया करो। तीन तीन जगह एक बात को क्यों लिखूँ ?

जुमा, १२ मार्च सन् १८५८ ई०।

३४

(१ अप्रैल १८५८)

साहब, क्यों मुझे याद किया ? क्यों ख़त लिखने की तकलीफ़ उठाई। फिर ये कहता हूँ के ख़ुदा तुमको जीता रखे के तुम्हारे ख़त में मौलवी क़मरुद्दीन खाँ का सलाम भी आया और मुंशी नबीबख़्श की ख़ैरो आफ़ियत भी मालूम हुई। वो तो पिन्सन के फ़िक्र में थे। ज़ाहिरा यों मुनासिब देखा होगा के नौकरी की ख़ाहिश की। हक़ ताला उनकी जो मुराद[2] हो बर[3] लावे। उनको मेरा सलाम कह देना, बल्के ये रुक़्क़ा पढ़वा देना। मौलवी क़मरुद्दीन ख़ाँ को भी सलाम कहना। तुम अपने कलाम के भेजन में मुझ से पुरसिश क्यों करते हो ? चार जुज़्व[4] हो तो, बीस जुज़्व हैं तो, ३० जुज़्व हो तो बेतकल्लुफ़ भेज दो। मैं शायरे[5] सुखन संज अब नहीं रहा। सिर्फ़ सुख़न[6] फ़हम रह गया हूँ। बूढ़े

---

१. मित्र से जो कुछ मिले वह अच्छा है। २. वाञ्छा। ३. सफल करे। ४. फ़र्मा (छापा)। ५. कविता लिखने वाला कवि। ६. कविता समझने वाला।

पहलवान की तरह पेच बताने की गौं हूँ। बनावट न समझना। शेर कहना मुझसे बिल्कुल छूट गया। अपना अगला कलाम देख कर हैरान रह जाता हूँ के ये मैंने क्यों कर कहा था। क़िस्सा मुख़्तसर वो अजज़ा[1] जल्द भेज दो।

यकशंबा, ११ अप्रैल १८५८ ई०।

गालिब

३४

(२५ अप्रैल १८५८)

मिर्ज़ा तफ़्ता,

अजब इत्तेफ़ाक़[2] हुआ। पंजशंबे के दिन २२ अप्रैल को कल्यान ख़त डाक में डाल कर आया के उसके मुताक़्क़िब[3] पार्सल का हरकारा आया और तुम्हारा भेजा हुआ पाकिट लाया। रसीद लिखनी मैंने ज़ायद समझी और उसका देखना शुरू किया। बेकारे[4] महज़ और तन्हा[5] हूँ; पाँच पहर का दिन, मेरी बड़ी दिल्लगी हो गई। ख़ूब देखा। सच तो यों है के इन अशार में मैंने बहुत हज़[6] उठाया। जीते रहो। तुम्हारा दम ग़नीमत है। भाई का हाल मुफ़स्सिल लिखो। पिन्सन के तालिब हैं या नौकरी के? मुंशी अब्दुलतीफ़ कहाँ हैं और किस तरह हैं? इलाक़ा बना हुआ है या जाता रहा? साहब लेफ़्टेंट गवर्नरी का महकमा बिल्कुल इलाहाबाद को गया या हनोज़ कुछ यहाँ भी है? मुंशी ग़ुलाम ग़ौस साहब कहाँ हैं? नौकर हैं या मुस्ताफ़ी[7]? अदालते दीवानी का महकमा यहीं रहेगा या इलाहाबाद जाएगा? इसका और गवर्नरी के महकमे का साथ है, चाहे ये भी वहीं जावे।

---

१. अंश। २. संयोग। ३. पीछे। ४. सर्वथा निरर्थक। ५. एकाकी। ६. आनन्द। ७. जो त्यागपत्र दे चुका।

आज तुम्हारे अशार का काग़ज़ पम्फलेट पाकिट इसी खत के साथ डाक में भेजा गया है। यक़ीन है के ये ख़त कल-परसों और वो पाकिट पाँच-चार दिन में पहुँच जाए।

-ग़ालिब

३६

(३० अप्रैल १८५८ ई०)

साहब,

२५ अप्रैल को एक ख़त और एक पार्सल डाक में इरसाल कर चुका हूँ। आज ३० है। यक़ीन है के ख़त और पार्सल दोनों पहुँच गए होंगे। एक अमरे[1] ज़रूरी बायस[2] इस तहरीर[3] का है के जो मैं इस वक़्त रवाना करता हूँ। एक मेरा दोस्त और तुम्हारा हमदर्द है। उसने अपने हक़ीक़ी भतीजे को बेटा कर लिया था। अठारह-उन्नीस बरस की उमर, क़ौम का खत्री, ख़ूब सूरत, वज़ादार नौ जवान। सन् १२७३ हि० में बीमार पड़ कर मर गया। अब उसका बाप मुझसे अरज़ करता है के एक 'तारीख़' उसके मरने की लिखूँ, ऐसी के वो फ़क़्त 'तारीख़' न हो बल्के मसिया हो के वो उसको पढ़ पढ़ कर रोया करे। सो भाई, उस सायल की ख़ातिर मुझको अज़ीज़,[4] और फ़िक्रे[5] शेर मतरूक। माहाज़ा[6] ये वाक़आ तुम्हारे हस्बे हाल है, जो ख़ूँ चकाँ शेर तुम निकालोगे, वो मुझसे कहाँ निकलेंगे। बतरीक़े मसनवी बीस-तीस शेर लिख दो। मिसर-ए-आख़िर में माद्दा तारीख़ ाल दो। नाम उसका 'बिरजमोहन' था और उसको 'बाबू बाबू' कहते थे। चुनाचे मैं बहरे[7] हज़िजे मुसद्दस मख़बून में एक शेर

---

१. आवश्यक कार्य। २. कारण। ३. लेख। ४. प्रिय। ५. कविता लिखना परित्यक्त। ६. अतः। ४. एक छन्द।

तुमको लिखता हूँ। चाहो इसको आग़ाज में रहने दो और आइंदा इसी बहर में और अशार लिख लो, चाहो कोई और तरह निकालो लेकिन ये खयाल में रहे के सायल को मुतवफ़्फ़ा[1] के नाम का दर्ज होना मंजूर है और बाबू बिरज-मोहन। सिवाय इस बहर के या बहरे रमल[2] के और बहर मे नहीं आ सकता। वो शेर मेरा ये है—

बरम[3] चूँ नामे बाबू बिरज मोहन
चकत खूने दिले रीश अज़ल बेमन

निगाश्ता रोज़े जुमा, सियम अप्रैल १८५८ ई०।

—ग़ालिब

३७

भाई,

वो खत पहला तुमको भेज चुका था के बीमार हो गया। बीमार क्या हुआ तवक़्क़ो जीस्त[4] की न रही। क़ौलंज[5] और फिर कैसा शदीद[6] के पांच पहर मुर्ग़ेनीम[7] विस्मिल की तरह तड़पा किया। आखिर उसारा रेवन्द और अरंडी का तेल पिया। उस वक़्त तो बच गया मगर क़िस्सा[8] क़ता न हुआ। मुख्तसिर कहता हूँ मेरी ग़िज़ा तुम जानते हो के तन्दुरुस्ती में क्या है। दस दिन में दो बार आधी-आधी ग़िज़ा खाई। गोया दस दिन में एक वार ग़िज़ा तनावुल[9] फ़रमाई। गुलाब और इमली का पन्ना, आलू बुखारा का अफ़्शुर्दा, इस पर मदार रहा। कल से खौफ़े मर्ग[10] गया है और सूरत जीस्त की नज़र

---

१. मृत। २. एक छन्द। ३. मैं बिरज मोहन का नाम लेता हूँ तो मेरे ओठों से दिल का खून टपकने लगता है। ४. जीवन। ५. पेट का दर्द। ६. अधिक। ७. आधा घायल पक्षी। ८. पूर्ण नहीं स्वस्थ हुआ। ९. भोजन। १०. मृत्यु का भय।

आई है। आज सुबह को बाद दवा पीने के तुमको ये ख़त लिखा है। यक़ीन तो है के आज पेट भर रोटी खा सकूँ।

साहब, वो जो मैंने बाईस शेर मर्सिये के लिखकर तुमको भेजे, उससे मक़सूद ये था के तुम अपने अशार दूसरे मातमज़दा को दे दो। किस वास्ते के तुम्हारी तहरीर से मालूम हुआ था के कोई और भी फ़लकज़दा[1] है। और ये जो तुमने न लिया इसका हाल ये है के वो शेर सब दस्तो[2] गरेबाँ थे, एक को एक से रब्त। एक या दो शेर उसमें से क्योंकर लिए जाते? अशार सब मेरे पसन्द, बे सुक़्म,[3] बे ऐब। वो जो तुम लिखते हो के—

"हर्फ़े[4] बाबू बिरजमोहन मी ज़नम"

और इसका दूसरा मिसरा मैं भूल गया हूँ। मगर क़ाफ़िए में 'मन' है। ये शेर ग़ालिब को बुरा मालूम हुआ होगा, वल्लाह बिल्लाह! जब तक के तुमने नहीं लिखा मेरे खयाल में भी ये बात न थी। बहरहाल बात वही है जो मैं ऊपर लिख आया हूँ।

बारे, अब कहिए—भाई मुंशी नबीबख़्श साहब और मौलवी क़मरुद्दीन-ख़ाँ साहब, रोज़ों के मतवाले, होश में आए या नहीं? आज दस शव्वाल[5] की है। शशह[6] ईद का भी ज़माना गुज़र गया। ख़ुदा के वास्ते उनकी ख़ैरो आफ़ि-यत लिखो और ये इबारत भाई साहब की नज़रे अनवर से गुज़रानो। शायद वो मुझको ख़त लिखें।

मुर्हरिरा व मुरस्सिलए दो शंबा २४ मई सन् १८५८ ई०

—ग़ालिब

---

१. ईश्वरीय विपत्ति का मारा। २. परस्पर सम्बद्ध। ३. निर्दोष। ४. बाबू बिरजमोहन के अक्षरों को मैं दुहराता हूँ। ५. रमज़ान के पश्चात् आने वाला मास। ६. पैंतीस दिवस रोज़ा रखने का विधान है। तीस दिन रमज़ान म रोज़ा रखा जाता है। रमज़ान की मुख्य ईद के पश्चात पांच दिन रोज़ा रखते हैं और एक छोटी ईद मनाई जाती है। उसी को शशह ईद कहते हैं।

३८

(१९ जून १८५८ ई०)

क्यों साहब,

मुझसे क्यों ख़फ़ा हो ? आज महीना भर हो गया होगा, या बाद दो-चार दिन के हो जाएगा, के आपका ख़त नही आया। इन्साफ़ करो कितना कसीरुल-अहबाब आदमी था। कोई वक़्त ऐसा न था के मेरे पास दो-चार दोस्त न होते हों। अब यारों में एक शिवजी राम बिरहमन और बालमुकुन्द उसका बेटा ये दो शख़्स हैं के गाह गाह आते हैं। इससे गुज़र कर, लखनऊ और कालपी और फ़र्रुख़ाबाद और किस किस ज़िले से ख़ुतूत आते रहते थे। उन दोस्तो का हाल ही नही मालूम की कहाँ है और किस तरह है ? वो आमद ख़ुतूत की मौक़ूफ़, सिर्फ़ तुम तीन साहबो के ख़त के आने की तवक़्क़ो। उसम वो दोनों साहब गाह गाह। हाँ, एक तुम, के हर महीने में एक दो बार मेहरबानी करते हो ! सुनो साहब, अपने पर लाज़िम कर लो, हर महीने में एक ख़त मुझको लिखना। अगर कुछ काम आ पड़ा, दो ख़त, तीन ख़त; वर्ना सिर्फ़ ख़ैरो आफ़ियत लिखो और महीने में एक बार भेज दो।

भाई साहब का भी ख़त दस-बारह दिन हुए के आया था। उसका जवाब भेज दिया गया। मौलवी क़मरुद्दीन ख़ाँ यक़ीन है के इलाहाबाद गए हों, किस वास्ते के मुझको मई में लिखा था के अवायले जून मे जाऊँगा। बहरहाल, अगर आप आज़ुर्दा[1] नहीं तो जिस दिन मेरा ख़त पहुँचे उसके दूसरे दिन उसका जवाब लिखिए, अपनी ख़ैरो आफ़ियत, मुंशी साहब की ख़ैरो आफ़ियत, मौलवी साहब का अहवाल। इसके सिवा गवालियार के फ़ितना व फ़साद का माजरा जो मालूम हुआ हो वो, अल्फ़ाज़े मुनासिबे वक़्त में ज़रूर लिखना, राजा जो

१. बीमार, उदास।

वहाँ आया हुआ है, उसकी हक़ीक़त, धौलपुर का रंग। साहेबाने आलीशान का इरादा वहां के बन्दोबस्त का, किस तरह पर है? आगरे का हाल क्या है? वहाँ के रहने वाले कुछ ख़ायफ़[1] हैं या नहीं?

निगाश्तए शंबा १९ जून सन् १८५८ ई०

—ग़ालिब

३९

(२६ जून १८५८)

जीते रहो और खुश रहो,

'ऐ वक़्ते[2] तो खुश के वक़्ते मा खुश करदी, ज्यादा ख़ुशी का सबब ये के तुमने तहरीर को तकरीर का परदाज़ दे दिया था। गरमी, हंगामा इंतबा-ए-दीवान वग़ैरा मैं पहले से जानता हूँ। बंक घर का रुपया मसरफ़े काग़ज़ व कापी है। ख़ुदा तुमको सलामत रखे, मुग़तेनमात[3] से हो। रज्जब अली बेग 'सुरूर' ने जो 'अफ़सान-ए-अजायब' लिखा है, आगाजे दास्तान का शेर अब मुझको बहुत मज़ा देता है—

यादगारे ज़माना हैं हम लोग
याद रखना फ़साना हैं हम लोग

मिसर-ए-सानी कितना गर्म है और 'याद रखना' फ़साना के वास्ते कितना मुनासिब।

मुंशी अब्दुल लतीफ़ के घर मे लड़के के पैदा होने की खबर उसको हो चुकी है और तहनियत[4] में भाई को ख़त लिखा चुका हूँ। अब जो उनसे मिलो

---

१. भयभीत। २. हे समय, तुम प्रसन्न रहो, तुमने हमें प्रसन्न किया। ३. तुम ग़नीमत हो। ४. बधाई।

तो मेरा सलाम कह कर उस ख़त के पहुँचने की इत्तिला ले लेना। मौलवी मानवी जब कानपूर से माविदत फ़रमाये तो मुझको इत्तिला देना। मेरा हाल बदस्तूर।

हमां[1] पहलू हमाँ विस्तर हमाँ दर्द।
शंबा २६ जून १८५८ ई० रोज़े वरूदे नामा[2]।

—ग़ालिब

४०

रखियो 'ग़ालिब' मुझे इस तल्ख़ नवाई में मुआफ़
आज कुछ दर्द मेरे दिल में सिवा होता है।

बन्दा परवर,

पहले तुमको ये लिखा जाता है के मेरे दोस्ते क़दीम मीर मुकर्रम हुसेन साहब की ख़िदमत में मेरा सलाम कहना। और ये कहना अब तक जीता हूँ और इससे ज्यादा मेरा हाल मुझको भी मालूम नहीं। मिर्ज़ा हातिम अली साहब 'मेहर' की जनाब में मेरा सलाम कहना और ये मेरा शेर मेरी ज़बान से पढ़ देना—

[3]शर्त्ते इस्लाम बुवद वर्ज़िशे ईमाँ बिल ग़ैब
ऐ तो ग़ायब ज़ नज़र मेहरे तो ईमाने मनस्त।

तुम्हारे पहले ख़त का जवाब भेज चुका था के उसके दो दिन या तीन दिन के बाद दूसरा ख़त पहुँचा। सुनो साहब जिस शख़्स को जिस

१. वही करवट, वही बिस्तर, वही वेदना। २. जिस दिन पत्र पहुँचा। ३. यद्यपि वह अप्रत्यक्ष है, फिर भी उस पर आस्था करना ईमान है। अप्रत्यक्ष (ईश्वर) पर आस्था रखना ही इस्लाम है। हे ईश्वर, तुम दिखाई नहीं देते किन्तु तुम्हारा प्रेम ही मेरी आस्था है।

शग़ल का ज़ौक़ हो, और वो उसमें बेतकल्लुफ़ उम्र बसर करे, इसका नाम ऐश है। तुम्हारी तवज्जह मुक़र्रत बतरफ़ शेरो सुख़न के तुम्हारी शराफ़ते नफ़्स और हुस्ने तबा की दलील है। और भाई, ये जो तुम्हारी सुख़न गुस्तरी है, इसकी शोहरत में मेरी भी तो नामावरी है। मेरा हाल इस फ़न मे अब ये है के शेर कहने की रविश और अगले कहे हुए अशार सब भूल गया। मगर हाँ, अपने हिन्दी कलाम मे से डेढ़ शेर याने एक मक़ता और एक मिसरा याद रह गया है, सो गाह गाह जब दिल उलटने लगता है, तब दस पाँच बार ये मक़ता ज़बान पर आ जाता है--

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुज़री 'ग़ालिब'
हम भी क्या याद करेंगे के ख़ुदा रखते थे।

फिर जब सख़्त घबराता हूँ और तंग आता हूँ, तो ये मिसरा पढ़ कर चुप हो जाता हूँ--

ऐ मर्ग[1] ना गहाँ! तुझे क्या इन्तेज़ार है?

ये कोई न समझे के मै अपनी बेरौनक़ी और तबाही के ग़म में मरता हूँ। जो दुख मुझको है उसका बयान तो मालूम, मगर उस बयान की तरफ़ इशारा करता हूँ। अंग्रेज़ की क़ौम में से जो इन रूसियाह कालों के हाथ से क़त्ल हुए उसमें कोई मेरा उमीदगाह था और कोई मेरा शफ़ीक़ और कोई मेरा दोस्त और कोई मेरा यार और कोई मेरा शागिर्द। हिन्दुस्तानियों में कुछ अज़ीज़, कुछ दोस्त, कुछ शागिर्द, कुछ माशूक़ सो वो सब के सब ख़ाक में मिल गए। एक अज़ीज़ का मातम कितना सख़्त होता है जो इतने अज़ीज़ों का मातमदार हो, उसको ज़ीस्त क्योंकर न दुश्वार हो? हाय, इतने यार मरे के जो अब मैं मरूँगा तो मेरा कोई रोने वाला भी न होगा! इन्ना[2] लिल्लाहे व इन्नाइलहे राजऊन।

---

१. आकस्मिक मृत्यु। २. हम उसी के हैं, हमको उसी की तरफ़ जाना है।

४१

(१८ जुलाई १८५८)

मिर्ज़ा तफ़्ता को दुआ पहुँचे। बहुत दिन से ख़त क्यों नहीं लिखा? आगरे में हो या यहीं? मिर्ज़ा हातिम अली साहब का शफ़क़्क़तनामा[1] आया। यहाँ से उसका जवाब भेजा गया। वहाँ से उसका जवाब आ गया। मीर मुकर्रम हुसेन साहब का ख़त परसों आया। दो चार दिन में उसका जवाब लिखूँगा। मेरा हाल बदस्तूर है--

[2]न नवीदे कामयाबी, न नहीबे नाउमीदी

भाई साहब का ख़त कई दिन हुए के आया है और वो मेरे ख़त के जवाब में है। दो-एक दिन के बाद जब जी बातें करने को चाहेगा तब उनको ख़त लिखूँगा। तुम अगर मिलो, तो उनसे कह देना के भाई कासिम अलीख़ाँ के शेर ने मुझको बड़ा मज़ा दिया। हुस्ने[3] इत्तेफ़ाक़ ये के कई दिन हुए थे जो मने एक विलायती चुग़ा[4] और एक शाली रूमाल ढाई गज़ा दल्लाल को दिया था, और वो उस वक़्त रुपया लेकर आया था। मैं रुपया लेकर और ख़त पढ़ कर ख़ूब हँसा के ख़त अच्छे वक़्त आया।

—ग़ालिब

४२

(२८ जुलाई १८५८)

मिर्ज़ा तफ़्ता,

कल क़रीब दोपहर के डाक का हरकारा, वो जो ख़त बाँटा करता है, आया और उसने पारसल मोमजामे में लिपटा हुआ दिया। पहले तो मैं भी हैरान रहा

---

१. कृपा पत्र। २. शुभ संयोग। ३. चोगा। ४. न सफलता की प्रसन्नता और न असफलता का भय।

के पाकेट ख़तों की डाक में क्यों आया। बारे, जब उसकी तहरीर देखी तो तुम्हारे हात का पम्फ़लेट लिखा हुआ और दो टिकट लगे हुए, मगर उसके आगे काली मुहर और कुछ अंगरेजी लिखा हुआ। हरकारे ने कहा के एक रुपया दस आने दिलवाइये। दिलवा दिए और पार्सल ले लिया। मगर हैरान के ये क्या पेच पड़ा? क़यास एसा चाहता है के तुम्हारा आदमी जो डाक घर गया उसको ख़तों के बक्स में डाल दिया। डाक के कारपरदाज़ों ने ग़ौर न की और उसको बैरंग ख़तों की डाक में भेज दिया। वो साहब जो मेरे उर्फ़ से आशना और मेरे नाम से बेज़ार हैं, याने मुंशी भगवान परशाद, मिस्ले ख़ाँ, मेरा सलाम क़ूबूल करें।

--ग़ालिब

४३

(१७ अगस्त १८५८ ई०)

मिर्ज़ा तफ़्ता,

तुम्हारे औराक़े मसनवी का पम्फ़लेट पाकिट परसों १५ अगस्त को और जनाब मिर्ज़ा हातिम अली साहब की नस्र शायद आग़ाज़े अगस्त में रवाना कर चुका हूँ। उस नस्र की रसीद नहीं पाई और नहीं मालूम हुआ के मेरी ख़िदमत मख़दूम[1] के मक़बूले तबा हुई या नहीं। नहीं मालूम भाई नबी बख़्शसाहब कहाँ हैं और किस तरह हैं और किस ख़याल में हैं। नहीं मालूम मौलवी क़मरुद्दीन खाँ इलाहाबाद आ गए या नहीं अगर नहीं आये तो वो वहाँ क्यों मुतवक़्क़िफ़[2] हैं? मीर मुंशी क़दीम वहाँ पहुँच गए? अपना काम करने लगे? ये क्या कर रहे हैं? आप को एक बताकीद लिखता हूँ के इन तीनों बातों का

१. सेव्य, सेवित। २. निवास किये हुये।

जवाब अलग अलग लिखिए और जल्द लिखिए इस ख़त के पहुँचने तक अग़लब[1] है के पार्सल पहुँच जाए। उसके पहुँचने की भी इत्तिला दीजिएगा। अब एक अम्र सुनो—मैंने आग़ाज़े याज़दहुम[2] मई सन् १८५७ ई० से सी[3] व एकुम जुलाई सन् १८५८ ई० तक रूदादे[4] शहर और अपनी सरगुज़िश्त[5] याने पन्द्रह महीने का हाल नस्र में लिखा है और इल्तेज़ाम इसका किया है के "दसातीर" की इबारत याने फ़ारसी क़दीम लिखी जाए और कोई लफ़्ज़ अरबी न आये। जो नज़्म उस नस्र में दर्ज है वो भी बेआमेज़िशे लफ़्ज़े अरबी है। हां, अशख़ास के नाम नहीं बदले जाते। वो अरबी, अंग्रेज़ी, हिन्दी जो हैं वो लिख दिए हैं। मसलन तुम्हारा नाम मुंशी हरगोपाल, 'मुंशी' लफ़्ज अरबी है, नहीं लिखा गया। इसकी जगह 'शेवा ज़बान' लिख दिया है। यही मेरा ख़त जैसा इस रुक़्क़े मे है न छिदरा न गुंजान, औराक़े बेमिस्तर[6] पर इस तरह के किसी सफ़े में बीस सतर और किसी में बाईस सतर बल्के किसी में उन्नीस सतर भी आए, चालीस सफ़े याने बीस वर्क़ है। अगर इक्कीस सतर के मिस्तर से कोई गुंजान लिखे तो शायद दो जुज़्व में आ जाए। यहाँ मतबा[7] नहीं है। सुनता हूँ के एक है, उसमे कापीनिगार[8] ख़ुशनवीस[9] नही है। अगर आगरे में इसका छापा हो सके तो मुझको इत्तिला करो। इस तिहीदस्ती[10] और बेनवाई मे पच्चीस का मै भी ख़रीदार हो सकता हूँ। लेकिन साहबे[11] मतबा इतने मे क्यो

---

१. सम्भव। २. ग्यारहवीं। ३. ३१। ४. नगर का विवरण। ५. जीवनी। ६. पुराने समय में बिना सतर के काग़ज़ पर लिखने के लिये मिस्तर का प्रयोग करते थे। मिस्तर एक तरह का काग़ज़ होता था जिसपर सतरें खिंची होती थीं। मिस्तर को कागज़ के नीचे रख लिया जाता था जिससे पंक्ति सीधी आये। बे मिस्तर-मिस्तर रहित। ७. छापाखाना। ८. लीथो पर छापने के लिए सुलेखक से पहले एक विशेष काग़ज़ पर लिखाया जाता है, फिर उस काग़ज़ के अक्षर पत्थर पर आ जाते है। इसीलिए लीथो प्रेस में कापीनिगार की आवश्यकता होती है। ९. सुलेखक। १०. रिक्तहस्तता, ग़रीबी। ११. छापाखाने के मालिक।

मानेगा और अलबत्ता चाहिए के अगर हज़ार न हों तो पान सौ जिल्द तो छापी जाए। यक़ीन है के पान सौ सात सौ जिल्द छापने की सूरत में तीन आने-चार आने क़ीमत पड़े। कापी तो एक ही होगी, रहा काग़ज़ वो भी बहुत न लगेगा। लिखाई मत्न की तो आपको मालूम हो गई, हाशिए पर अलबत्ता लुग़ात के माने लिखे जाएँगे। बहरहाल, अगर, मुमकिन हो, तो इसका तकमिला करो और हिसाब मालूम कर के मुझको लिखो। मगर मुंशी क़मरुद्दीन ख़ाँ आ गए हो तो उनको भी शरीक[1] मसलिहत करलो। इन तीनों बातों का जवाब और पारसल की रसीद और इस मतलबे ख़ास का जवाब ये सब एक ख़त में पाऊँ ज़रूर, ज़रूर, ज़रूर!

निगाश्ता व ख़ाँदाश्ता से शंबा हफ़ दहुम अगस्त सन् १८५८ ई०।

जवाबतलब वास्ते ताकीद के बैरंग भेजा गया।

—ग़ालिब

४४

भाई,

तुम्हारा वो ख़त जिसमें औराक़े मसनवी[2] मलफ़ूफ़[3] थे, पहुँचा। औराक़े मसनवी औराक़े 'दस्तम्बू' के साथ पहुँचेंगे। अब तुम्हारे मतालिब का जवाब जुदा-जुदा लिखता हूँ। अलग-अलग समझ लेना।

साहब, तुमने मिर्ज़ा हातिम अली साहब से क्यों कहा? बात इतनी थी के वो मझको लिख भेजने के नस्र आई और मिर्ज़ा साहब ने पसन्द की। अब उनसे मेरा सलाम कहो और ये कहो के आप के शुक्र बजा लाने का शुक्र

---

१. मंत्रणा में सम्मिलित। २. कथात्मक काव्य। ३. लिफाफाबन्द।

बजा लाता हूँ। छापे के बाब में जो आपने लिखा वो मालूम हुआ। इस तहरीर को जब देखोगे तब जानोगे! अहतेमाम और उजलत[1] इसके छपवाने में इस वास्ते है के इसमें से एक जिल्द नवाब गवर्नर जनरल बहादुर की नज़र[2] भेजूँगा, और एक जिल्द वज़रिये उनके जनाब मलिकए[3] मुअज़्ज़मए इंग्लिस्तान की नज़र करूँगा। अब समझ लो तर्ज़े तहरीर[4] क्या होगी और साहबाने मतबा को उसका इन्तबा[5] क्यों न मतबू होगा? जीते रहो, इस ग़मज़दगी में मुझको हँसाया! वो कौन मुल्ला था जिसने तुमको पढ़ाया—

गर्चे[6] 'अमलकारे' ख़िरदमन्द नीस्त

"अमलकार-अहलकार"?

ये शेर शेख़ सादी का बादशाह की नसीहत में है—

जुज़[7] ब ख़िरदमन्द मफ़रमा अमल।

याने ख़िदमत व आमाल सिवाय उलमा और उक़ला के और के तफ़्वीज़ न कर" फिर ख़ुद कहता है—"गर्चे अमलकारे ख़िरदमन्द नीस्त" याने 'अगरचे ख़िदमात[8] व अशग़ाले[9] सुलतानी' का क़ुबूल करना ख़िरदमन्दों[10] का काम नहीं, और अक़्ल से बईद है के आदमी अपने को ख़तरे में डाले। 'अमल' अलग अलग है और 'कार' मुज़ाफ़ है। बतरफ़ 'ख़िरदमन्द' के वर्ना दुहाई ख़ुदा की! 'अमलकार', 'अहलकार' के माने पर नहीं आता; मगर 'क़तील' और 'वाक़िफ़' या और पूरब के मुल्कियों की फ़ारसी!

४५

(२३ अगस्त १८५८)

साहब,

अजब इत्तेफ़ाक़ है आज सुबह को एक ख़त तुमको और एक ख़त जागीर

---

१. जल्दी। २. भेंट। ३. साम्राज्ञी। ४. लिखने का ढंग। ५. मुद्रण। ६. बुद्धिमान आदमी किसी की नौकरी नहीं करता। ७. बुद्धिमान के अतिरिक्त किसी को काम न दीजिये। ८. सेवाएँ। ९. राजा का कार्य। १०. बुद्धिमानों का।

के गाँव की तहनियत में अपने शफ़ीक़[1] को डाक मे भेज चुका था के दोपहर को रज़ीउद्दीन नैशापुरी का कलाम एक शख्स बेचता हुआ लाया। मै तो किताब को देख लेता हूँ, मोल नही लेता। कज़ारा[2] जब मैने उसको खोला, उसी वर्क़ में ये मतला निकला--

अगर[3] ब गंजे गौहर मैलम उफ़्तात चे बाक
कफ़े जवादे तुरा अज़ बराये आँ दारेम।

चाहता था के तुमको लिखूँ के नागाह तुम्हारा खत आया; मुझको लिखना ज़रूर हुआ। आज तुम्हें दो खत भेजे हैं, एक तो सुबह को पोस्ट पेड और एक अब। बारह पर तीन बजे, बैरंग। उस शेर को अब चाहे रहने दो। हाय-हाय! तुम भाई से मिले। 'गयासुल्लुग़ात' खुलवाई। जव्वाद का लुग़द[4] देखा। मगर मेरा ज़िक्र नहीं किया के वो तुम्हारा जोयाये हाल है। 'दस्तम्बू' और उसके छापे का ज़िक्र न किया अलबत्ता अगर तुम ज़िक्र करते तो वो दोनों बाब मे कुछ फ़रमाते और मुझको दुआ सलाम कह देते। चूँके तुमने अपने खत में कुछ नहीं लिखा इससे मालूम हुआ के भाई ने कुछ नहीं कहा। अगर उन्होंने कुछ नहीं कहा तो उनका सितम और उनका कहा हुआ तुमने नही लिखा तो तुम्हारा करम। बहरहाल, खूब मिसरा हाफ़िज़ का तुमने मुझको याद दिलाया है--

या[5] रब मबाद कसरा मखदूमे बेइनायत।

खाही तुम, खाही मुंशी नबी बख्श सल्लमाहुल्लाहो ताला, सल्लमाहुल्लाहो ताला[6] ये याद रहे, ये मिसरा अगर मुझ पर ज़ंजीर से बांधोगे तब भी नही

---

१. कृपालु। २. संयोग वश। ३. यदि मोतियों के कोष की तरफ मेरी इच्छा हो तो इसमें कौन सी बात है, आपका उदार हस्त इसीलिए तो हमें उपलब्ध है। ४. शब्द कोष। ५. हे ईश्वर, किसी को कृपाहीन स्वामी न मिले। ६. ईश्वर तुम्हें स्वस्थ रखे।

बँधेगा। अगर 'दस्तम्बू' को सरासर ग़ौर से देखोगे तो अपना नाम पाओगे और ये भी जानोगे के वो तहरीर, तुम्हारी इस तहरीर से सौ बरस पहले की है।

आख़िरे रोज़े दोशम्बा, २३ अगस्त १८५८ ई०।

४६

(२८ अगस्त १८५८ ई०)

नूरे नज़र व लख़्ते जिगर मिर्ज़ा तफ़्ता,

तुमको मालूम रहे के रायसाहब मुकर्रम[1] व मुअज़्ज़म[2] राय उम्मीद सिंघ बहादुर ये रुक़्क़ा तुमको भेजेंगे। तुम इस रुक़्क़े को देखते ही उनके पास हाज़िर होना और जब तक वहाँ रहें तब तक हाज़िर हुआ करना और दस्तम्बू के बाब में जो उनका हुक्म हो बजा लाना। उनको पढ़ा भी देना और फी जिल्द का हिसाब समझा देना। पचास जिल्द की क़ीमत इनायत करेंगे, ले लेना। जब किताब छप चुके, दस जिल्दें रायसाहब के पास इन्दौर भेज देना और चालीस बमुजिब उनके हुक्म के मेरे पास इरसाल करना, और वो जो मैंने पाँच जिल्द की आराइश[3] के बाब में तुमको लिखा है, उसका हाल मुझको ज़रूर लिखना।

हाँ साहब, एक रुबाई मेरे सह्व[4] से रह गई है, उस रुबाई को छापा होने से पहले हाशिये पर लिख देना, जहाँ ये फ़िक़रा है—

"नै नै[5] अख़्तरे बख़्ते ख़ुसरो दर बलन्दी बजाये रसीद के रुख़ अज़ ख़ाकियाँ निहुफ़्त।"

---

१. कृपा करने वाले। २. बड़े। ३. सजावट। ४. गल्ती। ५. "नहीं नहीं," बादशाह के भाग्य का नक्षत्र इतना ऊपर उठा कि शरीरधारियों से उसने अपना मुँह छिपा लिया। जहाँ नक्षत्र की चंचलता उत्पन्न होती है वहाँ मुकुट बागडोर का स्थान ग्रहण कर लेता है और बारह सिंगा मामूली अन्नकण के समान हो जाता है, तुम देखते नहीं हो कि सूर्य आकाश में अपने स्थान के लिए भय से कैसा काँप रहा है।

जाए के सितारा शूख़ चश्मी वरज़द
अफ़सर अफ़सारो गवज़न अरज़न अरज़द
ख़ुरशीद ज़े अन्देशए जा दर गर्दिश
बर चर्ख़ न बीनी के चेसाँ मी लरज़द

चूँके हाशिया माने लुग़ात से भरा हुआ है, तो तुम फ़िक़रे के आगे निशान बना कर ऊपर के हाशिये पर रुबाई लिख देना और हाशिये[1] यमीन पर जहाँ माने लिखे हुये हैं वहाँ रुबाई के लुग़ात के माने ख़फ़ी[2] क़लम से लिख देना—अफ़सर, अफ़सार, गवज़न[3] बहर दो फ़तह जादर गर्दिश।

निगाश्ता २८ अगस्त सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिब

४७

(१ सितम्बर १८५८)

साहब,

अजब तमाशा है। तुम्हारे कहे से मुंशी शीवनरायन साहब को ख़त लिखा था, सो कल उनका ख़त आया और उन्होंने दस्तम्बू की रसीद लिखी। डाक का हरकारा तो उनके पास ले न गया होगा, आख़िर तुम्हीं ने भेजा होगा। ये क्या के तुमने मुझको उसकी रसीद और मेरे ख़त का जवाब न लिखा? अगर ये गुमान किया जाए के तुमने राय उम्मीदसिंघ की मुलाक़ात हो लेने पर ख़त का लिखना मुनहसिर रखा है तो वो भी हो चुकी होगी। मुझे तो सूरत ऐसी नज़र आती है के गोया तुम अलग हो गए हो। किताब मतबे में हवाले

---

१. पृष्ठ के दाँई ओर का हाशिया। २. बारीक क़लम। ३. दोनों को ज़बर देकर पढ़ना।

कर दी। अब उसकी तजईन व तसहीह् से कुछ ग़रज़ नही। पस, अगर यों है तो मैं इस इन्तबा से दर गुज़रा। सैकड़ों मतालिब व मक़ासिद रह जाएँगे। और फिर इस वहशत की वजह क्या? अगर कहा जाए के वहशत नही है तो उस किताब और मसनवी की रसीद न लिखने की वजह क्या? बतकल्लुफ़ क़यास चाहता हूँ के तुम मुझसे ख़फ़ा हो गए हो। ख़ुदा के वास्ते, ख़फ़गी की वजह लिखो। सुबह को मैंने ये ख़त रवाना किया है, बुध का दिन सितम्बर की पहली तारीख़। अगर शाम तक तुम्हारा ख़त आया तो ख़ैर वर्ना तुम्हारी रंजिश का बिल्कुल यक़ीन हो जाएगा और बसबब वजह न मालूम होने के जी घबराएगा। मैं तो अपने नज़दीक कोई सबब ऐसा नहीं पाता। ख़ुदा के वास्ते ख़त जल्द लिखो। अगर ख़फ़ा हो, तो ख़फ़गी का सबब लिखो।

जानता हूं के तुम राय उम्मीदसिंघ से भी न मिले होगे। अयाज़न बिल्लाह[1]! मै उनसे शर्मिन्दा रहा के मैंने कहा था के हाँ मिर्ज़ा तफ़्ता दस्तम्बू तुमको अच्छी तरह पढ़ा देंगे। अगर चे ऐसे हाल में के मुझको तुम पर अलग होने और पहलूतिही करने का गुमान गुज़रा है, कोई मतलब तुमको लिखना न चाहिए, मगर ज़रूरत को क्या करूँ? नाचार लिखता हूं। साहबे मतबा ने ख़त के लिफ़ाफ़े पर लिखा है—

"मिर्ज़ा नौशा साहब ग़ालिब"

लिल्लाह[2]! ग़ौर करो के ये कितना बेजोड़ जुमला है। डरता हूं के कहीं सफ़[3] ए अव्वले किताब पर भी न लिख दें। आया फ़ारसी का दीवान या उर्दू या 'पंज आहंग' या 'मेहरे नीम रोज़' छापे की ये कोई किताब उस शहर में नही पहुँची, जो वो मेरा नाम लिख देते? तुमने भी उनको मेरा नाम नहीं बताया, सिर्फ़ अपनी नफ़रत उर्फ़ से, वजह इस वावेला की नहीं है, बल्के सबब ये है के दिल्ली के हुक्काम को तो उर्फ़ मालूम है मगर कलकत्ते से विलायत तक

---

१. ईश्वर से शरण माँगता हूं। २. ईश्वर के लिए। ३. प्रथम पृष्ठ।

याने वुज़रा के महकमे में और मलिके[१] आलिया के हुजूर में कोई इस नालायक़ उर्फ़ को नहीं जानता। पस, अगर साहबे मतबा ने 'मिर्ज़ा नौशा साहब ग़ालिब' लिख दिया तो मैं ग़ारत हो गया; खोया गया। मेरी मेहनत रायगाँ गई ! गोया किताब किसी और की हो गई। लिखता हूँ और फिर सोचता हूँ के देखूँ तुम ये पयाम मतबे में पहुंचा देते हो या नहीं।

बुध का दिन, सितम्बर की पहली तारीख, १८५८ ई०।

४८

(३ सितम्बर १८६८)

लिल्लाहिशुक्र[२]। तुम्हारा ख़त आया और दिले सौदा ज़दा[३] ने आराम पाया। तुम मेरा ख़त अच्छी तरह पढ़ा नहीं करते। मैंने हरगिज़ नहीं लिखा के ये इबारत दो जुज्व में आ जाए। मैंने ये लिखा था के इबारत इस क़दर है के दो जुज्व में आजाए; लेकिन मैं चाहता हूँ के हजम[४] ज़्यादा हो। बहरहाल इस नमूने की तक़्ती और हाशिया मतबू[५] है। लुग़ात के माने हाशिए पर चढ़े, उसकी रविश दिलावेज़[६] और तक़सीम[७] नज़रफ़रेब[८] हो। रुबाई हाशिए पर लिख दी। अच्छा किया। भाई मुंशी नबी बख्श साहब से नस्र के दो फ़िक़रे जिस महल पर के उनको बताए हैं, ज़रूर लिखवा देना। मैंने जो तुमको 'मिर्ज़ाई' का ख़िताब दिया ह, उन फ़िक़रों में इसका इज़हार किया है।

बहुत ज़रूरी ये अम्र है, और मैं मुंशी शीवनरायन साहब को आज सुबह को लिख चुका हूँ। तीसरे सफ़ा के आख़िर या चौथे सफ़े के अव्वल ये जुमला है—

---

१. साम्राज्ञी। २. ईश्वर की कृपा है। ३. दुःखी हृदय। ४. मोटाई। ५. मुद्रित। ६. चित्ताकर्षक। ७. विभाजन। ८. दृष्टि रंजक।

"अगर[1] दर दमे दीगर ब नहीबे मबाश बहम ज़नद।"

'नहीब' की जगह 'नबाय' बना देना।

"बनवाए मबाश बहम ज़नद"

'नहीब' लफ़्ज अरबी है, अगर रह जाएगा तो लोग मुझ पर ऐतराज़ करेंगे। तेज़ चाकू की नोक से 'नहीब' का लफ़्ज़ छीला जाए और उसी जगह 'नवाय[2]' लिख दिया जाए।

राय उमीदसिंघ ने मुझ पर इनायत और मतबे की इआनत की। हक़ ताला उनको इस कारसाज़ी और फ़क़ीर नवाज़ी का अज्र दे। साहब, कभी न कभी मेरा काम तुमसे आ पड़ा है, और फिर काम वैसा के जिसमें मेरी जान उलझी हुई है और मने उसको अपने बहुत से मतालिब के हुसूल का ज़रिया समझा है। ख़ुदा के वास्ते पहलूतिही न करो और बदिल[3] तवज्जो फ़रमाओ। कापी की तसीह[4] का ज़िम्मा भाई का हो गया है! जिल्दों की आरास्तगी का ज़िम्मा बरख़ुरदार अब्दुल लतीफ़ का कर दो। मेरी तरफ़ से दुआ कहो और कहो के मैं तुम्हारा बूढ़ा और मुफ़लिस[5] चचा हूं, तसीह भाई करें, और तज़ईं[6] तुम करो। कहता हूँ, मगर नहीं जानता के तज़ईं क्यों कर किया चाहिए। सुनता हूं के छापे की किताब के हर्फ़ों पर स्याही की कलम फेर देते हैं, ताके हर्फ़ रौशन हो जाएँ। स्याह क़लम से जदवल[7] भी खींची जाती है। फिर ज़िल्द भी पुरतकल्लुफ़[8] बन सकती है। भतीजे की दस्तकारी और सन्नाई[9] और होशियारी उनकी मेरे किस दिन काम आएगी?

---

१. यदि दूसरे अवसर पर ईश्वर के 'मबाश' (बरबाद हो जाओ) कहते ही प्रलय हो जाती है। २. आवाज़। ३. हार्दिक। ४. संशोधन (प्रूफ़)। ५. दरिद्र। ६. अलंकरण। ७. पुस्तक अथवा चित्र का हाशिया। ८. सुन्दर। ९. कारीगरी।

मिर्ज़ा तफ़्ता तुम बड़े बेदर्द हो। दिल्ली की तबाही पर तुमको रहम नहीं आता, बल्के तुम उसको आबाद जानते हो। यहाँ नैचाबन्द[1] तो मयस्सर[2] नहीं, सहाफ़[3] और नक़्क़ाश[4] कहाँ? शहर आबाद होता तो मैं आपको तकलीफ़ क्यों देता? यहीं सब दुरुस्ती मेरी आँखों के सामने हो जाती। क़िस्सा मुख़्तसर, ये इबारद मुंशी अब्दुल लतीफ़ को पढ़ा दो। मैं तो उनके बाप को अपना हक़ीक़ी भाई जानता हूँ। अगर वो मुझे अपना हक़ीक़ी[5] चचा जाने और मेरा काम करे तो क्या अजब है? दो रुपया फ़ी जिल्द, इससे ज़्यादा का मक़दूर[6] नहीं। जब मुझको लिखोगे हुण्डवी भेज दूँगा। छ रुपये, आठ रुपये, दस रुपये, हद बारह रुपये। मियाँ को समझा देना, कमी की तरफ न गिरे। चीज़ अच्छी बने। निहायत[7] '१२'। छ जिल्द तैयार हों।

मुंशी शीवनरायन को समझा देना के जिन्हार उर्फ़ न लिखें। नाम और तख़ल्लुस बस। अज्ज़ाए[8] ख़िताबी लिखना नामुनासिब, बल्के मुज़िर[9] है। मगर हाँ, नाम के बाद लफ़्ज़ 'बहादुर' का और 'बहादुर' के लफ़्ज़ के बाद तख़ल्लुस—

असदुल्लाह ख़ाँ बहादुर ग़ालिब

भाई, तुमने औराक़े मसनवी की रसीद न लिखी, कही वो पार्सल में से गिर तो न गए हों? देखो, किस लुत्फ़ से मेरे नाम की हक़ीक़त बयान हुई है। औरों के छापने की मुमानियत ज़रूर है, मगर मैं उसकी इबारत क्या बताऊँ? साहबे मतबा इस अम्र को उर्दू में आख़िरे[10] किताब लिख दें। मुंशी जी से नस्र लिखवा लो (मुंशी अब्दुल लतीफ़ को ये ख़त पढ़ा दो। 'नहीब' की जगह 'नवा' बना दो। साहबे मतबा को मेरा नाम बता दो। ख़ातमे पर मुमानियत

---

१. हुक्के में नैचा बैठाने वाला। २. उपलब्ध। ३. जिल्दसाज़। ४. नक़्श करने वाला, चित्रकार। ५. वास्तविक। ६. सामर्थ्य। ७. अधिक से अधिक। ८. उपाधि के अंग। ९. हानिकर। १०. पुस्तक के अन्त में।

का हुक्म साहबे मतबा से लिखवा दो। बरख़ुरदार अब्दुल लतीफ़ से मिक़दार रुपए की दरियाफ़्त कर के मुझको लिख भेजो। अपनी मसनवी की रसीद लिखो। अपने बजानो दिल मसरूफ़ होने का इक़रार करो। इन सब उमूर की मुझे ख़बर दो।

जुमा सूअम[1] सितम्बर सन् १८५८ ई० हंगामे नीम रोज़।

—ग़ालिब

४९

मिर्ज़ा तफ़्ता को दुआ पहुँचे।

दोनों फ़िक़रे जिस महल[2] पर बताये हैं, हाशिए पर लिख दिए होंगे। 'नहीब' के लफ़्ज़ को छील कर 'नवाए' बना दिया होगा। बरख़ुरदार मुंशी अब्दुल लतीफ़ को मेरा ख़त अपने नाम का लिखा दिया होगा। उनकी सआदत-मंदी से यक़ीन है के मेरी इल्तमास[3] क़बूल करें और इधर मुतवज्जह हो। कापी लिखी जानी और छापा होना शुरू हो गया होगा। अगर पत्थर बड़ा है तो चाहिए आठ-आठ सफ़े, बल्के बारह बारह सफ़े छापे जाएं और किताब जल्द मुन्तबा हो जाए। भाई, मुंशी साहब की शफ़क़त[4] का हाल पूछना ज़रूर नहीं; मुझ पर मेहरबान और हुस्ने[5] कलाम के क़द्रदाँ हैं। उसकी तसीह में बेपरवाई करेंगे तो क्या मेरी तफ़ज़ीह[6] के रवादार होंगे। भाई, तुमने भी और मुंशी शीवनरायन साहब ने भी लिखा। मैं एक इबारत लिखता हूँ, अगर पसँद आए तो ख़ातमे किताब में छाप दो।

नामा निगार[7] ग़ालिबे ख़ाकसार का ये बयान है के ये जो मेरी सर गुज़िश्त की दास्तान है, इसको मैंने 'मतब[8] ए मुफ़ीद ख़लायक़' में छपवाया है

---

१. तीसरी। २. समान। ३. अनुरोध। ४. कृपा। ५. काव्य-सौन्दर्य। ६. बदनामी। ७. लेखक। ८. मुफ़ीद ख़लायक़ नामक मुद्रणालय।

और मेरी राय में इसका ये क़ायदा क़रार पाया है के और साहबाने मतबे जब तक मुझसे 'तलबे रुख्सत' न करें अपने मतबा में इसके छापने पर जुरत न करें।

इसके सिवा अगर कोई तरह की तहरीर मंजूर हो, तो मुंशी शीवनरायन साहब को इजाज़त है के मेरी तरफ़ से छाप दें। ये सब बातें पहले भी लिख चुका हूँ। अब दो अमर ज़रूरी[2]-उल-इज़हार थे, इस वास्ते ये ख़त लिखा है। एक तो उर्दू इबारत; दूसरे ये के मेरे शफ़ीक़ मुकरम सैयद मुकर्रम हुसेन साहब का ख़त मेरे नाम आया है और उन्होंने एक बात जवाब तलब लिखी ह, उसका जवाब इसी ख़त में लिखता हूँ। तुमको चाहिए के उनसे कह दो बल्के ये इबारत उनको दिखा दो—

"बन्दा परवर, नवाब अताउल्ला खाँ मेरे बड़े दोस्त और शफ़ीक़ हैं, उनके फ़र्जन्दे रशीद पीर गुलामे अब्बास अल[3] मुख़ातिब ब सैफ़ुद्दौला। ये दोनों साहब सही व सालिम हैं। शहर से बाहर दो चार कोस पर कोई गाँव है, वहाँ रहते हैं। शहर में अहले इस्लाम की आबादी का हुक्म नहीं और उनके मकानात कुर्क हैं, न जब्त हो गए हैं न वागुज़ाश्त[4] का हुक्म है।

५०

७ सितम्बर १८५८

मुशफ़िक़ मेरे, करम फ़रमा मेरे,

तुम्हारा ख़त और तीन-दो वर्क़ छापे के पहुँचे। शायद मेरे दिखाने के वास्ते भेजे गए हैं, वर्ना रस्म तो यों है के पहले सफ़े पर किताब का नाम और

---

१. अनुमति प्राप्त। २. प्रकट करना आवश्यक। ३. सैफ़ुद्दौला के नाम से सम्बोधित। ४. मुक्त होना, जारी होना।

मुसन्निफ़[1] का नाम और मतबे का नाम छापते हैं और दूसरे सफ़े पर लौह[2] स्याह कलम से बनती है और किताब लिखी जाती है। इसका भी छापा इसी तरह होगा। ग़रज़ के तक़्ती और शुमारे सुतूर और कापी का हुस्ने[3] ख़त और अल्फ़ाज़ की सेहत, सब मेरे पसन्द। सेहते अल्फ़ाज़ का क्या कहना है! वल्लाह बेमुबालिग़ा कहता हूँ अगर भाई मुंशी नबी बख़्श साहब बदिल मुतवज्जे हों तो अगर अहयानन असल नुस्ख़े में सह्वे कातिब से ग़लती वाक़े हुई हो तो उसको भी सही कर देंगे। तुम मेरी तरफ़ से उनको सलाम कहना बल्के ये ख़त दिखा देना। ख़ुदा करे अंजाम तक यही क़लम और यही ख़त और यही तर्ज़े तसीह चली जाए। जदवल भी मतबू है। पहले सफ़े की लौह भी ख़ुदा चाहे तो दिल पसन्द और नज़र फ़रेब होगी। काग़ज़ के बाब में ये अर्ज़ है के फ्रेञ्च काग़ज़ अच्छा है। जिल्दें जो नज़रे हुक्काम हैं, वो इस काग़ज पर हों और बाक़ी चाहो शिवरामपुरी पर, और चाहो नीले काग़ज़ पर छापी और ये बात के दो जिल्दे जो विलायत जाने वाली है वो उस कागज़ पर छापा जाएँ और बाक़ी शिवरामपुरी पर या नीले काग़ज़ पर, ये तकल्लुफ़ महज़ है। यहाँ के हाकिमों ने क्या किया है के उनकी नज़र की किताबें अच्छे काग़ज़ पर न हो। मगर जो ऐसा ही सर्फ़ और खर्च ज़ायद पड़ता हो तो ख़ैर दो जिल्दें इस काग़ज़ पर और चार जिल्दे शिवराम पुरी पर हों, बाक़ी जिल्दों में तुम्हें अख़्तियार है। हाँ साहब, अगर हो सके तो कापी की स्याही ज़रा और स्याह और रख़्शिन्दा[4] हो और आख़िर तक रंग न बदले। आगे इससे मैंने बरख़ुरदार[5] मुंशी अब्दुल लतीफ़ को लिखा था के उन छ किताबों की कुछ तजईं[6] और आराइश की फ़िक्र करे। मालूम नहीं तुमने वो पयाम[7] उनको पहुँचाया या नहीं। आप और मुंशी अब्दुल लतीफ़ और मिर्ज़ा हातिम अली साहब 'मेहर' बाहम सलाह करें और कोई बात ख़याल में आवे तो बेहतर,

---

१. लेखक। २. सुलेखन। ३. लिखने वाले की असावधानी से। ४. चमकदार। ५. सुपुत्र। ६. अलंकरण। ७. सन्देश।

वर्ना उन छ नुस्खों की जिल्दें अँग्रेज़ी डेढ़-डेढ़, दो-दो रुपया की लागत की बनवा देना और उसका रुपया तैयारी से पहले मुझसे मँगवा लेना।

"आँ[1] के हमा रा दर यक दम ब नवीदे बिशो पिदीद आ वरद अगर दर दमे दीगर ब नहीबे मबाश बहम ज़नद इला आख़रे हो।'[1]

इसमें 'नहीब' का लफ़्ज़ कुछ मेरी सहल अंगारी से और कुछ सह्वे कातिब से रह गया है। इसको तेज चाक़ू से छील कर 'बनवाय' लिख देना। याने—

बनवाय मबाश बहम जनद

ज़रूर ज़रूर इसका इन्तज़ार न कीजो के जब यहाँ छापा जाएगा तो बना देंगे। न असल किताब ग़लत रहे और न छापे में गलत हो। अगर अज्ज़ाए असल मीर अमीर अली साहब कापी नवीस के पास हों, तो उनको या भाई नबी बख़्श साहब को ये रुक़्क़ा दिखा कर समझा देना और बनवा देना।

रोज़े से शम्बा, हफ़्तुम सितम्बर १८५८ ई०।

अज़-ग़ालिब

५१

(१६ सितम्बर १८५८)

अच्छा, मेरा भाई, 'नहीब' वाले दो वर्क़ चार सौ हों, पान सौ हों, सब बदलवा डालना। काग़ज़ का जो नुक़सान वो मुझपे मंगवा लेना। इस लफ़्ज़ के रह जाने में सारी किताब निकम्मी हो जाएगी और मेरे कमाल को धब्बा लग जाएगा। ये लफ़्ज़ अरबी है, हरचन्द[2] मसविदे में बना दिया था लेकिन कातिब की नज़र से रह गया।

---

१. जो ईश्वर 'बिशो' (हो जाओ) शब्द के उच्चारण के साथ संसार को उत्पन्न करता है और 'मबाश' (नाश हो) कहकर सब कुछ नष्ट कर देता है।
२. हर तरह से।

लिखते हो के मिर्ज़ा साहब दो जिल्दें दुरुस्त करेंगे, ये तो सूरत और है, याने मैंने छ जिल्दें बारह रुपए की लागत में बकारसाज़ी[1] व हुनरपरदाज़ी[2]-ए-बरखुरदार मुंशी अब्दुल लतीफ चाही थीं, मुन्तज़िर[3] था के अब उनका क़ुबूल करना मुझको लिखोगे और रुपया मुझसे मँगवाओगे। ज़ाहिरा अब्दुल लतीफ़ ने पहलूतिही की। मिर्ज़ा साहब अगर कफ़ील हुए थे तो छ जिल्दें बनवाते, न के दो। अलबत्ता इस अहतमाल की गुंजाइश है के दो पुरतकल्लुफ़ और चार बनिस्बत[4] उसके कुछ कम। अगर यों है तो ये तो मुद्दआ ए[5] दिली मेरा है, मगर इत्तिला ज़रूर है।

राय उम्मीद सिंघ के नाम का ख़त बऐहतियात रहने दो। जब वो आयें उनको दे दो। ये जो तुम लिखते हो के 'नहीब' का लफ़्ज़ लिख दिया गया था, इससे मालूम होता है के छापा शुरू होकर दूर तक पहुँच गया। क्या अजब है के किताबें जल्द मुन्तबा हो जाएँ।

हमारे मुंशी शिवनरायन साहब अपने मतब के अख़बार में इस किताब के छापे का इश्तेहार क्यों नहीं छापते, ताके दरख़ास्तें ख़रीदारों की फ़राहम हो जाएँ।

मिर्ज़ा तफ़्ता सुनो—इन दिनों में मेरे मुहसिन[6] हकीम अहसनुल्ला ख़ाँ आफ़ताबे आलमताब के खरीदार हुए हैं और मैंने बमुजिब उनके कहने के बिरादरे दीनी मौलाना 'मेहर' को लिखा है। हज़रत ने लाँ[7] वो नाम जवाब में नहीं लिखा। तुम उनसे कहो के वो सितम्बर सन् १८५८ ई० से ख़रीदार हैं। आज १६ सितम्बर की है। दो लम्बर अख़बार के, हकीम साहब के नाम का सरनामा, ख़ानचन्द के कूचे का पता लिख कर रवाना करें। आइन्दा हफ़्ता बहफ़्ता भेजे जाएं और हकीम अहसनुल्ला ख़ाँ का नाम ख़रीदारों में लिख

---

१. दक्षता। २. कारीगरी। ३. प्रतीक्षा में ४. अपेक्षाकृत। ५. मनोवाञ्छा। ६. उपकारी। ७. नहीं और हाँ।

लें। दूसरे अख़बार मज़कूर[1] में एक सफा डेढ़ सफ़ा 'बादशाहे देहली' के अख़-बार का होता है। जिस दिन से वो अख़बार शुरु हुआ है उस दिन से सिर्फ़ 'अख़बारे शाही' का सफ़ा नक़ल करके इरसाल करें। कातिब की उजरत[2] और काग़ज़ की क़ीमत यहाँ से भेज दी जाएगी। भाई, तुम मिर्ज़ा साहब से इसको कह कर जवाब लो और मुझको इत्तिला दो। 'नहीब' के नहीब से मरा जाता हूँ। उसकी दुरुस्ती की ख़बर भेजो। बाक़ी जो छापे के हालात हों उसकी आगही ज़रूर है।

पंज शंबा १६ सितम्बर सन् १८५८ ई०। —ग़ालिब

५२

(१७ सितम्बर १८५८)

भाई,

मुझमें तुममें नामानिगारी[3] काहे को है, मुकालमा[4] है। आज सुबह को एक ख़त भेज चुका हूँ। अब इस वक़्त तुम्हारा ख़त और आया। सुनो साहब, लफ़्ज़े[5] मुबारक मीम, हे, मीम, दाल इसके हर हर्फ़ पर मेरी जान निसार है। मगर चूँके यहाँ से विलायत तक हुक्काम के हाँ से ये लफ़्ज़ याने 'मुहम्मद असदुल्ला ख़ाँ' नहीं लिखा जाता, मैंने भी मौक़ूफ़ कर दिया है। रहा 'मिर्ज़ा' व 'मौलाना' व 'नवाब' इसमें तुमको और भाई को अख़्तियार है, जो चाहो सो लिखो। भाई को कहना, उनके ख़त का जवाब सुबह को रवाना कर चुका हूँ।

मिर्ज़ा तफ़्ता अब तज़इने[6] जिल्द हाय किताब के बाब में बिरादरज़ाद ए[7] सआदतमंद को तकलीफ़ न दो। मौलाना मेहर को अख़्तियार है, जो चाहें सो करें।

---

१. उपर्युक्त। २. मेहनताना। ३. पत्र लेखन। ४. वार्त्तालाप। ५. शुभ शब्द (हज़रत मुहम्मद)। ६. पूरी पुस्तक की जिल्द की सजावट। ७. अच्छा भतीजा।

खत तमाम करके खयाल में आया के वो जो मिर्ज़ा साहब से मुझको मतलूब[1] है, तुम पर भी ज़ाहिर करूँ साहब, वहाँ एक अखबार मौसूम[2] ब 'आफताबे आलमताब' निकलता है उसके मुहतमिम[3] ने इल्तेज़ाम किया है के एक सफ़ा या डेढ़ सफ़ा बादशाहे देहली के हालात का लिखता है, नहीं मालूम, आग़ाज किस महीने से है। सो हकीम अहसनुल्ला खाँ ये चाहते हैं के साबिक़ के जो औराक़ हैं, जब से हो, वो जो छापेखाने में मसविदे रहते हैं, उनकी नकल किसी कातिब[4] से लिखवा कर यहाँ भेजी जाए। उजरत जो लिखी जाएगी वो भेजी जाएगी। और इब्तदाए १८५८ से उनका नाम खरीदारों में लिखा जाये। दो हफ़्ते के दो लंबर उनको एक लिफ़ाफ़े में भेज दिये जाएँ और फिर हर महीने हफ़्ता दर हफ़्ता, उनको लिफ़ाफ़ा अखबार का पहुँचा करे। ये मरातिब जनाब मिर्ज़ा हातिमअली साहब को लिख चुका हूँ और अब तक आसारे[5] क़ुबूल ज़ाहिर नहीं हुये। न लिफ़ाफ़े हकीम साहब के पास पहुँचे, न उन सफ़ात[6] की नकल मेरे पास आई। आपको इसमें सई[7] ज़रूर है। और हाँ 'आफ़ताबे आलमताब' का मतबा तो कश्मीरी बाजार में है मगर आप मुझको लिखें के 'मुफ़ीदे खलायक' का मतबा कहाँ है। अजब है के इन साहबे शफ़ीक़ ने मेरी तहरीरात[8] का जवाब नहीं लिखा। फ़रमाइश हकीम अहसनुल्ला खाँ साहब की बहुत अहम है। अिन्दल मुलाक़ात मेरा सलाम कह कर उसका जवाब बल्के वो अखबार उनसे भिजवाओ। जुमा, १७ सितम्बर १८५८ ई०।

५३

(२१ सितम्बर १८५८)

भाई,

आज सुबह को बसबब हकीम साहब के तक़ाज़ा के शिकवा[9] आमेज़ खत

---

१. अपेक्षित। २. नामक। ३. प्रबन्धक। ४. लिपिक। ५. स्वीकृति के लक्षण। ६. सफ़ा (पृष्ठ) ब० व०। ७. प्रयत्न। ८. लेख (ब० व०)। ९. उलहना भरा।

जनाब मिर्ज़ा साहब की ख़िदमत में लिख कर भेजा। कल्यान ख़त डाक में डाल कर आया ही था के डाक का हरकारा एक ख़त तुम्हारा और एक ख़त मिर्ज़ा साहब का लाया। अब क्या करूँ। ख़ैर चुप हो रहा। शिकवा मुहब्बत बढ़ाएगा। मिर्ज़ा साहब की इनायत का शुक्र बजा लाता हूँ। यक़ीन है के जिल्दें मेरे ख़ातिर ख़्वा बन जाएँगी, किस वास्ते के जो आज के ख़त में उन्होंने लिखा है वो बेअैनेही मेरा मकनूने[1] ज़मीर है। ख़ुदा उनको सलामत रखे। मेरा सलाम कह देना। उनके ख़त का जवाब कल परसों भेजूँगा।

राय उमीद सिंघ बहादुर ख़ूबाने[2] रोज़गार में से हैं। फ़क़ीर का सलामे 'नियाज़ उनको कह देना। ख़ुदा करे उनके सामने किताबें छप चुकें। बारे, जब वो गवालियार को तशरीफ़ ले जाएँ, तो मुझको इत्तिला लिखना। 'नहीब' के 'नवाय' बन जाने से ख़ातर जमा हो गई। भाई, मैं फ़ारसी का मुहक़्क़िक़[3] हूँ। कातिब उन अजज़ा का जिनकी रू से कापी लिखी जाती है, फ़ारसी का आलिम है। इल्म उसका गयासुद्दीन रामपुरी और हकीम मुहम्मद हुसेन दकनी से ज़्यादा है। तसही से ग़र्ज़ ये है के कापी सरासर मुआफ़िक़ उन औराक़ के हो न ये के फ़रहंगों[4] में देखा जाए। आगे इससे तुमको भी और भाई को भी लिख चुका हूँ। अब सिर्फ़ उस तहरीर का इशारा लिखना मंज़ूर था। आज जिस तरह मुझको तुम्हारा और मिर्ज़ा साहब का ख़त पहुँचा, लाज़िम था के हकीम साहब को भी लिफ़ाफ़ु-ए-अख़बार पहुँच जाता। मगर इस वक़्त तक नहीं पहुँचा, और ये दोपहर का वक़्त है। ख़ैर, पहुँच जाएगा। मैंने तुम्हारा ख़त उनके पास भेज दिया था। उन्होंने तुम्हारी राय मंज़ूर की। अब तुम वो अख़बार, जिस तरह के तुमने लिखा है, उनके पाए भेज दो और साहबे मतबा क़ीमते अख़बार और उजरते[5] कातिब उनको लिख भेजे, अपने

---

१. हृद्गत। २. प्रेमी। ३. शोध करने वाला। ४. शब्द कोषों में। ५. लिपिक का मेहनताना।

नाम और मसकन से उनको इत्तला दे, बस। उसको अपने तौर पर रुपया भेज देंगे। हम तुम वास्ते शिनासाइये हम[1] दिगर हो गए। हाँ, अगर अहयानन[2] रुपए के भेजने में देर होगी तो मैं कहकर भिजवा दूंगा। ये अलबत्ता मेरा जिम्मा है।

५४

(दिसम्बर १८५८)

साहब,

क़सीदे[3] के छापे जाने की बशारत[4] साहबे मतबा ने भी मुझको दी है। खुदा उनको सलामत रखे। कल मिर्ज़ा साहब के ख़त में उनको एक मिसरा किसी उस्ताद का लिख चुका हूँ, मैं सरासर उनका ममनूने[5] अहसान हूं। मेरा सलाम कहना और लिफ़ाफ़ ए अख़बार के पहुंचने की इत्तिला देना। मेरे नाम का कोई लिफ़ाफ़ा जाया नहीं जाता। ख़ुदा जाने इस पर क्या बिजोग पड़ा? ज़ाहिरा उन्होंने पोस्ट पेड़ भेजा होगा। फिर पोस्ट पेड़ ही क्यों तलफ़[6] हो?

'शीहाह'[7] बमाने 'सदा ए अस्प' लुग़त फ़ारसी है, बशीने[8] मकसूर व याये[9] मारूफ़ व हाय[10] हव्वज़ मफ़तूह व हाय[11] सानी ज़दा, और अरबी में उसको 'सहील' कहते हैं। फिर 'सीहा' कोई लुग़त नहीं है, अरबी न फ़ारसी। अगर 'ग़नीमत' के कलाम में 'सयह' लिखा है तो कातिब की ग़लती है, 'ग़नीमत' का क्या गुनाह?

---

१. पारस्परिक परिचय। २. अब भी। ३. प्रशंसात्मक कविता। ४. शुभ समाचार। ५. कृतज्ञ। ६. नष्ट। ७. घोड़े की आवाज़। ८. जेर युक्त 'शीन', (श)। ९. उर्दू का 'ये' नामक अक्षर का एक भेद। १०. ज़बर के साथ 'ह'। ११. साकिन 'ह'।

'बर[1] ख़ुद ज़ रूए हिंदसा गाहे शुमार याफ़्त'

असल मिसरा यों है। मैंने सह्व से, ख़ुदा जाने क्योकर लिख दिया है। भाई, 'मेहर ख़ाँ' के दो माने हैं। एक तो ख़िताब के जो सलातीन[2] उमरा को[3] दें और दूसरे वो नाम जो लड़कों का प्यार से रखें, याने उर्फ़। हाशिये पर शौक़ से लिखवा दो। मगर तुमने देखा होगा के इस इबारत से जो तुम्हारे ज़िक्र में है, पहले मेहर ख़ाँ के माने हाशिये पर चढ़ गए हैं। मुकर्रर[4] लिखने की हाजत क्या है ? और अगर लिख भी दो तो क़बाहत क्या है ? भाई साहब क्यों मुज़ायक़ा फ़रमायें। हाल औराक़ को तहरीर का मालूम हुआ। साहबाने कौन्सल की राय विलायते आगरा याने मेरे महकमे में मंज़ूर व मक़बूल। नाम मेरा जिस तरह चाहो लिख दो।

बनामे[5] आँ के ऊ नामे नदारद
बहर नामे के ख़ानी सर बरारद

शफ़ीक़े बित्तहक़ीक़ मौलाना 'मेहर' ज़र्रए बेमिक़दार का सलाम क़ुबूल करें। कल आपको ख़त लिख चुका हूँ। आज या कल पहुँच जाएगा। रात से एक बात और ख़याल में आई है, मगर चूँ के तहक्कुम व कारफ़िज़ाई है, कहते हुए डरता हूँ। डरते डरते अर्ज़ करता हूँ। बात ये है के दो जिल्दे तिलाई लौह की विलायत के वास्ते तैयार होंगी और वो चार जिल्दें जो यहाँ के हुक्काम के वास्ते दरकार होंगी, उनकी सूरत यही ठहरी है के स्याह क़लम और अंगरेजी जिल्द। क्यों भाई साहब करारदाद और तजवीज़ यही है, और फिर समझना चाहिए के ये चार जिल्दें किस किस की नज़र है। नवाब गवर्नर जनरल बहादुर, चीफ़ कमिश्नर बहादुर, साहब कमिश्नर बहादुर देहली, डिपुटी कमिश्नर बहादुर

---

१. यद्यपि वह संख्या के कारण गिनती में आया। २. शासक। ३. सामन्त। ४. पुनः, दुबारा। ५. मैं उसके नाम से प्रारंभ करता हूँ जिसका कोई नाम नहीं है, जिस नाम से उसे पुकारिए वह बोलता है।

देहली। ये क्या मेरी बदवज़ई है के जनाब एडमिन्स्टेन साहब की नज़र न भेजूँ! आख़िर गवर्नमेण्ट की नज़र उन्हीं की मार्फ़त भेजूँगा। ना साहब एक जिल्द उनकी नज़र बहुत ज़रूरी है। आप गुंजाइश निकाल कर जैसी ये चार जिल्दें बनवाईं एक और भी ऐसी ही बनवा ल। यक़ीन है आप इस राय को पसन्द फ़रमाएँगे और चार की जगह पाँच बनवाएंगे। ये अर्ज़ मक़बूल[1] और ये गुस्ताख़ी के बार बार आज़ार[2] देता हूँ, माफ़ हो।

भाई मिर्ज़ा तफ़्ता कल के, मिर्ज़ा साहब के, ख़त में से उस माद्दए तारीख़[3] का क़ता लिख लेना। तुमको लिख चुका हूँ। एक क़ता मिर्ज़ा साहब का, एक क़ता तुम्हारा बल्के एक क़ता मौलाना हक़ीर से भी लिखवाओ।

सुबह पंज शंबा सियम सितम्बर, सन् १८५८ ई०

५५

(१६ अक्टूबर १८५८)

क्यों साहब,

इसका क्या सबब है के बहुत दिन से हमारी आप की मुलाक़ात नहीं हुई! न मिर्ज़ा साहब ही आए न मुंशी साहब ही तशरीफ़ लाए। हाँ, एक बार मुंशी शीवनरायन साहब ने करम किया था और ख़त में ये रक़म[4] किया था के अब एक फ़रमा बाक़ी रहा है। इस राह से मैं ये तसव्वुर कर रहा हूँ के अगर एक फ़रमा नस्र का बाक़ी था तो अब क़सीदा छापा जाता होगा और अगर फ़रमा क़सीदे का था तो अब जिल्दें बननी शुरू हो गई होंगी।

तुम समझे? मैं तुम्हारे और भाई मुंशी नबीबख़्श साहब और जनाब मिर्ज़ा हातिम अली साहब के ख़ुतूत के आने को तुम्हारा और उनका आना

---

१. स्वीकृत। २. कष्ट। ३. तारीख़ से सम्बन्धित अंश। ४. लेखन।

समझता हूँ। तहरीर गोया वो मुकालमा है जो बाहम हुआ करता है। फिर तुम कहो मुकालमा क्यों मौक़ूफ़ है और अब क्या देर है और वहाँ क्या हो रहा है? भाई साहब को कापी की तसही मे फ़रागत[1] हो गई? मिर्ज़ा साहब ने जिल्दें सह्हाफ़[2] को दे दीं? मैं अब उन किताबों का आना कब तक तसव्वुर करूँ? दसेरे में एक दो दिन को तातील मुक़र्रर[3] हुई होगी। कहीं दिवाली की तातील तक नोबत न पहुँच जाए।

हाँ साहब, तुमने कभी कुछ हाल क़मरुद्दीन साहब का न लिखा। आगे इससे तुमने अगस्त सितम्बर में उनका आगरे का आना लिखा। फिर वो अक्तूबर तक क्यों न आए? वहाँ तो मुंशी ग़ुलाम ग़ौस खाँ साहब अपना काम बदस्तूर करते हैं, फिर ये उस दफ़्तर में क्या कर रहे हैं? कहीं किसी और काम पर मौय्यन[4] हो गए हैं? इसका हाल जल्द लिखो। मुझको याद पडता है के तुमने लिखा था के मुंशी ग़ुलाम ग़ौस खा साहब को एक गांव जागीर में मिला है। मौलवी क़मरुद्दीन खाँ साहब उसके बंदोवस्त को आया चाहते हैं? उसका ज़हूर[5] क्यों न हुआ? इन सब बातो का जवाब जल्द लिखिए। जनाब मिर्ज़ा साहब को मेरा सलाम कहिए और ये पयाम कहिए के किताब का हुस्न कानों से सुना, दिल को देखने से ज़्यादा यक़ीन आया। मगर आँखों को रश्क है कानों पर और कान चश्मक[6] ज़नी कर रहे हैं आँखों पर। ये इर्शाद हो के आँखों का हक़ आँखों को कब तक मिलेगा?

भाई साहब को बाद अर्ज़ सलाम कहिएगा के हज़रत अपने मतलब की तो मुझको जल्दी नही है, आपकी तख़फ़ीफ़े[7] तसदी चाहता हूँ। याने अगर कापी का क़िस्सा तमाम हो जाए तो आपको आराम हो जाए।

---

१. निवृत्ति, अवकाश। २. जिल्द बाँधने वाला। ३. निश्चित। ४. नियुक्त। ५. प्रकट ६. कानाफूसी। ७. समय की बचत।

जनाब मुंशी शीवनरायन साहब की इनायतों का शुक्र मेरी ज़बानी अदा कीजिएगा। और ये कहिएगा के आपका खत पहुँचा, चूं के मेरे खत का जवाब था और महाज़ा कोई अमर जवाब तलब न था इस वास्ते उसका जवाब नहीं लिखा। ज़्यादा, ज़्यादा।

निगाश्ता व रवाँ दाश्ताँ सुबह, शंबा, १६ अक्तूबर सन् १८५८ ई०।

राक़िम-ग़ालिब

५६

(३ नवबर सन् १९५८)

अल्लाह्, अल्लाह्! हम तो कोल से तुम्हारे ख़त के आने के मुन्तज़िर थे। नागाह कल जो ख़त आया, मालूम हुआ के दो दिन कोल में रह कर सिकन्दराबाद आ गए हो और वहाँ से तुमने ख़त लिखा है। देखिए, अब यहाँ कब तक रहो और आगरे कब जाओ। परसों बरख़ुरदार शीवनरायन का ख़त आया था। लिखते थे के किताबों की शिराज़ाबन्दी[1] हो रही है, अब क़रीब है के भेजी जाएँ। मिर्ज़ा मेहर भी एक हफ़्ता बताते हैं। देखिए, किस दिन किताबें आ जाएँ। ख़ुदा करे सब काम दिलख़ाह[2] बना हो।

हां साहब, मुन्शी बालमुकन्द 'बेसब्र' के एक ख़त का जवाब हम पर क़र्ज़ है। मैं क्या करूँ? उस ख़त में उन्होंने अपना सैरो[3] सफ़र में मसरूफ़[4] होना लिखा था। पस मै उनके ख़त का जबाब कहाँ भेजता। अगर तुम से मिलें तो मेरा सलाम कह देना। और मतब-ए-आगरा से किताबों का हाल तो तुम ख़ुद दरयाफ़्त कर ही लोगे। मेरे कहने और लिखने की क्या हाजत?

चार शम्बा सूअम नवंबर सन् १८५८।

---

१. जिल्द बांधने से पहले पृष्ठों को एकत्रित करने का कार्य। २. यथेष्ट। ३. यात्रा। ४. व्यस्त।

५७

(१३ नवंबर १८५८)

क्यों साहब,

क्या ये आईन[1] जारी हुआ है के सिकन्दराबाद के रहने वाले दिल्ली के खाकनशीनों[2] को ख़त न लिखें ? भला अगर ये हुक्म होता तो यहां भी तो इश्तेहार हो जाता के ज़िन्हार कोई ख़त सिकन्दराबाद को यहां की डाक में न जाए। बहरहाल—

कस बिश्नवद या नश्नवद मन गुफ़्तगू ए मी कुनम[3]

कल जुमे के दिन १२ तारीख़ नवंबर को तैंतीस जिल्दें भेजी हुईं बरखुरदार शीवनरायन की पहुँचीं। काग़ज़, ख़त, तक़्ती, स्याही, छापा सब खूब। दिल ख़ुश हुआ और शीवनरायन को दुआ दी। सात किताबें जो मिर्ज़ा हातिमअली साहब की तहवील[4] में हैं, वो भी यक़ीन है के आजकल पहुँच जाएँ। मालूम नहीं मुन्शी शीवनरायन ने इन्दोर को वास्ते राय उम्मीदसिंघ के किस तरह भेजी हैं या अभी नहीं भेजीं।

साहब, तुम इस ख़त का जवाब जल्द लिखो और अपने क़स्द[5] का हाल लिखो। सिकन्दराबाद कब तक रहोगे ? आगरे कब जाओगे ?

शम्बा, १३ नवंबर सन् १८५८ ई०।

जवाब तलब।

---

१. नियम। २. अकिञ्चन लोगों को। ३. कोई सुने या न सुने मैं बोले जाता हूं। ४. अधिकार। ५. विचार, संकल्प।

५८

(१३ नवंबर १८५८)

भाई साहब,

३३ किताबें भेजी हुई बरखुरदार मुंशी शीवनरायन की कल जुमे के दिन १२ नवंबर को पहुँचीं, काग़ज़ और स्याही और ख़त का हुस्न देखकर मैंने अज़ रूए यक़ीन जाना के तिलाई[1] काम पर ये किताबें ताऊसे[2] बहिश्त बन जाएँगी। हूरें इनको देखकर शरमाएँगी। ये तो सब दुरुस्त, मगर देखिये मुझको उनका देखना कब तक मयस्सर हो? आप पर गुमान तसाहुल का गुज़रे, ये तो क्योंकर हो? हाँ, सह्हाफ़ जिल्द के बनाने की निस्बत मेरे हक़ का जल्लाद न बन जाए; याने मुद्दते[3] मुनासिब से ज़्यादा देर न लगाये। और हाँ हज़रत, कुछ ऐसी पुख़्तगी इरसाल के वक़्त कर लीजिएगा के वो पारसल आशोबे तलफ़[4] में महफ़ूज़ रहे। बहुत अज़ीज़ और बहुत काम की चीज़ है, मुझको वो एक एक मुजल्लद[5] अपनी जान से ज़्यादा अज़ीज़ है। या इलाही, ये ख़त राह में हो और वो सातों किताबों का पार्सल तेरे हिफ़्ज़ो[6] अमान में मुझ तक पहुँच जाए और ये न हो तो भला ये हो के इस ख़त का जवाब लिखिये, उसमें ये मरक़ूम हो के आज हमने किताबों का पार्सल रवाना किया है।

या[7] रब ईं आरज़ू ए मन चे ख़ुशस्त
तू बदीं आरज़ू मरा बे रसाँ

मुरस्सिला शंबा, १३ नवंबर सन् १८५८ ईस्वी।

---

१. सुनहरा। २. स्वर्ग का सिंहासन। ३. उचित अवधि। ४. विनाश। ५. सजिल्द। ६. सुरक्षा। ७. हे ईश्वर, यह मेरी इच्छा कितनी अच्छी है। तुम मेरी इस इच्छा को पूरा कर दो।

५६

(१८ नवंबर १८५८)

आज पंजशंबे के दिन १८ नवंबर को तुम्हारा ख़त आया और मैं आज ही जवाब लिखता हूँ। क्या तमाशा है के तुम्हारा ख़त पहुँचता है और मेरा ख़त नहीं पहुँचता! मेरे ख़त के न पहुँचने की दलील ये के तुमने इसलाही ग़ज़ल की रसीद नहीं लिखी। मैंने कुतुब[१] का पहुँचना तुमको लिखा था। उसका तुमने ज़िक्र न लिखा। साहब, तैंतीस किताबें पहुँच गईं और तक़सीम हो गई। सात किताबें मिर्ज़ा मेहर की भेजी हुईं मुआफ़िक़ उनकी तहरीर के आज शाम तक, और मुताबिक मुंशी शीवनरायन की इत्तिला के कल तक मेरे पास पहुँच जाएँगी और यही मुंशी शीवनरायन ने इन्दौर की किताबों की खानगी की इत्तिला दी है।

मुंशी नबीबख़्श साहब तुम्हारे खत न लिखने का बहुत गिला[२] रखते हैं। शायद मैं तुमको लिख भी चुका हूँ। मीर कासिमअली साहब की बदली का हाल मालूम हुआ। ये मेरे बड़े दोस्त हैं। दिल्ली इन दिनों में आये थे। मुझ से मिल गये हैं। इनको एक किताब ज़रूर भेज देना।

भाई, मैं हरगिज़ नहीं जानता के मीर बादशाह देहलवी कौन है और फिर ऐसे के जो कहीं के मुन्सिफ़ हों। कुछ उनके ख़ानदान का हाल और उनके वालिद का नाम लिखो, तो मैं ग़ौर करूँ; वर्ना मैं तो इस नाम के आदमी से आशना नहीं हूँ।

पंजशंबा, १८ नवंबर सन् १८५८ ई, वक़्त दो पहर।

६०

(२० नवंबर १८५८)

बरख़ुरदार,

तुम्हारा ख़त पहुँचा। इस्लाही ग़ज़लों की रसीद मालूम हुई। मक़ता अब अच्छा हो गया; रहने दो। कल जुमे के दिन १९ नवंबर को सात किताबों

---

१. किताब (पुस्तक) काब. व.। २. शिकायत।

का पार्सल भेजा हुआ मौलाना मेहर का पहुँचा। ज़बान नहीं जो तारीफ़ करूँ। शाहाना[1] आराइश है, आफ़ताब[2] की सी नुमाइश है। मुझे ये फ़िक्र के कहीं इनका रुपया तैयारी में सर्फ़ न हुआ हो। अच्छा मेरे भाई, इसका हाल जो तुमको मालूम हो मुझको लिख भेजो।

रुक़्क़ात के छापे जाने में हमारी ख़ुशी नहीं है, लड़कों की सी ज़िद न करो, और अगर तुम्हारी इसी में ख़ुशी है, तो साहब, मुझसे न पूछो, तुमको अख़्तियार है, ये अम्र मेरे खिलाफ़े राय है।

मीर बादशाह की और अपनी नाशनासाई आगे तुमको लिख चुका हूँ। अब तुम्हारे इस ख़त से मालूम हुआ के वो तुम्हारे और उमरावसिंघ के आशना हैं। कुछ उनके ख़ानदान के नाम व निशान दरियाफ़्त हो तो मुझको भी लिख भेजो ताके मैं जानूँ ये किस गिरोह में से हैं। मियाँ, वो 'रास्त[3] दरोग़ बगर्दन रावी" ने मुझको बहुत परेशान किया है। वास्ते ख़ुदा के जो रावी ने रिवायत की हैं, वो मुझको ज़रूर लिखो और ताजगंज के रहनेवालों की अबतरी की हक़ीक़त से भी इत्तिला दो। हुक्म अफ़्वे[4] तक़सीर आम हो गया है। लड़ने वाले आते जाते हैं और आलाते[5] हर्ब व पैकार देकर तौक़ीए[6] आज़ादी पाते हैं। ये दो शख़्स कैसे मुजरिम थे जो मुक़ैयद हुए।

मुहर्रिरा सुबह शंबा, २० नवंबर सन् १८५८ ई०।

६१

(२७ नवंबर १८५८)

मिर्ज़ा तफ़्ता,

तुम्हारा ख़त आया। फ़क़ीर को हक़ीर का हाल मालूम हुआ। ख़ुदा

---

१. शाही सजावट। २. सूर्य। ३. सच झूठ का पुण्य-पाप बोलने वाले पर। ४. पाप की क्षमा, माफ़ीनामा। ५. युद्ध के शस्त्र। ६. स्वतंत्रता का फ़र्मान।

फ़ज़्ल करे। अगर तुम इस राज़ के इज़हार को मना न करते तो भी मेरा शेवा ऐसा लगो नही है के मैं उनको लिखता। लिखते हो के मिर्ज़ा मेहर के दो-चार रुपये ज़ायद सर्फ़[1] हो गये, तो क्या अंदेशा है। हाल ये है के मैंने उनसे इस्तफ़सार[2] किया था, उन्होंने मुझको लिखा के किताबों की दुरुस्ती में वही बारह रुपया सर्फ़ हुए हैं। महसूल की एक रक़मे ख़फ़ीफ़[3] अगर मैंने अपने पास से दी, तो इसका क्या मुज़ायक़ा। मुझको तुम्हारा क़ौल मुताबिक़े वाक़ै नज़र आता है। अलबत्ता उनके दो-तीन रुपये उठ गये होंगे।

लाला गंगापरशाद 'शाद' तख़ल्लुस अपने को तुम्हारा शागिद बताते है। मगर रेख़्ता[4] कहते हैं। कई दिन हुए यहाँ आये और बालमुकन्द 'बेसब्र' की ग़ज़लें इस्लाह को लाये, वो देखकर उनको हवाले कर दें।

हेनरी स्टुआर्ट रीड साहब मुमालिके[5] मग़रिबी के मदरसों के नाज़िम और गवर्नमेन्ट के बड़े मुसाहिब हैं। अमन के दिनों में एक मुलाक़ात मेरी उनकी हुई थी। मैंने अब एक किताब सादा बेजिल्द, उनको भेजी थी। कल उनका ख़त मुझको उस किताब की रसीद में आया। बहुत तारीफ़ लिखते थे। और हाँ भाई, एक तमाशा और है। वो मुझको लिखते थे के ये 'दस्तम्बू' पहले इससे के तुम भेजो, मतब ए मुफ़ीदे ख़लायक़ ने हमारे पास भेजी है, और हम इसको देख रहे और खुश हो रहे थे के तुम्हारा ख़त मय किताब के पहुँचा। उनके इस लिखने से ये मालूम हुआ के मतबे में से गवर्नर की नज़र भी ज़रूर गई होगी, क्या अच्छी बात है के वहाँ भी मेरे भेजने से पहले मेरा कलाम पहुँच जाएगा! मैं चीफ़ कमिश्नर पंजाब को ये किताब भेज चुका हूँ, और नवाब गवर्नर की नज़र और मलिका की नज़र और सेक्रेट्रों की नज़र ये पार्सल इंशा[6] अल्लाह ताला आज रवाना हो जाएंगे। देखूँ चीफ़ कमिश्नर क्या लिखते हैं और गवर्नर क्या फ़रमाते हैं।

---

१. व्यय। २. पूछताछ। ३. साधारण व्यय ४. खड़ी बोली की विशेष प्रकार की कविता। ५. पश्चिमी सूबा। ६. यदि ईश्वर ने चाहा तो।

मुंशी हरगोपाल तफ़्ता के नाम

ता निहाले दोस्ती कै बर देहद
हालिया रफ़्तेमो तुख़्मे काश्तेम

शवा २७ नवंबर सन् १८५८ ई०।

६२

(१८ दिसम्बर १८५८)

साहब,

तुम्हारा ख़त आया। मैंने अपने सब मतालिब का जवाब पाया। उमरावसिंध के हाल पर उसके वास्ते मुझको रहम और अपने वास्ते रश्क आता है। अल्लाह अल्लाह! एक वो है के दो बार उनकी बेड़ियाँ कट चुकी हैं और एक हम हैं के एक ऊपर पचास बरस मे जो फाँसी का फंदा गले में पड़ा है, तो न फंदा ही टूटता है न दम ही निकलता है। उसको समझाओ के तेरे बच्चों को मै पाल लूँगा। तू क्यों बला में फँसता है?

वो जो मिसरा तुमने लिखा है, वो हकीम सनाई का है और वो नक़्ल[1] हदीक़ा में मरक़ूम है–

[2]पिसरे बा पिदर ब ज़ारी गुफ़्त
के मरा यार शौ ब हमरहे जुफ़्त

---

१. कहानी। २. एक पुत्र ने अपने पिता से सोते हुए कहा-पत्नी के सम्बन्ध में मेरा समर्थन कीजिये। पिता ने कहा-विवाह मत करो, व्यभिचार करो। मुझसे उपदेश मत लो, लोगों को देख कर शिक्षा ग्रहण करो। व्यभिचार करते समय तुम्हें कोतवाल पकड़ेगा तो छोड़ भी देगा। उसने तुम जैसे बहुतों को पकड़ा है और छोड़ दिया है। यदि तुम विवाह करोगे तो पत्नी कभी न छोड़ेगी। यदि तुम उसे छोड़ दोगे तो न जाने वह क्या कर गज़रे।

गुफ़्त बाबा ज़िना कुनो ज़न नै
पन्द अज़ ख़ल्क़ गीरो अज़ मन नै
दर जिना गर बिगीरदत अससे
बहिलद कू गिरिफ़्त चूँ तू बसे
ज़न कुनी हरगिज़त रिहा न कुनद
वर तू बुगुज़रियत चिहा न कुनद

बस तो अब तुम सिकन्दराबाद मे रहे। कहीं और क्यों जाओगे? बंक घर का रुपया उठा चुके हो। अब कहाँ से खाओगे? मियाँ, न मेरे समझाने को दख़ल है न तुम्हारे समझने की जगह है। एक चर्ख़ है के वो चला जाता है, जो होना है वो हुआ जाता है। अख़्तियार हो, तो कुछ किया जाए, कहने की बात हो, तो कुछ किया जाये, कहने की बात हो तो कुछ कहा जाये।

मिर्ज़ा अब्दुल क़ादर 'बेदिल' ख़ूब कहता है--

[1]रग़बते जाह चे वो नफ़रते असबाब कुदाम
ज़ी हवसा बेगुज़र या मगुज़र मी गुज़रद

मुझको देखो के न आज़ाद हूँ न मुक़य्यद, न रंजूर हूँ न तन्दुरुस्त, न खुश हूँ न नाखुश, न मुर्दा हूँ न ज़िन्दा जिये जाता हूँ। बातें किये जाता हूँ। रोटी रोज खाता हूँ। शराब गाह गाह पिये जाता हूँ। जब मौत आयेगी मर रहूँगा। न शुक्र है न शिकायत है, जो तक़रीर है, बसबीलै हिकायत[2] है। जहाँ रहो, जिस तरह रहो, हर हफ़्ते में एक बार ख़त लिखा करो।

यक शंबा १९ दिसम्बर १८५८ ई०।

६३

(२७ दिसम्बर १८५८)

क्यों साहब,

रूठे ही रहोगे या कभी मनोगे भी? और अगर किसी तरह नहीं मानते

---

१. पद-प्रतिष्ठा की लालसा क्या चीज़ है? पदार्थों के प्रति घृणा का क्या महत्व है? इन लालसाओं को छोडो या न छोड़ो जीवन बीत ही जाता है। २. कहानी।

तो रूठने की वजह तो लिखो। मैं इस तनाही में सिर्फ़ खुतूत के भरोसे जीता हूँ। याने जिसका ख़त आया मैंने जाना के लो शख्स तशरीफ़ लाया। खुदा का अहसान है के कोई दिन ऐसा नहीं होता जो अतराफ़[1] व जवानिब से दो चार ख़त नहीं आ रहते हों, बल्कि ऐसा भी दिन होता है के दो बार डाक का हरकारा ख़त लाता है, एक-दो सुबह को और एक दो शाम को। मेरी दिललगी हो जाती है। दिन उनके पढ़ने और जवाब लिखने में गुज़र जाता है। ये क्या सबब? दस-दस बारह बारह दिन से तुम्हारा ख़त नहीं आया। याने तुम नहीं आये। खत लिखो साहब! न लिखने की वजह लिखो। आधाने बक़्ल[2] न करो। ऐसा ही है तो बैरंग भेजो।

सोमवार २७ दिसम्बर सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिब

६४

(३ जनवरी १८५९)

देखो साहब, ये बातें हमको पसन्द नहीं। सन् १८५८ ई० के खत का जवाब १८५९ ई० में भेजते हो और मज़ा ये है के जब तुमसे कहा जायेगा तो ये कहोगे के मैंने दूसरे ही दिन जवाब लिखा है। लुत्फ़ इसमें है के मैं भी सच्चा और तुम भी सच्चे।

आज तक राय उम्मीद सिंघ यहीं है और अभी नहीं जाएँगे। तुम्हारा मुद्दआ हासिल हो गया है। जिस दिन वो आये थे उसी दिन मुझ से कह गये थे। मैं भल गया और उस ख़त में तुमको न लिखा। साहब, वो फ़रमाते थे के मैंने कई मुजल्लद मिर्ज़ा तफ़्ता के दीवान के और कई नुस्खे 'तज़मीने अशारे

---

१. आसपास। २. कंजूसी।

गुलिस्तान'' के उनकी ख़्वाहिश के बमुजिब, कोई पारसी है बम्बई में, उसके पास भेज दिये हैं। यक़ीन है के वो ईरान को इरसाल करेगा। उम्मीद सिंघ ने उस पारसी का नाम भी लिया था। मैं भूल गया। अब जो तुमको इस ख़याल में मुब्तिला पाया तो उनका बयान मुझको याद आया। जानता हूँ के वो कहां रहते हैं। दो बार उनके घर गया भी हूँ, मगर मुहल्ले का नाम नही जानता। न मेरे आदमियों में कोई जानता है। अब किसी जानने वाले से पूछकर तुमको लिख भेजूँगा। मीर बादशाह साहब से अिन्दल[1] मुलाक़ात मेरी दुआ कह देना। लाहोला[2] वला क़ूवता इल्लाह बिल्लाह। लिखने के क़ाबिल बात फिर भूल गया। कल मीर करामत अली, 'सफ़ा' तख़ल्लुस, के मैंने आगे उनको कभी नहीं देखा था, नागाह मुझसे आकर मिले और तुम्हारा हाल पूछते रहे। मैंने कह दिया के वख़ैरो आफ़ियत सिकन्दराबाद में हैं। जब मैंने उनसे कहा के क्या वो तुम्हारे आशना है ? उन्होंने कहा—वो साहब बुज़ुर्ग और उस्ताद है। मैं उनका शागिर्द हूँ। कहीं मदरसे के इलाके में नौकर हैं। बसबीले डाक आये थे और आज बसबीले डाक अंबाले को गये। अंबाला उनका वतन है और नौकर भी वो उसी ज़िले में हैं।

निगाश्ता दोशंबा, ३ जनवरी सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

६५

(२६ जनवरी १८५९)

साहब,

तुम्हारा ख़त मय रुक़्क़ए सुख़न फ़हम पहुँचा। तुम्हारी ख़ुशामद नहीं करता। सच कहता हूँ के तुम्हारे कलाम की तहसीन करने वाला फ़िल हक़ीक़त

---

१. भेंट के समय। २. जब तक ईश्वर की शक्ति न हो न मनुष्य पाप से बच सकता है, न भक्ति कर सकता है।

अपने फ़हम की तारीफ़ करता हूँ। जवाब में दिरंग इस राह से हुई के मैं मुस्तफ़ाख़ाँ की मुलाक़ात को बसबीले डाक मेरठ गया था। तीन दिन वहाँ रहा। कल वहाँ से आया। आज तुमको ये ख़त भिजवाया।

मुहर्रिरा व मुरसला चहार शंबा, २६ जनवरी १८५९ ई०।

६६

(३० जनवरी १८५९)

साहब,

मेरठ से आकर तुम को खत लिख चुका हूँ। शायद न पहुँचा हो। इस वास्ते अज़ रू ए अहतियात लिखता हूँ के नवाब मुस्तफ़ाखाँ के मिलने को बसबीले डाक मेरठ गया और से शम्बे के दिन दिल्ली आ गया और चारशंबे के दिन तुमको ख़त भेजा।

कल आख़िरे रोज़ राजा उम्मीद सिंघ बहादुर मेरे घर आये थे, तुम्हारा खत उनके दिखाने को रख छोड़ा था, वो उनको दिखाया। पढ़ कर ये फ़रमाया के किसी और मन्दिर में क़स्दे[1] इक़ामत नहीं है, नया एक तकिया[2] बनाया चाहता हूँ। आदमी बिन्द्राबन गये है, कोई मकान मोल लेंगे, वहाँ अपनी वज़ा पर रहूँगा। मेरा सलाम लिखना और ये पयाम लिखना के आपका कलाम बम्बई तक पहुँच गया। अब तेहरान को भी रवाना हो जायेगा।

सवादे[3] हिन्द गिरफ़्ती बनज़्मे ख़ुद, 'तफ़्ता'
बिया के नौबते शीराज़ो वक़्ते तबरेज़स्त

सुबह यकशंबा सियम जनवरी सन् १८५९ ई०।

१. रहने की इच्छा। २. आश्रम, मठ। ३. हे तफ़्ता, तूने अपनी कविता से पूरे हिन्दुस्तान के आस-पास अधिकार कर लिया है। अब शीराज़ और तबरेज़ की बारी है।

६७

(१८ फरवरी १८५९)

साहब,

तुम तो अच्छे ख़ासे आरिफ़[1] हो और तुम्हारा कश्फ़ सच्चा है। मैं राह देख रहा था के तुम्हारा ख़त आए, तो जवाब लिखूँ। कल तुम्हारा ख़त शाम को आया, आज सुबह को जवाब लिखा गया। बात ये है के नामवर आदमी के वास्ते मुहल्ले का पता ज़रूर नहीं। मैं गरीब आदमी हूँ, मगर फ़ारसी-अंग्रेज़ी जो ख़त मेरे नाम के आते ह, तलफ़ नहीं होते। बाज़ फ़ारसी ख़त पर पता मुहल्ले का नहीं होता और अंग्रेज़ी ख़त पर तो मुतलक़ पता होता ही नहीं, शहर का नाम होता है। तीन-चार ख़त अंग्रेजी विलायत से मुझको आए। जाने उनकी बला के "बल्ली मारों का मुहल्ला" क्या चीज़ है! वो तो बनिस्बत मेरे बहुत बड़े आदमी हैं। सैकड़ों ख़त अंग्रेज़ी हर रोज़ उनको आते हैं। ख़ुलासा ये के मैंने फिर उनके पास आदमी भेजा और आपका ख़त अपने नाम का भेज दिया। उन्होंने मेरे आदमी से कहा के नवाब साहब को मेरा सलाम कहना और कहना के मैं इसका क्या ज़वाब लिखूँ। मुहल्ले का पता आप ही लिख भेजिए। सो मैं पहले अज़्रे वाक़ई तुमको लिख कर तुम्हारी ख़ाहिश के मुआफ़िक़ लिखता हूँ। उनके मकान का पता-बल्ली मारों का मुहल्ला, दस्सों का कूँचा।

'दस्तम्बू' का हाल ये है के मैंने एक बार सात रुपए की हुण्डवी भेज कर बारह जिल्दें और एक जन्त्री उनसे मँगवाई, फिर उनको अठारह आने का टिकट भेजकर दो जिल्दें लखनऊ को उन्हीं के हाथों वहीं से भिजवाई और उसके बाद फिर १८ आने का टिकट भिजवा कर दो जिल्दें वहाँ से

---

१. ज्ञाता।

सरधने को भिजवाईं। ग़रज़ इस तहरीर से ये है के मैं बाद उस पचास जिल्द के सोलह जिल्दें और उनसे ले चुका हूँ, मगर नक़्द।

हरगिज़ क़र्ज़ मैंने नहीं मँगवाई हैं। एक बार हुण्डवी और दो बार टिकट भेज चुका हूँ। तुमको मेरी जान की क़सम। सहल तौर पर उनको लिख भेजना के ग़ालिब ने कितनी किताबें मँगवाई हैं? और नक़्द मँगवाई हैं या क़र्ज़? और जो वो लिखें मुझको लिख भेजना। शंबा १९ फरवरी सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

६८

साहब,

तुम्हारा ख़त आया। दिल खुश हुआ। तुम्हारी तहरीर से ऐसा मालूम होता था के तुमको आगरे से किताबों का मँगवाना बे इरसाले क़ीमत मज़नून[1] है। चुनाचे ह्क़ुत्तसनीफ़ तुमने लिखा है। भाई, क्या मैं तुमको झूट लिखूँगा और शीवनरायन ने अगर ज़िक्र इरसाले क़ीमत का नहीं लिखा, तो ये भी तो नहीं लिखा के बे इरसाले क़ीमत मँगवाई हैं। तुमको मेरे सर की क़सम और मेरी जान की क़सम। शीवनरायन से इतना पूछो के उस पचास जिल्द के बाद कै जिल्दें ग़ालिब ने और मँगवाई और क़ीमत भेजकर मँगवाई या क़ीमत उससे लेनी है? देखो, मैंने क़सम लिखी है, यों ही अमल में लाना। राय उम्मीद सिंघ साहब यहीं हैं। मुझसे इन दिनों में मुलाक़ात नहीं हुई, जो तुम्हारे ख़त का ज़िक्र आता। यक़ीन है के पहुँच गया होगा और ये तुमने मुझको लिखा था के अगर दस्सो का कूचा न मिलेगा तो वो ख़त तेरे पास आएगा, सो वो मेरे पास नहीं आया। साहब, तुमको वहम क्यों है? एक अमीर नामवर आदमी है। उसके नाम का ख़त क्यों न पहुँचेगा?

---

१. अभीष्ट।

६९

२७ फरवरी १८५९

अजी मिर्ज़ा तफ्ता,

भाई मुन्शी नबीबख्श साहब को तुम्हारे हाल की बड़ी पुरसिश है। तुमने उनको ख़त लिखना क्यों मौक़ूफ़ किया है ? वो मुझको लिखते थे के अगर आप को मिर्ज़ा तफ़्ता का हाल मालूम हो तो मुझको ज़रूर लिखिएगा।

यकशंबा २७ फ़रवरी सन् १८५९।

—ग़ालिब

७०

(२७ फरवरी १८५९)

क्यों मिर्ज़ा तफ़्ता, तुम बेवफ़ा या मैं गुनहगार ? ये भी तो मुझको मालूम नहीं के तुम कहाँ हो। अभी एक साहब मेरी मुलाक़ात को आए थे। तक़रीबन तुम्हारा ज़िक्र दरमियान आया। वो कहने लगे के वो कोल में हैं। अब मैं हैरान हूँ के ख़त कोल भेजूँ या सिकन्दराबाद। अगर कोल भेजूँ तो मस्कन का पता क्या लिखूँ ? बहर हाल सिकन्दराबाद भेजता हूँ। ख़ुदा करे पहुँच जाए। तुम्हारा दीवान बतरीक़े पार्सल मेरे पास आया। मैंने हरकारे को राजा उम्मीदसिंह बहादुर के घर का पता बताकर, वहाँ भिजवा दिया। यक़ीन है के पहुँच गया होगा। पाँच-चार दिन से सुनता हूँ के वो मथरा और अकबराबाद की तरफ गए हैं। मुझसे मिलकर नहीं गए। बहरहाल इस ख़त का जवाब जल्द लिखो और ज़रूर लिखो। भाई, तुम सैयाह[1] आदमी हो। जहाँ जाया करो मुझको लिख भेजा करो के मैं वहाँ जाता हूँ। या जहाँ जाओ वहाँ से ख़त लिक्खो

---

१. घुमक्कड़।

तुम्हारे ख़त के न आने से मुझे तशवीश रहती है। मेरी तशवीश तुमको क्यों पसन्द है?

मुर्हरिरा यकशंबा, २७ मार्च सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

७१

(५ जून १८५९ ई०)

यकशंबा सुग्रम ज़ीकादा (सन् १२७५ हि०) व पंजुम

जून साले हाल (सन् १८५६ ई०)

साहब,

आज तुम्हार ख़त सुबह को आया। मैं दोपहर को जवाब लिखता हूँ। तुम्हारी नासाज़गारी ए[1] तबियत सुनकर दिल कुढ़ा। हक़ ताला तुम को ज़िन्दा व तन्दुरुस्त व खुश रखे। औराक़े[2] मसनवी भेजे हुए बहुत दिन हुए। जिसमें हिकायत तालिबे इल्म और मुनार की थी। बाक़ग्रा बुलन्दशहर का और वो औराक़ मैंने पफलेट पाकिट नहीं भेजे. ख़त में लपेट कर, चूंके ख़त डबल था, दो टिकट लगा कर इरसाल किए हैं। रसीद मिले तो उसको देखकर तारीख़ मालूम हो जाए। क़यास से ऐसा जानता हूँ के पान-सात दिन हुए होंगे। मुन्शी नबी बख्श का ख़त बहुत दिन से नहीं आया। घर उनका 'ताजगंज', वो खुद मय वाज़े मुताल्लक़ीन आगरे। एक बार ताजगंज के पते से ख़त उनका भेजा था, जवाब न आया। अब नाचार बरखुरदार शीवनरायन से उनका हाल पूछूँगा। तुम ब्राहमा[3] कमालात ख़फ़क़ानी[4] भी हो। राय उम्मीदसिंघ से ख़त की उम्मीद क्यों रखते हो? जब आगरे जाओगे और वो वहाँ होंगे तो मुलाक़ात हो जाएगी

---

१. अस्वस्थता। २. मसनवी के पृष्ठ। ३. वाह्य चमत्कार। ४. पागल।

मैं ख़ुद वाक़िफ़ नहीं के वो कहाँ हैं। अज़ रू-ए-क़यास[१] कह सकता हूँ के आगरे या बिन्द्राबन। कभी कहीं से उनका कोई ख़त मुझको आया हो, तो मैं गुनहगार।

—ग़ालिब

७२

(१७ जून १८५९)

साहब,

हम तुम्हारे अख़बार नवीस हैं और तुमको ख़बर देते हैं के बरख़ुरदार मीर बादशाह आए। मैं उनको देखकर ख़ुश हुआ। वो अपने भाइयों से मिलकर शाद हुए। तुम्हारा हाल सुनकर मुझको रंज हुआ। क्या करूँ! न अपने रंज का चारा कर सकता हूँ, न अपने अज़ीज़ों की ख़बर ले सकता हूँ। ख़ैर—

हरचे[२] साक़ि ए मा रीख़्त ऐने अल्ताफ़स्त।

आज चौथा दिन है, याने मंगल के दिन कोई पहर भर दिन चढ़ा होगा के राजा उम्मीद सिंघ बहादुर नागाह मेरे घर तशरीफ़ लाए। पूछा गया के कहाँ से आए हो? फ़रमाया के आगरे से आता हूँ। 'बिसावन की गली' में जो 'हकीमों की गली' के क़रीब है, जोंस साहब की कोठी उन्होंने मोल ली है। उसके क़रीब की ज़मीने[३] उफ़्तादा भी ख़रीदी है और उसको बनवा रहे हैं। तुम्हारा मैंने ज़िक्र किया के हर ख़त में तुमको पूछते हैं और लिखते हैं के मैंने कई ख़त भेजे, जवाब नहीं आया। बोले के एक ख़त उनका आया था, उसका जवाब लिख चुका हूँ, फिर उनका कोई ख़त नहीं आया। बहरहाल मेरे फोड़े निकल रहे

---

१. अनुमान के अनुसार। २. साक़ी ने हमें जो कुछ दिया उसकी दया है। ३. बेकार ज़मीन।

ं। मैं बाज़दीद[1] को नहीं गया। शायद वो आज गए हों या जावें। फिर कबराबाद को जाएँगे। मैं आज आदमी उनके पास भेजूँगा। कल मिर्ज़ा तिम अली 'मेहर' का ख़त आया था। तुमको बहुत पूछते थे के आया मिर्ज़ा फ़्ता कहाँ है और किस तरह हैं। भाई, उनको ख़त लिख भेजो।

मुहर्रिरा १७ जून १८५९ ई०।

७३

(२९ जून १८५९)

साहब,

एक ख़त परसों तुम्हारा आया। उसमें मुन्दरिज[2] था के मैं मेरठ जाऊँगा। आज सुबह को एक ख़त तुम्हारा और आया। उसमें मुन्दरिज के पहली जुलाई को जाऊँगा और तुमसे मिलता जाऊँगा। परसों ख़त में भी और आज के ख़त में भी पार्सल का ज़िक्र था के बीस जून को हमने भेजा है। २० वीं जून को आज दसवाँ दिन है। इस दस दिन में कोई पार्सल, कोई पंफलेट पाकिट मेरे पास नहीं पहुँचा। आख़िरी पंफलेट पाकिट दो मसनवियों का वो था के जिसमें एक मसनवी बुलंदशहर के वाक़ये की थी के एक लड़का मर गया, उसकी अर्थी फुकती रही, उसका आशिक़ सामने खड़ा जलता रहा। सो उन दोनों मसनवियों को मैंने इस्लाह देकर तुम्हारे पास भेज दिया है। बल्के यों याद पड़ता है के तुमने उसकी रसीद भी लिख भेजी है। लेकिन मुझको गुमान ये है के ये अम्र बीस जून से आगे का है। बहर तक़दीर, बाद इस पार्सल के कोई और पार्सल मेरे पास नहीं आया। इस्लाही कवाग़ज़ हर तरफ़ के अमूमन[3] और तुम्हारे ख़ुसूसन[4] दो दिन से ज्यादा मैं नहीं रखता जो काग़ज़

---

१. भेंट। २. उल्लिखित। ३. सामान्यतया। ४. विशेषकर।

मुझ तक न पहुँचे, मै नाचार हूँ, बल्के ख़ुद मेरे एक ख़त का जवाब तुम पर क़र्ज़ है। या तो वो न पहुँचा या तुमने उसका जवाब लिखना ज़रूर न जाना। वो ख़त जिसमें मीर बादशाह का दिल्ली आना और उनका मुझसे मिलना और तुम्हारा ज़िक्र मुझमें और उनमें होना, माहाज़ा राजा उम्मीदसिंघ का दिल्ली में आना और बेख़बर मेरे घर आ जाना और तुम्हारा उनसे ज़िक्र होना और उनका ये कहना के उनका कल एक ख़त मेरे पास आया था, सो मैंने उसका जवाब लिख भेजा था, अब मैं क्या जानूँ के तुमको ये ख़त पहुँचा या नहीं पहुँचा ? तुम्हारा वो पार्सल जिसको तुम अब मांगते हो, मेरे पास हर्गिज़ नहीं आया।

चारशंबा, २९ जून सन् १८५९ ई०, वक़्ते नीमरोज़।

—ग़ालिब

७४

मियाँ,

तुम्हारे इन्तक़ालाते[1] ज़हन ने मारा। मैंने कब कहा था के तुम्हारा कलाम अच्छा नहीं ? मैंने कब कहा था के दुनिया मे कोई सुख़न फ़हम व क़द्रदाँ न होगा? मगर बात ये है के तुम मश्क़े[2] सुख़न कर रहे हो और मैं मश्क़े[3] फ़ना में मुस्तग़र्क़[4] हूँ। बूअली[5] सीना के इल्म को और नज़ीरी के शेर को जाया और बेफ़ायदा और मौहूम जानता हूँ। ज़ीस्त बसर करने को कुछ थोड़ी सी राहत दरकार है और बाक़ी हिकमत और सल्तनत और शायरी और साहरी[6] सब ख़ुराफ़ात है। हिन्दुओं में अगर कोई औतार हुआ तो क्या ? और मुसलमानों में नबी बना तो क्या ? दुनिया में नामावर हुए तो क्या ?

---

१. भ्रमित मस्तिष्क। २. कविता का अभ्यास। ३. अहं के विनाश का अभ्यास। ४. तल्लीन। ५. एक प्रसिद्ध विद्वान। ६. जादूगरी।

और गुमनाम जिये तो क्या ? कुछ वजह माश[1] हो और कुछ सेहते[2] जिस्मानी बाकी सब वह्म है। ऐ यारे ज़ानी ! हर चंद वो भी वह्म है, मगर मैं अभी इसी पाये पर हूँ। शायद आगे बढ़कर, ये पर्दा भी उठ जाए और वजह मइशत[3] और सेहत व राहत से भी गुज़र जाऊँ। आलमें बेरंगी में गुज़र पाऊँ। जिस सन्नाटे में मै हूँ वहां तमाम आलम बल्के दोनों आलम का पता नहीं। हर किसी का जवाब मुताबिक़ सवाल के दिये जाता हूँ। और जिससे जो मामला है, उसको वैसा ही बरत रहा हूँ, लेकिन सबको वह्म जनता हूँ। ये दरिया नहीं है, सराब[४] है। हस्ती[५] नहीं है, पिन्दार[६] है। हम तुम दोनों अच्छे ख़ासे शायर है। माना के सादी व हाफ़िज़ के बराबर मशहूर रहेंगे, उनको शोहरत से क्या हासिल हुआ के हमको तुमको होगा? ख़ताते तारीख़ आगरे क्यों कर भेजूँ। फिर तुम्हारे पास भेजता हूँ।

'ख़ालिक़े[७] माना' बमाना[८] माना आफ़री[९] सही और मुसल्लिम[१०] और जायज़। लेकिन जिस तरह अल्लाह में मुशद्दद[११] लाम को दो लाम के क़ायम मुक़ाम क़रार दिया है, 'इलाह' 'इलाही' मे अलिफ़ ममदूदा को दूसरा अलिफ़ क्यों कर समझें? क़यास काम नहीं आता; इत्तेफ़ाक़े[१२] सलफ़ शर्त्त है। इलाही में जब और किसी ने दो अलिफ़ नहीं माने तो हम क्यों कर मानें?

'दोयम' बरवज़ने 'जोयम। ग़लत, 'दूअम' है बग़ैरे तहतानी, बिलफ़र्ज़ तहतानी भी लिखें तो, 'दुय्यम' पढ़ेंगे, अगर चे लिखेंगे 'दोयम'। बाब का ऐलान टकसाल बाहर है। हाँ, 'दोमी' दुरुस्त है। अगर ना बहज़र्फ़े तहतानी मिस्ले 'ज़मी' बहज़र्फ़े नून बल्के बतरीक़े क़लबे बाज़ 'दोयम' का 'दोमी' हो गया। कुवें की तारीख़ को बे ताम्मुल भेज दो, और तारीख़े वफ़ात का और माद्दा सोचो, किस वास्ते के जब 'इलाही' में से एक

---

१. वृत्ति। २. शारिरिक स्वास्थ्य। ३. आर्थिक स्थति। ४. मृग मरीचिका। ५. ६. अस्तित्व नहीं भ्रम है। ७. ८. अर्थ उत्पन्न करने वाला। ९. प्रामाणिक। ११. द्वित्व युक्त। १२. पूर्वजों की सम्मति।

अलिफ़ लिया तो एक अदद कम हो जाएगा। वद्दुआ। रोज़े वुरूदे नामा, बल्के वक़्ते वुरूदेनामा बादे[1] ख़ाँदन नविश्ता शुद.। एक शंबा।

अज़—ग़ालिब

७५

(अक्टूबर १८५६)

भाई,

तुम्हारे ज़हन ने ख़ूब इन्तक़ाल किया! मैंने जिस बक्त ये शेर पढ़ा—

बहिन्द [2]आमदन्दे ज़ि ईराने दयार

'आमदन्द' की जगह 'आमदंदे' बसीग़ा[3] इस्तमरार टकसाल बाहर मालूम हुआ।

रसीदंद दर हिंद ज़ ईराने दयार

उसकी जगह लिख दिया! वाक़ई पोस्तीन का बेचना राह में वाक़े हुआ फिर 'रसीदंद दरहिंद' बेजा.: तुम्हारा तसर्रुफ़ मुस्ताहसन। जिस तरह तुमने लिखा है उसी तरह रहने दो।

साहब, 'सुम्बलिस्तान' से क्यों घबराते हो! मैं तुम्हारे घबराने से घबराता हूँ। 'रुख़' को 'गुल', 'ज़ुल्फ़' को 'सुम्बुल' फ़र्ज़ करते हैं। 'सुम्बुलिस्तान' क्या ऐब है? और अगर नहीं पसन्द तो ये क़िस्सा ही जाने दो। इस वक़्त तक के अक्तूबर की आठवीं, हफ़्ते का दिन, तीसरे पहर का वक़्त है, मीर कासिम

---

१. पढ़ने के पश्चात्। २. ईरान के शहर से हिन्दुस्तान आये। ३. क्रिया का जारी रहना।

अली साहब तशरीफ़ नहीं लाए। हातरस के 'मुन्सिफ़' और दिल्ली के नामुंसिफ़ हैं।

रोज़ेशंबा, हश्तुम अक्तूबर सन् १८५९ ई० आख़िरे रोज़।

अज़—ग़ालिब

७६

५ नवम्बर १८५९

साहब,

तुम्हारा ख़त आया हाल मालूम हुआ।

जहाँ[1] नियाँ ज़े तो बरगश्ता अन्द अगर 'ग़ालिब'
तुरा चे बाक ख़ुदा ए के दाश्ती दारी।

ख़ुदा के वास्ते मेरे बाब में लोगों ने क्या ख़बर मशहूर की है? बनिस्बत हकीम अहसनुल्ला ख़ाँ के जो बात मशहूर है, वो महज़ ग़लत। हाँ, मिर्ज़ा इलाही बख़्श जो शाहज़ादों में हैं, उनको हुक्म कराँची बन्दर जाने का है और वो इन्कार कर रहे हैं। देखिए क्या हो! हकीमजी को उन की हवेलियाँ मिल गई हैं, अब वो मय क़बायल[2] उन मकानों में जा रहे हैं। इतना हुक्म उनको है के शहर से बाहर न जाएँ। रहा मैं—

तु[3] बेकसीयो ग़रीबी तुरा के मी पुरसद!

न जज़ा[4] न सज़ा, न नफ़रीं[5] न आफ़रीं[6], न अद्लन[7] ज़ुल्म, न लुत्फ़ न

---

१. ग़ालिब यदि संसार अप्रसन्न हो जाए तो क्या भय है? जिस तरह पहले परमेश्वर तुम्हारा था उसी तरह अब भी है। २. सपरिवार। ३. तुम दरिद्र और विवश हो। तुम्हें पूछता कौन है। ४. दण्ड। ५. घृणा। ६. प्रशंसा। ७. न्यायतः अत्याचार।

क़हर[1]। पन्द्रह दिन पहले तक दिन को रोटी, रात को शराब मिलती थी, अब सिर्फ़ रोटी मिल जाती है, शराब नहीं। कपड़ा अय्यामे[2] तनउम का बना हुआ अभी है, उसकी कुछ फ़िक्र नहीं है। मगर तुमको मेरे सर की क़सम ये लिख भेजो के मेरी खबर तुमने क्या सुनी? मुझे उसके मालूम होने से मज़ा मिलेगा।

शंबा, ५ नवम्बर सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

७७

२३ दिसम्बर १८५९

मेरी जान,

क्या समझे हो? सब मख़लूक़ात 'तफ़्ता' व 'ग़ालिब' क्यों कर बन जाएँ—

हर[3] यके रा बहरे कारे साख़तन्द।

अन्त मता सो मता। मिसरी मीठी नमक सलोना, कभी किसी शै का मज़ा न बदलेगा। अब जो मैं उस शख़्स को नसीहत करूँ के क्या न समझेगा के ग़ालिब क्या जाने के अब्दुर्रहमान कौन है और मुझसे उससे क्या रस्मो[4] राह है। बे शुबाह[5] जानेगा के तफ़्ता ने लिखा होगा, मैं उसकी नज़र में सुबुक[6] हो जाऊँगा और तुमसे वो और भी सरगिराँ[7] हो जाएगा। और ये जो तुम लिखते हो के तूने उस शख़्स को अपने अज़ीज़ों में गिना है, बन्दा परवर मैं तो बनी आदम[8]

१. विपत्ति। २. वैभव के दिनों का। ३. मनुष्य को निश्चित काम के लिए उत्पन्न किया गया है। ४. सम्बन्ध। ५. निस्सन्देह। ६. हल्का। ७. अप्रसन्न। ८. मानव।

को,—मुसलमान या हिन्दू या नसरानी-अज़ीज़ रखता हूँ और अपना भाई गिनता हूँ। दूसरा माने या न माने बाक़ी रही वो अज़ीज़दारी जिसको अह्ले[1] दुनिया क़राबत[2] कहते हैं, उसको क़ौम और ज़ात और मज़हब और तरीक शर्त्त है—और उसके मरातिब[3] व मदारिज[4] हैं। नज़र इस दस्तूर पर अगर देखो तो मुझको उस शख़्स से ख़स बराबार इलाक़ा अज़ीज़दारी का नहीं। अज़ राहे हुस्ने[5] अख़लाक़ अगर अज़ीज़ लिख दिया या कह दिया, तो क्या होता है? ज़ैनुल आबदीन खाँ 'आरिफ़' मेरी साली का बेटा, ये शख़्स उसकी साली का बेटा, इसको जो चाहो समझ लो। ख़ुलासा ये के जब उधर से आदमियत न हुई तो अब उसको लिखना लगो और बे फ़ायदा बल्के मुज़िर है। तुम्हारा मेरठ जाना और नवाब मुस्तफ़ा खाँ से मिलना हम पहले ही दरियाफ़्त कर चुके हैं। अब तुम्हारे ख़त से मुरादाबाद होकर सिकन्दराबाद आना मालूम हो गया। हक़ तालाशानहू तुम को ख़ुशो[6] ख़ुर्रम रखे।

मरक़ूमा[7] जुमा, २३ दिसम्बर सन १८५९ ई०।

७८

२१ जनवरी १८६०

भाई,

मैंने दिल्ली को छोड़ा और रामपूर को चला। पंजशंबा १९ को मुरादनगर और जुमा २० को मेरठ पहुँचा। आज शंबा २१ को भाई मुस्तफ़ा खाँ के कहने से मुक़ाम किया। यहाँ से ये ख़त तुमको लिख कर भेजा। कल शाहजहाँपुर, परसों गढ़मुक्तेश्वर रहूँगा। फिर मुरादाबाद होता हुआ रामपूर जाऊँगा। अब जो मुझको ख़त भेजो रामपूर भेजना। सरनामे पर रामपूर का नाम और मेरा

---

१. सासारिक लोग। २. निकटता। ३. पद। ४. स्तर। ५. शिष्टाचार। ६. प्रसन्न। ७. लिखित।

नाम काफ़ी है। अब इसी क़दर लिखना काफ़ी था, बाक़ी जो कुछ लिखना है, वो रामपूर से लिखूँगा।

मरक़ूमा चाश्त गाहे शंबा, २१ जनवरी सन् १८६० ई०।

राक़िम—ग़ालिब

७९

१८६० ई०

साहब,

तुम्हारे ये औराक़ सिकन्दराबाद से दिल्ली और दिल्ली से रामपूर पहुँचे। यक़ीन है के रामपूर से मेरे भेजे हुए सिकन्दराबाद पहुँचे होंगे। सिवाय एक मिसरे के मुझे और जगह की इस्लाह याद नहीं। तुम जो अपने फ़रज़न्द[1] को नाशिनासाए[2] मिज़ाजे रोज़गार कहते हो ख़ुद इसमें उससे क्या कम हो? पहले तो ये बताओ के रामपूर में मुझे कौन नहीं जानता? कहाँ मौलवी वजीहुज़्ज़मा साहब, कहाँ मैं! उनका मस्कन मेरे मस्कन से दूर फिर दरे दौलते रईस कहाँ और मैं कहाँ! चार दिन वालीए[3] शहर ने अपनी कोठी मे उतारा। मैंने मकान जुदागाना माँगा। दो-तीन हवेलियाँ बराबर बराबर मुझको अता हुईं। अब उसमें रहता हूँ। बहस्बे इत्तेफ़ाक डाकघर मस्कन के पास है। डाक मुंशी आशना हो गया है। बराबर दिल्ली से ख़त चले आते हैं, सिर्फ़ रामपूर का नाम और मेरा नाम। मुहल्ले की और उर्फ़ की[4] हाजत नहीं बल्के दरे दौलत और मौलवी साहब के निशान से शायद ख़त तलफ़ हो जाए। दूसरी बात जो तुमने लिखी है वो भी मुताबिके[5] वाक़ै व मुनासिबे[6] हाल नहीं। अगर इक़ामत[7] क़रार पाई तो तुमको बुला लूँगा।

—ग़ालिब

---

१. पुत्र। २. संसार से अनभिज्ञ। ३. नगरके अधिपति। ४. उपनाम। ५.घटना के अनुसार। ६. उचित। ७. निवास, ठहरना।

८०

१४ फरवरी १८६०

मेरी जान,

आखिर लड़के हो। बात को न समझे। मै और तफ़्ता का अपने पास होना। ग़नीमत न जानो! मैंने ये लिखा था के बशर्ते इकामत बुला लूँगा। और फिर लिखता हूँ के अगर मेरी इक़ामत यहां की ठहरी, तो बेतुम्हारे[1] न रहूँगा, न रहूँगा। ज़िन्हार न रहूँगा! मुन्शी बाल मुकुंद 'बेसब्र' का ख़त बुलन्द शहर से दिल्ली और दिल्ली से रामपूर पहुँचा, तलफ़ नहीं हुआ। अगर मैं यहाँ रह गया तो यहाँ से, और अगर दिल्ली चला गया तो वहाँ से इस्लाह देकर उनके अशार भेज दूँगा। 'बेसब्र' को अबके बार महीना भर सब्र चाहिए। वो लिफ़ाफ़ा बदस्तूर रखा हुआ है। अज़बस के यहाँ के हज़रात मेहरबानी फ़रमाते हैं और हरवक़्त आते हैं, फ़ुरसते मशाहिदा औराक नहीं मिली। तुम इसी रुक्के को उनके पास भेज देना।

से शंबा १४ फ़रवरी सन् १८६० ई०।

—ग़ालिब

८१

१ मार्च १८६०

बरख़ुरदार[2] सआदत[3] आसार मुन्शी हर गोपाल सल्लेमुल्लाह[4] ताला।

इससे आगे तुमको हालत मुजमिल लिख चुका हूँ। हनोज़ कोई रंग क़रार नहीं पाया। बिलफ़ैल नवाब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर मुरादाबाद और वहाँ से रामपूर आएँगे। बाद उनके जाने के कोई तौर इक़ामत या अदम[5] इक़ामत

१. 'बेतुम्हारे' शब्द ख़ूब तराशा गया है। २. सुपुत्र। ३. सुशील। ४. ईश्वर तुम्हें सकुशल रखे। ५. न रहना।

का ठहरेगा। मंज़ूर मुझको ये है अगर यहाँ रहना हुआ तो फ़ौरन तुमको बुला लूँगा। जो दिन ज़िन्दगी के बाक़ी है वो बाहम बसर हो जाएँ। वद्दुआ।

यकुम मार्च सन् १८६० ई०।

राकिम—ग़ालिब

८२

(३१ मार्च १८६०)

मिर्ज़ा तफ्ता, इस ग़मज़दगी में मुझको हँसाना तुम्हारा ही काम है। भाई, 'तज़मीने गुलिस्ताँ' छपवा कर क्या फ़ायदा उठाया है जो इन्तबा ए 'मुम्बलिस्तान' से नफ़ा उठाओगे। रुपया जमा रहने दो, आमद अच्छी चीज़ है। अगरचे क़लील हो और अगर रुपया लेना मंज़ूर है तो हरगिज़ अँदेशा न करो और दरख़ास्त दे दो। बाद ९ महीने के रुपया तुमको मिल जाएगा।

ये मेरा ज़िम्मा के इस नौ महीने में कोई इन्क़लाब वाक़े न होगा। अगर अहयानन हुआ भी तो होते होते उसको मुद्दत चाहिए। 'रुस्तख़ेज़े बेजा' हो चुका। अब हो तो 'रुस्तख़ेज़' हो याने क़यामत, और उसका हाल मालूम नहीं के कब होगी। अगर आदाद के हिसाब मे देखो तो भी 'रुस्तख़ेज़' के १२७७ होते हैं। अहतमाले[1] फ़ितना साले आइन्दा पर रहा, सो भी मौहूम[2]।

मियाँ, मैं जो आख़िर जनवरी को रामपूर जाकर आख़िर मार्च में यहाँ आ गया हूँ, तो क्या कहूँ के यहाँ के लोग मेरे हक़ में क्या क्या कुछ कहते हैं? एक गिरोह का क़ौल ये है के ये शख़्स वाली ए रामपूर का उस्ताद था और वहाँ गया था; अगर नवाब ने कुछ सुलूक न किया होगा तो भी पाँच हज़ार रुपए

---

१. उत्पात की संभावना। २. संदिग्ध।

से कम न दिया होगा। एक जमात कहती है के नौकरी को गए थे मगर नौकर न रखा। एक फ़िरक़ा कहता है के नवाब ने नौकर रख लिया था, दो सौ रुपया महीना कर दिया था, लेफ़्टेंट गवर्नर इलाहाबाद जो रामपूर आए और उनको 'ग़ालिब' का वहाँ होना मालूम हुआ तो उन्होंने नवाब सहाब से कहा के अगर हमारी ख़ुशनूदी चाहते हो तो इसको जवाब दो। नवाब ने बरतरफ़ कर दिया। ये तो सब सुन लिया। अब तुम अस्ले हक़ीक़त सुनो, नवाब यूसुफ़ अली ख़ाँ बहादुर तीस तीस बरस के मेरे दोस्त और पाँच-छः बरस से शागिर्द हैं। गाह गाह[1] कुछ भेज दिया करते थे। अब जुलाई सन् १८५९ ई० से सौ रुपया महीना माह ब माह भेजते हैं। बुलाते रहते हैं, अब मैं गया, दो महीने रह कर चला आया। बशर्ते[2] हयात बाद बरसात के फिर जाऊँगा। वो सौ रुपया महीना, यहाँ रहूँ, हाँ रहूँ, ख़ुदा के हाँ से मेरा मुक़र्रर है।

३१ मार्च १८६० ई०।

—ग़ालिब

८३

१६ अप्रैल १८६०

मिर्ज़ा तफ़्ता,

एक अम्रे[3] अजीब तुझको लिखता हूँ और वो अम्र बाद ताज्जुबे[4] मुफ़रत के मौजिबे[5] निशाते मुफ़र्रत होगा। मैं इजरा ए पिन्सन से सरकारे अंग्रेजी से मायूस था। बारे, वो नक़्शा पिन्सनदारों का जो यहाँ से बनकर सदर को गया था, यहाँ के हाकिम ने बनिस्बत मेरे साफ़ लिख दिया था के ये शख़्स पिन्सन पाने का

---

१. समय समय पर। २. यदि जीवन रहा तो। ३. अद्भुत कार्य। ४. अत्यधिक आश्चर्य। ५. अधिक प्रसन्नता का कारण।

मुस्तहक नहीं है, गवर्मेण्ट ने बरखिलाफ़ यहाँ के हाकिम के राय के मेरे पिन्सन के इज़रा का हुक्म दिया और वह हुक्म यहाँ आया और मशहूर हुआ। मैंने भी सुना, अब कहते हैं माहे आइन्दा याने मई की पहली को तनख़ाहों का बटना शुरू होगा। देखा चाहिए, पिछले रुपए के बाब में क्या हुक्म होता है।

—ग़ालिब

८४

(६ मई १८६०)

शंबा, शशुम मई सन् १८६० ई०, हंगामे नीम रोज़।

भाई,

आज इस वक़्त तुम्हारा ख़त पहुँचा। पढ़ते ही जवाब लिखता हूँ। ज़रे[1] से साला मुजतमा हज़ारों कहाँ से हुए! सात सौ पचास रुपया साल पाता हूँ। तीन बरस के दो हजार दो सौ पचास हुए। सौ रुपए मुझे मदद खर्च मिले थे, वो कट गए। डेढ़ सौ मुतफ़र्रिक़ात[2] में गए। रहे दो हज़ार रुपए। मेरा मुख़्तारे-कार एक बनिया है और मैं उसका कर्ज़दारे[3] क़दीम हूँ। अब जो वो दो हज़ार लाया, उसने अपने पास रख लिए और मुझसे कहा के मेरा हिसाब कीजिए। सात कम पन्द्रह सौ उसके सूद-मूल के हुए। कर्ज़े[4] मुतफ़र्रिक़ का उसी से हिसाब करवाया। ग्यारह सौ कई रुपए वो निकले। पन्द्रह और ग्यारह छब्बीस सौ हुए असल में। याने दो हज़ार में छ सौ का घाटा। वो कहता है, पन्द्रह सौ मेरे दे दो, पान सौ सात रुपए बाक़ी के तुम ले लो। मैं कहता हूँ मुतफ़र्रिक़ात ग्यारह सौ चुका दे, नौ सो बाक़ी रहे। आधे तू ले आधे मुझको दे। परसों चौथी को

---

१. तीन वर्षों का जमा किया रुपया। २. खुर्दा, फुटकर। ३. पुराना कर्ज़दार। ४. फुटकर क़र्ज़।

वो रुपया लाया है, कल तक क़िस्सा नहीं चुका। मैं जल्दी नहीं करता। दो-एक महाजन बीच में हैं। हफ़्ते भर में झगड़ा फ़ैसल हो जाएगा। ख़ुदा करे ये ख़त तुमको पहुँच जाए। जिस दिन बरात से फिर कर आओ उसी दिन मुझको अपने वुरूदे मसूद की ख़बर देना। वद्दुआ।

—ग़ालिब

८५

(२० जुलाई १८६०)

बरख़ुरदार मिर्ज़ा तफ़्ता,

दूसरा मसविदा भी कल पहुँचा। तुम सच्चे और मैं माज़ूर[1]। अब मेरी कहानी सुनो। आख़िर जून में सदरे पंजाब से हुक्म आ गया के पिन्सनदाराने[2] क़दीम माह बमाह न पाएं। साल में दो बाद बतरीक़[3] शशमाह फ़स्ल बफ़स्ल पाया करें। नाचार, साहूकार से सूद काट कर रुपया लिया गया, ता रामपूर की आमद में मिलकर सर्फ़ हो। ये सूद छ महीन तक इसी तरह कटवाँ देना पड़ेगा, एक रकम माक़ूल घाटे में जाएगी।

रस्म है मुर्दे की छ माही एक
ख़ल्क़ का है इसी चलन पर मदार
मुझको देखो के हूँ बक़ैदे हयात
और छमाही हो साल में दो बार

दस ग्यारह बरस से उस तंगना में रहता था। सात बरस तक माह बमाह चार रुपया दिया किया। अब तीन बरस का किराया कुछ ऊपर सौ रुपया यक मुश्त दिया। मालिक ने मकान बेच डाला। जिसने लिया है, उसने मुझ से पयाम बल्के

१. विवश। २. पुराने पिन्सनदार। ३. प्रति छमाही फ़सल।

इबराम[1] किया के मकान ख़ाली कर दो। मकान कहीं मिले तो मैं उठूँ। बेदर्द ने मुझको आजिज़ किया और मदद लगा दी। वो सहन बालाख़ाने का जिसका दो गज़ का अर्ज़[2] और दस गज़ का तूल[3] उसमें पाड़ बँध गई। रात को वहीं सोना, गर्मी की शिद्दत, पाड़ का क़ुर्ब[4]। गुमान ये गुज़रता था के कटघर है और सुबह को मुझको फाँसी मिलेगी। तीन रातें इसी तरह गुज़रीं। दो शम्बा, ९ जुलाई को दोपहर के वक़्त एक मकान हात आ गया, वाँ जा रहा। जान बच गई, ये मकान बनिस्बत उस मकान के बहिश्त है और ये ख़ूबी के महल्ला वही 'बल्ली मारों का' अगरचे है यों के मैं अगर और मुहल्ले मे भी जा रहता तो क़ासिदाने[5] डाक वहीं पहुँचते। याने अब अक्सर ख़ुतूत 'लाल कुएँ' के पते से आते है और बतकल्लुफ़ यहीं पहुँचते हैं। बहरहाल, तुम वही दिल्ली, बल्लीवालों का मुहल्ला लिख कर ख़त भेजा करो। दो मसविदे तुम्हारे और एक मसविदा 'बेसब्र' का-ये तीन काग़ज़ दरपेश हैं। दो-एक दिन में बादे इस्लाह इरसाल किए जाएँगे। खातिरे आतिर जमा रहे।

सुबहे जुमा, २० जुलाई सन् १८६० ई०।

८६

(१९ नवंबर १८६०)

सुबह शंबा, पंजुम जमादिल अव्वल, १२७७ ई० व नौज़दहम नवंबर साले हाल।

मिर्ज़ा तफ़्ता,

कल तुम्हारा ख़त मय काग़ज़े अशार आया। आज तुमको ये ख़त लिखता

---

१. अनुरोध। २. चौड़ाई। ३. लम्बाई। ४. निकटता। ५. डाक का हरकारा।

हूँ और इसी ख़त के साथ ख़त[1] मौसूमा मीर बादशाह भेजता हूँ। काग़ज़े अशार कल या परसों रवाना होगा। फ़ने तारीख़ को दूने मर्त्तबा[2] शायरी जानता हूँ और तुम्हारी तरह से ये भी मेरा अक़ीदा नहीं है के तारीख़े वफ़ात लिखने से अदा ए हक़े[3] मुहब्बत होता है। बहरहाल, मैंने मुंशी नबी बख़्श मरहूम की तारीख़े रेहलत में ये क़िता लिख कर भेजा। मुंशी क़मरुद्दीन ख़ाँ साहब ने नापसन्द किया। क़िता ये है—

शेख़[4] नबीबख़्श के बाहुस्ने ख़ुल्क़
दाश्त मजाक़े सुख़नो फ़हमे तेज़
मर्ग़ें सितम पेशा अमानश न दाद
कीस्त के बामर्ग बिसीजद सितेज़
साले वफ़ातश ज़ पए यादगार
बादिले ज़ारो मिज़ ए दजला रेज़
ख़ास्तम अज़ ग़ालिबे आशुफ़्ता सर
गुफ़्त मदे तूलो बगो रुस्तख़ेज़

एक क़ायदा ये भी है के कोई लफ़्ज़ जामे आदाद[5] निकाल लिया करते हैं, बल्के क़ैद माने दार होने का भी मुत्तफ़े है के ये मिसरा—

[6] दरसाले ग़रस हराँ के मानद बीनद

१. पीर बादशाह के नाम लिखा हुआ पत्र। २. कवि के महत्व के विरुद्ध। ३, प्रेम का कर्त्तव्य। ४. शेख़ नबी बख़्श बहुत शिष्ट और सभ्य थे। बुद्धिमान और रसज्ञ थे। मृत्यु से कौन लड़ सकता है? उसके मृत्यु वर्ष की स्मृति में अपने दुःखी हृदय और अश्रु वाही पलकों से और स्तब्ध मस्तिष्क से 'ग़ालिब' को कहा गया वह बस करे और कह दे 'रुस्तख़ेज़'' (१२७७)। ५. सख्या का योग। ६. जो बोने के समय रहेगा वह देख लेगा।

'अनवरी' के क़सायद[1] को देखो, दो चार जगह ऐसे अल्फ़ाज़ क़सीदे के आग़ाज़ में लिखे हैं, जिसमें आदाद[2] साले मतलूब निकल आते हैं और माने कुछ नहीं होते। लफ़्ज़ रुस्तख़ेज क्या पाकीज़ा मानेदार लफ़्ज़ है और फिर वाक़े के मुनासिब! अगर तारीख़े विलादत[4] या तारीख़े शादी म ये लफ़्ज लिखता तो बेशुबा नामुस्ताहसन[5] था। क़िस्सा मुख़्तसिर, अगर तारीख़ की फ़िक्र मूजिबे[6] अदा ए हक़्क़े मौद्दत है, तो मैं हक़्क़े दोस्ती अदा कर चुका। ज़्यादा क्या लिखूँ ?

दाद का तालिब—ग़ालिब

८७

(२० जनवरी १८६१)

साहब,

तुम्हारा ख़त मेरठ से आया। "मिरातुस्सहायफ़" का तमाशा देखा। 'सुम्बलिस्तान' का छापा, ख़ुदा तुमको मुबारक करे और ख़ुदा ही तुम्हारी आबरू का निगह बान रहे। बहुत गुज़र गई है, थोड़ी रही। अच्छी गुज़री है, अच्छी गुज़र जाएगी। मैं तो ये कहता हूँ के 'उर्फ़ी' के क़सायद की शोहरत से उर्फ़ी के क्या हात आया जो मेरे क़सायद के इश्तेहार से मुझको नफ़ा होगा ? सादी ने बोस्ताँ से क्या फल पाया, जो तुम सुम्बलिस्ताँ से पाओगे ? अल्लाह् के सिवा जो कुछ है, मौहूम[7], व मादूम[8] है। न सुख़न[9] है, न सुख़नवर है; न क़सीदा है न क़स्द है। ला मौजूद[10] इल्लल्लाह।

---

१. क़सीदे का बहुवचन। २. अभीष्ट वर्ष की संख्या। ३. १२७७।
४. जन्म। ५. अनुचित। ६. मित्रता निभाने का कारण। ७. भ्रान्ति।
८. नश्वर। ९. कविता। १०. ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी विद्यमान नहीं है।

जनाब भाई साहब याने नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ बहादुर से मुलाक़ात हो तो मेरा सलाम कह देना। हमशीरा[१] के पिन्सन का जारी हो जाना बहुत ख़ुशी की बात है; अगर ख़ुशी से ताज्जुब ज़्यादा है। क्या अजब है कि इससे भी ज़्यादा ताज्जुब की बात ब रू[२] ए कार आवे याने आपका पिन्सन भी वागुज़ाश्त हो जावे। अल्लाह्, अल्लाह्, अल्लाह् !

सुबह यकशम्बा, २० जनवरी १८६१ ई०।

८८

(९ अप्रेल १८६१)

अजी मिर्ज़ा तफ़्ता,

तुमने रुपया भी खोया और अपनी फ़िक्र को और मेरी इस्लाह को भी डुबोया। हाय, क्या बुरी कापी है ! अपने अशार की और इस कापी की मिसाल जब तुम पर खुलती के यहाँ होते और बेगमाते क़िला को फिरते-चलते देखते। सूरत माह[3] दो हफ़्ता की सी और कपड़े मैले, पायचे लीर लीर, जूती टूटी। ये मुबालिग़ा नहीं, बल्के बे तकल्लुफ़ ! 'सुम्बलिस्ताँ' एक माशूक़े ख़ूब रू[४] है, बदलिवास[५] है। बहरहाल दोनों लड़कों को दोनों जिल्दें दे दीं और मुअल्लिम[६] को हुक्म दिया के इसी का सबक़ दे। चुनाचे आज से शुरू हो गया।

मरक़ूमा सुबह सेशम्बा, नौ, माहे अप्रेल सन् १८६१ ई०।

—ग़ालिब

---

१. बहन। २. व्यवहार में आना। ३. पूर्णिमा का चन्द्रमा। ४. सुमुखी। ५. बुरा वेश पहनी हुई। ६. अध्यापक।

७९

(१६ अगस्त १८६१)

मियाँ मिर्ज़ा तफ़्ता,

हज़ार आफ़रीं ! क्या अच्छा क़सीदा लिखा है ! वाह वाह, चश्मेबद्दूर[1]! तसलसुले[2] माने ! सलासते[3] अल्फ़ाज़ एक मिसरे में तुमको मुहम्मद इसहाक़ 'शौकत' बुख़ारी से तवारुद[4] हुआ। ये भी महले[5] फ़ख़्रो शर्फ़ है के जहाँ 'शौकत' पहुँचा, वहाँ तुम पहुँचे। वो मिसरा ये है——

चाक[6] गरीदम व अज़जेब बदामाँ रफ़्तम

पहला मिसरा तुम्हारा अगर उसके पहले मिसरे से अच्छा होता तो मेरा दिल और ज़्यादा खुश होता। ख़ुदा तुमको इतना जिलाये के एक दीवान बीस जुज्व कसायद का कह लो। मगर ख़बरदार, क़सायद बक़ैद[7] हुरूफ़े तहज्जी न जमा करना।

साहब, मुझे इस बुज़ुर्गवार का मामला और ये जो तुमने इसका वतन और पेश अब लिखा है, साबिक़ का तुम्हारा लिखा हुआ सब याद है। मैंने इसको 'दोस्त' बतरीक़े तज लिखा है, बहरहाल वो जो मैंने 'ख़ाक़ानी' का शेर लिखकर उसको भेजा उसकी माँ मरे, अगर मेरे उस ख़त का जवाब लिखा हो। बड़ा पुराना क़िस्सा तुमने याद दिलाया। दाग़े कुहना हसरत को चमकाया। ये बेक़सीदा मुंशी मुहम्मद हसन की मार्फ़त रौशनद्दौला पास और रोशनद्दौला के तवस्सुत से नसीरुद्दीन हैदर के पास और जिस दिन गुज़रा उस दिन पाँच हज़ार रुपये भेजने का हुक्म हुआ। मुतवस्सत याने मुंशी मुहम्मद हसन ने मुझको इत्तला न दी। मुज़फ़रद्दौला मरहूम लखनऊ से आये। उन्होंने ये राज

---

१. बरी दृष्टि से बचाए। २. अर्थ प्रसंगबद्ध ३. वाक्य परिमार्जित। ४. साम्य। ५. गौरव का स्थान। ६. मैं फट गया; कण्ठ से लेकर निचले हिस्से मक पहुँच गया। ७. वर्णमाला के अनुसार।

मुझपर ज़ाहिर किया और कहा ख़ुदा के वास्ते मेरा नाम मुंशी मुहम्मद हसन को न लिखना। नाचार मैंने शेख़ इमाम बख़्श नासिक़ को लिखा के तुम दरियाफ़्त करके लिखो के मेरे क़सीदे पर क्या गुज़री। उन्होंने जवाब में लिखा के "पाँच हज़ार मिले। तीन हज़ार रौशनद्दौला ने खाए, दो हज़ार मुंशी मुहम्मद हसन को दिए और फ़रमाया के इसमें से जो मुनासिब जानो ग़ालिब को भेज दो। क्या उसने हनोज़ तुमको कुछ न भेजा। अगर न भेजा हो तो मुझको लिखो।" मैंने लिख भेजा के "मुझे पाँच रुपए भी नहीं पहुँचे।" इसके जवाब में उन्होंने लिखा के अब तुम मुझे ख़त लिखो। उसका मजमून ये हो के मैंने बादशाह की तारीफ़ में क़सीदा भेजा है, और ये मुझको मालूम हुआ है के वो क़सीदा हुज़ूर मे गुज़रा मगर ये मैंने नहीं जाना के उसका सिला क्या मरहम्मत हुआ। मैं, के 'नासिक़' हूँ, अपने नाम का ख़त बादशाह को पढ़वाकर उनका खाया हुआ रुपया उनके हलक़ से निकाल कर तुमको भेज दूँगा। भाई ये ख़त लिख कर डाक में रवाना किया। आज ख़त रवाना हुआ के तीसरे दिन शहर में ख़बर उड़ी के नसीरुद्दीन हैदर मर गया। अब कहो मैं क्या करूँ और नासिक़ क्या करे?

दो शंबा १९ अगस्त, सन् १८६१ ई०।

—ग़ालिब

९०

(९ सितम्बर १८६१)

मिर्ज़ा तफ़्ता साहब,

इस क़सीदे के बाब में बहुत बाते आपकी ख़िदमत में अर्ज़ करनी है। पहले तो ये के 'ख़ंजर रा' व 'गौहर रा' को तुमने अज़ क़िस्मे तनाफ़ुर[1] समझा और उस पर अशारे[2] असातिज़ा सनद लाए। ये ख़द्शा[3] नही पैदा होता मगर लड़कों के और मुब्तदियों[4] के दिल में। 'सलीम'—

१. घृणा के रूप में, निरर्थक। २. आचार्यों की कविता। ३. ख़तरा। ४. सिक्खड़ों।

शराब नुक़्ल[1] न ख़ाहद बिगीर साग़र रा
के अ़ैहतियाजे शकर नीस्त शीरे मादर रा

ये ग़ज़ल शाहजहाँ के अ़हद की तरही है। 'सायब' व 'क़ुदसी' व शोरा ए हिन्द ने इस पर ग़ज़लें लिखी हैं।

दूसरे ये के ममदूह[2] का पूरा नाम बेतकल्लुफ़ आते हुए ख़ाली क्यों उड़ा दो ? ज़ियाउद्दीन अ़हमदख़ाँ नाम है, हिन्दी में 'रख़्शाँ' तख़ल्लुस, फ़ारसी में 'नय्यर' तख़ल्लुस।

हमाना 'नय्यरे' 'रख़्शाँ' ज़ियाउद्दीन अ़हमदख़ाँ

देखो तो क्या पाकीज़ा मिसरा है। ये न कहना के शोरा ममदूह का नाम नंगा लिख जाते हैं ! वो बहस्बे ज़रूरते शेर है। जिस बहर[3] में पूरा नाम न आए उसमें शौक़ से लिखो। जायज़, रवा, मुस्तहसन। जिस बहर में नाम ममदूह का दुरुस्त आए उसमें फ़रोगुज़ाश्त[4] क्यों करो ?

दोशंबा, नहुम सितम्बर सन १८६१ ई०।

९१

(४ अक्टूबर १८६१ ई०)

साहब,

क़सीदे पर क़सीदा लिखा और ख़ूब लिखा। आफ़रीं हैं। फिर उस्ताद के शेर तज़मीन[5] क्यों करते है ? न इसकी कुछ हाजत, न इसमें कोई अफ़ज़ाइश[6]

---

१. सुरा के लिए गज़क की आवश्यकता नहीं, माँ के दूध के लिए शर्करा की आवश्यकता नहीं। २. प्रशंस्य, प्रशंसित। ३. छन्द। ४. भूलचूक। ५. अन्य की कविता में अपनी कविता जोड़ना, क्षेपक। ६. सौन्दर्य की अधिकता।

हुस्न। तुम्हारे एक शेर को एक शेर के बाद रख दिया है ताके मक़त ए कलाम हो जाए। पहला क़सीदा तुम्हारा 'बर आवरम्' 'दर आवरम' की रदीफ़ का सुस्त है, उसको हमने नामंजूर किया मगर नज़रसानी[1] में जो शेर क़ाबिल रखने के होंगे, वो लिख कर तुमको भेज देंगे। बिलफ़ैल एक शेर की क़बाहत[2] तुम पर ज़ाहिरा करते हैं ताके आइन्दा इस पालग़ज़[3] से अहतराज़[4] करो--

नूरे[5] सम्रादत अज़् जिबहे क़ासिदम चकद।

ये क्या तरकीब है। जिबह बर वज़ने 'चश्मा' है। याने दो हाये हव्वज़ हैं। 'ज़्बह' क़ासिद ! एक हाय हव्वज़् कहाँ गई ?

हर कुजा चश्मए बुवद[6] शीरीं

'चश्मा' की जगह 'चशा' लिखते हो ! ये बात हमेशा को याद रहे। इतने बड़े मश्शाक़[7] से इतनी बड़ी ग़लती बहुत ताज्जुब की बात है। मियाँ,

बर्गे[8] दुनिया न साज़ो नैश बुवद

ये कोई लुग़त नहीं, एक लफ़्ज़् नहीं, के किसी फ़रहंग में से निकल आए। ये तर्ज़ें तहरीर है। किसको याद है के इसका नज़ीर कहाँ मौजूद है ? इस अमर से क़तै नज़र कोई शख़्स ऐसा कहाँ का फ़ारसीदां और आलिम[9] है के मैं लड़कों की तरह बैत बहसी करूँ ? दो जूतिया आप लगा दीं, एक जूती तुम से लगवा दी। अब क़तै नज़र करो और सुकून अख़्तियार फ़रमाओ। मैं 'बुरहान' का ख़ाका उड़ा रहा हूँ; 'चार शर्बत' और 'ग़यासुल्लुगात' को हैज़ का लत्ता समझता हूँ। ऐसे गुमनाम छोकरों से क्या मुक़ाबिला करूँगा ? 'बुरहाने क़ाता'

---

१. पुनरावलोकन। २. बुराई। ३. त्रुटि। ४. बचाव। ५. मेरे सन्देशवाहक के भाल पर सौभाग्य और सच्चाई का प्रकाश प्रकट हो रहा है। ६. मीठे पानी का कूप होता है। ७. अभ्यासी। ८. सांसारिक पदार्थों की गिनती न पदार्थों में होती है न वृश्चिक के दंश में। ९. विद्वान।

के अग़लात बहुत निकाले हैं। दस जुज़्व का एक रिसाला लिखा है, उसका नाम क़ात ए बुरहान रखा है। अब इसके छापे की फ़िक्र है। अगर ये मुद्दआ हासिल हो गया तो एक जिल्द छापे की तुमको भेज दूँगा, वर्ना क़ातिब से नक़्ल करवा के क़ल्मी एक जिल्द भेज दूँगा। बहुत सूदमन्द[१] नुस्ख़ा है।

इस क़सीद[२] ए मुतबर्रिका की मुआफ़िक इस्लाह के इस काग़ज़ से और काग़ज़ पर नक़ल करके और जो मतालिब के इस काग़ज़ पर मरक़ूम हैं, उनको हाफ़ज़े[३] के सुपुर्द करके इस वर्क़ को फाड़ डालो, और इस क़सीदे पर नाज़ किया करो। ये क़सीदा तुम्हारा हमको बहुत पसन्द आया है।

जुमा १४ अक्तूबर सन् १८६१।

—ग़ालिब

९२

साहब,

ये क़सीदा तुमने बहुत ख़ूब लिखा है। हक़ ताला[४] शान हू इसका तुम्हें सिला दे। नवाब मुस्तफ़ाख़ां साहब के हां मे क़सीदे की रसीद आ गई। यक़ीन है के तुमको भी वो ख़त लिखें। दर ईं[५] वला यहां आया चाहते हैं और मुझको ये लिखा था के क़सीदा पहुँचा; क्या कहना है! ऐसा है और ऐसा है। मैं चन्द रोज़ में वहां आता हूँ। अिन्दल मुलाक़ात इस क़सीदे के बाब में बात होगी।

ज़ियाउद्दीनख़ां साहब का भी मुक़दमा आजकल फ़ैसल हुआ चाहता है। वो क़सीदा, जो मेरे पास अमानत है, उनको दिया जायगा। इंशा[६] अल्लाह व अली उल अज़ीम।

---

१. लाभकर। २. पवित्र क़सीदा, श्रेष्ठ क़सीदा। ३. स्मृति। ४. ईश्वर प्रभावशाली है। ५. इस युग में। ६. ईश्वर का प्रताप बहुत है, वह चाहे तो।

मुंशी हरगोपाल तफ़्ता के नाम

अज़ मने[१] फ़राग़ बूद बुरीदम मनज़ फ़राग़

'बुरीदम मन अज़ फ़राग़' याने क़तै नज़र करदम अज़ फ़राग़ व नौ उम्मीद शुदम अज़ फ़राग़।

९३

तुमको मालूम रहे के एक ममदूह तुम्हारे यहां हैं। उनको मैंने तुम्हारी फ़िक्र और तलाश का मद्दाह[२] पाया। जनवरी सन् १८६२ ई० में कुछ तुम्हारी ख़िदमत में भेजेंगे। तुमको क़ुबूल करना होगा। समझें? ये कौन? याने नवाब मुस्तफ़ाख़ां साहब; और दूसरे ममदूह याने नवाब ज़ियाउद्दीनख़ां वो आख़िर दिसम्बर सन् १८६१ ई० में या अवायले जनवरी सन् १८६२ ई० में हाज़िर होंगे।

९४

भाई,

रेमिया[३] व हेमिया ख़ुराफ़ात है। अगर इनकी कुछ अस्ल होती तो अरस्तू और अफ़लातून और बअली ये भी कुछ इस बाब में लिखते। कीमिया[४] और सीमिया[५] दो इल्मे शरीफ़ हैं। जो अशिया[६] की तासीर[७] से ताल्लुक़ रखे वो कीमिया और जो अस्मा[८] से मुताल्लिक़ हो वो सीमिया।

जाँ ग़मे[९] सीमिया न ख़ुरद गहे
दिल सु ए कीमिया निया वुर्दम

---

१. सुख मेरे कारण से था, मैंने उसे छोड़ दिया। २. प्रशंसक। ३. रासायनिक विद्याएँ। ४. रसायन। ५. भौतिकी। ६. पदार्थ। ७. गुण। ८. पदार्थ। ९. कभी सीमिया के दुःख में मैंने प्राण न खोए और न कीमिया की ओर मेरा मन गया।

शेर बामाने हो गया। ये न समझा करो के अगले जो लिख गये हैं वो हक़ है। क्या आगे आदमी अहमक़ पैदा नहीं होते थे ?

'ज़मान' व 'ज़माना' को मैं पागल हूँ जो ग़लत कहूँगा ? हज़ार जगह मैंने नज़्म व नस्र में ज़मान व ज़माना लिखा होगा।

वो शेर किस वास्ते काटा गया ? समझो, पहला मिसरा लग़ो, दूसरे मिसरे में 'न बुर्द' का फ़ायल मादूम। 'हल्क़ ए ज़ा' की ज़े पर नुक्ता न था, मैंने ग़ुस्से में लिखा के न हल्क़एरा दुरुस्त और न हल्कए-ज़ा दुरुस्त। मगर ये फ़ारसी बे दिलाना है। ख़ैर रहने दो। मरता हूँ, मुझे समझाते हो के "सदजा[1] दर कलामे अहले ज़बाँ ख़ाहन्दयाफ़्त।" मगर मैं बानी ए कलामे अहले ज़बाँ नहीं। गर्दिशे[2] चर्ख़ उस्तख़ाँ साईद।"

इससे ये बेहतर है--

सूदा[3] शुद उस्तख़ां ज़ गर्दिशे चर्ख़

बाक़ी और मिसरे सब अच्छे बनाए हैं--

—ग़ालिब

९५

(२७ अगस्त १८६२ ई०)

साहब,

दो ज़बानों से मुरक्कब[4] है, ये फ़ारसी मुर्तरिफ़ एक फ़ारसी एक अरबी। हरचन्द इस मन्तिख़ में लुग़ाते तुर्की भी आ जाते हैं, मगर कमतर। मैं अरबी का आलिम नहीं मगर निरा जाहिल भी नहीं। बस इतनी बात है के इस ज़बान

---

१. विद्वानों की भाषा में यह सौ स्थानों पर पाएँगे। २. ३. आकाश के चक्कर ने हड्डियों को घिस दिया है। ४. यौगिक।

के लुग़ात का मुहक़्क़िक़ नहीं हूँ। उलमा से पूछने का मुहताज और सनद का तलबगार रहता हूँ। फ़ारसी में मब्दए[1] फ़ैयाज़ से मुझे वो दस्तगाह[2] मिली है के इस ज़बान के क़वायद[3] व ज़वाबित मेरे ज़मीर[4] में इस तरह जा गुज़ीं[5] हैं जैसे फ़ौलाद में जौहर। अहले पारस में और मुझमें दो तरह के तफ़ाउत हैं—एक तो ये के उनका मुअल्लद ईरान और मेरा मुअल्लद हिन्दुस्तान। दूसरे ये के वो लोग आगे पीछे सौ, दो सौ, चार सौ, आठ सौ बरस पहले पैदा हुए हैं। 'जूद' लुग़ते अरबी है। बमानी ए-बख़्शिश। 'जव्वाद' सेग़ा है सिफ़ते मुशब्बा का बेतशदीद। इस वजन पर सेग़ा फ़ायल मेरी समाअत में जो नहीं आया तो मैं उसको ख़ुद न लिखूँगा। मगर जब के 'नजीरी' शेर में लाया और वो फ़ारसी का मालिक और अरबी का आलिम था तो मैंने माना।

क्या हँसी आती है के तुम मानिन्द और शायरों के मुझको भी ये समझे हो के उस्ताद की ग़ज़ल या क़सीदा सामने रख लिया या उसके कवाफ़ी[6] लिए और उन काफ़ियों पर लफ़्ज[7] मिलने लगे। ला हौला वला क़ूवता इल्लाह बिल्लाह। बचपन में जब मैं रेख़्ता लिखने लगा हूँ, लानत है मुझ पर अगर मैंने कोई रेख़्ता या उसके क़वाफ़ी पेशे नज़र रख लिए हों। सिर्फ़ बहर और रदीफ़ काफ़िया देख लिया और उस ज़मीन में ग़ज़ल—क़सीदा लिखने लगा। तुम कहते हो, नज़ीरी का दीवान वक़्ते तहरीरे क़सीदा पेशे नज़र होगा और जो उसके काफ़िए का शेर देखा होगा उस पर लिखा होगा। वल्लाह्! अगर तुम्हारे ख़त के देखने से पहले मैं ये भी जानता हूँ के इस ज़मीन में नज़ीरी का क़सीदा भी है, चे[7] जाए आं के वो शेर।

भाई, शायरी माने आफ़रीनी है। 'काफ़िया पैमाई नहीं है। 'ज़माँ' लफ़्ज़े अरबी। 'अज़मना' ज़माँ दोनों तरह फ़ारसी में मुस्तामिल ज़माने, एक

---

१. ईश्वर। २. सामर्थ्य। ३. नियम। ४. स्वभाव। ५. आत्मलीन। ६. काफ़िए का बहु व०। ७. उस शेर के अतिरिक्त।

ज़मा, हर ज़मां, ज़मां जमां दरीं जमाँ, दरीं ज़मां, दराँ ज़माँ सब सही और फ़सीह। जो इसको ग़लत कहे वो गधा, बल्के अहदे फारस ने मिस्ले मौज व मौजा यहाँ भी 'हे' बढ़ा कर ज़माना इस्तेमाल किया है। यक ज़माँ को मैंने कभी ग़लत न कहा होगा। सादी के शेर लिखने की क्या हाजत।

सुनो मियाँ, मेरे हम वतन याने हिन्दी लोग या जो वादी ए फ़ारसीदानी में दम मारते हैं वो अपने क़यास को दख़ल देकर ज़वाबत ईजाद करते हैं। जैसा वो घाघस उल्लू अब्दुल वासे हाँसवी लफ़्ज नामुराद को ग़लत कहता है। और ये उल्लू का पट्ठा क़तील सफ़वतक़दा, शफ़क़ कदा व नश्तरकदा को और हमा आलम व हमा जा को ग़लत कहता है। क्या मैं भी वैसा ही हूँ जो यक-ज़माँ तराज़ू मेरे हात में है।[1] लिल्लाहुल हम्दो लिल्लाहु-शुक्र। मरक़ूमा चहार शंबा, २७ माहे अगस्त सन् १८६२ ई०।

९६

२७ नवम्बर १८६२ ई०

मिर्ज़ा तफ़्ता,

जो कुछ तुमने लिखा ये बेदर्दी है और बदगुमानी। माज़िल्लाह[2] तुम से आज़ुर्दगी ! मुझको इस पर नाज़ है के मैं हिन्दुस्तान में एक दोस्ते सादिक़ुल[3] विला रखता हूँ। जिसका हरगोपाल नाम और तफ़्ता तख़ल्लुस है। तुम ऐसी कौन-सी बात लिखोगे के मूजिबे[4] मलाल हो ? रहा ग़म्माज़[5] का कहना उसका हाल ये है के मेरा हक़ीक़ी भाई कुल एक था। वो तीस बरस दीवाना रहकर मर गया। मसलन वो जीता होता और होशियार होता और तुम्हारी बुराई कहता तो मैं उसको झिडक देता और उससे आज़ुर्दा[6] होता।

---

१. ईश्वर की स्तुति, ईश्वर का धन्यवाद। २. ईश्वर की शरण। ३. सच्चे प्यार वाला। ४. दुःख। ५. चुगलखोर। ६. दुखी।

मुंशी हरगोपाल तफ़्ता के नाम

भाई, मुझमें कुछ अब बाक़ी नहीं है। बरसात की मुसीबत गुज़र गई लेकिन बुढ़ापे की शिद्दत बढ़ गई। तमाम दिन पड़ा रहता हूँ। बैठ नहीं सकता। अक्सर लेटे लेटे लिखता हूँ। माहाज़ा ये भी है के अब मश्क़ तुम्हारी पुख़्ता हो गई, ख़ातिर मेरी जमा है के इस्लाह की हाजत न पाऊँगा। इससे बढ़ कर ये बात है के क़सायद सब आशिक़ाना है, बकारे आमदनी नहीं। ख़ैर कभी देख लूँगा, जल्दी क्या है। तीन बात जमा हुईं—मेरी काहिली, तुम्हारे कलाम का मुहताज़ बइस्लाह न होना, किसी क़सीदे से किसी तरह के नफ़े का तसव्वुर न होना। नज़र इन मरातिब पर काग़ज़ पड़े रहे। लाला बाल मुकन्द 'बेसब्र' का एक पार्सल है के उसको बहुत दिन हुए, आज तक सरनामा भी नहीं खोला। नवाब साहब की दस-पन्द्रह ग़ज़लें पड़ी हुई हैं।

ज़ोफ़[1] ने 'ग़ालिब' निकम्मा कर दिया
वर्ना हम भी आदमी थे काम के

ये क़सीदा तुम्हारा कल आया। आज इस वक़्त के सूरज बलन्द नहीं हुआ, इसको देखा, लिफ़ाफ़ा किया, आदमी के हात डाकघर भिजवाया।

—ग़ालिब

९७

मिर्ज़ा[2] तफ़्ता के पैवस्ता बदिल जा दारद
हर कुजा हस्त ख़ुदाया बसलामत दारश

साहब,

कई बार जी चाहा के तुमको ख़त लिखूँ, मगर मुतहय्यर[3] के कहाँ भेजूँ। अब जो तुम्हारा ख़त आया तो मालूम हुआ के हज़रत अभी लखनऊ में

---

१. बुढ़ापा। २. मिर्जा तफ़्ता मेरे हृदय मे इस तरह समा गया है कि, वह जहाँ रहे ईश्वर उसे सकुशल रखे। ३. आश्चर्य चकित।

रोनक़ अफ़रोज हूँ। खत न भेजूँ तो गुनहगार। मैंने ये अर्ज किया है के मुझ मे इस्लाह की मशक़्क़त की ताक़त नही रही; माहाजा तुम्हारा कलाम पुख़्तगी को पहुँच गया है, इस्लाह तलब नही रहा है। शेर अपने बच्चे को एक मुद्दत तक आइने शिकार सिखाता है। जब वो जवान हो जाता है, तो खुद बे अयानते[1] शेर शिकार किया करता है। ये मैंने नहीं कहा के तुम मुझे अपने कलाम के देखने से महरूम रखो। जो ग़जल क़सीदा लिखा करो न मसविदा बल्के एक नक़ल उसकी ज़रूर मुझको भेजा करो।

९८

४ मार्च १८६८ ई०

साहबे बन्दा,

मैंने बक्स का एक-एक ख़ाना देखा, सिवाय तीन काग़ज़ों के कोई काग़ज़ तुम्हारा न निकला और इस वक़्त बसबब कम फ़ुरसती के मैं रदीफ़ उन तीनों क़सीदों की नहीं बता सकता और वो मुक़दमा '५०' का ब[2] इख़्तेज़ाए हालाते ज़माना सुस्त हो गया है, मिट नहीं गया। देर आयद दुरुस्त आयद, इंशा अल्ला हो ताला।

अब मेरा हाल सुनो—

दर[3] नौ उमीदी बसे उमीदस्त
पायाने शबे सियाह सुपेदस्त

हमेशा नवाब गवर्नर जनरल की सरकार से दरबार में उसको सात पारचे और तीन रक़म जवाहिर खिलत मिलता था। लार्ड केनिंग साहब मेरा दरबार

१. बिना सहायता के। २. समय की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए। ३. निराशा में भी बहुत सी आशाएँ हैं, रात जितनी भी अन्धकार पूर्ण हो, उसका प्रातः काल प्रकाशमान होता है।

व ख़िलत बन्द कर गये। मैं ना उम्मीद होकर बैठ रहा और मुद्दतुल[1] उम्र को मायूस[2] हो रहा। अब जो यहाँ लेफ़्टेंट गवर्नर पंजाब आये हैं; मैं जानता था के ये भी मुझ से न मिलेंगे। कल उन्होंने मुझको बुला भेजा। बहुत सी इनायत फ़रमाई और फ़रमाया के लार्ड साहब दिल्ली में दरबार न करेंगे, मेरठ होते हुए और मेरठ में उन अजला[3] के इलाक़ादारों और माल गुज़ारों का दरबार करते हुए अम्बाले जाएँगे। दिल्ली के लोगों का दरबार वहाँ होगा, तुम भी अम्बाले जाओ। शरीके दरबार होकर ख़िलते मामूली[4] ले आओ। भाई क्या कहूँ के क्या मेरे दिल पर गुज़री? गोया मुर्दा जी उठा! मगर साथ उस मसर्रत के ये भी सन्नाटा गुज़रा के सामने सफ़रे अंबाला व मसारिफ़े[5] बेइन्तहा कहाँ से लाऊँ और तुर्रा ये के नज़्रे मामूली मेरी क़सीदा है! इधर क़सीदे की फ़िक्र, उधर रुपये की तदबीर, हवास ठिकाने नहीं। शेर काम दिलो दिमाग़ का है, वो रुपये की फ़िक्र में परेशान। मेरा ख़ुदा ये मुश्किल भी आसान करेगा। लेकिन इन दिनों में न दिन को चैन है न रात को नींद है। ये कई सतरें तुम्हें और ऐसी ही कई सतरें जनाब नवाब साहब को लिख कर भेज दी हैं। जीता रहा तो अंबाला से आकर ख़त लिखूँगा।

रोज़े चार शंबा, १३ रमज़ान १२७९ हि०। ४ मार्च १८६२ ई०।

९९

१८६३ ई०

लो साहब, हमने लेफ़्टेंट गवर्नर की मुलाज़िमत और ख़िलत पर क़िनाअत[6] करके अंबाले का जाना मौक़ूफ़ किया और बड़े गवर्नर का दरबार और ख़िलत

---

१. मृत्यु पर्यंत। २. निराश। ३. जिला (ब० व०)। ४. नियमानुसार। ५. असीम व्यय। ६. सन्तोष।

और वक़्त पर मौक़ूफ़ रखा। बीमार हूँ। हात पर एक ज़ख्म, ज़ख्म क्या, एक ग़ार हो गया है। देखिये अंजामे कार क्या होता है?

—ग़ालिब

१००

हज़रत,

परसों सुबह को तुम्हारे सब कवाग़ज़ एक लिफ़ाफ़े में बंद करके डाकघर भिजवा दिये। समझा के अब चन्द रोज़ को जान बची, उसी दिन शाम को एक ख़त आपका और पहुँचा। उसको भी रवाना करता हूँ। अपना हाल परसों के ख़त में मुफ़स्सिल लिख चुका हूँ। अदना बात यह है के जो कुछ लिखता हूँ वो लेटे-लेटे लिखता हूँ। मजे की बात है के मेरा लिखा हुआ मेरा हाल बावर नहीं। और किसी ने जो कह दिया के ग़ालिब के पाँव का वर्म अच्छा हो गया और अब वो शराब दिन को भी पीता है; तो हुज़ूर ने इन बातों को यक़ीन जाना। बीस बरस आगे ये बात थी के अब्रो[१] बारा में या पेश[२] अज़ तामे चाश्त या क़रीबे[३] शाम तीन ग्लास पी लेता था और शराबें[४] शबाना मामूली में मुजरा न लेता था। इस बीस बरस में बीस बरसातें हुई, बडे-बड़े मेह बरसे, पीना एक तरफ़ दिल में भी ख़्याल न गुज़रा, बल्के रात की शराब की मिक़दार कम हो गई है। पाँव का वर्म हद से ज़्यादा गुजर गया। माद्दा[५] तहलील के क़ाबिल न निकला। खोलन शुरू हो गई। हुकमा[६] जो दो तीन यहाँ हैं उनकी राय के मुताबिक़ कल से नीब[७] का भुर्त्ता बँधेगा, वो पका लाएगा तब उसके फूटने की तदबीर की जाएगी। तलवा ज़ख्मी, पिंडली

---

१. बरसात। २. प्रातराश से पहले। ३. सन्ध्या के लगभग। ४. रात्रि की सुरा में। ५. कम होने के योग्य। ६. हकीम (ब० व०)। ७. नीम।

ज़ख़्मी, अगर वो नामर्द बेदर्द झूटा है, तो उस पर हज़ार लानत; अगर मैं झूटा हूँ तो मुझ पर सौ हज़ार लानत।

१०१

१३ जुलाई १८६८

हज़रत,

आपके सब ख़त पहुँचे। सब क़सीदे पहुँचे। बाद इस्लाह भेज दिये गये। सत्तर बरस की उम्र, आलामे[१] रूहानी, न मैं कहूँ न कोई बावर करे। अमराज़े जिस्मानी[२] में क्या कलाम है ? बाये पाँव में महीना भर से वर्म[३] ह। खड़े होने में रगें फटने लगती हैं। अफ़ाले[४] दिमाग़ नाक़िस हो गये। हाफ़िज़ा[५] गोया कभी था ही नहीं। क़िस्सा मुख़्तसर, एक क़सीदा साबिक़[६] का और एक कल का आया हुआ, ये दोनों एक लिफ़ाफ़े में आज रवाना करता हूँ।

१०२

१६ जुलाई १८६३

मिर्जा तफ़्ता,

ये ग़लती तुम्हारे कलाम में कभी नहीं देखी थी के शेर ना मौज़ू हो। बड़ी क़बाहत ये के 'आम' बतशदीद, लफ़्ज़ अरबी है।

दीगर[७] न तुआँ गुफ़्त अख़स राके आ अमस्ल

मगर बहर और हो जाती। माना के फ़ारसी[८] नवीसाने अजम ने यों भी

---

१. आत्मिक दुःख। २. शारीरिक बाधाएँ। ३. शो । ४. मस्तिष्क का सामर्थ्य। ५. स्मरण शक्ति। ६. पहले का। ७. विशेष साधारण नहीं हो सकता। ८. ईरान के फ़ारसी लेखक।

लिखा हो काफ़के इसक़ात की क्या तवजी करोगे ? और फिर इस सूरत में भी तो बहर बदल जाती है। नाचार, इस शेर को निकाल डालो। हमीं ने तुम्हें क़सायद लिखने को कहा था; अब हम मना करते हैं के आशिक़ाना क़सायद न लिखा कर, मदह बशर्ते जरूरत लिखो, मगर बफ़िक्रो[1] ग़ौर।

—ग़ालिब

१०३

२३ जुलाई १८६३

सच है अगर आप उस्ताद का मिसरा न लिखते तो मैं 'बरू ए उस्तादने रंग' को कहाँ से समझता ?

बे[2] अज़ मन नसीहत गरे बाएदत
न दानम पस अज़मन च पेश आयदत

मैंने जो लिखा के मैं अच्छा हूँ उसको आप समझ कर खुदा का शुक्र बजा लाये। वो जो मैंने लिखा था के शिद्दते[3] मर्ज़ का बयान मुबालिग़ाए[4] शायराना है, उसको भी आपने सच जाना होगा, हालाँ के ये दोनों कलमे अज़ राहे तंज़[5] थे। मैं झूट से बेज़ार हूँ और झूटे को मलऊन[6] जानता हूँ। कभी झूट नहीं बोलता। जब तुमने किसी तरह बयाने वाक़ई[7] को बावर न किया तो मैंने तुम्हें लिख भेजा के अच्छा हूँ। और ये कलमा तुम्हें मैंने जब लिखा है के अहद कर लिया है के जब तक दम में दम है और हात में जुम्बिशे कलम है,

---

१. चिन्तन-मनन के बाद। २. तुम्हें मुझसे अधिक अच्छा उपदेश देनेवाला चाहिए। मेरे मरने के बाद तुम्हारा क्या होगा मैं नहीं जानता। ३. रोग की अधिकता। ४. कवित्वपूर्ण भ्रान्ति। ५. व्यंग। ६. निन्द्य। ७. यथार्थ का वर्णन।

जब तक मौक़ए इस्लाह ख़याल में आ सकता है, आज जो तुम्हारा दफ़्तर पहुँचेगा, उसको कल रवाना कर दिया करूँगा।

मुजमिलन[१] हाल मेरा ये है के क़रीब[२] बमर्ग हूँ। दोनों हातों में फोड़े पाँव में वर्म, न वो अच्छे होते हैं न ये रफ़ा होता है। बैठ नहीं सकता। लेटे लेटे लिखता हूँ। कल तुम्हारा दो वर्क़ा आया, आज सुबह को लेटे-लेटे उसको देख कर तुम्हें भिजवाया। ज़िन्हार तुम मुझे तंदुरुस्त समझे जाओ और दफ़्तर के दफ़्तर भेजते रहो। एक दिन से ज़्यादा तौक़ुफ़ न करूँगा। करीबे मर्ग हूँ, तो बला से !

सुबह पंज शंबा, २३ जुलाई सन् १८६३ ई०।

—ग़ालिब

१०४

'अंगुश्तरी' और 'ख़ातम' दोनों एक है। तुमने ख़ातम बमाने 'नगी' बाँधा, ये ग़लत है।

'जिन्से[3] वफ़ा ए कस मख़र' क्या तरक़ीब है? 'जिन्से[४] कस मख़िरे वफ़ा' अलबत्ता दुरुस्त है। नज़रे अव्वल में बसबबे[५] तकद्दुरे हवास और क़सरते[६] दर्द व वर्मे पा[७] के मैंने ख़याल न किया होगा।

ये ख़त लिख कर बन्द रखा था के कल सुबह रवाना करूँगा। चश्मे बद्दूर, आज इसी वक़्त, के दो घड़ी दिन है, आपका नवाज़िश नामा पहुँचा। वो सिरा जो मैंने ख़ाली छोड़ दिया है, उसको कतर कर ये सतर लिख कर बन्द करता हूँ।

सुभान अल्लाह !

१. सब मिलाकर। २. मरणासन्न। ३.४. प्रेम की सामग्री किसी से मत खरीद। ५. चेतना का अभाव। ६. पीड़ा की अधिकता। ७. पाँव का शोथ।

दीगर न तुम्राँ गुफ़्त अख़स रा के आम्मस्त

इसका वज़न कब दुरुस्त है ? क्या फ़रमाते हो ? ग़ौर करो। बाद ग़ौर के इसकी नामौज़ूनी का ख़ुद इक़रार करोगे।

"शर्फ़े क़ज़वीनी" के मतले में 'साग़रे ग़म दर कशीदा श्रेम, व "दम दर कशीदा श्रेम" दूसरे शेर में—

"पैमाना[1] हाये ज़हरे सितम दर कशीदा एम

'दर कशीदन' को रब्त 'पैमाना' के साथ है या 'ज़हर' के साथ ? अगर "ज़हर दर कशीदन" जायज़ होता तो वो 'सम' के काफ़िये को क्यों छोड़ता ? तीसरे शेर में 'क़लम दर कशीदन' है, चौथे शेर में 'आब दर कशीदन' है, पाँचवें में 'सर दर कशीदन' है। क्या ज़हर पानी है ? अगर बमिस्ल 'ज़हराब' होता तो रवा[2] था। सुभान अल्लाह, ये इबारत—"जाए के शर्फ़ क़ज़ूयनी साग़र व पैमाना व ज़हर दर कशीद"। ऐ बिरादर, शर्फ़ ज़हर कुजा दर कशीद ? बल्के पैमाना ज़हर दर कशीद, शुमा हम सागरे समदर कशीद ?' 'समदर कशीदन।' कुजा व 'पैमानए ग़म दर कशीदन कुजा' ! हमने तुमको इजाज़त दी है। ख़ैर रहने दो। हिन्द में इसको कौन समझेगा ? चाहो यों कर दो—

दानी[3] मनो दिल इंचे बहम दर कशीदा श्रेम

दर यक नफ़स दो साग़रे समदर कशीदा श्रेम

सुभान अल्लाह, तुम जानते हो के मैं अब दो मिसरे मौज़ूँ करने पर क़ादिर[4] हूं, जो मुझसे मतला माँगते हो ?

गुमाने[5] ज़ीस्त बुवद बदतर अज़ गुमाने तो नीस्त

---

१. अत्याचार के विष के कई प्याले हमने पी लिये हैं। २. उचित। ३. तुम जानते हो मैंने और मेरे हृदय ने मिलकर क्या पिया है ? एक ही समय में विष के दो प्याले पिये हैं। ४. समर्थ। ५. मुझमें तुम जीवन की कल्पना करते हो यह तुम्हारी निष्ठुरता का प्रमाण है। मृत्यु दुःखदायी होती है, किन्तु तुम्हारी यह कल्पना उससे अधिक कष्टप्रद है।

ख़ैर 'शर्फ़ें क़ज़्यनी' की सनद पर वो मतला रहने दो।

—ग़ालिब

मैं ऐसा जानता हूँ के 'दर्रा आ' ब तशदीद है और वो 'दर अ' ब वज़न 'ज़र अ' और लुग़त है।

साहब, ये क़सीदा तुमने ऐसा लिखा है के मेरा दिल जानता है, क्या कहना है। एक ख़याल रखा करो के शेरे अख़ीर में कोई बात ऐसी आजाए के जिससे अख़्तेताम[1] के माने पैदा हुआ करें।

एक कसीदा इस्लाह देकर भेज चुका हूँ और उसी वर्क़ पर फ़लाने साहब के ग्राब में तुमको एक नसीहत कर चुका हूं। उधर के जवाब का हरगिज़ ख़याल न रखो और इधर से अगर क़सीदे के इरसाल में देर हुआ करे तो घबराया न करो। अब मेरे पास दो क़सीदे हैं; एक 'लश्कर बर आवरम्' और एक कल आया है—'बर जा मानद' व 'दरिया मानद'। खूब कहे, के मज़मून से पहले ममदूह ढूंढ़ना पड़ता है? अगर मैं तुमको ममदूह बता सकता तो—क़सीदा उसके नाम का तुमसे मँगवा चुका होता, और उस ममदूह तक पहुँचा चुका होता। भाई, एक दक़ीक़ा है के लिखने के क़ाबिल नहीं। हाँ, मुलाकात हुए पर कह सकता हूँ। अल्लाह् अल्लाह् !

१०५

(१० सितम्बर १८६३ ई०)

साहब,

'गौहर रा' 'ख़ावर रा', ये क़सीदा बहुत इस्लाह तलब था। हमने इस्लाह देकर तुम्हारे पास भेज दिया है। जब तुम साफ़ करके भेजोगे हम तुम्हारे

---

१. समाप्ति।

ममदूह को दे देंगे। कल तुम्हारा ये क़सीदा पहुँचा, हमने दोपहर को देखकर दुरुस्त किया। आज पंजशंबा १० सितम्बर को डाक में भिजवा दिया।

साहब, आज मीर बादशाह आए। तुम्हारी ख़ैरो आफ़ियत उनकी ज़बानी मालूम हुई। अल्लाह तुम्हें ख़ुश रखे और मुझको तुम्हारे ख़ुश रखने की तौफ़ीक़[1] दे। ममदूह का नाम क्या लिखूँ ? बात इसी क़दर है के रामपूर में कोई सूरत किसी तरह बनती नज़र नहीं आती। वर्ना क्या तुम्हारा क़सीदा वहाँ न भिजवाता ?

'दुरा आ' को ये न कहो के तशदीद नहीं है। अस्ले लुग़त मुशद्दिद[2] है। शोरा उसको मुख़फ़्फ़ भी बाँधते हैं। 'सादी' के मिसरे से इतना मक़सूद हासिल हुआ के 'दुरा आ' बे तशदीद भी जायज़ है। याद रहे 'जादा' और 'दुरा आ' दोनों अरबी लुग़त हैं। वो दाल की तशदीद से और ये रे की तशदीद से। मगर ख़ैर 'जादा' और 'दुरा आ' भी लिखते हैं। ये न कहो के दुरा आ हर्गिज़ नहीं है। ये कहो के 'दुरा आ' बे तशदीद भी जायज़ है।

—ग़ालिब

१०६

साहब,

'कशीदन' की जगह 'दरकशीदन' व 'बरकशीदन' बल्के 'बरकशीदन' की जगह 'दरकशीदन' न चाहिए। 'बर आमदन' व 'दर आमदन' का इस्तेमाल बाज़ मुताखिरीन ने आम कर दिया है। याने 'दर आयद' से 'बर आयद' बर आयद के माने लिए हैं, लेकिन 'दर कशीदन' और है, और 'कशीदन' और। मैं क़रीब बमर्ग हूँ। पाँव के वर्म ने और हाथ के फोड़े ने मार डाला है। बावर करना और मेरे सब आदमी बल्के बाज़ दोस्त जो रोज़ आते हैं, वो भी गवाह हैं के मैं सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक पड़ा रहता हूँ।

---

१. सामर्थ्य। २. द्वित्व के साथ।

खुतूत की तहरीर लेटे लेटे होती है। अशार इस्लाह को बहुत जगह से आते थे। सब को मना कर दिया, एक रईसे रामपूर और एक तुम, इनकी इस्लाह रह गई।

१०७

ला हौला वला क़ूवता ? किस मलऊन ने बसबबे ज़ौक़े[१] शेर, अशार की इस्लाह, मंज़ूर रखी ? अगर मैं शेर से बेज़ार न हूँ, तो मेरा खुदा मुझसे बेज़ार ? मैंने तो बतरीक़े 'क़हर[२] दरवेश बजाने दरवेश' लिखा था। जैसे अच्छी जोरू बुरे खाविन्द के साथ मरना-धरना अख्तियार करती है, मेरा तुम्हारे साथ वही मामला है।

१०८

(२४ नवम्बर १८६३)

नूरे[३] चश्म ग़ालिबे अज़ खुद रफ़्ता मिर्ज़ा तफ़्ता,

खुदा तुमको खुश व तन्दुरुस्त रखे। न दोस्त बखील[४], न मैं काज़िब[५] मगर बक़ौले मीर तक़ी—

इत्तेफ़ाक़ात हैं ज़माने के

बहरहाल, कुछ तदबीर की जाएगी और इंशा अल्लाह सूरते[६] वक़ू जल्द नज़र आएगी। ताज्जुब है के इस सफ़र में कुछ फ़ायदा न हुआ।

---

१. कविता की रुचि के कारण। २. सन्त का क्रोध सन्त के प्राणों पर। ३. ग़ालिब के नेत्रों के प्रकाश-तफ़्ता। ४. कंजूस। ५. असत्यभाषी। ६. परिणाम।

या[1] करम ख़ुद न मुन्द दर आलम
या मगर कस दरी ज़माना न कर्द

अग़नियाए[2] दहर की मदह सराई मौक़ूफ़ करो। अशारे आशक़ाना ब-- तरीक़े ग़ज़ल कहा करो और ख़ुश रहा करो।

सेशंबा, २४ नवम्बर सन् १८६३ ई०।

नजात का तालिब
--ग़ालिब

१०९

(६ दिसम्बर १८६४)

सेशंबा, ३ रबीउस्सानी (१२८१ हि० व सेशुम सितम्बर १८६४ ई०)
साहब,

कल पार्सल अशार का एक आने का टिकट लगा कर और उस पर लिख करके, 'ये पार्सल है ख़त नहीं है' डाक में भेज दिया। डाक मुंशी ने कहा के ख़तों के संदूक़ में डाल दो। ख़िदमतगार नाख़ाँदा[3] आदमी, उसका हुक्म बजा लाया और उसको ख़तों के सन्दूक में डाल आया। वो लफ़्ज़ के 'ये ख़त नहीं है पार्सल है' दस्तावेज़े[4] माक़ूल है। अगर वहाँ के डाकिए तुमसे ख़त महसूल माँगें तो तुम उस जुम्ले के जरिए से गुफ़्तगू कर लेना।

मकान मेरे घर के क़रीब, हकीम महमूदख़ाँ के घर के नज़दीक, अत्तार भी पास, बाज़ार भी क़रीब। ढाई रुपए किराए को मौजूद, मगर मालिके मकान

---

१. या तो संसार में कृपा का अस्तित्व ही नहीं रहा अथवा इस युग में किसी ने कृपा नहीं की। २. धनी लोग, एश्वर्य शाली लोग। ३. निरक्षर। ४. उचित प्रमाण।

से ये वादा है के हफ़्ता भर किसी और को न दूँगा। बाद एक हफ़्ते के अगर तुम्हारा मुसाफ़िर न आया तो मुझे और किराएदार को देने का अख़्तियार है। रामपूर के बाब में मुख़्तसर कलाम ये है के न मैं वाली ए रामपूर को लिख सकता हूँ, न इस न लिखने की वजह तुमको लिख सकता हूँ। अगर कभी रेल में बैठकर आ जाओगे तो ज़बानी कह दूँगा।

—ग़ालिब

११०

(१४ अक्टूबर १८६४)

भाई,

तुम सच कहते हो के बहुत मसविदे इस्लाह के वास्ते फ़राहम हुए हैं। मगर ये न समझना के तुम्हारे ही क़सायद पड़े हैं। नवाब साहब की ग़ज़लें भी उसी तरह धरी हुई हैं। बरसात का हाल तुम्हें भी मालूम है, और ये भी तुम जानते हो के मेरा मकान घर का नहीं है, किराए की हवेली में रहता हूँ। जुलाई से मेंह शुरू हुआ। शहर में सैकड़ों मकान गिरे, और मेंह की नई सूरत-दिन रात में दो चार बार बरसे और हरबार इस जोर से के नदी-नाले बह निकलें। बालाख़ाने का जो दालान मेरे बैठने-उठने-सोने-जागने—जीने-मरने का महल, अगर चे गिरा नहीं, लेकिन छत छलनी हो गयी। कहीं लगन[१], कहीं चिलमची[२], कहीं उगालदान रख दिया। कलमदान, किताबें उठा कर तोशाख़ाने[३] की कोठरी में रख दिए। मालिक मरम्मत की तरफ़ मुतवज्जह नहीं। क़श्ती[४] ए-नूह में

१. परात। २. हाथ धोने का पात्र। ३. भंडार गृह। ४. प्रलय काल में जिस तरह मत्स्य ने मनु को नौका में बैठा कर हिमालय तक पहुँचाया था उसी प्रकार की कथा इस्लामी ग्रन्थों मे वर्णित है। इन कहानियों में 'नूह' एक नाव में बैठ कर प्रलय-उदधि से बचता है।

तीन महीने रहने का इत्तेफ़ाक़ हुआ। अब नजात हुई है। नवाब साहब की ग़ज़लें और तुम्हारे क़सायद देखे जाएँगे। मीर बादशाह मेरे पास आये थे। तुम्हारी खैरो आफ़ियत उनसे मालूम हुई थी। मीर कासिम अली साहब मुझसे नहीं मिले। परसों से नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ साहब यहाँ आए हुए हैं, एक मुलाक़ात उनसे हुई है। अभी यही रहेंगे। बीमार हैं, अहसनुल्लाखाँ मुआलिज है। फ़स्द हो चुकी हैं, जोंकें लग चुकी हैं। अब मुसहिल की फ़िक्र है। सिवा इसके सब तरह खैरो आफ़ियत है। मैं नातवाँ[1] बहुत हो गया हूँ, गोया साहबे फ़र्राश[2] हूँ। कोई शख़्स नया, तकल्लुफ़ की मुलाक़ात का आ जाए; तो उठ बैठता हूँ वर्ना पड़ा रहता हूँ। लेटे लेटे ख़त लिखता हूँ; लेटे लेटे मसविदात देखता हूँ। अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह !

सुबह जुमा, १४ माहे अक्तूबर सन् १८६४ ई०।

१११

(९ दिसम्बर १८६४ ई०)

मुंशी साहब,

मैं साल गुजिश्ता बीमार था। बीमारी में ख़िदमते[3] अहबाब से मुक़स्सिर[4] नहीं रहा। अब मुर्दा हूँ; मुर्दा कुछ काम नहीं कर सकता। कमिश्नर व डिप्टी कमिश्नर वग़ैरा हुक्कामे शहर से तर्के मुलाक़ात है; मगर डिप्टी कलेक्टर शहर से के वो मुहतमिमे खज़ाना है, हर महीने में एक बार मिलना ज़रूर है। अगर न मिलूँ तो मुख़्तारे कार की तनखा न मिले। डिकरोदर साहब डिप्टी कलेक्टर छ महीने की रुखसत लेकर पहाड़ पर गए, उनकी जगह रेटिंगन साहब

---

१. निर्बल। २. फ़र्श पर लेटने वाला। ३. सम्बन्धियों की सेवा। ४. वंचित।

मुक़र्रर हुए। उनसे लाचार मिलना पड़ा। वो तज़्करा[1] शोरा ए हिन्द का अँगरेज़ी में लिखते हैं। मुझसे भी उन्होंने मदद चाही। मने सात किताबें भाई ज़ियाउद्दीनख़ाँ साहब से मुस्तार[2] लेकर उनके पास भेज दीं, फिर उन्होंने मुझ से कहा के जिन शोरा को तू अच्छी तरह जानता है, उनका हाल लिख भेज। मैंने सौलह आदमी लिख भेजे; बक़ैद[3] इसके के अब ज़िन्दा मौजूद हैं, और इस सवाद की सूरत ये है—

नवाब ज़ियाउद्दीन अहमद ख़ाँ बहादुर रईस लोहारू, फ़ारसी और उर्दू दोनों ज़ुबानों में शेर कहते हैं। फ़ारसी मे 'नैयर' और उर्दू में 'रख़्शाँ' तख़ल्लुस करते हैं।

असदुल्लाहख़ाँ 'ग़ालिब' के शागिद नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ बहादुर इलाक़ादारे जहाँगीराबाद उर्दू में 'शेफ़्ता' और फ़ारसी में 'हसरती' तख़ल्लुस करते हैं। उर्दू में मोमिनख़ाँ को अपना कलाम दिखाते थे।

मुन्शी हरगोपाल मौज्जिज़ क़ानूनगो सिकन्दराबाद के, फ़ारसी शेर कहते हैं। 'तफ़्ता' तख़ल्लुस करते हैं। असदुल्लाहख़ाँ ग़ालिब के शागिर्द।

ज़ाहिरा, बाद इस फ़ेहरिस्त के भेजने के उन्होंने कुछ अपने मुंशी से तुमको लिखवाया होगा; फिर कुछ आप लिखा होगा। मुझको इस हाल से कुछ इत्तिला नहीं। तुम्हारे ख़त के रूसे मैंने इत्तिला पाई। अब मैं मौलवी मज़हरुलहक़, उनके मुन्शी, को बुलवाऊँगा और सब हाल मालूम करूँगा। अस्ल ये है के तज़्करा अंगरेज़ी ज़बान में लिखा जाता है। अशारे हिन्दी और फ़ारसी का तर्जुमा शामिल न किया जाएगा। सिर्फ़ शायर का और उसके उस्ताद का नाम और शायर के मस्कन व मवतन[4] का नाम मयतख़ल्लुस दर्ज होगा। ख़ुदा करे कुछ तुमको फ़ायदा हो जाए, वर्ना ब ज़ाहिर सिवाय दर्ज होने नामके

---

१. हिन्दुस्तान के कवियों का परिचय। २. उधार। ३. शर्त के साथ। ४. जन्म भूमि।

और किसी बात का अहतमाल नहीं है। रेटिंगन साहब अब अदालते ख़फ़ीफ़ा के जज हो गए। डिकरोदर साहब पहाड़ से आ गए। अपना काम करने लगे। रेटिंगन साहब शहर से बाहर दो कोस के फ़ासले पर जा रहे। माहाज़ा जाड़े का मौसम, बुढ़ापे का आलम, वहां तक जाना दुश्वार और फिर कोई मतलब निकलता हुआ नज़र में नहीं। बहरहाल मौलवी मज़हरुल हक़ परसों यक शंबे के दिन मेरे पास आएँगे। हाल मालूम करके अगर मेरा जाना या लिखना तुम्हारी फ़लाह[1] का मूजिब होगा तो ज़रूर जाऊंगा।

रोज़े जुमा, ९ दिसम्बर सन १८६४ ई०।

—ग़ालिब

११२

आओ मिर्जा तफ़्ता, मेरे गले लग जाओ, बैठो और मेरी हक़ीक़त सुनो।

यक शंबे को मौलवी मज़हरुल हक़ आए थे। उनसे सब हाल मालम हुआ। पहला ख़त तुमको उनके भाई मौलवी अनवारुल हक़ ने बमूजिब हुक्मे रेटिगन साहब के लिखा था। फिर एक ख़त साहब ने आप मसविदा करके अपनी तरफ़ से तुमको लिखा। दोनों दीवान तुम्हारे और 'नश्तरे इश्क़' और एक तज़्किरा और ये चार किताबें तुम्हारी भेजी हुई, उनको पहुँची। साहब तुमसे बहुत ख़ुश और तुम्हारे बहुत मौतक़िद हैं। कहते हैं के हम जानते हैं, इतना बड़ा शायर कोई और हिन्दुस्तान में न होगा के जो पचास हज़ार बैत का मालिक हो। फ़ायदा इस इल्तफ़ात[2] का ये के तुम्हारा ज़िक्र बहुत अच्छी तरह से लिखेंगे। बाक़ी मा[3] वख़ैर शमा बसलामत। हाँ इनके तहत में पन्द्रह

---

१. कल्याण। २. प्रेम, कृपा। ३. हम सकुशल हैं, ईश्वर आपको स्वस्थ रखे।

बीस रुपए मशाहिरेइ[1] के लाके हैं। अगर तुम्हारी इजाजत हो तो इस अम्र में उनसे कलाम करूँ?

मेरा अजब हाल है। हैरान हूँ के तुम्हें मेरा कलाम क्यों बावर नहीं आता?

गुमाने ज़ीस्त बुवद बरमनत ज़े बेदर्दी
बदस्त मर्ग, वले बदतर अज़ गुमाने तो नीस्त

सामिआ[2] मर गया था, अब बासरा[3] भी ज़ईफ़[4] हो गया। जितनी क़ुव्वतें इन्सान में होती हैं, सब मुज़महिल[5] है। हवास सरासर मख़तल[6] हैं। हाफ़िज़ा गोया कभी न था। शेर के फ़न से गोया कभी मुनासिबत न थी। रईसे रामपुर सौ रुपया महीना देते हैं। साले गुज़िश्ता उनको लिख भेजा के इस्लाहे नज्म हवास का काम है और मैं अपने में हवास नहीं पाता। मुतवक़्क़ अ[7] हूँ के इस ख़िदमत से माफ़ रहूँ। जो कुछ मुझे अपनी सरकार से मिलता है, एवज़[8] ख़िदमते साबिक़ा में शुमार कीजिये, तो मैं सिक्का लबर सही, वर्ना ख़ैरातख़ार[9] सही। और अगर ये अतिया[10] बशर्ते ख़िदमत[11] है, तो जो आपकी मर्ज़ी है वही मेरी क़िस्मत है। बरस दिन से उनका कलाम नहीं आता। फ़तूहे[12] मुक़र्ररी नवंबर तक आई। अब देखिये आगे क्या होता है? आज तक नवाब साहब अज़राहे[13] जवाँ मर्दी दिये जाते है। और भाई तुम्हारी मश्क़ चश्मे बद्दूर साफ़ हो गई। रत्ब[14] व याबिस तुम्हारे कलाम में नहीं रहा। और ख़ाही न ख़ाही तुम्हारा अक़ीदा यही है के इस्लाह ज़रूर है, तो

---

१. वेतन, वृत्ति। २. श्रवण शक्ति। ३. नेत्र ज्योति। ४. वृद्ध। ५. निर्बल। ६. निष्क्रिय। ७. आशा करता हूँ। ८. पुरानी सेवा के प्रतिफल। ९. दान भोगी। १०. दान। ११. सेवा करने के लिए। १२. निश्चित वृत्ति। १३. वीरता पूर्वक। १४. दोष।

मेरी जान, मेरे बाद क्या करोगे ? मैं तो चरागे[1] दमे सुबह व आफ़ताब[2] सरे कोह हूँ । इन्नालिल्लाहे, व इन्ना इलहे राजऊन ।

१४ रज्जब १२८१ हि० ।

नजात का का तालिब
—ग़ालिब

११३

(१२ फरवरी १८६५)

मुंशीसाहब सआदत व इक़बाले निशान मुंशी हरगोपाल साहब सल्ल-मुहल्लाहा ताला ग़ालिब की दुआ ए दरवशाना[3] क़ुबूल करें ।

हम तो आपको सिकन्दराबाद 'क़ानून गोयों' के मुहल्ले में समझे हुए हैं और आप लखनऊ राजा मानसिंघ की हवेली मतब ए अवध अखबार में बैठे हुए मदारिया हुक़्क़ा लखनऊ का पी रहे हैं और मुंशी नवलकिशोर से बातें कर रहे हैं। भला मुंशी साहब को सलाम कहना । आज यकशंबा है, अखबार का लिफ़ाफ़ा अभी तक नहीं पहुँचा । हर हफ़्ते तो पंजशंबे, हद जुमे को पहुँचता था ।

मिर्ज़ा तफ़्ता क्या फ़रमाते हो ? कैसे रेटिंगन साहब ! कहाँ रेटिंगन साहब ? पंजशंबे के दिन १९ जनवरी सने हाल को वो पंजाब को गये । मुलतान या पेशावर के ज़िले में कहीं के हाकिम हुए हैं । मैं अपनी नातवानी[4] के सबब उनकी मुलाक़ात तवदी[5] को नहीं गया । अनवारुल हक़ घाट पर नौकर हैं । पन्द्रह रुपये मशाहिरा[6] पाते हैं । ज़्यादा ज़्यादा ।

---

१. प्रभात का दीपक । २. अस्ताचल गामी सूर्य । ३. साध की । ४. निर्बलता के कारण । ५. दर्शन करना । ६. वेतन ।

मुंशी हरगोपाल तफ़्ता के नाम

सुबह यकशंबा, १२ फ़रवरी सन् १८६५ ई० ।

नजात का तालिब,

—ग़ालिब

११४

सांहब,

वाक़ई "सदाब" का ज़िक्र 'क़ुतबे तिब्बी' में भी है और 'उर्फ़ी' के हाँ भी है। तुम्हारे हाँ अच्छा नहीं बंधा था इस वास्ते काट दिया। 'क़िराब' कौन सा लफ़्ज़े [1] ग़रीब है, जिसको इस तरह पूछते हो ? 'ख़ाक़ानी' के कलाम में और असातिज़ा[2] के कलाम में हज़ार जगह आया है। 'क़िराब' और 'सदाब' दोनों लुग़त अरबी उल[3] अस्ल, सही हैं।

-ग़ालिब

११५

हज़रत

इस ग़ज़ल में 'परवाना' व 'पमाना' व 'बुतख़ाना' तीन क़ाफ़िये असली हैं। 'दीवान' चूँके अलम क़रार पाकर एक लुग़त जुदागाना मुशक़्ख़स[4] हो गया है, इसको भी क़ाफ़िये असली समझ लीजिये। बाक़ी 'ग़ुलामाना' व 'मस्ताना' व 'मर्दाना' व 'तुर्काना' व 'दिलेराना' व 'शुकराना' सब नाजायज़ व ना मुस्ताहसन; ईना और ईता भी क़बीह। मुझे बहुत ताज्जुब है के इन्हीं क़ाफ़ियों में ईता का हाल तुम्हें लिख चुका हूँ और फ़िर तुमने ग़ज़ल मबनी[5] इन्हीं क़वाफ़ी पर रखी। 'काशाना' व 'शाना' व 'अफ़साना' व 'जानाना' व

---

१. बेचारा शब्द। २. उस्ताद (आचार्य) का ब. व.। ३. विशुद्ध अरबी। ४. निर्णीत। ५. आधारित।

'फ़र्ज़ाना' ये क़ाफ़िये क्यों तर्क किये, याद रहे, सारी ग़ज़ल में मर्दाना या मस्ताना या इनके नज़ायर[1] में से एक जगह आवे। दूसरी बैत में जिन्हार न आवे। ये ग़ज़ल नज़री हो गई और ग़ज़ल लिखकर के भेजो ता इस्लाह दी जाए।

अफ़ो का तालिब,
—ग़ालिब

११६

(१४ मई १८६५)

मिर्ज़ा तफ़्ता पीरशो[2] व बियामोज़,

तुम ख़ुशगो और ज़ूदगो[3] मुक़र्रर हो, लेकिन जिसको तुम तहक़ीक़ात कहते हो वो महज़[4] तहमात और तख़य्युलात[5] हैं क़यास दौड़ाते हो; वो क़यास[6] कहीं मुताबिक़[7] वाक़ै होता है, कहीं ख़िलाफ़। उर्फ़ी कहता है—

रूह[8] रा नाश्ता फ़िरस्तादी

याने रूह को तूने भूका भेजा! 'नाश्ता' उसको कहते हैं जिसने कुछ खाया न हो, हिन्दी उसकी निहार मुंह। तुम लिखते हो, अजब नाश्ता फ़िरस्तादी।

याने गिज़ा ए सुबह जैसा के हिन्दी में मशहूर है—'उसने नाश्ता भी किया है या नहीं?'

'वाक़िफ़' कहता है—

'न[9] मुहर्रमे क़फ़स न बदाम आशना शुदेम नफ़री कुनेम साअते परवाज़े

१. उदाहरण। २. मधुरभाषी। ३. तत्काल उत्तर देने वाला। ४. भ्रमपूर्ण। ५. काल्पनिक। ६. अनुमान। ७. घटना के अनुकूल। ८. आत्मा को तुमने भूखा भेजा। ९. न हम पिंजरे से परिचित हैं और न जाल से स्नेह रखते हैं। जिस क्षण हम लोग उड़े थे, उस क्षण से हमें घृणा है।

ख़ीशरा' ये भी हिन्दी की फ़ारसी है। 'बुरी घड़ी' और 'सुभ घड़ी', अहले ज़बान ऐसे मौके पर 'ताले[१]' लिखते हैं—

'नफ़रीं कुनेम ताल ए परवाज़े ख़ीशरा' 'क़तील' कहता है—

यक[२] वजब जाए बकूए तो ज़ेख़ूँ पाक न बूद।
कुश्ता बर कुश्ता तपाँ बूद दिगर ख़ाक न बूद।

यहाँ 'हे च न बुवद' का महल[३] है। हिन्दी मे 'कुछ नहीं' की जगह 'ख़ाक नहीं' बोलते हैं और फिर साहब 'बुरहाने क़ाते' का क्या जिक्र करते हो। वो तो हर लुग़त को तीनों हरक्कतों से लिखता है—ज़ेर, ज़बर, पेश का तफ़र्क़ा[४] मंज़ूर नहीं रखता है। लिखता है के यों भी आया है और यों भी देखा है। जिस लुग़त को काफ़े अरबी से लिखेगा, काफ़े फ़ारसी से भी बयान करेगा। जिस लफ़्ज़ को ताए[५] हुत्ती से लाएगा ताए[६] क़ुरेशत से भी जरूर लिखेगा। फ़ुज़ला[७] ए कलकत्ता के हाशिये देखो के वो उसकी क्या तहमीक़[८] करते हैं! 'नबिया' 'नबूवत' के मुश्तेक़ात[९] में से हर्गिज़ नहीं। 'इमामन' 'इमाम' के मुश्तेक़ात में से ज़िन्हार नहीं। नबीबख़्श का मुख़फ़्फ़फ़' 'नबिया', 'इमाम' का मुताल्लिक़ अगर मुजक्कर[१०] है तै इमामी, और अगर मुअन्नस[११] है तो 'इमामन'। 'तुग़रा' ने हिन्दी लुग़त के लाने का इल्तेज़ाम किया है—

वक़्त[१२] आँ आमद के मीना रागे हिन्दी सर कुनद।

---

१. भाग्य। २. तेरी गली में बित्ता भर ज़मीन भी खून से पवित्र न थी। लोथ पर लोथ तड़प रही थी, धूल नहीं थी। ३. स्थान। ४. अन्तर। ५. तोय (ط)। ६. ते (ت)। ७. कलकत्ता के विद्वान। ८. मूर्खता। ९. निकलना, बनना। १०. पुल्लिग। ११. स्त्री लिंग। १२. अब वह समय आ गया कि शीशी हिन्दी राग गाने लगी।

और असातिज़ा को इसका इल्तेज़ाम मंज़ूर नहीं। मगर क्या कहें ? 'गुड़-गाँवा' नाम है एक गाँव का। इसको क्यों कर बदले ? हाँ, गुर, बराए क़ुरेशत[1] कहेंगे। 'लखनऊ' नाम है एक शहर का, वो 'लकनऊ' बग़ैर 'हाय' मक़्लूता के कहेंगे। फ़ी ज़मानेना 'छापे' को 'चाप' बोलते हैं। 'उर्फ़ी' झक्कड़ को जक्कर बोलता है—

आँ[2] बाद के दर हिन्द गर आयद जक्कर आयद।

राय[3] सक़ीला, हाय[4] मक़्लूता, तशदीद[5] ये तीनों सिक़ालतें[6] मिटा दीं। साहब, बुरहाने क़ाता इस लफ़्ज़ को फ़ारसी बताता है और ज़बानेइल्मी अहले हिन्द में भी इसको मुश्तरक जानता है। अपने को रुसवा[7] और ख़ल्क़ को गुमराह करता है—

हर्ज़ा[8] मशिताब व पये जादा शनासाँ बरदार
अै के दर राहे सुख़न चूँ तो हज़ार आमदो रफ़्त

अहले हिन्द में सिवाय 'ख़ुसरो' देहलवी के कोई मुसल्लिमुल[9] सबूत नहीं, मियाँ फ़ैज़ी की भी कहीं कहीं ठीक निकल जाती है। फ़रहंग लिखने वालों का मदार क़यास पर है, जो अपने नज़दीक सही समझा वो लिख दिया। 'निज़ामी' व 'सादी' वग़ैरा की लिखी हुई फ़रहंग हो; तो हम उसको मानें। हिन्दियों को क्यों कर मुसल्लिमुल सुबूत जानें ? गाय का बच्चा बज़ोरे[10] सेहर आदमी की तरह कलाम करने लगा, बनी इसराईल[11] उसको ख़ुदा समझे। ये झगड़े-क़िस्से जाने दो। दो बातें सुनो—

---

१. रकार से। २. जो हवा भारत में आती है वह जक्कर होती है। ३. ऐसा रकार जिसका उच्चारण कोमल न हो। ४. महाप्राणत्व। ५. द्वित्व। ६. कठोरता। ७. बदनाम। ८. मूर्खता के कारण तेज मत दौड़। विज्ञों का अनुसरण कर। कविता के क्षेत्र में तुझ जैसे सहस्रों व्यक्ति आये और चले गये। ९. पूर्णतया प्रामाणिक। १०. जादू के बल पर। ११. यहूदी।

एक तो ये के—'अग़नून' को बग़ैने मजमूम मैंने सह्व[1] से लिखा। दर अस्ल 'अग़नून' ब ग़ैन मफ़्तूह और मुख़फ़्फ़फ़ इसका 'अग़न' और मुबद्दल[2] मने 'अर्गन' है।

दूसरे ये के जब मूसवीखाँ ने 'ऐवाये' को 'ऐवा' लिखा तो इस लफ़्ज़ की सेहत में कुछ ताम्मुल न रहा।

रामपूर से अप्रेल महीने का रुपया और ताज़ियत[3] व तहनियत[4] के खत का जवाब आ गया। आइन्दा जो ख़ुदा चाहे।

यकशंबा, १४ मई सन् १८६५ ई०।

नजात का तालिब,

—ग़ालिब

११७

साहब,

तुमने 'तनतन' का ज़िक्र क्यों किया? मैंने इस बाब में कुछ लिखा न था। 'तनतन' और 'तनना' असवात[5] हैं तार के। हिन्दी व फ़ारसी में मुश्तरिक[6]। 'नबिया' और 'इमामन' के लिखने को मैंने मना हर्गिज नहीं किया। शौक़ से लिखो। ये तुमको समझाया था के 'नबिया' मुख़फ़्फ़फ़ 'नबी बख़्श' और 'इमामन' मुताल्लिक़ ब 'इमाम' है। मुश्तक़्क़ात में से इसको तसव्वुर न करो। क़ायदादानाने इश्तक़्क़ाक़[7] तुम पर हँसेंगे।

'ऐवाये' के जितने शेर तुमने लिखे हैं सब माने[8] है ऐवा के और सनद 'ऐवाये' की। मूसवीखाँ ने बहस्बे ज़रूरत शेर 'ऐवा' लिखा है। 'तोहमतन' बरबज़्न 'क़लमज़न' है। 'फ़िरदौसी' ने सौ जगह शाहनामे में तोहमतनं बसुकून हाय हव्वज़ लिखा है। पस क्या इस लुगत की दो सूरतें क़रार पा गईं? लाहौलावला क़ूवता, लुग़त वही, बहर कते हाय हव्वज़ है।

---

१. भूल। २. बदलने पर। ३. शोक प्रदर्शन। ४. बधाई। ५. ध्वनि। ६. समान, संयुक्त। ७. निरुक्ति। ८. बाधक।

मैंने किस क़द्र कलाम को तूल दिया ? 'सायब' के शेर की हक़ीक़त शरह व बस्त से लिखी, तुमने हर्गिज़ अतना[1] न किया। 'अवा' को अलग समझे। 'मुसीबताह' को जुदा समझे। भला मेरे क़ौल को 'ग़ौज़े शुतर'[2] समझते हो ? निरा 'मुसीबताह' या 'हसरताह' बुरहाने क़ाता में या 'बहारे अजम' में हमको दिखा दो। वही वाय है के जब इसके बाद 'मुसीबता' या 'हसरता' या 'वेला' आता है, तो तहतानी को हज़फ़[3] करके 'वावेला' वग़ैरा लिखते हैं। चाहो 'अ वावेला' लिखो, चाहो 'वावेला' लिखो, चाहो आख़िर में हाय हव्वज़ लिखो जैसा के वा 'मुसीबताह' चाहो बे हाय हव्वज़ 'वा मुसीबता' और यही हाल है 'हसरत' व 'दर्द' व 'असफ़' व 'दरेग़' का। जहाँ 'अ' के साथ 'वा मुसीबता' पाओ वहाँ 'अ' को हर्फ़ेनिदा[4] और मनादा माने 'हमनशीं' और हमदम को मुक़द्दर समझो। फ़रहंग लिखने वालों ने अशारे[5] क़ुदमा में तरकीबें देखीं, अपना क़यास दौड़ा कर उसकी हक़ीक़त ठहराली, कहीं उनका क़यास ग़लत कहीं सही। सो उनमें ये 'दकनी' ऐसा क़ज़फ़हम[6] है के इसका क़यास सौ लुग़त में शायद दस जगह सही हो। मैंने साफ़ लिख दिया था के मूसवीख़ाँ के शेर की सनद पर 'अवा' को रहने दो। मगर 'सायब' के शेर में 'अवा' को अलग और 'मुसीबताह' को जुदा न समझो। तुम्हारे क़यास ने फिर तुम्हें कहीं का कहीं फेंका और तुमने भी कहा के 'सायब' ने 'अवा' लिखा है।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

११८

दिल[7] बसे दाग़दार बूदो न मुंद
दर नज़र हा बहार बूदो न मुंद

---

१. ध्यान। २. ऊँट का पाद। ३. लोप। ४. सम्बोधन वाचक अव्यय। ५. प्राचीन कवियों की कविता। ६. निर्बुद्धि। ७. हृदय बहुत दुःखी हो गया था, वह नहीं रहा। दृष्टि में वसन्त था, वह न रहा।

अगर 'बुवद' के आगे के वाव को मौक़ूफ़ और महज़्फ़[1] कर दोगे, तो हमारे नज़दीक कलाम सरासर बलीग़[2] हो जायगा।

मेरी जान, जो ख़िजालत[3] के मुझको तुम से है, शायद बसबब इबादत न करने के क़ियामत में ख़ुदा से भी न होगी और बसबब ख़िलाफ़े[4] शरा करने के पयंबर[5] से भी न होगी; मगर ख़ुदा ही जानता है जो मेरा हाल है।

मर्गे नागाह का तालिब—
—ग़ालिब

११९

मियाँ सुनो,

इस क़सीदे का ममदूह शेर के फ़न से ऐसा बेगाना है, जैसे हम तुम अपने अपने मसायले[6] दीनी से। बल्के हम तुम, बावजूद अदम[7] वाक़फ़ियते उमूर, दीन से नफ़ूर[8] नहीं और वो शख़्स इस फ़न से बेज़ार है। अलावा इसके वो अतालीक़[9] कहाँ? वहाँ से निकाले गये, दिल्ली में अपने घर बैठे हुए हैं। जब से आये हैं, एक बार मेरे पास नहीं आये, न मैं उनके पास गया। ये लोग इस लायक़ भी नहीं के इनका नाम लीजिये, चे जाये आँ के मदह कीजिये। हाय अनवरी—

अ[10] दरेग़ा नीस्त ममदूहे सज़ावारे मदीह
अ दरेग़ा नीस्त माशूक़े सज़ावारे ग़ज़ल

—ग़ालिब

---

१. लुप्त। २. परिष्कृत। ३. लज्जा। ४. धर्म शास्त्र के विरुद्ध। ५. हज़रत मुहम्मद। ६. धार्मिक विषय। ७. विषय की अनभिज्ञता के कारण। ८. घृणा करने वाला। ९. शिक्षक। १०. दुःख है अब कोई प्रशंसनीय नहीं है जिसकी प्रशंसा की जावे। शोक है कोई प्रेमिका नहीं जिसके लिए ग़ज़ल कही जाये।

१२०

(२८ नवंबर १८६५)

मेरे मेहरबान, मेरी जान, मिर्ज़ा तफ़्ता सुख़न्दान,

तुम्हारा सिकन्दराबाद और मेरे ख़त का तुम्हारे पास पहुँचना तुम्हारी तहरीर से मालूम हुआ। ज़िन्दा रहो और ख़ुश रहो। मैं नस्र की दाद और नज़्म का सिला[1] माँगने नहीं आया। भीक माँगने आया हूँ। रोटी अपनी गिरह से नहीं खाता, सरकार से मिलती है। वक़्ते रुख़सत मेरी क़िस्मत और मुनीम[2] की हिम्मत ! नवाब साहब अज़ रू ए सूरत[3] रूहे मुजस्सम और ब ऐतबारे[4] अख़लाक़ आयते[5] रहमत हैं। ख़ज़ान[6] ए फ़ैज़ के तहवीलदार[7] हैं। जो शख़्स दफ़्तरे[8] अज़ल से जो कुछ लिखवा लाया है, उसके पढ़ने में देर नहीं लगती। एक लाख कई हज़ार रुपये साल ग़ल्ले का महसूल माफ़ कर दिया। एक अहलेकार पर साठ हज़ार का महासिबा माफ़ कर दिया और बीस हज़ार नक़्द दिया। मुंशी नवलकिशोर साहब की अर्ज़ी पेश हुई। ख़ुलासा अर्ज़ी का सुन लिया। वास्ते मुंशी साहब के अतिया बतक़रीबे[9] शादी सबिया तजवीज़ हो रहा है। मिक़दार मुझ पर नहीं खुली। भाई मुस्तफ़ाख़ाँ साहब बतक़रीबे तहनियते मसनद[10] नशीनी व शुमूले जश्न[11] आनेवाले हैं। इस वक़्त तक नहीं आये। जश्न[12] यकुम दिसम्बर से शुरू, पंजुम दिसम्बर को ख़िलत का आना मसमू[13] !—

दोशंबा, २८ नवंबर सन् १८६५ ई०, वक़्ते चाश्त।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

---

१. प्रतिफल। २. दाता। ३. शरीरधारी। ४. शिष्टता की दृष्टि से। ५. दयालू। ६. ईश्वर प्रदत्त कोष। ७. रक्षक। ८. सृष्टि के आरम्भ के कार्यालय से। ९. लडकी के विवाह के अवसर पर। १०. राज्याभिषेक। ११. उत्सव में सम्मिलित होने के लिए। १२. उत्सव। १३. सुना जाता है।

१२१

लो साहब,

खिचड़ी खाई दिन बहलाये,
कपड़े फाटे घर को आये ।

८ जनवरी माह व साले हाल दोशबे के दिन ग़ज़बे[१] इलाही की तरह अपने घर पर नाज़िल[२] हुआ। तुम्हारा ख़त मज़ामीने[३] दर्दनाक से भरा हुआ रामपूर में मैंने पाया। जवाब लिखने की फ़ुर्सत न मिली। बाद रवानगी के मुरादाबाद में पहुँचकर बीमार हो गया, पाँच दिन सदरुलसुदूर साहब के हाँ पड़ा रहा। उन्होंने बीमारदारी और ग़मख़ारी बहुत की।

क्यों तर्के[४] लिबास करते हो ? पहनने को तुम्हारे पास है क्या जिसको उतार फेकोगे ? तर्के लिबास से क़ैदे हस्ती[५] मिट न जायेगी। बग़ैर खाये पिये गुज़ारा न होगा। सख़्ती व सुस्ती, रजो आराम को हमवार कर[६] दो। जिस तरह हो इसी सूरत से, बहर सूरत, गुज़रने दो।

ताब लाये ही बनेगी 'ग़ालिब'
वाक़आ सख़्त है और अज़ीज़

इस ख़त की रसीद का तालिब
—ग़ालिब

१२२

मिर्ज़ा तफ़्ता साहब,

परसों तुम्हारा दूसरा ख़त पहुँचा। तुमसे पर्दा क्या है ? एक फ़ुतूह[७] का मुन्तज़िर[८] हूँ। उसमें मैंने अपने ज़मीर[९] में तुमको शरीक कर रखा है। ज़माना

१. ईश्वरी कोप। २. अवतरित। ३. दुःखदायक विषय। ४. वस्त्र त्याग। ५. बन्धन। ६. अनुकूल। ७. ऊपरी आमदनी। ८. प्रतीक्षा में। ९. अन्तःकरण।

फ़ुतूह के आने का क़रीब आ गया है। इन्शा[1] अल्लाह् ख़त मेरा मय हिस्से फ़ुतूह जल्द पहुँचेगा। पण्डित बद्रीनाथ या बद्रीदास, डाक मुंशी करनाल, बा[2] आँ के मुझसे उससे मुलाक़ात ज़ाहिरी नहीं है, मगर मैं जब जीता था तो वो अपना कलाम मेरे पास इस्लाह के वास्ते भेजता था। बाद अपने मरने के मैंने उसको लिख भेजा के अब तुम अपना कलाम मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' के नाम भेज दिया करो। अब तुमको भी लिखता हूँ के तुम मेरे इस लिखने की उनको इत्तला लिखो।

मैं ज़िन्दा हूँ। ऊपर के लम्बर में जो अपने को मुर्दा लिखा है, वो ब ऐतबार तर्के इस्लाहे नज़्म लिखा है, वर्ना ज़िन्दा हूँ, मुर्दा नहीं, बीमार भी नहीं। बूढ़ा नातवाँ, मुफ़लिस क़र्ज़दार, कानों का बहरा, किस्मत का बेबहरा, जीस्त से बेज़ार, मर्ग का उम्मीदवार।

—ग़ालिब

१२३

हज़रत,

इस क़सीदे की जितनी तारीफ़ करूँ कम है। क्या क्या शेर निकाले हैं! लेकिन अफ़सोस के बे महल और बेजा है। इस मदह और ममदूह का बे ऐनेही वह हाल है के एक मुज़बले पर सेब का या बिही[3] का दरख़्त उग जाए। ख़ुदा तुमको सलामत रक्खे।

दूकाने बेरौनक़ के खरीदार हो।

१२४

मिर्ज़ा तफ़्ता, क्या कहना है! न 'ज़हीर' का पता, न 'ग़ालिब' का। मद्दाह[4] शाइस्ता सद[5] हज़ार आफ़रीं। और ममदूह सज़ावार सद नफ़रीं[6]।

---

१. ईश्वर ने चाहा तो। २. यद्यपि। ३. एक तरह का सेव। ४. प्रशंसक। ५. हज़ार प्रशंसाएँ। ६. घृणा।

मुंशी जवाहर सिंघ 'जौहर' के नाम

१

बरख़ुरदार मुंशी जवाहर सिंघ को बाद दुआए[1] दवाम उम्रो दौलत मालूम हो—

ख़त तुम्हारा पहुँचा। ख़ैरो आफ़ियत तुम्हारी मालूम हुई। जो तुमको मतलूब थे, उसके हुसूल[2] में जो कोशिश हीरासिंघ ने की है, मैं तुमसे कह नहीं सकता। निरी कोशिश नहीं, रुपया सर्फ़ किया। १५ रुपये जो तुमने भेजे थे वो, और पच्चीस तीस रुपये और सर्फ़ किये। पाँच पाँच और चार चार रुपये और दो दो रुपये को क़ते मोल लिये और बनवाये। ख़रीद में रुपये जुदा दिये और बनवाने में रुपये जुदा लगाये। दौड़ता फिरा। हकीम साहब पास कई बार जाकर हुज़ूरे वाला का क़ता लाया। अब दौड़ रहा है, [3] वली अहद बहादुर के दस्तख़ती क़ते के वास्ते। यक़ीन है के दो-चार दिन में वो भी हात आवे और बाद उस क़ते के आनेके वो सब को यकजा[4] करके तुम्हारे पास भेज देगा। मदद मैं भी उसकी कर रहा हूँ, लेकिन उसने बड़ी मशक़्क़त की। आफ़रीं सद आफ़रीं।

पन्द्रह रुपये में से एक रुपया अपने सर्फ़ में नहीं लाया और मा को आजिज़[5] करके उससे बहुत रुपये लिये। जब सब क़ते तुम्हारे पास पहुँचेंगे तब उसका हुस्ने[6] ख़िदमत तुम पर ज़ाहिर होगा।

---

१. दीर्घायु और समृद्धि का आशीर्वाद। २. प्राप्ति। ३. युवराज। ४. एक स्थान पर। ५. दुखी। ६. सुसेवा।

क्यों साहब, वो हमारी लुंगी अब तक क्यों नहीं आई ? बहुत दिन हुए जब तुमने लिखा था के इसी हफ़्ते में भेजूँगा । वद्दआ ।

असदुल्लाह्

२

(९ अप्रेल १८५६)

बरख़ुरदार,

तुम्हारे ख़तों से तुम्हारा पहुँचना और छापे के क़सीदे का पहुँचना और हीरा-सिंघ का इधर रवाना होना मालूम हुआ । हाँ, लाला छजमल अक्सर बीमार रहते हैं । इन दिनों में ख़ुसूसन[1] इस शिद्दत से नज़ला[2] छाती पर गिरा के वो घबरा गये और ज़ीस्त की तवक़्क़ो[3] जाती रही । बारे, कुछ फ़ुरसत हो गई है । भाई, ये आफ़ताबे[4] सरेकोह है, 'हीरा' का उनके पास रहना अच्छा है । तुमसे जो हो सकेगा तुम उसके मसारिफ़ के वास्ते मुक़र्रर कर दोगे ।

ग़ज़ल तुम्हारी हमको पसंद आई । इस्लाह देकर भेज दी गई । इसका तुम ख़याल रखा करो के किस लफ़्ज़ को किस माने के साथ पैवंद है ।

चरा[5] न यास बजाने उम्मीदवार उफ़्तद

यहाँ 'उफ़्तद' मोहमल है; 'यास बदिल उफ़्तादन' व 'यास बजान उफ़्तादन' रोज़मर्रा नहीं । और भी कई 'उफ़्तद' ऐसे ही हैं ।

सियाह[6] बख़्तम अगर बर सरम गुज़ार उफ़्तद
बसाने साया हुमा नीस्त सोगवार उफ़्तद

---

१. विशेष रूप से । २. जुखाम । ३. आशा । ४. अस्ताचलगामी सूर्य । ५. आशान्वित प्राण निराश क्यों न हो ? ६. मैं ऐसा अभागा हूँ कि मेरे मस्तक पर से हुमा भी उडे तो वह भी दुःखी हो जाएगा ।

सोगवार होना साये का बएतबार स्याही रंग है। अब यहाँ दोनों 'उफ़्तद' ठीक हैं। 'गुज़ार उफ़्तादन' रोज़मर्रा और दूसरा 'उफ़्तद' बमानी वाक़ए शवद।

शनीदा[1] अम ब जफ़ाए तो मुब्तलास्त अदू
चरा न शोर ब जाने उम्मीदवार उफ़्तद

'शोर उफ़्तादन' रोज़मर्रा है और 'यास उफ़्तादन' ग़लत।

बहैरतम[2] के ज़े दोज़ख़ कसाने दोज़ख़ रा
कुजा बरंद चो आहम शरारा बार उफ़्तद

"उफ़्तद" बमानी है वाक़ै शवद, ठीक है—

न गबरमो[3] न मुसलमाँ ब हैरतम के मरा
सिवाय दोज़ख़ो मीनो कुजा गुज़ार उफ़्तद

ये शेर तुम्हारा बहुत ख़ूब है। आफ़रीं।

क़रार[4] दर वतन अफ़्सुर्दा मी कुनद दिलरा
ख़ुशा ग़रीब के दूर अज़ दयारे यार उफ़्तद

यहाँ भी 'उफ़्तद' सही और बामानी।

नयम[5] रक़ीब के रुस्वाइयम ख़जिल न कुनद
ख़ुशस्त पेशम अगर यार पर्दादार उफ़्तद

---

१. सुनने में आया है शत्रु तेरे अत्याचार में ग्रस्त हो गया है। आशान्वित प्राण शोर क्यों न मचायें? २. मुझे आश्चर्य है, नरकवासियों को कहाँ ले जाया जाएगा; जब कि मेरी अग्निवर्षी साँसें उन पर पड़ेंगी। ३. न मैं पारसी हूँ न मुसलमान, मुझे नरक और स्वर्ग के अतिरिक्त कहाँ जाना पड़ेगा? ४. अपने देश में रहना मन को दुखी कर देता है, वह दरिद्र अच्छा जो प्रिय के नगर से दूर रहे। ५. मैं ऐसा रक़ीब नहीं कि बदनामी से लज्जित न होऊँ। बहुत अच्छी बात है यदि मेरा प्रिय अवगुण्ठन में आये।

यहाँ भी उफ़्तद बमानी 'वाक़ए शवद'।

तुरा[1] के शेव दिगर गूँ कुनी ब रस्मे बुताँ
ख़ुशस्त अगर ज़े जफ़ा बर वफ़ा क़रार उफ़्तद

उफ़्तद यहाँ भी ठीक है। बात इतनी ही थी के 'बुवद' गदला लफ़्ज़ था। 'कुनी' साफ़ है।

ख़ते[2] रुख़े तो बदिल दादा ख़त्ते आज़ादी
ख़ुशम के दर शिकने ज़ुल्फ़े ताबदार उफ़्तद

वो सूरत अच्छी न थी। ये तर्ज़ ख़ूब हो गई; माने का अयार कामिल हो गया।

चकद[3] ज़े ख़ामये जौहर सुख़न चुनाके मगर
ब ज़ोरे मौज दूर अज़ बहर बर किनार उफ़्तद

दौलतो इक़बाले रोज़ अफ़ज़ूँ रोज़ी बाद।

निशाश्ता शंबा, नहुम अप्रैल सन् १८५३ ई०।

—अज़ असदुल्लाह

३

(२ फरवरी १८६४ ई०)

बरख़ुरदार, कामगार, सआदत व इक़बाल निशाँ मुंशी जवाहरसिंघ जौहर को बल्लभगढ़ की तहसीलदारी मुबारक हो। 'पीपली' से 'नूह' आये। 'नूह'

१. यदि तू प्रेमिका की विरुद्ध-इच्छा के लिए अपना ढंग बदल दे तो अच्छा है। यदि अत्याचार के कारण तुझ में प्रेम उत्पन्न हो रहा है तो अच्छा है। २. (युवक प्रेमीसे) तुम्हारे चेहरे के बालों ने मुझे आज़ादी का ख़त लिख दिया है। (जब कुमार के चेहरे पर बाल आ गये तो प्रेमी को स्वतन्त्रता मिल गई)। अब मैं तेरी चमकदार अलकों में नहीं फसूँगा। ३. जौहर की लेखनी से शेर इस तरह निकल रहे हैं जैसे लहर की शक्ति से समुद्र के मोती किनारे पर आजाते हैं।

से बल्लभगढ़ गये। अब बल्लभगढ़ से दिल्ली आओगे। इंशा अल्लाह्। सुनो साहब, हकीम मिर्ज़ा जान खल्कुस्सिद्क़ हकीम आग़ा जान साहब के तुम्हारे इलाक़े तहसीलदारी में बसीग़े[1] तिबाबत मुलाज़िमे सरकारे अंगरेजी हैं। इनके वालिदे माजिद मेरे पचास बरस के दोस्त हैं। उनको अपने भाई के बराबर जानता हूं। इस सूरत में हकीम मिर्ज़ा जान मेरे भतीजे और तुम्हारे भाई हुए। लाज़िम है के उनसे यक दिल व यक रंग रहो और उनके मददगार बने रहो। सरकार से ये ओहदा बसीग़े[2] दवाम है; तुमको कोई नई बात पेश करनी न होगी। सिर्फ इसी अम्र में कोशिश रहे के सूरत अच्छी बनी रहे; सरकार के ख़ातिर निशाँ रहे के हकीम मिर्ज़ा जान होशियार और कार गुज़ार आदमी है।

—ग़ालिब

---

१. चिकित्सा सम्बन्धी विभाग। २. स्थायी।

सैयद बदरुद्दीन अहमद[1] के नाम

१

(१८५२ ई०)

मख़दूम[2] व मुकर्रम[3] जनाब 'फ़क़ीर' साहब की ख़िदमते आली में अर्ज़ किया जाता है के बहुत दिन से आपने मुझको याद नहीं किया और मुझको कुछ आपका हाल मालूम नहीं। बाबू साहब ख़ुदा जाने कहाँ हैं और किस काम में हैं। उनका भी कुछ हाल मुझको मालूम नहीं। मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' की तहरीर से बाबू साहब का हाल अक्सर और तुम्हारी ख़ैरो आफ़ियत गाह गाह दरियाफ़्त हो जाती थी। सो वो बहुत दिनों से अलीगढ़ में हैं। अगर चे ख़त उनके आते रहते हैं मगर उनको भी बाबू साहब का हाल मालूम नहीं और तुमसे तो बोद[4] ही हैं, फिर तुम्हारी ख़ैरो आफ़ियत क्या लिखें।

बहरहाल मक़सूद इस तहरीर से है के नवाब मीर अली नक़ी ख़ाँ साहब आपसे मिलेंगे। ये बहुत आली[5] ख़ानदान हैं। नवाब ज़ुल्फ़क़ार ख़ाँ और नवाब असद ख़ां की औलाद में से हैं और तुम्हारे मामू साहब याने नवाब मुहम्मद मीरख़ाँ मग़फ़ूर[6] के बड़े दोस्त हैं। अब ये नौकरी की जुस्तजू[7] को निकले हैं। आप इनकी ताज़ीम[8] व तौक़ीम में कोई दक़ीक़ा[9] फ़रो गुज़ाश्त न करें; और राज का हाल सब इन पर ज़ाहिर करें और अहाली ए सरकार[10]

---

१. ये फ़क़ीर के नाम से प्रसिद्ध थे। 'काशिफ़' काव्य नाम था। २. सेव्य। ३. दयालू। ४. दूर। ५. कुलीन। ६. स्वर्गीय। ७. खोज। ८. आदर-सत्कार। ९. साधन। १०. सरकार के परिचारक।

से उनको मिलवा दें; और बाबू साहब से जो इनको मिलवाइये तो ये मेरा ख़त, जो आपके नाम का है, जनाब बाबू साहब को पढ़वा दीजिये। क्या ख़ूब हो के ये उस सरकार में नौकर हो जाएँ और अगर नौकरी की सूरत न बने तो राज से इनकी रुख़सत[1] ब आईने शाइस्ता अमल में आवे। नवाब असद ख़ाँ आलमगीर[2] के वज़ीर थे और फ़रुख़सियर इनका बिठाया हुआ था। जब फ़रुख़सियर ने ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ को मार डाला तो अज़[3] रू ए 'क़ुतुबे तवारीख़' ज़ाहिर है के सल्तनत कैसी बरहम हो गई और फ़रुख़सियर पर क्या गुज़रा। क़िस्सा[4] कोताह, इनकी तक़रीब में जो मदारिज आप सर्फ़ करेंगे और जिस क़द्र आप इनकी बहबूद[5] में कोशिश करेंगें, अहसान मुझ पर होगा। ज़्यादा ज़्यादा।

—असदुल्लाह

२

(३ जनवरी १८५५)

हज़रत मख़दूम मुकर्रम व मुअज़्ज़म जनाब 'फ़क़ीर' साहब दामत[6] बरकातेहुम,

बादे बंदगी अर्ज किया जाता है के आपका इनायत नामा पहुँचा। हाल मालूम हुआ। बाबू साहब के वास्ते मेरा दिल बहुत जला। ज़माना इन दिनों में उनसे बरसरे इम्तेहान है। परवर दिगार उनको सलामत रखे और सब्रो[7] शिकेब अता[8] करे। इलाक़ ए[9] मुसायदते रोज़गार की वो सूरत शदायदे[10] रंज

---

१. अच्छे ढंग से। २. औरंगजेब। ३. क़ुतुबेतारीख़ नामक पुस्तक के अनुसार। ४. बात संक्षिप्त। ५. भलाई। ६. सदैव शुभ होता रहे। ७. धैर्य और सन्तोष। ८. प्रदान करे। ९. युग की अनुकूलता। १०. यात्रा का अधिक दुःख।

सफ़र की वो हालत नासाज़गारी ए मिज़ाज का वो रंग। इन सब बातों के अलावा ये कितनी बड़ी मुसीबत है के जवान दामाद मर जावे और बेटी बेवा हो जावे। मर्गो[1] ज़ीस्त का सरिश्ता ख़ुदा के हात है। आदमी क्या करे? दिल पर मेरे जो गुज़री है वो मेरा दिल जानता है। हां, बहस्बे ज़ाहिर ताज़ियतनामा लिखना चाहिए। हैरान हूँ के अगर ख़त लिखूँ तो किस पते से लिखूँ? लाचार अभी ताम्मुल[2] है। जब वो भरतपूर आ जाएँ तो आप उनके आने की मुझको इत्तला दीजिएगा, कुछ लिख भेजूँगा।

नवाब अली नक़ी ख़ाँ साहब के ख़त के जवाब में जो आपने मुझको लिखा वो मुझको याद रहेगा। जब नवाब साहब आ जाएँगे, मैं उनको समझा दूँगा। आप हिन्दी और फ़ारसी ग़ज़लें मंगाते हैं। फ़ारसी ग़ज़ल तो शायद एक भी नहीं कही। हाँ, हिन्दी ग़ज़लें क़िले के मुशाइरे में दो चार लिखी थी। सो वो या तुम्हारे दोस्त हुसेन मिर्ज़ा साहब के पास होंगीं या ज़ियाउद्दीन ख़ाँ साहब के पास। मेरे पास कहाँ? आदमी को यहाँ इतना तवक़्क़ुफ़ नहीं के वहाँ से दीवान मंगवाकर नक़ल उतरवा कर भेज दूँ।

सैयद मुहम्मद साहब को और उनके दोनों भाइयों को मेरी दुआ पहुँचे।

निगाश्त ए चार शंबा, १३रबी उस्सानी सन् १२७१ हि० मुताबिक़ ३ जनवरी सन् १८५५ ई०।

—असदुल्लाह

३

(२४ मई १८६३ ई०)

हज़रत,

आपके ख़त का जवाब लिखने में दिरंग इस राह से हुई के मैं मुन्तज़िर रहा मियाँ के आने का, अब जो वो मुझसे मिल गए और उनकी ज़बानी सारा

१. मृत्यु-जीवन। २. सोच विचार।

हाल सुन लिया तो जवाब लिखने बैठा। सुनो साहब—एक मुन्शी मुहम्मद तक़ी ही तो नहीं, यहाँ तो साता रोहन है। मुहम्मद तक़ी एक, उसकी दो बहनें-तीन, मुंशी आग़ा जान की तीन बेटियाँ और एक बेटा-चार, ये सात मुद्दई। एक इनमें से सैयद की बीबी भी सही। न वो हुक्काम हैं जिनको मैं जानता था न वो अमला है जिससे मेरी मुलाक़ात थी न वो अदालत के क़वायद हैं जिनको पचास बरस मैंने देखा है। एक कोने में बैठा हुआ, नैरंगे[1] रोज़गार का तमाशा देख रहा हूँ। 'या[2] हाफ़िज़' 'या हफ़ीज़' बिरदे ज़बान[3] है।

तुम्हारे भाई गुलाम हुसेनख़ाँ मरहूम[4] का बेटा हैदरहसनख़ाँ ख़ुदा ही है जो बचे। तेरहवाँ दिन है के न तपे[5] मुफ़ारिक़त[6] करती है न दस्त बन्द होते हैं, न कै मौक़ूफ़ होती है। चारपाई काट दी है, हवास ज़ायल[7] हो गए हैं। अंजाम[8] अच्छा नज़र नहीं आता। काम तमाम है। वस्सलाम वल अिकराम।

मरक़ूमा २४ जिक़ादा १२७९ हि०।

आफ़ियत का तालिब
—गालिब

४

(२५ मई १८६३ ई०)

सैयद साहब जमीलुल[9] मुनाक़िब आली ख़ानदान सआदत[10] व इक़बाल तवामान,

मुझको अपनी याद से गाफ़िल और सैयद अहमद की खिदमत से फ़ारिग़ न समझें। पर क्या करूँ? सूरते मुक़द्दमा अजीबो ग़रीब है। ये बहनें और इनका भाई बाहम माफ़िक़ रहेंगे तो कोई सूरत निकल आएगी। सामित[11] व

---

१. काल परिवर्त्तन। २. हे रक्षक। ३. रटन। ४. स्वर्गीय। ५. ज्वर। ६. दूर होना। ७. नष्ट। ८. फल। ९. सुप्रशंसनीय। १०. भलाई और प्रलय दोनों जिनके बन्धु हैं। ११. मौनी और बोलने वाला।

नातिक़, सीमोज़र,[१] रुपया-अशरफ़ी, सुनता हूँ के कुछ नहीं। हाँ जायदाद, सो सैयद के इज़हार से मालूम हुआ के वो तक़सीम न होगी। किराया उसका तक़सीम हो जाएगा। मैं राय क्या दूँ और समझाऊँ क्या? कई दिन हुए के मैं हुसेन मिर्ज़ा साहब के हाँ गया था। वहाँ 'मियाँ' भी बठा था। बाहम उन दोनों साहबों में यही बातें हो रही थीं। वो भी मेरे मानिंद हैरतज़दा[२] थे। क़ज़ा[३] व क़दर पर छोड़ो। नैरंगे[४] तक़दीर के तमाशाई रहो। घाटा नहीं, टोटा नहीं, नक़्द माल का पता नहीं। इमलाक[५] का किराया बॅट रहेगा। घबराते क्यों हो? ये दिल्ली वालों की ख़फ़क़ानियत[६] के हालात हैं।

तुम्हारा भतीजा याने हैदर हुसेनखाँ बच गया। अवारिज़[७] की आँधी दफ़ा हो गई। तवक्क़ो ज़ीस्त की क़वी[८] है। सिर्फ़ ताक़त का आना बाक़ी है। सदमा बड़ा उठाया है। महीना भर में जैसे थे वैसे हो जावेंगे। इंशा अल्लाह, अली उल अज़ीम।

सुबह दोशंबा, २५ मई सन् १८६३ ई०।

५

(सितम्बर १८३६ ई०)

पीरो मुर्शद,

आज नवाँ दिन है, हुसेन मिर्ज़ा साहब को अलवर गए। अगर होते तो उनसे पूछता के हज़रत मेरा दीवान किस मतबे में तबा हुआ और हाशिए उस पर किसने चढ़ाये! ख़ुदा जाने हुसेन मिर्ज़ा ने क्या कहा था और हज़रत क्या समझे? अब ये हक़ीक़त मुझसे सुनिए—सन् १८६२ ईस्वी याने साले गुज़िश्ता में 'क़ाते बुरहान' छपी। पचास जिल्दें मैंने मोल ली और ये वो ज़माना है के

१. चाँदी-सोना। २, आश्चर्य चकित। ३. भाग्य। ४. भाग्य चक्र। ५. स्थावर सम्पत्ति। ६. पागलपन, उन्माद। ७. बीमारी। ८. शक्तिशाली।

आप दिल्ली आए हैं, मैंने ये समझ कर के ये तुम्हारे किस काम की हैं तुम्हें न दी। तुम माँगते और मैं न देता तो गुनहगार था। अब कोई जिल्द बाक़ी नहीं है। रहा दीवान, अगर रेख़्ता का मुन्तख़ब[1] कहते हो तो वो इस अर्से में दिल्ली और कानपूर दो जगह छापा गया और तीसरी जगह आगरे में छप रहा है। फ़ारसी का दीवान बीस-पच्चीस बरस का अर्सा हुआ जब छपा था। फिर नहीं छपा। मगर हाँ साले गुज़िश्ता में मुंशी नवल किशोर ने शाहबुद्दीनखाँ को लिखकर 'कुल्लियाते फ़ारसी' जो ज़ियाउद्दीनख़ाँ ने ग़दर के बाद बड़ी मेहनत से जमा किया था वो मँगा लिया और छापना शुरू किया। वो पचास जुज़्व हैं याने कोई मिसरा मेरा उससे ख़ारिज नहीं। अब सुना है के वो छपकर तमाम हो गया है। रुपए की फ़िक्र में हूँ। हात आ जाए तो '६५' भेज कर बीस जिल्दें भिजवाऊँ। जब आ जाएँगी एक आपको भेज दूँगा। नवाब मुहिउद्दीनख़ाँ साहब का हाल सुनकर जी बहुत ख़ुश हुआ। मेरी तरफ़ से सलामो नियाज़[2] के बाद मुबारकबाद[3] देना।

---

१. संकलित। २. अभिवादन। ३. बधाई।

क़ाज़ी अब्दुल जमील 'जुनून' के नाम

१

(१८५४ ई०)

मख़दूम मुकर्रम व मुअज्ज़म[1] जनाब मौलवी अब्दुल जमील साहब की ख़िदमत में बाद[1] इबलाग़े सलामे मसनून अस्सलाम।

अर्ज़ किया जाता है के आपकी इरादत[3] मुझको ज़रिये[4] फ़ख्र व सआदत है। दो इनायत नामे आपके औक़ाते मुख़्तलिफ़[5] में पहुँचे। पहले ख़त के हाशिए और पुश्त पर अशार लिखे हुए हैं। स्याही इस तरह की फीकी के हुरूफ़ अच्छी तरह पढ़े नहीं जाते। अगरचे बीनाई[6] मेरी अच्छी है, और मैं ऐनक का मुहताज नहीं लेकिन बईंहमा[7] उसके पढ़ने में बहुत तकल्लुफ़ करना पड़ता ह। अलावा इसके जगह इस्लाह की बाक़ी नहीं। चुनाचे उस ख़त को आपकी ख़िदमत में वापिस भेजता हूँ ताके आप ये न समझें के मेरा ख़त फाड़ कर फेंक दिया होगा और माहाज़ा मेरा अँदेशा आपको बदीही[8] हो जाए।

आप ख़ुद देख लें के इसमें इस्लाह कहाँ दी जावे। वास्ते इस्लाह के जो ग़ज़ल भेजिए उसमें बैनुल अफ़राद[9] व बैनुल[10] मिसरेन फ़ासला ज्यादा छोड़िए। अब के ख़त में जो काग़ज़ अशार का है हुरूफ़ उसके रोशन हैं, मगर बैनुल[11] सुतूर मफ़क़ूद और इस्लाह की जगह मादूम। आपकी ख़ातिर

---

१. महान। २. इस्लाम में अभिवादन की जो प्रथा है उसे पहुँचाने के पश्चात् प्रणाम। ३. इच्छा। ४. गौरवास्पद। ५. विभिन्न समय। ६. दृष्टि। ७. इतना होने पर भी। ८. वास्तविक। ९. फ़र्द के बीच में। १०. शेर की दो पंक्तियों के मध्य में। ११. पंक्तियाँ नहीं हैं।

से रंजे[1] किताबत उठाता हूँ और इन दोनों ग़ज़लों को इस वर्क़ पर बाद इस्लाह लिखता जाता हूँ। मसविदा तो आपके पास होगा। उससे मुक़ाबिला कर कर मालूम कर लीजिएगा के किस शेर पर इस्लाह हुई और क्या इस्लाह हुई और कौन-सी बैत मौक़ूफ़ हुई।

मुशाइरा यहां शहर में कहीं नहीं होता, क़िले में शहज़ादगाने[2] तैमूरिया जमा होकर कुछ ग़ज़लख़ानी कर लेते हैं। वहां के मिसर[3] ए तरही को क्या कीजिएगा। और उस पर ग़ज़ल लिखकर कहाँ पढ़िएगा। मैं कभी उस महफ़िल में जाता हूँ और कभी नहीं जाता। और ये सोहबत ख़ुद चन्द रोज़ा[4] है। इसको दवाम[5] कहां? क्या मालूम है—अब ही न हो; अब के हो तो आइन्दा न हो।

वस्सलाम माउल ग्रिकराम।

—असदुल्लाह

२

(२० नवम्बर १८५५ ई०)

क़िब्ला,

आपको ख़त के पहुँचने में तरद्दुद क्यों होता है? हर रोज़ दो-चार ख़त अतराफ़ व जवानिब से आते हैं, गाह गाह अंगरेजी भी और डाक के हरकारे मेरा घर जानते हैं, पोस्ट मास्टर मेरा आशना[6] है। मुझको जो दोस्त ख़त भेजता है वो सिर्फ़ शहर का नाम और मेरा नाम लिखता है, मुहल्ला भी ज़रूर नहीं। आप ही इन्साफ़ करें के आप 'लाल कुआं' लिखते रहें और मुझको 'बल्लीमारों' में ख़त पहुँचता रहा। ये अबके आपने 'हकीम काले' का नाम कैसा लिखा है? इस ग़रीब को तो शहर में कोई जानता भी नहीं।

---

१. लिखने का कष्ट। २. तैमूर वंश के राजकुमार। ३. समस्या पूर्त्ति। ४. अल्पकालीन। ५. स्थायित्व। ६. परिचित।

ख़ुलासा ये के ख़त आपका कोई तलफ़ न हुआ; जो आपने भेजा वो मुझको पहुँचा। जवाब लिखने में जो मेरी तरफ़ से क़ुसूर वाक़े होता है उसके दो सबब हैं। एक तो ये के हज़रत महीना भर में नौ पते लिखते हैं। मैं कहाँ तक याद रखा करूँ? एक मकान हो तो उसको लिख रखूं। दूसरा सबब ये के शौक़िया ख़ुतूत का जवाब कहाँ तक लिखूँ और क्या लिखूं? मैंने आईने[1] नामा निगारी छोड़ कर मतलब नवीसी पर मदार[2] रखा है। जब मतलब ज़रूरी[3] उल तहरीर न हो तो क्या लिखूँ? अब के आपके ख़त में तीन मतलब जवाब लिखने के क़ाबिल थे—एक तो वो रुबाई जो आपने इस नंगे[4] आफ़रीनश की मदह में लिखी है, उसका जवाब बन्दगी है, और कोरनिश और आदाब। दूसरा मुद्दआ ख़त के न पहुँचने का वसवसा[5], सो उसका जवाब लिख चुका। तीसरा अमर जनाब मौलवी अल्लायारख़ाँ साहब का मेरे हाँ आना और मेरा उस वक़्त मकान पर मौजूद न होना, वल्लाह मुझको बड़ा रंज हुआ। अगर आपसे मिलें तो मेरा सलाम कहिएगा और मेरा मलाल उनसे बयान कीजिएगा। सुबह को मैं हर रोज़ क़िले को जाता हूँ। ज़ाहिरा मौलवी साहब अव्वल रोज़ आए होंगे। जब मैं सवार हो जाता हूँ तब भी दो-चार आदमी मकान पर होते हैं; मौलवी साहब बैठते, हुक़्क़ा पीते। मैं अगर क़िले जाता हूँ तो पहर दिन चढ़े आता हूँ। ज़्यादा इससे क्या लिखूँ?

निगाश्तए से शंबा, नहुम रबीउल अव्वल सन् १२७२ हि० मुताबिक़ २० नवम्बर १८५५ ई०।

—असद

३

(२८ अप्रेल १८५६)

पीरो मुर्शद,

फ़क़ीर हमेशा आपकी ख़िदमत गुज़ारी में हाज़िर और ग़ैर[6] क़ासर रहा

---

१. पत्र लेखन का नियम। २. आधार। ३. लिखने की आवश्यकता। ४. अपमानित। ५. दुःख, दुविधा। ६. निरपराध।

है। जो हुक्म आपका होता है बजा लाता है, मगर मादूम को मौजूद करना मेरी वसे[1] क़ुदरत से बाहर है। इस ज़मीन में के जिसका आपने क़ाफ़िया व रदीफ़ लिखा है, मैंने कभी ग़ज़ल नहीं लिखी। ख़ुदा जाने मौलवी दरवेश हसन साहब ने किससे उस ज़मीन का शेर सुनकर मेरा कलाम गुमान किया है। हरचंद मैंने खयाल किया, इस ज़मीन में मेरी कोई ग़ज़ल नहीं। दीवाने रेख़्ता छापे का, यहाँ कहीं कहीं है। अपने हाफ़िज़े पर ऐतमाद न कर कर उसको भी देखा, वो ग़ज़ल न निकली। सुनिये, अक्सर ऐसा होता है के और की ग़ज़ल मेरे नाम पर लोग पढ़ देते हैं। चुनाचे इन्हीं दिनों में एक साहब ने मुझे आगरे से लिखा के ये ग़ज़ल भेज दीजिये—

"असद" और लेने के देने पड़े हैं

मैंने कहा के लाहौला वला क़ूवता अगर ये कलाम मेरा हो तो मुझ पर लानत है। इसी तरह ज़माने [2]साबिक़ में एक साहब ने मेरे सामने ये मतला पढ़ा—

"असद" इस जफ़ा पर बुतों से वफ़ा की
मेरे शेर, शाबाश रहमत ख़ुदा की

मैंने सुनकर अर्ज़ किया के साहब जिस बुज़ुर्ग का ये मतला है उस पर बक़ौल[3] उसके ख़ुदा की रहमत[4] और अगर मेरा हो तो मुझ पर लानत। 'असद' और 'शेर' और 'बुत[5]' और 'ख़ुदा' और 'जफ़ा' और 'वफ़ा' ये मेरी तर्ज़ेगुफ़्तार नहीं है; भला इन दो शेरों में तो 'असद' का लफ़्ज़ भी है। वो शेर मेरा क्यों कर समझा गया? वल्लाह्, बिल्लाह्, वो शेर 'ख़िदंग' 'रंग' के काफ़िये का मेरा नहीं है। वस्सलाम।

---

१. सामर्थ्य। २. कुछ दिन पहले। ३. उसके कथनानुसार। ४. कृपा। ५. मूर्ति।

मुरसिले जुमा २५ माहे सियाम १२७५ हि० व १९ अप्रेल साले हाल १८५९ ई० ।

—ग़ालिब

४ (१)

(२८ अगस्त १८५९)

हज़रत,

क्या इरशाद होता है? आगे इससे जो आपके अशार आये थे वो दो दिन के बाद इस्लाह देकर भेज दिये। ख़त डाक में तलफ़ हो जाए तो मेरा क्या गुनाह ? आज आपका ये ख़त सुबह को आया। मैंने आज ही दोपहर को देखकर लिफ़ाफ़ा काट कर डाक में भिजवा दिया, अब पहुँचे या न पहुँचे। दो बातें सुनिये। 'तरह' ब सुकूने राय क़ुरेशत बमानी 'फ़रेब' है। लेकिन उर्दू में ये लफ़्ज़ मुस्तामिल नहीं। वो दूसरा लुग़त है—'तरह' बहरक़ते राय क़रश्त बरवज़्ने 'फ़रह' उसको बसकूने राय (मोहमिला) बोलना अवाम का मन्तख़ है। माज़िल्ला, अगर तक़रीर में इस तरह याने बसुकून बोलूँ तो (ज़बान अपनी) काट डालूँ।

चे जाए[२] आँ के, नज़्म मैं लाऊं !

हाँ, "ग़ज़ल तरह की," ज़मीन त (रह की ये बसुकूब है, और,) बमानी 'रविश' व 'तर्ज़' 'तरह' है, बफ़तहतीन[३]।

---

१. यह पत्र बहुत जीर्णावस्था में है। इस पत्र में किसी अन्य व्यक्ति ने भी फ़ारसी-उर्दू की कुछ ग़ज़लें लिखी हैं। मौलवी महेशप्रसाद ने इस पत्र को उद्धृत करते हुए कोष्ठकों में संभावित शब्द लिख दिये हैं, जिन्हें इस पत्र में यथा-स्थान दिखाने का प्रयत्न किया गया है। २. अतिरिक्त उसके। ३. ज़बर से पढ़ने योग्य।

द (स्ताँ····) 'अफ़साना' नहीं। 'दस्ताँ' के तीन माने-एक तो रुस्तुम (के बा) प (का नाम और वो आ, म (है' दूसरे····तीसरे) 'आवाज़े खुश'। और ये जो बुलबुल को 'हज़ार दास्तान' कहते हैं। 'सूफ़ी' और फ़रोमाया (लोग कहते) हैं। सही 'हज़ार दस्ताँ' है, याने बहुत तरह की आवाज़ें बोलता है।

जनाब मौलवी अहमद हसन साहब "अर्शी" को मेरा सलाम पहुँचे।

यक शंबा, २८ अगस्त १८५९ ई०।

५

(८ सितंबर १८५९)

साहब,

वो ख़त जिसमें अशार सैयद मज़लूम के थे मुझको पहुँचा और मैंने उस ख़त का जवाब तुमको भेजा और ज़िक्रे अशार क़लमन्दाज़[१] किया ? फ़ारसी क्या लिखूँ ? यहाँ तुर्की[२] तमाम है ! इख़वान[३] व अहबाब[४] या मक़तूल[५] या मफ़क़ूदुल[६] ख़बर ! हज़ार आदमी का मातमदार हूँ। आप ग़मज़दा और आप ग़मगुसार हूँ। इससे क़ते नज़र के तबाह और ख़राब हूँ मरना सिर पर खड़ा है। पा[७] ब रकाब हूँ।

'तरह' बिलफ़तह बमानी है नमूना। और बमानी फ़रेब सच, लेकिन 'तरह' बफ़तहतीन और चीज़ है। ग़यासुद्दीन रायपूर में एक मुल्ला ए[८] मकतबी था, नाक़िले[९] ना आक़िल। जिसका माख़िज़[१०] और मुस्तनद[११] अलै 'क़तील' का कलाम होगा, उसका फ़ने लुगत में क्या फ़रजाम होगा ?

१. छोड़ दिया। २. घमण्ड जाता रहा। ३. ४. बन्धुगण। ५. मारा हुआ। ६. गुमशुदा। ७. पाँव रकाब पर। ८. बालकों के अध्यापक। ९. बुद्धिपूर्वक नक़्ल भी नहीं कर सकता। १०. उद्धरण। ११. प्रामाणिक।

कीस्तम्[1] मन के ता अबद विज़ियम्

ला हौला वला क़ूवता ! ये मिसरा मेरा नहीं। 'ता अबद[2] बिज़ियम' ये फ़रसी लाला 'क़तील' की है, मेरा क़ता ये है—

कीस्तम्[3] मन के जाविदाँ बाशम
चूँ 'नज़ीरी' न मुंदो 'तालिब' मुर्द
वर बुगोयन्द दर कुदामीं साल
मुर्द ग़ालिब बुगो के 'ग़ालिब' मुर्द

ये माद्दए तरीख़े वफ़ात अज़[4] रूए नुजूम नहीं, बल्के अज़[5] रूए कश्फ़ है।

इनालिल्लाहे व इना इलहे राजऊन।
पंज शबा ८ सितम्बर सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

६

(२२ फरवरी १८६१)

हज़रत,

बहुत दिनों में आपने मुझको याद किया। साले गुज़िश्ता इन दिनों में मैं रामपूर था। मार्च सन १८६० ई० में यहाँ आ गया हूँ। अब यहीं मैंने आपका ख़त पाया है। आपने सरनामे पर रामपूर का नाम नाहक़ लिखा।

---

१. ऐसी कौन सी शक्ति मुझ में है कि मै अनन्तकाल तक जीवित रहूँगा। २. प्रलय पर्यन्त। ३. मुझमें ऐसी शक्ति नहीं कि मैं अमर रहूँगा जब कि 'नजीरी' मर गया और 'तालिब' जीवित न रहा। यदि कोई पूछे कि ग़ालिब कब मरा तो कहना ग़ालिब 'मुर्द' (१२७७ हि० में)। ४. ज्योतिष के अनुसार। ५. अन्तर्वाणी के अनुसार।

क़ाज़ी अब्दुल जमील 'जुनून' के नाम

हक़ ताला वाली ए रामपूर को सदो[1] सी साल सलामत रखे। उनका अतिया माह ब माह मुझको पहुँचता है। करम[2] गुस्तरी व उस्ताद[3] परवरी कर रहे हैं। मेरे रंजे सफ़र उठाने की और रामपूर जाने की हाजत नहीं।

मौलवी अहमद हसन 'अर्शी' के फ़िराक़[4] को मैं नहीं समझा के क्यों वाके हुआ। बल्के ये भी नहीं मालूम के आप और वो यक जा कहाँ थे और कब थे? ख़लीफ़ा हुसेन अली साहब रामपूर में मुझसे मिले होंगे मगर वल्लाह् मुझको याद नहीं। निसियान[5] का मर्ज़ लाहक़ है। हाफ़िज़ा गोया न रहा। शाम्मा[6] ज़ईफ़ व सामेआ[7] बातिल, बासरा में नुक़्सान नहीं। अलबत्ता हिद्दत[8] कुछ कम हो गई है।

पीरी[9] व सद ऐब चुनीं गुफ़्ता अन्द

बहरहाल, चूँके मैं दिल्ली हूँ और वो रामपूर गये हैं तो अलबत्ता वो आपके पयाम जो उनकी ज़बान के मुहव्वल थे बदस्तूर उनकी तहवील में रहे और मुझ तक न पहुंचे।

ये शहर बहुत ग़ारतज़दा है। न अशख़ास बाक़ी न अमकना। किताब–फ़रोशों से कह दूँगा, अगर मेरी नज़्मो नसर के रिसालों में से कोई रिसाला आ जाएगा तो वो मोल लेकर ख़िदमते आली में भेज दिया जाएगा।

"दिल ही तो है न संगो ख़िश्त" इला[10] आख़िर ही "बक़ीय[11] तुल नहीब वलगारत" एक दोस्त के पास कुछ मेरा कलाम मौजूद है, उससे ये ग़ज़ल लिखवा कर भेज दूँगा। दिल्ली में एक हकीम थे, उनका नसरुल्ला खाँ नाम था, वो मर गये। इस नाम का वकीले अदालते दीवानी कभी मेंने दिल्ली में नहीं सुना।

---

१. १३० वर्ष। २. दयाशीलता। ३. गुरु का पालन। ४. वियोग। ५. विस्मृति। ६. घ्राणशक्ति। ७. श्रवण शक्ति लुप्त। ८. गर्मी। ९. इसीलिए कहा गया–बुढ़ापा सौ ऐब! १०. इत्यादि। ११. नष्ट होने से शेष।

कैसा डेरापूर, कैसा कानपूर ? अब मैं किससे पूछता फिरूँ के नसरुल्ला ख़ाँ के तुम आशना हो या नहीं ? जब हज़रत को उनका मस्कन मय औहदा मालूम है तो फिर उनके अहबाब को क्यों ढूँढते हो ? ग़ज़ल बाद इस्लाह के पहुंचती है।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

'नंगे पावँ' वाव के ज़म्मे[१] को इशब कैसा ? ये तो तर्जुमा 'या बम' का है और फिर पावँ की ये इमला ग़लत; 'पांव' 'गाँव' 'छाँव'। 'घँसीटेगा' नून कैसा ? 'घसीटेगा' इमला यों है।

७

(३० जून १८६१ ई०)

जनाब क़ाज़ी साहब को बन्दगी पहुँचे।

इनायत नामे के वुरूद ने शादमाँ किया, मगर उमूर मुबहमाँ[२] जो निगारिश[३] पिज़ीर थे उन्होंने हैरान किया। इबहाम की तौज़ीह और इजमाल[४] की तफ़सील का मुश्ताक़[५] हूँ। आमों के बाब में जो कुछ लिखा ये क्यों लिखा ? इहदा[६] को दवाम क्या ज़रूर है, ख़ुसूसन जब के बज़ाते ख़ुद हादिस[७] हो। हज़रत, अब के साल हरजगह आम कम हैं और जो कुछ हैं वो ख़ुश्क और बेमज़ा हैं। आम कहाँ से हो ? न महावट न बरसात; दरिया पायाब[८] हो गये, कुएँ सूख गये, असमार[९] में तरावत कहाँ से हो ? जनाब इसका खयाल न

---

१. पेश का सन्देह। २. संदिग्ध। ३. लिखित। ४. संक्षिप्त। ५. इच्छुक। ६. उपदेश। ७. नाशमान। ८. सूख गये। ९. फल (समर ब० व०)।

फ़रमावें। अपने कश्फ़[1] को गलत कर दूँगा। बर[2] शिगाले आइंदा तक जीऊँगा, आपके मोहब्बती[3] आम खाऊँगा।

सियम जून सन् १८६१।

जवाब का तालिब
—ग़ालिब

८

....सलामत्,

ये ओहदा आपको मुबारक हो और मुझको इसी तरह सदरुल[4] सुदूरी के मनसब[5] को मुबारक बाद लिखनी नसीब हो। ग़ज़लें देख कर भेजता हूँ। अब के इस्लाह की हाजत कम पड़ी।

'बुर्दाई' 'रफ़्ताई' में जितने अल्फ़ाज़ हैं इनमें याये तहतानी नहीं लिखते। बस वही हाय इन बाये हरकत रहती है। पस अगर वो साकिन है तो 'रफ़्ता' 'बुर्दा' इस सूरत पर रहेगी और अगर उसको हरकत लाजिम आये तो अलामते हरकत हम्ज़ा लिख दिया जाएगा—'रफ़्तई' 'आमदई' और इन मफ़ऊल के सब सीग़ों का यही हाल है। 'पान' का शेर काट डाला, वजह ये के पहले तो मैं 'पान' का नून बेऐलान बरवज़न 'आँ' पसंद नहीं करता।.....[6]

९

(२९ सितम्बर १८६१ ई०)

जनाब मख़दूम मुकर्रम को मेरी बन्दगी।

तफ़क्क़ुद[7] नामा मरक़ूमे २१ सितम्बर मैंने पाया। हज़रत के सलामते हाल पर ख़ुदा का शुक्र बजा लाया। कोई महकमा तख़फ़ीफ़ में आए, कोई गाँव

१. अन्तर्वाणी। २. वर्षाऋतु। ३. प्रेम भरे। ४. धर्माध्यक्ष। ५. प्रतिष्ठा। ६. मूल पत्र इतना ही उपलब्ध है। ७. स्नेह पत्र।

मसलन लुट जाए, आपका ओहदा आपको मुबारक, आपका दौलतख़ाना सलामत। हाँ, वो जो अपने इब्नुलख़ाल[1] का इस महकमे में वकील होने का आपको खटका है, अलबत्ता बजा है। जब आप ज़ाहिर कर चुके हैं तो अब उसका अन्देशा क्या है? हाकिम समझ लेगा। वो वकील हैं, महकमे मुन्सफ़ी में न रहेंगे, महकमे सदर अमीन व सेशन जज में काम करेंगे।

मैं न तन्दुरुस्त हूँ न रंजूर हूँ। ज़िन्दा बदस्तूर हूँ। देखिए कब बुलाते हैं और जब तक जीता रहूँ और क्या दिखाते हैं। वस्सलाम। बालूफ़ुल[2] अहतराम।

यकशंबा २९ सितम्बर सन १८६१ ई०।

नजात[3] का तालिब
—ग़ालिब

१०

अज़ असद बन्दगी ब रसद[4]।

हज़रत ये ग़ज़ल क़ताबन्द है, पस ख़िताब मतला में चाहिए। मतले दो दो लिखने ये ईजाद[5] रेख़्तावालों का है।

जनाब मौलवी असासुद्दीन की ख़िदमत में सलामे नियाज़।

११

ऐ मुशफ़िक़े[6] मन, 'ना मरबूत' और 'कबीह', टकसाल बाहर है। इस शेर को दूर करो। अगर कोई और शेर हात न आए और इसीको रखना चाहें तो यों रखो—

"गालियाँ देते हो क्यों मुशफ़िके[6] मन ख़ैर तो है?"

—ग़ालिब

---

१. खाल का पुत्र, दुष्ट। २. सहस्र अभिवादनों द्वारा मैं आपका आदर करता हूँ। ३. मुक्ति का अभिलाषी। ४. असद का अभिवादन पहुँचे। ५. आविष्कार। ६. प्रेमी।

१२

आदाब अर्ज़ करता हूँ और चारों ग़ज़लें देखकर जा बजा हक व इस्लाह करके भेजता हूँ।

—असद

१३

'ख़स्ता काम' व 'अन्देशाकाम' दोनों लफ़्ज़ टकसाल बाहर हैं। हा, 'नाकाम' और 'दुश्मनकाम' व 'दोस्तकाम' लिखते हैं और 'तिश्नाकाम' और तरकीब है; 'काम' बमाने 'तालू' के हैं; न बमानी 'मक़सद' व मुद्दआ।

काग़ज़ लिफ़ाफ़े में इस तरह लपेटा कीजिए के खुलने की जगह बाक़ी रहे।

१४

'तड़फना' तर्जुमा 'तपीदन' का इमला यों है—न 'तड़पना'; बाए फ़ारसी और नून के दरमियान हाय मक़्लूतुल[1] तलफ़्फ़ुज़ ज़रूर है।

माशूक़ को 'साहब' लिखना चाहिए न के 'हज़रत' और जो एक दो जगह इस्लाह है, उसकी तौजी की हाजत नहीं। फ़ारसी ग़ज़ल खैर आपका जी चाहे तो रहने दीजिए। जिस तरह उसमें कहीं सुक़्म नहीं उसी तरह लुत्फ़ भी नहीं।

नजात का तालिब

—गालिब

---

१. स्पर्श ध्वनि।

१५

'ज़ बेरूने ख़ाना' का लफ़्ज़ ख़िलाफ़े रोज़मर्रा। अलावा इससे ये अेहतमाल होता है के मगर ख़ुद उस शख़्स के घर में दख़ले ग़ैर है।

१६

(१९ जून १८६३ ई०)

जनाब मौलवी साहब,

आपके दोनों ख़त पहुंचे। मैं ज़िन्दा हूं, लेकिन नीममुर्दा[1]। आठ पहर पड़ा रहता हूं, अस्ल साहबे फ़राश मैं हूं। बीस बीस दिन से पाँव पर वर्म हो गया है। कफ़े पा[2] व पुश्ते पा[3] से नौबत गुज़र कर पिंडली तक आमास[4] है; जूते में पाँव समाता नहीं। बौलो[5] बराज़ के वास्ते उठना दुश्वार। ये सब बातें एक तरफ़, दर्द मुहल्लिले रूह[6] है। सन् १२७७ हि० में मेरा न मरना सिर्फ़ मेरी तकज़ीब[7] के वास्ते था। मगर इस तीन बरस में मैं हर रोज़ मर्गे[8] नौ का मज़ा चखता रहा हूँ। हैरान हूँ के कोई सूरत ज़ीस्त की नहीं। फिर मैं क्यों जीता हूँ। रूह मेरी अब जिस्म में इस तरह घबराती है जिस तरह तायर[9] क़फ़स[10] में। कोई शग़ल,[11] कोई अख़्तलात[12], कोई जलसा, कोई मजमा पसन्द नहीं। किताब से नफ़रत, शेर से नफ़रत, जिस्म से नफ़रत, रूह से नफ़रत ये जो कुछ लिखा है, बेमुबालिग़ा और बयाने[13] वाक़ै है।

खुर्रमां[14] रोज़ेकज़ी मंज़िले वीराँ बरवम

---

१. अर्द्धमृत। २. पाँव के पंजे का निचला हिस्सा। ३. पाँव के पंजे का ऊपरी हिस्सा। ४. शोथ। ५. मूत्र-शौच। ६. प्राण घातक। ७. असत्यता। ८. नई मृत्यु। ९. पक्षी। १०. पिंजरा। ११. चस्का। १२. प्रेम। १३. यथार्थ वर्णन। १४. मुझे उस दिन प्रसन्नता होगी जब मैं सुनसान जंगल में चला जाऊँगा।

ऐसे मख़मसे[1] में अगर तहरीरे जवाब में कासिर रहूँ तो माफ़ हूँ।

सुबह् जुमा यकुम मुहर्रम सन १२८० हि० मुताबिक़ १९ जून १८६३ ई०।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

१७

(३० नवम्बर १८६३ ई०)

जनाब क़ाज़ी साहब को मेरी बन्दगी पहुँचे। मुकर्रमी मौलवी गुलाम ग़ौसख़ाँ बहादुर मीर मुंशी का क़ौल सच है। अब मैं तन्दुरुस्त हूँ। फोड़ा-फुन्सी, ज़ख़्म, जराहत कही नहीं; मगर ज़ोफ़[2] की वो शिद्दत है के ख़ुदा की पनाह। ज़ोफ़ क्यों कर न हो। बरस दिन साहबे फ़राश रहा हूँ। सत्तर बरस की उम्र, जितना ख़ून बदन में था बे मुबालिग़ा आधा उसमें से पीप होकर निकल गया। सिने नमू[3] कहाँ, जो अब फिर तौलीदे[4] दम सालेह हो? बहर हाल, ज़िन्दा हूँ और नातवाँ और आपकी पुरसिश[5] हाय दोस्ताना का ममनूने अहसान। वस्लाम माउल अिकराम।

दो शंबा १८ जमादिस्सानी सन् १२८० हि० मुताबिक सियम नवम्बर सन १८६३ ई०।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

---

१. सघर्ष। २. निर्बलता। ३. बढ़ने की आयु (युवावस्था)। ४. अच्छे रक्त की उत्पत्ति। ५. मित्रों की पूछताछ।

१८

(१५ दिसंबर १८६३)

क़िब्ला,

मुझे क्यों शर्मिन्दा किया ? मैं इस सना व[1] दुआ के क़ाबिल नहीं। मगर अच्छों का शेवा[2] है, बुरों को अच्छा कहना। इस मदह गुस्तरी[3] के ऐवज में आदाब बजा लाता हूँ।

सेशंबा १५ दिसंबर सन् १८६३ ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

१९

(७ जनवरी १८६४ ई०)

जनाब क़ाज़ी साहब को सलाम और क़सीदे की बन्दगी। अगर मुझे क़व्वते[4] नाज़िमा पर तसर्रुफ़ बाक़ी रहा होता तो क़सीदे की तारीफ़ में एक क़ता और हज़रत की मदह में एक क़सीदा लिखता। बात ये है के जो मैं शाइस्त ए[5] मदह नहीं तो ये सिताइशे[6] राजे आपकी तरफ़ होगी। गोया ये क़सीदा आप ही की मदह में है। मैं अब रंजूर[7] नहीं, तन्दुरुस्त हूँ, मगर बूढ़ा हूँ। जो कुछ ताक़त बाक़ी थी वो इस इब्तिला[8] में ज़ायल[9] हो गई। अब एक जिस्मे[10] बेरूह मुतहरिक हूँ।

---

१. प्रशंसा। २. रीति। ३. प्रशंसा-कथन। ४. कवित्व शक्ति। ५. प्रशंसनीय। ६. आप की प्रशंसा के योग्य। ७. दुःखी। ८. संघर्ष। ९. नाश। १०. निर्जीव किन्तु चलता फिरता शरीर।

क़ाज़ी अब्दुल जमील 'जुनून' के नाम

यके[1] मुर्दा शख़्सम बमुर्दी रवाँ

इस महीने याने रज्जब सन १२८० से सत्तरवाँ बरस शुरू और असक़ाम[2], आलाम[3] का शुरू है। लामौजूद[4] इल्लिल्लाह् वला मौअस्सिर फ़िल उजूद इल्लिल्लाह्।

बिस्त[5] हफ़्तुम रज्जब व हफ़्तुम जनवरी।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

२०

(७ फरवरी १८६४ ई०)

महे शवाल को क्या देखे 'जुनूने' ग़मगी
ख़ंजरे नाज़ नहीं अब्रू ए ख़मदार नहीं

पीरो मुर्शद,

माहे शव्वाल[6] को ख़ंजरो शमसीर से क्या इलाक़ा ? हिलाले[7] रमज़ान देखकर तलवार को देखते हैं और हिलाले[8] शव्वाल देखकर सब्ज़ कपड़ा मुशाहिदा[9] करते हैं।

अशार बहुत हैं। उनमें से किसी शेर को मकता[10] कर दीजिये।

हफ़्तुम फ़रवरी सन् १८६४ ई०।

—ग़ालिब

---

१. निर्जीव हूँ किन्तु साहस से चलता फिरता हूँ। २. निर्बलता। ३. विपत्तियाँ। ४. ईश्वर के अतिरिक्त किसी का अस्तित्व नहीं, ईश्वर के अतिरिक्त कोई शेष नहीं रहेगा। ५. २७। ६. रमजान के पश्तात् शव्वाल का चाँद। ७. रमजान का प्रथम दिवसीय चन्द्र। ८. रमजान के पश्चात आने वाला महीना। ९. देखना। १०. ग़ज़ल का अँतिम शेर जिसमें कवि का काव्य-नाम रहता है।

२१

(१९ मार्च १८६४)

हज़रत,

ग़ज़ल सरासर हमवार[1] व ज़ौक़ अंगेज़ है। एक शेर में एक लफ़्ज़ बनाया गया, एक शेर का पहला मिसरा बदल दिया गया।

मोमिनख़ाँ के इस मिसरे में तरद्दुद क्या है?
तुमसे दुश्मन की मुबारक बाद क्या?

'से' बमाने 'अज़' नहीं है, बल्के बमाने 'मिस्ल'[2] व 'मानिन्द' है।
याने[3] चूँ तो दुश्मन अगर तहनियत देहद बराँ चे ऐतबार

"वस्ल के वादे से हो दिल शाद क्या
तुम से दुश्मन की मुबारकबाद क्या?"

याने अगर तुमने कहा के लो मुबारक हो, कल हम आएँगे या तुम्हें बुलाएँगे, हम ऐसे वादे से क्या खुश हो? तुम जैसे दुश्मन के मुबारकबाद देने से क्या होता है?

—ग़ालिब

२२

(४ अप्रैल १८६४)

सहसवान के साहब अगर 'क़ाते बुरहान' का जवाब लिखते हैं, खुदा उनको ये तौफ़ीक़ दे के इबारत के माने समझ लें, तब जवाब लिखें। वस्सलाम।
चहारुम अप्रैल सन् १८६४ ई०।

---

१. सुरुचिपूर्ण। २. समान। ३. यदि तुम जैसा शत्रु बधाई दे तो उसका क्या विश्वास?

२३

(८ मई १८६४)

हज़रत सलामत,

मियाँ क़ुदरतुल्लाह साहब का तरद्दुद बजा[१]। 'पेश अज़ सुबह सादिक़' नमाज़ कैसी ? ये कातिबे अव्वल खूबी और नक़ल करने वालों की ग़फ़लत है। अस्ल फ़िक़रा यों है—

खुद[२] बदौलत पेश अज़ सुबहे सादिक़ बरख़ास्ता बादे बाँगे सलात बाजमाते फ़ुज़ला नमाज़े सुबह अदा कर्दा बझरोकए दर्शन तशरीफ़ मी आवुर्दन्द।

हज़रात ने 'बनफ़्से नफ़ीस' बढ़ा दिया और बरख़ास्ता को बजब्र[३] उठा दिया। सुबह सादिक़ से पहले याने दो तीन घड़ी रात रहे उठते और ज़रूरियात से फ़राग़त करते। वज़ू[४] के मरासिम[५] बजा लाते। जब मौज़्ज़न[६] अज़ाँ देता, जमात की नमाज़ पढ़ते। रफ़्[७] ए हवायज ज़रूरी को 'बरख़ास्ता' के बाद मुक़द्दर छोड़ जाना बलाग़त[८] है। याने उस वक़्त के अफ़ाल बौलो[९] बराज़ हैं; इनका ज़िक्र मकरूहे तबा[१०] है उमूमन और बनिस्बते[११] बादशाह से सूए[१२] अदब है खुसूसन। और ये जो फ़क़ीर 'बनफ़्से नफ़ीस' को ग़लत कहता है, यहाँ एक दक़ीक़ा है। याने बहुत काम ऐसे हैं के आदमी आप भी कर सकता है और ख़ादिम से ले सकता है। मसलन चिलम पर आग धरना या

---

१. उचित। २. उषःकाल में उठकर अज़ाँ के पश्चात् योग्य व्यक्तियों के साथ प्रातःकाल की नमाज़ पढ़ कर दर्शन देने के लिए झरोखे में आते थे। ३. हठपूर्वक। ४. नमाज़ से पूर्व अंगन्यास और करन्यास जैसी क्रिया। ५. रस्में। ६. मस्जिद में नमाज़ पढ़ने वाला। ७. दैनिक कृत्य। ८. अच्छाई। ९. मल-शौच। १०. अरुचिपूर्ण। ११. बादशाह के लिए। १२. अशिष्टता।

पायख़ाने में लोटा ले जाना। और बहुत काम ऐसे हैं के हर शख़्स की ज़ात से ताल्लुक़ रखते हैं। दूसरा नयाबतन[1] नहीं कर सकता, मसलन हुक़्क़ा पीना या पायख़ाने जाना। सोना, जागना, उठना, बैठना भी इसी क़बील[2] से है। पस अफ़ाले[3] मुश्तरिका में 'बनफ़्से नफ़ीस' लिख सकते हैं और अफ़ाले[4] मख़सूसा में 'बनफ़्से नफ़ीस' की क़ैद लग़ो और पोच और मोहमल है। मैं करूँ क्या? फ़िलहाल दूदमाने[5] मानी का वो हाल है जो हिन्दुस्तान का ग़दर के बाद हो गया। जोहला[6] जानते नहीं। उल्मा[7] अतना[8] नहीं करते। छापे को तौक़ी[9] ए इलाही समझते हैं। नुस्ख़ए-मतबूआ में ग़लती का अहतमाल जायज़ नहीं रखते। कापी नवीस के जुर्म में मुसन्निफ़[10] बेचारा माख़ूज[11] होता है।

दाद का तालिब

—ग़ालिब

२४

(२८ जून १८६४)

क़िब्ला,

१२० आम पहुँचे। ख़ुदा हज़रत को सलामत रखे। १० क़लमें और छटाँक भर स्याही कहार के हवाले कर दी है। ख़ुदा करे बहिफ़ाज़त आपके पास पहुँचे। मैं मरीज़ नहीं हूँ, बूढ़ा हूँ और नातवाँ। गोया नीम जान रह गया हूँ।

---

१. प्रतिनिधि के रूप में। २. ढंग। ३. संयुक्त कार्य। ४. व्यक्तिगत कार्य। ५. परिवार, वंश। ६. निरक्षर। ७. विद्वान। ८. ध्यान। ९. ईश्वरादेश। १०. लेखक। ११. अपमानित।

एक कम सत्तर बरस दुनिया में रहा, कोई काम दीन का नहीं किया। अफ़सोस, हज़ार अफ़सोस।

सेशंबा २८ जून सन् १८६४ ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

२५

(२४ अगस्त १८६४ ई०)

जनाबे आली,

वो ग़ज़ल जो कहार लाया था वहाँ पहुँची जहाँ अब मैं जाने वाला हूँ याने अदम। मुद्दआ ये के गुम हो गई।

घात में मुद्दआ बर[1] आरी को
हमने ग़ैर की ग़म गुसारी की

तक़दीम[2] व ताख़ीरे[3] मिसरतैन[4] करके रहने दो; इसमें कोई सुक़्म नहीं। 'मुद्दआ बरारी' कायथों का लफ़्ज़ है। मैं इस तरह के अलफ़ाज़ से अहतराज़ करता हूँ, मगर चूँके 'मिन हैसुल माना' ये लफ़्ज़ सही है, मुज़ायक़ा नहीं।

क़तर ए मय बस के हैरत से नफ़स परवर हुआ
ख़त्ते जामे मय सरासर रिश्त ए गौहर हुआ

इस मतले में ख़याल है दक़ीक़ मगर कोह[5] कंदन व काह[6] बर आवुर्दन याने लुत्फ़ ज़्यादा नहीं। क़तरा टपकनें में बे अख़्तियार है, बक़दरे यक[7] मिज़ा

१. सफलता। २. आगे। ३. पीछे। ४. दो चरण। ५. पहाड़ खोदना। ६. घास मिलना। ७. एक पलक।

बरहम[1] ज़दन सिबातो[2] क़रार है, हैरत इज़्ज़ालए[3] हरकत करती है; क़तर ए[4] मय इफ़राते हैरत से टपकना भूल गया। बराबर बराबर बूँदें जो थमकर रह गईं तो ख़याली का ख़त बसूरत उस तागे के बन गया जिसमें मोती पिरोये हों।

लेता न अगर दिल तुम्हें देता कोई दम चैन
करता जो न मरता कोई दिन आहो[5] फ़ुग़ाँ और

ये बहुत लतीफ़ तक़रीर है। 'लेता' कोरब्त 'चैन' से; 'करता' मरबूत[6] है 'आहो फ़ुग़ाँ' से। अरबी में तक़ीदे लफ़्ज़ी[7] व मानवी[8] दोनों मायूब[9] है। फ़ारसी में ताक़ीदे मानवी ऐब और ताक़ीदे लफ़्ज़ी जायज़ है बल्के फ़सीह[10] और मलीह[11] रेख़्ता तक़लीद[12] है फ़ारसी की। हासिले[13] मानी ए मिसरैन ये के अगर दिल तुम्हें न देता तो कोई दम चैन लेता, अगर न मरता तो कोई दिन और आहो फ़ुग़ाँ करता।

मिलना नहीं तेरा आसाँ तो सहल है
दुश्वार तो यही है के दुश्वार भी नहीं

याने अगर तेरा मिलना आसान नहीं तो ये अम्र मुझ पर आसान है। ख़ैर तेरा मिलना आसान नहीं, न सही, न हम मिल सकेंगे न कोई और मिल सकेगा, मुश्किल तो ये है के वही तेरा मिलना दुश्वार भी नहीं। जिससे तू चाहता है मिल भी सकता है। हिज्री[14] को तो हमने सहल समझ लिया था मगर रश्क

---

१. पलक बन्द करना। २. दृढ़ता और धैर्य। ३. गतिहीनता। ४. सुरा विन्दु। ५. निःश्वाशस रुदन। ६. संयुक्त। ७. शाब्दिक। ८. अर्थ सम्बन्धी। ९. दोषपूर्ण। १०. परिमार्जित। ११. सलोना। १२. अनुकरण। १३. दो चरणों से निकलने वाला अर्थ। १४. वियोग।

मगर रश्क[1] वो अपने ऊपर आसान नहीं कर सकते।

> हुस्न और उस पै हुस्ने ज़न, रह गई बुल हविश की शर्म
> अपने पै अैतमाद है गै़र को आज़माए क्यों ?

मौलवी साहब, क्या लतीफ़ माने हैं ? दाद देना। हुस्न[2] आरिस और हुस्ने[3] ज़न, दो सनतें महबूब[4] में जमा है। याने सूरत अच्छी है और गुमान उसका सही है, कभी खता नहीं करता, और ये गुमान उसको बनिस्बत अपने है के मेरा मारा कभी नहीं बचता। और मेरा तीरे ग़म्ज़ा[5] खता नहीं करता। पस, जब उसको अपने ऊपर ऐसा भरोसा है तो रक़ीब[6] का इम्तेहान क्यों करे ? और हुस्ने ज़न ने रक़ीब की शर्म रख ली वर्ना यहाँ माशूक़ ने मुग़ालिता खाया था। रक़ीब आशिक़े[7] सादिक़ न था। हवसनाक आदमी था। अगर पाए— इम्तिहान दरमियान आता तो हक़ीक़त खुल जाती।

> तुझ से तो कुछ कलाम नहीं लेकिन अै नदीम
> मेरा सलाम कहियो अगर नामाबर मिले

ये मज़मून कुछ आग़ाज़ चाहता है। याने शायर को एक क़ासिद[8] की ज़रूरत हुई। मगर खटका ये के क़ासिद कहीं माशूक़ पर आशिक़ न हो जाए। एक दोस्त इस आशिक़ का, एक शख़्स को लाया और उसने आशिक़ से कहा के आदमी वज़ादार और मौतमद अलै[9] है, मैं ज़ामिन हूँ के ये ऐसी हरक़त न करेगा। खैर, उसके हात खत भेजा गया। क़ज़ारा आशिक़ का गुमान सच हुआ। क़ासिद मकतूब अलै[10] को देख कर वाला[11] वो शैफ़्ता हो गया। कैसा

---

१. ईर्ष्या। २. नववधू का सौन्दर्य। ३. नारी का सौन्दर्य। ४. प्रिय। ५. हावभाव का तीर। ६. प्रतिप्रेमी (एक ही प्रेमिका के दो प्रेमियों में एक दूसरे के लिए रक़ीब शब्द का प्रयोग करते हैं)। ७. सच्चा प्रेमी। ८. सन्देश वाहक। ९. विश्वसनीय। १०. जिसे पत्र लिखा गया था। ११. दीवाना-परेशान।

ख़त, कैसा जवाब। दीवाना बन, कपड़े फाड़ जंगल को चल दिया। अब आशिक़ इस वाके के वक़्त के बाद नदीम[1] से कहता है के ग़बदाँ[2] तो ख़ुदा है, किसी के बातिन की[3] किसी को क्या ख़बर। ऐ नदीम, तुझ से कुछ कलाम नहीं, लेकिन अगर नामाबर[4] कहीं मिल जाए तो उसको मेरा सलाम कहियो के क्यों साहब तुम क्या क्या दावे आशिक़ न होने के कर गए थे और अंजामे[5] कार क्या हुआ ?

कोई दिन गर ज़िन्दगानी और है
अपने जी में हमने ठानी और है

इसमें कोई इश्काल[6] नहीं। जो लफ़्ज है वही माने हैं। शायर अपना क़स्द क्यों बताए के मैं क्या करूँगा ? मुबहम कहता है के कुछ करूँगा। ख़ुदा जाने शहर में या नवाहे[7] शहर में तकिया बना कर फ़क़ीर होकर बैठ रहे या देस छोड़ परदेस चला जाए।

२४ अगस्त सन् १८६४ ई०।

२६

(७ नवम्बर १८६५ ई०)

पीरो मुर्शद,

नवाब साहब का वज़ीफ़ाख़ार गोया उस दर का फ़क़ीरे तकियादार हूँ। मसनद नशीनी की तहनियत के वास्ते रामपूर आया। मैं कहाँ और बरेली

---

१. मित्र, मुसाहिब। २. परोक्ष को जानने वाला। ३. गुप्त बात। ४. पत्रवाहक। ५. परिणाम। ६. रूप(शक्ल ब० व०)। ७. शहर के चारों ओर।

कहाँ ! १६ अक्तूबर को यहाँ पहुँचा। बशर्ते[1] हयात आख़िरे दिसम्बर देहली को जाऊँगा। नुमायशगाहे बरेली की सैर कहाँ और मैं कहाँ ! ख़ुद इस नुमायशगाह की सैर से जिसको दुनिया कहते हैं, दिल भर गया। अब आलमे[2] बेरङ्गी का मुश्ताक़[3] हूँ।

ला इलाहा इल्लिल्लाह, ला मौजूद इल्लिल्लाह,
ला मौसिर फ़िलबजूद इल्लिल्लाह

सेशंबा ७ नवम्बर सन् १८६५ ई०।

नजात का तालिब
--ग़ालिब

२७

आदाब बजा लाता हूँ।

आपका नवाज़िश[4] नामा पहुँचा, ग़ज़लें देखी गईं। फ़क़ीर का क़ायदा ये है के अगर कलाम में असखाम[5] व अग़लात देखता हूँ तो रफ़ा कर देता हूँ और अगर सुक़्म[6] से ख़ाली पाता हूँ तो तसर्रुफ़ नहीं करता। पस, क़सम खाकर कहता हूँ के इन ग़ज़लों में कहीं इस्लाह की जगह नहीं।

२८

(१८६६ ई०)

सुभान अल्लाह !

सरे[7] आग़ाज़े फ़स्ल में ऐसे समर[8] हाए पेश रस का पहुँचना नवीदे[9] हज़ार गुना मैमनत व शादमानी है। ये समर रुबुल[10] नू ए अस्मार है। इसकी तारीफ़

१. यदि जीवन रहा। २. परोक्ष जगत। ३. इच्छुक। ४. कृपा पत्र। ५. त्रुटियाँ और अशुद्धियाँ। ६. दोष। ७. मौसम शुरू होते ही। ८. रसदार फल। ९. हज़ार गुना प्रसन्नता और आनन्द। १०. सब फलों का सत्व।

क्या करूँ ? कलाम इस बाब में किया चाहता हूँ के मैं याद रहा, और ओहदा का आपको ख़याल आया। परवरदिगार[1] आपको बईं हमा रवाँ परवरी[2] व करम गुस्तरी व याद आवरी[3] सलामत रखे। जुमे के दिन, ८ जून को दोपहर के वक़्त कहार पहुँचा और उसी वक़्त ख़त का जवाब लेकर और आम के दो टोकरे देकर रवाना हो गया। यहां से उसको हस्बुल[4] हुक्म कुछ नहीं दिलवाया गया। ख़ातिरे आतिर जमा रहे।

ख़ुशनूदी का तालिब
—ग़ालिब

२९

ग़ज़ल के भेजने में देर लगी। क़ुसूर माफ़ हो। जो मेरे अज़ीज़ बरेली में वारिद हैं और उनसे आप मिलते हैं, उनका नाम आप लिखें तो कमाल मेहरबानी हो।

ग़ालिब

३०

(३१ अक्टूबर १८६६)

जनाब मौलवी साहब को फ़क़ीर असदुल्ला का सलाम।

मिर्ज़ा मुहम्मद ख़ां बेग मामूँ मिर्ज़ा जान के पोते और मिर्ज़ा हनीफ़ बेग के बेटे और मेरे भतीजे हैं। मिर्ज़ा विक़ारअली बेग एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट से पूछा चाहिए के मिर्ज़ा अलीजान बेग मरहूम रईसे आगरा इनके कौन थे और मिर्ज़ा मुसम्मद अली बेग जो लार्ड एलनबरा बहादुर के ज़माने में दिल्ली के मुन्सिफ़

१. दयालू ईश्वर। २. परोपकार। ३. स्मरण। ४. आदेशानुसार।

हुए थे वो मिर्ज़ा विक़ारअली बेग के कौन थे। मैंने इन साहबान को देखा नहीं। मुहम्मद अली बेग को देखा है। वो मामूँ मिर्ज़ा अली जान बेग मरहूम के नवासे और मेरे भानजे होते थे। पस, अगर ऐक्स्ट्रा असिस्टेण्ट बहादुर मुहम्मद अली बेग के भाई हैं तो वो भी मेरे भानजे हैं।

चारशंबा सिव[2] एकुम अक्टूबर सन् १८६६ ई०।

—ग़ालिब

---

१. "—३१।

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनख़ां बहादुर 'शफ़क़' के नाम

१

(४ अक्टूबर १८५५)

क्यों कर कहूँ, के मैं दीवाना नहीं हूँ। हाँ, इतने होश बाक़ी हैं के अपने को दीवाना समझता हूँ। वाह, क्या होशमन्दी है क़िब्लए[1] अरबाबे होश को ख़त लिखता हूँ, न अलक़ाब,[2] न आदाब, न बन्दगी, न तसलीम। सुन ग़ालिब, हम तुझसे कहते हैं, बहुत मुसाहिब[3] न बना। ऐ अयाज़,[4] हद्दे[5] खुद ब शनास। माना के तूने कई बरस के बाद रात को ९ बैत की ग़ज़ल लिखी है और आप अपने कलाम पर वज्द[6] कर रहा है, मगर ये तहरीर की क्या रविश है? पहले अलक़ाब लिख, फिर बन्दगी अर्ज़ कर, फिर हात जोड़ कर मिज़ाजे मुबारक की ख़बर पूछ, फिर इनायतनामे के आने का शुक्र अदा कर और ये कह के जो मैं तसव्वुर कर रहा था वो हुआ; याने जिस दिन सुबह को मैंने ख़त भेजा उसी दिन आख़िरे रोज़ हुज़ूर का फ़रमान पहुँचा। मालूम हुआ के हरारत हनोज़ बाक़ी है। इंशा अल्लाहो ताला रफ़ा हो जाएगी। मौसम अच्छा आ गया है—

गर मी[7] अज़ आब बुरूं रफ़्तो हरारत ज़े हवा
महमिले मेहरे जहाँताब ब मोज़ाँ आमद

---

१. समझदार। २. उपाधि। ३. प्रशंसक। ४, महमूद ग़ज़नी के एक ग़ुलाम का नाम। ५. अपने पद को स्वयं पहचान। ६. अभिवादन। ७. पानी की गर्मी चली गई और हवा से ऊष्णता। सूर्य की पालकी सतवीं (तुला) राशि में चली गई।

नवाब अनवरद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क़' के नाम

अगर सिर्फ तबरीद व तादील[1] से काम निकल जाए तो क्या कहना; वर्ना बहस्बे[2] राय तबीब, तनक़िआ कर डालिये। मुझको भी आज दसवाँ मुंज़िज है; पाँच-सात दिन के बाद मुस्‌हिल होगा। शब को नागाह एक नई ज़मीन ख़याल में आई। तबियत ने राह दी। ग़ज़ल तमाम की। उसी वक़्त मे ये ख़याल में था के कब सुबह हो और कब ये ग़ज़ल नवाब साहब को भेजूं। ख़ुदा करे आप पसंद करें और मेरे क़िब्ला जनाब मीर वाजिदअली साहब को सुनावें और मेरे शफ़ीक़ मुंशी नादिर हुसेनख़ाँ साहब और उनके भाई साहब उसको पढ़ें। परवरदिगार इस मजमे को सलामत रखें।

ग़ज़ल

ऐ[3] ज़ौक़े नवा संजी बाज़म बख़रोशावर
ग़ौग़ा ए शबे ख़ूनी बर बुंगहे होशावर

---

१. ठंडाई आदि शीतल पेय। २. चिकित्सक के परामर्श के अनुसार। ३. हे कवित्व के स्नेह, तुम मुझे फिर उत्साह दो। रात्रि के वध के कोलाहल को मेरी चेतना के स्थान पर स्थापित करो, यदि वह मस्तिष्क से निकल आये तो मैं उसे आंखों से बहाऊँगा, मेरे हृदय को रक्तमय बना दो और उसे मेरे वक्ष-स्थल में प्रवाहित करो। इस जंगल का पानी कटु है, यदि तुम उदार हो तो नगर से मेरे लिए मधुर स्रोत लाओ। मुझे ज्ञात है, तुम्हारे पास द्रव्य है, मुझे ज्ञात है तुम्हारे पास स्वर्ण है, तुम सभी स्थलों पर जाते हो, यदि बादशाह शराब न दे तो शराब बेचने वाले से लाओ। यदि कलाल का बेटा सुरा को कमण्डल में डाल दे तो उसे हथेली पर लो और रास्ते पर चल दो। यदि बादशाह घड़े में भर दे तो उठा लो और कंधे पर रखकर लाओ। शीशे में से गन्ध आ रही है, सुरा की कलकल ध्वनि से गायन प्रकट हो रहा है।

गर ख़ुद बिजिह्द अज़ सर अज़ दीदा फ़िरो बारम
दिल ख़ूँ कुनो आँ ख़ूँ रा दर सीना ब जोशावर
हाँ हमदमे फ़रज़ाना दानी रहे बीराना
शमँ के नख़ाह्द शुद अज़ बार ख़मोशावर
शोरा ब एईं वादी तलख़स्त, अगर रादी
अज़ शह्र बसू ए मन सर चश्म ए नौशावर
दानम के ज़रेदारी हर जा गुज़रे दारी
मै गर न देह्द सुलताँ अज़ बादा फ़रोशावर
गर मुग़ बकदूरीज़द बर कफ़ 'नहो' राही शो
वर शह बसुबू बख़्शद बरदारो बदूशावर
रेहाँ दमदज़ मीना रामश चकदज़ क़ुलक़ुल
आँ दर रह चश्म अफ़गन वीं अज़ पये गोशावर
गाहे ब सुबुकदस्ती ज़ाँ बादा ज़ ख़ीशम् बुर
गाहे ब सियह मस्ती अज़ नग़्मा बहोशावर
'ग़ालिब' के बखायश बाद हम पाए तो गर नायद
बारे ग़ज़ले फ़र्दे ज़ाँ मोईना पोशावर

रवा दाश्ता पंज शंबा २१ मुहर्रम १२७२ हि० ब १८ माहे अक्तूबर सन् १८५५ ई०।

उसे लाकर दृष्टिगोचर कराओ और कलकल ध्वनि को कर्ण गोचर कराओ। कभी तो स्फूर्ति के साथ मुझे उस सुरा से बेसुध बना दो और कभी मस्ती का राग सुना कर होश मे लाओ। 'ग़ालिब' कहता है जो जीवित रहे वह यदि तुम्हारे साथ नहीं आता तो उस गूदड़ी पहनने वाले से कभी एक ग़ज़ल, कभी एक फ़र्द (कविता का एक चरण) मेरे पास लाओ।

२

(८ अक्टूबर)

लिल्लाह[1] अल शुक्र के पीरो[2] मुर्शद का मिजाज़े[3] अक़दस बख़ैरो आफ़ियत है। पहले नवाज़िशनामे का जवाब बाआँ[4] के वो मुश्तमिल एक सवाल पर था, हनोज़ नहीं लिखने पाया के कल एक मुकर्रमतनामा[5] और आया। बन्दा अर्ज़ कर चुका है के मुस्हिल[6] में हूँ। चुनाचे कल तीसरा मुस्हिल होगा। इस सबब से तौक़ी[7] का पासख़निगार[8] न हो सका था; और लिखता भी तो यही लिखता जो आपने लिखा है।

'अरनी' की 'रे' की हरकत व सुकून के बाब में क़ौले फ़ैसल यही है जो हज़रत ने लिखा है। अगर तक़्ती ए शेरे[9] मुसादत कर जाए और 'अरनी' बरवज़ने 'चमनी' गुंजाइश पाय तो नामुल इत्तेफ़ाक़[10] वर्ना क़ायद ए तसर्रुफ़ मुक़्तज़ी[11] जवाज़ है।

मिर्ज़ा अब्दुल क़ादर 'बेदिल'—

[12] चोरसी ब तूर हिम्मत अरेनी मगो व बुगुज़र
के नय्यरज़द ईं तमन्ना बजवाबे लन्तरानी

—असदुल्लाह् बेग 'ग़ालिब'

---

१. ईश्वर की दया। २. पूज्य गुरु। ३. स्वास्थ्य। ४. यद्यपि। ५. द्वितीय पत्र। ६. जुल्लाब। ७. आदेश। ८. उत्तरदाता। ९. शेर के छंद की अनुकूलता। १०. संयोग। ११. जिसका तक़ाजा हो। १२. यदि तुम साहस के तूर (तूर-पर्वत पर हज़रत मूसा को ईश्वर का साक्षात्कार हुआ था) पर पहुँच जाओ तो वहाँ 'अरेनी' (ईश्वर तुम्हें देखना चाहता हूँ) कहने की अवश्यकता नहीं। चुपचाप चले जाओ। इस लालसा का उत्तर लन्तरानी नहीं होगा।

[1] रफ़्त आँ के मा ज़े हुस्न मुदारा तलब कुनेम
सर रिश्ता दर कफ़ अरेनी गोए तूर बूद

ज़वायद[2] से फ़ारिग़ होकर अर्ज़ करता हूँ के हाय क्या ग़ज़ल लिखी है। क़िब्ला, आप फ़ारसी क्यों नहीं कहा करते ? क्या पाकीज़ा ज़बान है और क्या तर्ज़ बयाँ ! क्या मैं सुख़ने नाशनास और ना इन्साफ़ हूँ के ऐसे कलाम के हक़ व इस्लाह पर जुरत करूँ ?

चे [3] हाजतस्त बमश्शाता रूए ज़ेबा रा

हाँ, एक जगह आप तहरीर में सहव कर गये हैं—

"अै [4] मुतरिबे जादू फ़न बाज़म रहे होशम ज़न"

दो मीम आ पड़े हैं। एक मीम महज़ बेकार है। दीगर की जगह आप 'बाज़म' लिख गये हैं।

अै [4] मुतरिबे जादू फ़न दीगर रहे होशम ज़न

अब देखिये और साहबों की ग़ज़लें कब आती ह। इतनी इनायत फ़रमाइये के हर साहब के तख़ल्लुस के साथ उनका इस्मे मुबारक और कुछ हाल रक़म कीजिएगा। ज़्यादा हद्दे अदब।

निगाश्तए पंज शंबा, सेशुम सफ़र सन १२७२ हि० व हज [5] दहुम अक्तूबर सन् १८५५ ई०।

अज़—असदुल्लाह्

---

१. वह समय चला गया जब हम सौन्दर्य से सन्धि करते थे। इस चीज़ की बागडोर उन मूसा महोदय के हाथ में थी जिन्होंने तूर पर ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहा था। २. आधिक्य। ३. जो स्वयं सुन्दर है उसे सजाने वाली स्त्री की अवश्यकता नहीं। ४. हे जादूगर गायक मेरी चेतना फिर लुप्त हो जायगी। ५. १८ वीं।

३

पीरो मुर्शद,

हुज़ूर का तौक़ीए[1] ख़ास और आपका नवाज़िशनामा ये दोनों हर्ज़[2] बाज़ू एक दिन और एक वक़्त पहुँचे। तौक़ी का जवाब दो चार दिन में लिखूँगा। ना साज़ी ए[3] मिज़ाजे मुबारक मूजिबे तशबीश व मलाल हुई। अगर चे हज़रत की तहरीर से मालूम हुआ के मरज़ बाक़ी नहीं मगर ज़ोफ़ बाक़ी है; लेकिन तस्कीने[4] ख़ातिर मुनहसिर इसमें है के आप बाद इस तहरीर के मुलाहिज़ा फ़रमाने के अपने मिज़ाज का हाल फिर लिखें। '३७' की हुण्डवी पहुँचो। इसका भी हाल साबिक़ की हुण्डवी का सा है, याने साहूकार कहता है के अभी हमको कालपी के साहूकार की इजाज़त नहीं आई जो हम रुपया दें। अगर सरकार के कार-परदाज़[5] वहाँ के साहूकार से कह कर इजाज़त लिखवा भेजे तो मुनासिब है। 'सहबाई' के तज़करे की एक जिल्द मेरी मिल्क[6] में से मेरे पास थी, वो मैं अपनी तरफ़ से बसबोले अरमुग़ाँ[7] आपको भेजता हूँ; नज़र[8] क़ुबूल हो। अब मैं हज़रत से बातें कर चुका। ख़त को सरनामा कर कर कहार को देता हूँ के डाक मे दे आवे। बारह पर दो बजे किताब का पार्सल बतरोक़े बैरंग रवाना करूँगा। पेशगाहे[9] विज़ारत में मेरी बन्दगी पहुँचे। अर्ज़दाश्त बाद उसके पहुँचेगी। जनाब मीर साहब क़िब्ला मीर अमजद अली साहब को सलाम, नियाज़ और जनाब मुंशी नादिर हुसेन ख़ाँ साहब को सलाम।

४

पीरो मुर्शद,

अगर मैंने 'उम्मीदकाह' बकाफ़े अरबी अज़राहे शिकवा लिखा तो क्या गुनाह? न ख़त का जवाब न क़सीदे की रसीद।

---

१. विशेष आदेश। २. ताबीज। ३. आपके शुभ स्वास्थ्य की अस्वस्थता। ४. सन्तोष। ५. कर्मचारी। ६. सम्पत्ति। ७. भेट। ८. भेंट। ९. आपकी सेवा में।

दरी[1] ख़स्तगी पोजिश अज़ मन मजूये
बुवद बन्द ए ख़स्ता गुस्ताख़ गूए

और ये जो आप फ़रमाते हैं के इन मवाने के सबब से मैं क़सीदे की तहसीन[2] नहीं लिख सका, बन्दा बे अदब नहीं, तहसीने तलब नहीं; ऐसे मजमे में महशूर[3] हूँ के सिवाय अहतरामद्दौला के कोई सुख़न्दाँ नहीं। मैं जो अपना कलाम आपके पास भेजता हूँ गोया आप अपने पर अहसान करता हूँ।

वाये[4] बरजाने सुख़ने गर बसुख़न्दाँ न रसद

अफ़सोस के मेरा हाल और लैलो नहार[5] आपकी नज़र में नहीं, वरना आप क्या जानें के इस बुझे हुए दिल और मरे हूए दिल पर क्या कर रहा हूँ। नवाब साहब, अब न दिल में वो ताक़त न क़लम में वो ज़ोर सुख़न गुस्तरी का। एक मलेका[6] बाक़ी है, बेताम्मुल और बेफ़िक्र जो ख़याल में आ जावे वो लिख लूँ, वरना फ़िक्र की सऊबत[7] का मुतहमिल[8] नहीं हो सकता। बकौल मिर्ज़ा अब्दुल क़ादर 'बेदिल'--

जेहदहा[9] दर ख़ुरे तवानायीस्त
ज़ोफ़ यकसर फ़राग़ मी ख़ाहद

मुहर का हाल मालूम हुआ। पहले आप लिख भेजिए के क्या खोदा जाएगा? मेहदी हसनख़ां, मेहदी हुसेनख़ाँ बहादुर लिख रहा हूं। सिर्फ़ याद पर लिख रहा हूँ वरना ख़त लड़कों ने खो दिया है। याद पड़ता है के नगीना वहाँ से भेजने को आपने लिखा है। सो अब मैं मुकर्रर ख़ाहाँ हूं के ये मालूम हो जाए के नगीना

---

१. इस अकिञ्चनता में मुझ से माफ़ी की आशा मत कर। जो मनुष्य विवश हो जाता है उसमें शिष्टता नहीं रहती। २. प्रशंसा। ३. जो लोग प्रलय के पश्चात् उठाए जाएंगे। ४. उस कवि का दुर्भाग्य है, जो रसज्ञ न पाए। ५. रात-दिन। ६. स्वभाव। ७. दुःख। ८. सहन। ९. प्रयत्न शक्ति पर निर्भर है। निर्बलता सर्वथा विश्राम चाहती है।

भेजिएगा या यहाँ ख़रीदा जाएगा और नक़्शे नगी क्या होगा ताके शुमार[1] हुरूफ़ का मुझको मालूम रहे। अब जब आप मुझको लिखेंगे तब मैं इसका जवाब लिखूंगा। हाफ़िज़ साहब का पहुंचना तक़रीबन मालूम हुआ। याने उनकी तरफ़से आपने मुझको सलाम लिखा है। सो मैं भी उनकी ख़िदमत में बन्दगी और जनाब मुन्शी नादिर हुसेन ख़ाँ साहब की जनाब में सलाम अर्ज़ करता हूं।

ज़्यादा हद्दे अदब।

५

(२९ जून १८५६)

पीरो मुर्शद,

ये ख़त लिखना नहीं है बल्के बातें करनी हैं। और यही सबब है के मैं अलक़ाब व आदाब नहीं लिखता। खुलासा अर्ज़ ये है के आज शहर में बदरुद्दीन अलीख़ाँ का नज़ीर नहीं, पस मुहर कौन खोद सकेगा ? लाचार मैंने आपका नवाज़िशनामा जो मेरे नाम था, वो उनके पास भेज दिया। उन्होंने रुक़्क़ा मेरे नाम आज भेजा, सो वो रुक़्क़ा हज़रत की ख़िदमत में भेजता हूँ। मैं नहीं समझता के क़िस्मे दूअम पुरवराज की क्या है। आप इसको समझ लें और नगीना ब एहतियात हर साल फ़रमावें। रुपये के भेजने की अभी ज़रूरत नहीं है। जब मैं अर्ज़ करूँ तब भेजिएगा। ताज्जुब है के जनाब मीर अमजद अली साहब 'क़लक़' का इस ख़त में सलाम न था। मुतवक़्क़े हूँ के छापे के क़सीदे उनको सुनाये जावें और मेरी बन्दगी कही जाय। जनाब मुंशी नादर हुसेनख़ाँ साहब को मेरा सलाम ब सद हज़ार इश्तियाक़ पहुँचे।

मरक़ूमा यकशंबा, २९ जून सन् १८५६ ई०।

अज़-ग़ालिब

---

१. अक्षरों की गिनती।

६

(१८५६ ई०)

क़िब्ल ए हाजात,

कसीदा दुबारा पहुँचा। चूँके पेशानी पर दस्तख़त की जगह न थी नाचार उसको एक और दो वर्क़ पर लिखवाया और हुज़ूर में गुज़राना और तमन्ना ए[1] देरीना हासिल कीं याने दस्तख़ते ख़ास मुश्तमिले इज़हारे ख़ुशनूदी ए तबे अक़दस हो गये। अहतरामद्दौला बहादुर मेरे हम ज़बान और आपके सनाख़्वाँ[2] रहे, गोया इस अम्रे ख़ास में वो शरीक़े ग़ालिब हैं; हम बतरीक़े[3] कसरए इज़ाफ़ी और हम वतरीक़े कसरए[4] तौसीफ़ी। परवर दिगार इस बुज़ुर्गवार को सलामत रखे, के क़द्रेदाने कमाल बल्के हक़ तो यों है के खैरे[5] महज है ।

'ग़यासुल्लुग़ात' एक नाम मवक़्क़र[6] व मौज्जिज़, जैसे अलफ़ख़ा ख़ामख़ा मर्दे आदमी। आप जानते हैं के ये कौन है ? एक मुअल्लिमे फ़रोमाया[7] रामपुर का रहनेवाला फ़ारसी से ना आशनाए महज़ और सर्फ़ो नह्व में नातमाम 'इंशाए ख़लीफ़ा' व 'मुंशियाते माधोराम' का पढ़ानेवाला, चुनाचे दीबाचे में अपना माख़ज़[8] भी उसने ख़लीफ़ा शाह मुहम्मद व माधोराम व 'ग़नीमत' व 'क़तील' के कलाम को लिखा है। ये लोग राहे सुख़न के गौल[9] हैं, आदमी के गुमराह करनें वाले । ये फ़ारसी को क्या जानें ? हाँ, तबा मौज़ूँ रखते थे। शेर कहते थे।

---

१. चिरकालीन अभिलाषा । २. प्रशंसक। ३. सम्बन्ध को बतानेवाला एकार। ४. विशेष्य विशेषण का सूचक एकार। ५. केवल कल्याणप्रद । ६. प्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त। ७. कमीना। ८. उद्भवस्थल। ९. टुकड़ी, गुट, बटमार।

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क़' के नाम

हरजा मशताबो पै जादा शानसाँ बरदार
अै के दर राहे सख़ुन चूँ तो हज़ार आमदो रफ़्त

मेरा दिल जानता है के आपके देखने का किस क़दर आरज़ूमन्द हूँ। मेरा एक भाई मामूँ का बेटा के वो नवाब ज़ुल्फ़ेक़ार बहादुर की हक़ीक़ी ख़ाला का बेटा होता था और मसनद नशीने हाल का चचा था और वो मेरा हमशीर भी था याने मैंने अपनी मुमानी का और उसने अपनी फूफी का दूध पिया था, वो बायस हुआ था मेरे बाँदा बुन्देलखंड आने का। मैंने सब सामाने सफ़र कर लिया डाक में। रुपया डाक का दे दिया। क़स्द ये था के फ़तहपूर तक डाक में जाऊँगा, वहाँ से नवाब अली बहादुर के यहाँ की सवारी में बाँदे जाकर हफ़्ता भर रह कर कालपी होता हुआ आपके क़दम देखता हुआ बसवीले डाक दिल्ली चला जाऊँगा। नागाह हुज़ूरे वाला बीमार हो गये और मर्ज़ ने तूल खींचा वो इरादा क़ुव्वत से फ़ेल[1] में न आया और फिर मिर्ज़ा औरंगख़ाँ मेरा भाई मर गया।

अै बसा[2] आरज़ू के ख़ाक शुदा

वल्लाह, वो सफ़र अगर चे भाई की इस्तेदुआ से था मगर मैं नतीजा उस शक्ल का आपके दीदार को समझा हुआ था। हरजा[3] सराई का जुर्म माफ़ कीजिएगा। मेरा जी आपके साथ बातें करने को चाहा, इस वास्ते जो दिल में था वो उसी इबारत से ज़बान पर लाया।

७

(१० नवंबर १८५६ ई०)

क़िब्ला व काबा,

वो इनायतनामा जिसमें हज़रत ने मिज़ाज की शिकायत लिखी थी पढ़ कर बेचैन हो गया हूँ, अर्ज़कर चुका हूँ के मिज़ाज का हाल मुफ़स्सल लिखिये।

---

१. आचरण। २. कितनी उमंगे थीं जो पूरी नहीं हुईं। ३. अशिष्ट बकवास।

चूँके आपने कुछ नहीं लिखा तो और ज्यादा मुशव्विस[1] हूँ। नुस्खए[2] रफ़े तशवीस याने शफ़क्क़तनामा जल्द भेजिय। जनाब मुंशी नादिर हुसेख़ाँ साहब का कुछ हाल मालूम नहीं। हज़रत मीर अमजद अली साहब का कुछ हाल मालूम नहीं। मुतवक़्क़े हूँ के इन दोनों साहबों की खिदमत में मेरा सलाम पहुँचे और आप इनकी ख़ैरो आफ़ियत लिखें। कबूतरों का नुस्ख़ा, जैसा के मेरे पास आया, ब[3] जिन्से ही इरसाल करता हूँ। आपको मालूम होगा के मीरन साहब ने इन्तक़ाल किया। ये छोटे भाई थे, मुजतहदुल अस्र लखनऊ के; नाम उनका सैयद हुसेन और खिताब सैयदुल[4] उलमा, नक़्शेनगीं मीर हुसेन इब्ने अली। मैंने उनकी रेहलत[5] की एक तारीख पाई। उसमें पाँच बढ़ते थे, याने १२७८ होते थे। तख़रजा[6] नई रविश का मेरे ख़याल में आया। मैं तो जानता हूं के अच्छा है। देखूँ आप पसन्द फ़रमाते हैं या नहीं। क़ता।

हुसेन[7] इब्ने अली आबरू ए इल्मो अमल
के सैयदुल उलमा नक़्शे ख़ातमश बूदे
न मुन्दोमुन्दे अगर जिन्दा पंज साले दिगर
ग़मे हुसेन अली साले मातमश बूदे

ज़्यादा हद्दे अदब।

दो शंबा बहिसाब तक़वीम[8] याज़दहम[9] व अज़रूए रूयत[10] दहुम रबीउल अव्वल सन् १२७३ हि०।

अर्ज़दाश्त जवाब तलब।

---

१. चिन्तित। २. चिन्ता दूर करने वाला पत्र। ३. हूबहू। ४. विद्वानों में श्रेष्ठ। ५. निधन। ६. कम करना। ७. अली के पुत्र हुसेन की कृपा से ज्ञान और क्रिया के गौरव थे, उनकी अँगूठी पर सैयदुल उलमा (विद्वानों में शिरोमणि) अंकित रहता था। उनका देहान्त हो गया। यदि पाँच वर्ष और जीवित रहते तो उनका मृत्युवर्ष 'ग़मे हुसेन अली' होता (१२७८)। ८. जंत्री। ९. ११ वीं। १०. चाँद की दृष्टि से।

८

(अक्टूबर १८५८)

हज़रत पीरो मुर्शद,

अगर आज मेरे सब दोस्त व अज़ीज़ यहाँ फ़राहम होते, और हम और वो बाहम होते तो मैं कहता के आओ और रस्मे तहनियत[1] बजा लाओ। ख़ुदा ने फिर वो दिन दिखाया के डाक का हरकारा अनवरद्दौला का ख़त लाया।

ईं[2] के मी बीनम व बेदारीस्त या रब या बख़्वाब

मुँह पीटता हूँ और सर पटकता हूँ। जो कुछ लिखा चाहता हूँ नहीं लिख सकता हूँ। इलाही हयाते[3] जावदानी नहीं माँगता। पहले अनवरद्दौला से मिल कर सरगुज़िश्त बयान करूँ फिर उसके बाद मरूँ। रुपये का नुक़्सान अगरचे जाँकाह[4] व जाँगुज़ा है, पर बमूजिबे "तलफ़ुलमाल[5] ख़लफ़ुल उम्र" मुफ़ज़ा है। जो रुपया हाथ से निकल गया है, उसको उम्र की क़ीमत जानिये और सिबाते ज़ात व बक़ाए[6] अिर्ज़ोनामूस को ग़नीम न जानिये। अल्लाह् ताला हज़रत वज़ीरे आज़म को सलामत रखे और इस ख़ानदान के नामो निशान व इज़्ज़ो शान को बरक़रार ता क़यामत रखे। मैंने ११ वीं मई सन् १८५७ ई० से ३१ वीं जुलाई १८५८ तक की रूदाद नस्र में ब इबारते फ़ारसी न आमेख़्ता[7] व अरबी और वो १५ सरत के मिस्तर[8] से चार जुज़्व की किताब आगरे को मतबए मुफ़ीदुल ख़लायक़ में छपने को गई है। 'दस्तम्बू' उसका नाम रखा है और उसमें सिर्फ़ अपनी सरगुज़िश्त और अपने मशाहिदे के बयान से काम रखा

---

१. आनन्द-बधाई। २. जो कुछ देख रहा हूँ वह जागते हुए देख रहा हूँ अथवा स्वप्न में। ३. प्रलयपर्यंत जीवन। ४. पैसे का ख़र्च उम्र को बढ़ाता है। ५. व्यक्तित्व की स्थिरता। २. प्रतिष्ठा का अस्तित्व। ७. अरबी शब्द रहित। ८. रेखांकित पत्र।

हूँ। बाद छप जाने के वो नुस्ख़ा हज़रत की नज़र से गुज़रानूँगा और उसको हमसुख़नी और हम ज़बानी जानूँगा। जनाब मीर अमजद अली साहब का जो आपके ख़त में ज़िक्र नहीं आया है तो इससे ख़ैरख़ाहे[1] अहबाब का दिल घबराया है; अब के जो ख़त लिखिये तो उनकी ख़ैरो आफ़ियत ब[2] हर नमत लिखिये। उनको बन्दगी और जनाब मुंशी नादिर हुसेन को सलाम पहुँचे।

९

(५ नवंबर १८५८)

पीरो मुर्शद,

एक नवाज़िशनामा आया और 'दस्तम्बू' के पहुँचने का मुज़दा[3] पाया। उसका जवाब यहीं के कार परदाज़ाने डाक का अहसान मानूँ और अपनी मेहनत का रायगाँ[4] न जाना यक़ीन जानूँ। चंद रोज़ के बाद एक इनायतनामा और पहुँचा; गोया साग़रे[5] इल्तफ़ात का दूसरा दौर पहुँचा। अब ज़रूर आ पड़ा के कुछ हाल इस सितारे दुमदार का लिखूँ, चुनाचे जिस वक़्त से वो ख़त पढ़ा है, सोच रहा हूँ के क्या लिखूँ? चूँ के ब सबब फ़ुकदाने[6] असबाब याने अदम रसदो किताब कुछ नहीं कहा जाता है, नाचार मिर्ज़ा साहब का मिसरा ज़बान पर आ जाता है।

अज़ों[7] सितार ए दुम्बालादार मी तरसम
ये मतला है और पहला ये मिसरा है—
ज़े[8] ख़ाले गो शए अब्रू ए यार मी तरसम

---

१. शुभेच्छा सम्बन्धी। २. स्पष्ट रूप से। ३. शुभ समाचार। ४. व्यर्थ। ५. प्रेम का प्याला। ६. सामग्री की कमी। ७. इस पुच्छल तारे से मैं घबराता हूँ। ८. प्रेमिका की भृकुटि के कोने में जो तिल है उससे मैं घबराता हूँ।

नवाब अनवरद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क़' के नाम

क्या आप मुझको बे हुनरी और बे ख़बरी में साहबे कमाल नहीं जानते। और इस इबारते फ़ारसी को मेरा मिसदाक़े[1] हाल नहीं जानते--

पेशे[2] मुल्ला तबीब व पेशे तबीब मुल्ला
पेशे हेच हर दो वो पेशे हर दो हेच

आरायशे मज़ामीने शेर के वास्ते कुछ तसव्वुफ़, कुछ नजूम लगा रखा है; वरना सिवाय मौज़ूनिये तबा के यहां और क्या रखा है ? बहरहाल इल्मे नजूम के क़ायदे के मुआफ़िक़ जब ज़माने के मिज़ाज में फ़साद की सूरतें पैदा होती हैं तब सतहे फ़लक पर ये शक्लें दिखाई देती हैं, जिस बुर्ज में ये नज़र आये उसका दर्ज़ा व दक़ीक़ा देखते हैं; फिर ज़ू जनाबा का ममर और तरीक़ा देखते हैं। हज़ार तरह के जाल डालते हैं। तब एक हुक्म निकालते है। शाहजहाँबाद में बादे ग़ुरूबे आफ़ताब उफ़क़ ग़रबी[3] ए शहर पर नज़र आता था और चूँके उन दिनों में आफ़ताब अव्वल मीज़ान[4] में था तो ये समझा जाता था के ये सूरते अक़रब[5] में है, दर्जा व दक़ीक़ा की हक़ीक़त ना मालूम रही। बहुत दिन शहर में इस सितारे की धूम रही। अब दस-बारह दिन से नज़र नहीं आता। वहाँ शायद अब नज़र आया है जो आपसे उसका हाल पूछा है। बस, मैं इतना जानता हूँ के ये सूरतें क़हरे[6] इलाही की हैं, और दलीलें मुल्क की तबाही की हैं। क़िरातुल[7] नहसैन फिर कुसूफ़[8] फिर ख़ुसूफ़,[9] फिर ये सूरत पुर क़ुदूरत,

---

१. स्थिति के अनुकूल। २. जहाँ मुल्ला होता है वहाँ अपने को चिकित्सक बताता हूँ, जहाँ चिकित्सक होता है वहाँ अपने आप को मुल्ला कहता हूँ। जहाँ ये दोनों नहीं होते वहाँ मैं ही मुल्ला बनता हूँ और मैं ही चिकित्सक और जहाँ ये दोनों रहत हैं मैं मौन रहता हूँ। ३. नगर के पश्चिम में। ४. तुला राशि। ५. वृश्चिक राशि। ६. ईश्वर का प्रकोप। ७. अनिष्ट योग। ८. सूर्य ग्रहण। ९. चन्द्र ग्रहण।

अयाज़न[१] बिल्लाह, वपनाह बख़ुदा! यहाँ पहली[२] नवंबर को बुध के दिन हस-बुल हुक्म हुक्काम कूचे व बाजार में रोशनी हुई और सब को कम्पनी का टूट जाना और कलम रू हिन्द का बादशाही अमल में आना सुनाया गया। नवाब गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग बहादुर को मलिके मौज़मे इंगलिस्तान ने 'फ़र्ज़न्दे अर्जुमन्द'[३] ख़िताब दिया और अपनी तरफ़ से 'नायब' और हिन्दुस्तान का हाकिम किया। मैं तो क़सीदा इस तहनियत में पहले ही लिख चुका हूँ; चुनाचे बशमूल 'दस्तम्बू' नज़रे अनवर से गुज़रा होगा—

तानिहाल दोस्ती के बरदहद
हालिया रफ़्तीं व तुख़्मे काश्तेम
अल्लाह्, अल्लाह्, अल्लाह्।

जुमा पंजुम नवंबर सन १८५८ ई०।

[४]चरा गोयम के नामा अज़ कीस्त ख़ुद मी दानन्द के नामनिगार कीस्त।

१०

(९ मार्च १८५९)

पीरो मुर्शद,

क्या हुक्म होता है? अहमक़ बनकर चुप हो रहूँ या जो अज़रू ए करफ़ यक़ीनी मुझ पर हाली हुआ है वो कहूँ। अव्वल रज्जब में नवाजिशनामा आपने कब भेजा। आख़िर मेरे पास पहुँच ही गया। ये जो अब भेजा अगर रवाना हुआ होता तो वो भी पहुँच गया होता। बहरहाल मुहब्बत की गरमी ए हंगामा है। ये जुमला महज़ आरायशे उनवाने नामा[५] है—

१. ईश्वर की शरण। २. १ नवंबर १८५८ ई० को बुद्धवार न होकर सोमवार था—मौलवी महेश प्रसाद। ३. सुपुत्र। ४. मैं कैसे कहूँ कि पत्र किसका है। आप इसके लेखक को स्वयं जानते हैं। ५. सरनामा।

नवाब अनवरद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क़' के नाम

उमरत[1] दराज़ के ईं हम गनीमत अस्त

पिन्सनदारों का इज़रा ए पिन्सन और अहले शहर की आबादी ए मस्कन यहाँ उस सूरत पर नहीं है जैसी और कहीं है। और जगह सियासत[2] है, के मिन्जुमल ए ज़रूरियाते रियासत है, यहाँ क़हरे इलाही है के मंशा ए तबाही है। खास मेरे पिन्सन के बाब में गवर्मेण्ट से रिपोट तलब हुई है। इब्नाए[3] रोज़गार हैरान हैं के ये भी एक बात अजब हुई है। रिपोट की रवानगी की देर है। चन्द रोज़ और भी क़िस्मत का फेर है। दिल्ली इलाक़ए लेफ़्टेंट गवर्नर से इनक़ता[4] पा गई और इहात ए पंजाब के तहत हुकूमत आ गई। रिपोट हमारे यहां से लाहौर से कलकत्ते जाएगी। और इसी तरह फेर खाकर नवीदे हुक्म मंज़ूरी आएगी।

फ़ेले लाज़िमी[5] को जब मुताद्दी[6] किया चाहिए, तो पहले मज़ारे में से मसदर बना लेना चाहिए। 'कुश्तन' मसदर असली 'गर्दद' मज़ारअ 'गर्दीदन' मज़दर, मजारइ, 'गर्दान्दन' व 'गर्दानीदन' मसदरे मुताद्दी। माफ़िक़ क़ायदे के कर्दन का मुताद्दी 'कुनान्दन' व कनानीदन' है, न के 'करान्दन'। 'करान्दन' तो 'कराने' की फ़ारसी है। जैसे 'चलने' की फ़ारसी 'चलीदन' है और ये शूख़ी ए तबा व ज़राफ़त है। न इसमे सेहत है और न लताफ़त है। 'करान्दन' ग़लत और 'कनानीदन' सही। 'गुश्तन' को 'गुश्तान्दन' और 'रुस्तन' को 'रस्तान्दन' न कहेंगे बल्के 'गरदीदन' व 'रूईदन' बनाकर 'गर्दान्दन' व 'रूयान्दन' लिखेंगे। बलग़ा के कलाम में 'करदन' का मुताद्दी शायद कहीं न आया हो। अगर आया होगा तो 'कनानीदन' आया होगा। 'करान्दन' टकसाल

---

१. आप दीर्घायु हों, यह भी ग़नीमत है। २. प्रबन्ध, दण्ड, राजनीति। ३. सभी लोग। ४. पार्थक्य। ५. अकर्मक क्रिया। ६. सकर्मक क्रिया।

बाहर है। तज़कीरो[1] तानीस का दायरा बहुत वसी[2] है, 'दही', बाज़ कहते हैं—'दही अच्छा', बाज़ कहते हैं 'दही अच्छी', 'क़लम'—कोई कहता है 'क़लम' टूट गया—कोई 'क़लम टूट गई'। फ़कीर दही को मुज़क्कर बोलता है, और 'क़लम' को भी मुज़क्कर जानता है। अला हाज़ल[3] क़यास, 'शिंगरफ़' भी मुजबज़ब[4] है। कोई मुज़क्कर और कोई मुअन्नस कहता है। मैं तो शिंगरफ़ को मुअन्नस कहूँगा। खुलासा ये के इस हेच[5] मदां के नज़दीक 'करदन' का मुताद्दी 'कनानीदन' है और 'शिंगरफ़' मुअन्नस।

ख़ुदावन्द, आइनेबन्दा परवरी भूल न जाओ। गाह गाह नामा व पयाम भेजते रहो। क्या मैं ये नहीं लिख सकता के मैंने इस अर्से में दो ख़त भेजे और आपने एक का जवाब नहीं लिखा। हाँ, ये अर्ज़ करता हूँ के आज सुबह को आपका ख़त आया। इधर पढ़ा, उधर जवाब लिखा। सच यों हैं के डाक में अक्सर खुतूत तलफ़ होते हैं। "बैरंग" पर ज़ाया होने का गुमान कम है। इस दस्तूर का बादी[6] और बानी मैं होता हूँ, ये ख़त बैरंग भेजता हूँ। आप भी अब जब कभी बफ़र्जे[7] मुहाल ख़त भेजिये तो बैरंग भेजिये। ज़्यादा हद्दे अदब।

निगाश्तए चार शंबा सोअम

शाहबान १२७५ हि० व नहुम मार्च

साले हाल

अर्ज़दाश्त—ग़ालिब

---

१. पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। २. विस्तृत। ३. सब इसी से कल्पना करते हैं। ४. सन्दिग्ध। ५. अकिंचन। ६. आरम्भ कर्त्ता। ७. यदाकदा।

११

(१८६० ई०)

पीरो मुर्शद,

१२ बजे थे। मैं नंगा अपने पलंग पर लेटा हुआ हुक्का पी रहा था के आदमी ने आकर ख़त दिया। मैंने खोला, पढ़ा। भले को, अंगरखा या कुर्ता गले में अगर होता तो मैं ग़रीबाँ फाड़ डालता। हज़रत का क्या जाता? मेरा नुक़्सान होता। सिरे से सुनिये—आपका क़सीदा बादे इस्लाह भेजा। उसकी रसीद आई। कई कटे हुए शेर उल्टे आये, उनकी क़बाहत पूछी गई; क़बाहत बताई गई, अल्फ़ाज़े क़बीह की जगह ने ऐब अल्फ़ाज़ लिख दिये गये। लो साहब, ये अशार भी क़सीदे में लिख लो। इस निगारिश का जवाब आज तक नहीं आया। शाह असरारुल हक़ के नाम का काग़ज़ उनको दिया। जवाब में जो कुछ उन्होंने ज़बानी फ़रमाया आपको लिखा गया, हज़रत की तरफ़ से इस तहरीर का भी जवाब न मिला।

पुर हूँ मैं शिकवे से यों राग से जैसे बाजा
इक ज़रा छेड़िये फिर देखिये क्या होता है

सोचता हूँ के दोनों ख़त बैरंग गये थे। तलफ़ होना किसी तरह मुतसव्विर[1] नहीं। ख़ैर, अब बहुत दिन के बाद शिकवा[2] क्या लिखा जाये, बासी कढ़ी में उबाल क्यों आये? बन्दगी बेचारगी।

पाँच लश्कर का हमला पै दर पै इस शहर पर हुआ। पहला बाग़ियों का लश्कर, उसमें अहले शहर का ऐतबार लुटा। दूसरा लश्कर ख़ाकियों का, उसमें जानो माल व नामूस व मकानो मकीं व आसमानो ज़मीं व आसारे[3] हस्ती

---

१. अनुमानित। २. शिकायत। ३. जीवनोपयोगी सामग्री।

सरासर लुट गये। तीसरा लश्कर काल का उसमें हज़ारहा आदमी भूके मरे। चौथा लश्कर हैज़े का, उसमें बहुत से पेट भरे मरे। पाँचवाँ लश्कर तप का उसमें ताबो[1] ताक़त उमूमन लुट गई। मरे आदमी कम लेकिन जिसको तप आई उसने फिर आज़ा में ताक़त न पाई। अब तक इस लश्कर ने शहर से कूच न किया। मेरे घर में दो आदमी तप में मुब्तिला हैं—एक बड़ा लड़का और एक मेरा दारोग़ा। ख़ुदा इन दोनों को जल्द सेहत दे। बरसात यहाँ भी अच्छी हुई है, लेकिन न ऐसी के जैसी कालपी और बनारस में। ज़मींदार ख़ुश, खत्तियाँ तैयार हैं। ख़रीफ़ का बेड़ा पार है। रबी के वास्ते पौह–माह में दरकार है, किताब का पार्सल परसों इरसाल किया जायगा।

अहा हा हा! जनाब हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श साहब मेरी बन्दगी।

मुग़ल अली ख़ाँ ग़दर से कुछ दिन पहले मुस्तस्क़ी[2] होकर मर गये। है, है! क्यों कर लिखूँ! हकीम रज़ी उद्दीन ख़ाँ को क़त्ले आम में एक ख़ाक़ी ने गोली मार दी और अहमद हुसेन ख़ाँ उनके छोटे भाई उसी दिन मारे गए। ताले यार ख़ाँ के दोनों बेटे टाँक से रुख़सत लेकर आये थे, ग़दर के सबब जा न सके, यहीं रहे। बादे फ़तहे देहली दोनों बेगुनाहों को फाँसी मिली। तालेयारख़ाँ टाँक में हैं, जिन्दा हैं पर यक़ीन है के मुर्दे से बदतर होंगे। मीर छोटम ने भी फाँसी पाई। हाल साहबज़ादा मियाँ निज़ामुद्दीन का ये है के जहाँ सब अकाबिर[3] शहर के भागे थे वहाँ वो भी भाग गये थे। बरोदे मे रहे, औरंगाबाद में रहे, हैदराबाद में रहे। साले गुज़िश्ता[4] याने जाड़ों में यहाँ आये। सरकार से उनकी सफ़ाई हो गई, लेकिन सिर्फ़ जाँ[5] बख़्शी। रौशनद्दौला का मदरसा अक़्बे[6] कोतवाली चबूतरा है वो और ख़ाजा क़ासिम की हवेली जिसमें मुग़ल अलीख़ाँ मरहूम रहते थे वो और ख़ाजा साहब की हवेली, ये

---

१. शक्ति। २. प्यास की बीमारी। ३. बड़े लोग। ४. गतवर्ष। ५. प्राण दान। ६. निकट।

अमलाके ख़ास हज़रत काले साहब की और काले साहब के बाद मियाँ निज़ामुद्दीन की क़रार पाकर ज़ब्त हुई और नीलाम होकर रुपया सरकार में दाख़िल हो गया। हाँ, क़ासिम जान की हवेली जिसके कागज़ मियाँ निज़ामुद्दीन की वालिदा के नाम के हैं वो उनको याने निज़ामुद्दीन की वालिदा को मिल गई है। फ़िलहाल मियाँ निज़ामुद्दीन पाक पटन गए हैं। शायद भावलपूर भी जाएँगे।

१२

(१९ जुलाई १८६०)

यौमुल[1] ख़मीस, २९ जिलहज्जा (१२७६ हि०)।

पीरो मुर्शद माफ़ कीजिएगा
मैंने जमना का कुछ न लिक्खा हाल

यहाँ कभी किसी ने इस दरिया की कोई हिकायत ऐसी नहीं की के जिससे इस्तेबाद[2] और इस्ते[3] अजाब पाया जाए। पुरसिश के बाद भी कोई नई बात नहीं सुनी। सुनिए तो सही, मौसम क्या है—गरमी, जाड़ा, बरसात, तीन फ़सलें इकट्ठीं तगर्ग बारी[4] अलावा। अगर एक बहरे ख़ाँ की हक़ीक़त मुतग़य्यर हो जाए तो महल इस्तेअजाब क्यों हो? और ये बात के दिल्ली में नगय्युर न हो और पूरब में हो, इसकी वजह ये है के यहाँ जमना ब इन्फ़राद[5] बह रही है और वहाँ कही 'केन' कही और नदी, कहीं गंगा बाहम मिल गई हैं, मजमउल[6] बहार है।

---

१. गुरुवार। २, ३. आश्चर्य। ४. ओलों की वर्षा। ५. एकाकी। ६. नदियों का संगम।

हज़रत ने ख़ूब वकालत की। मौला क़लक़ से तक़सीर मेरी माफ़ न करवाई। कह दो के गुनाह माफ़ हो गया। मैं बग़ैर सर्टिफ़िकेट के कब मानूँगा ?

ये दिन मुझ पर गुज़रते हैं। गर्मी में मेरा हाल वेऐनेही वो होता है, जैसा ज़बान से पानी पीने वाले जानवरों का। ख़ुसूसन इस तमवुज़ में के ग़मो[१] हम का हुजूम है।

> आतिशे दोज़ख़ में ये गर्मी कहाँ
> सोज़े ग़म हाय निहानी और है

मर्ग का तालिब
—ग़ालिब

१३

(जुलाई १८६०)

पीरो मुर्शद,

शबे रफ़्ता[५] को मेह ख़ूब बरसा। हवा में फ़र्त्ते बुरूदत से गज़न्द पैदा हो गया। अब सुबह का वक़्त है। हवा ठंडी बेगज़न्द चल रही है। अब्रे तुनक मुहीत है। आफ़ताब निकला है, पर नज़र नहीं आता है। मैं आलमे तसव्वुर में आपको मसनेद इज़्ज़ो जाह पर जाँनशीन और मुन्शी नादिर हुसेनख़ाँ साहब को आपका जलीसे मुशाहिदा करके आपकी जनाब में कोर्निश बजा लाता है और मुंशी साहब को सलाम करता हूँ। काफ़िरे नेमत ही हो जाऊँ अगर ये मजारिज बजा न लाऊँ। हज़रत और मुंशी साहब ने मेरी ख़ातिर से क्या

---

१. दुःख-चिन्ता। २. ठंड की अधिकता। ३. कोमल मेघ खंड। ४. प्रतिष्ठा। ५. गत रात्रि।

जहमत उठाई है। भाई साहब बहुत ख़ुशनूद[1] हुए। मिन्नत[2] पिज़ीरी में मेरे शरीक़े ग़ालिब हैं। फ़िलहाल बतवस्सुत[3] मेरे सलामे नियाज़ अर्ज़ करते हैं, अग़लब है के नामा जुदागाना भी इरसाल करें। हज़रत आप ग़ालिब की शरारतें देखते हैं। सब कुछ कहे जाता है और उस अस्ल का के जिस पर ये मरातिब मुतफ़र्रे हों, ज़िक्र नहीं करता, फ़क़ीर को ये तर्ज़ पसंद न आई। मतलबे असली को मुक़द्दर छोड़ जाना क्या शेवा है ? यों लिखना था के आपका इनायत नामा और उसके साथ नसबनामा[4] ख़ानदाने मजदो[5] अला का पार्सल पहुँचा। मैं ममनून[6] हुआ। नवाब ज़िया-उद्दीनख़ाँ बहादुर बहुत ममनून व शाकिर[7] हुए। जनाबे आली मैं तो 'ग़ालिब' हरज़ा सराका मौत क़िद न रहा। आपने उसको मुसाहिब बना रखा है, इससे उसका दिमाग़ चल गया है।

क़िब्ला व काबा, क्या जनाबे मौलाना 'क़लक़' में हज़रते 'शफ़क़' ने जो ग़ालिब की शफ़ाअत की थी, वो मक़बूल न हुई ? अब जनाब 'हाशमी' को अपना हम ज़बान और अपना मददगार बनाकर फिर कहते हैं आपकी बात इस बाब मे न मानूँगा, जब तक सैयद साहब का ख़ुशनूदीनामा न भिजवाइएगा। इस सर्टिफ़िकेट के हुसूल में रिश्वत देने को भी मौजूद हूँ ! वस्सलाम।

१४

(जुलाई १८७०)

पीरो मुर्शद, कोर्निश। मिज़ाजे अक़दस ? अलहम्दुलिल्लाह्। तू अच्छा है। हज़रत हुआ करता हूँ।

---

१. प्रसन्न। २. अनुनय विनय। ३. द्वारा। ४. वंश परम्परा। ५. निरर्थक बकने वाला। ६. कृतज्ञ। ७. धन्य।

परसों आपका ख़त मय सर्टिफ़िकेट के पहुँचा। आपको मब्द[1] ए फ़ैयाज़ से अशरूफ़ुल[2] विकला ख़िताब मिला, मेहनतानए मुहब्बताना[3]।

एक लतीफ़ा निशात[4] अँगेज़ सुनिए। डाक का हरकारा जो बल्लीमारों के मुहल्ले के ख़ुतूत पहुँचाता है, इन दिनों में एक बनिया पढ़ा लिखा, हुरूफ़[5] शनास कोई फ़लाँ नाथ, ढमकदास, है। मैं बालाख़ाने पर रहता हूँ। हवेली में आकर उसने दारोग़ा को ख़त दिया, और उसने ख़त देकर मुझ से कहा के डाक का हरकारा बन्दगी अर्ज़ करता है और कहता है के मुबारक हो, आपको जैसा के दिल्ली के बादशाह ने नवाबी ख़िताब दिया था, अब कालपी से ख़िताब कप्तानी का मिला। हैरान के ये क्या कहता है? सरनामे को ग़ौर से देखा। वहीं क़ब्ल अज़ इस्म मख़दूम नियाज़े कैशाँ[6] लिखा था, उस क़ुरम साक़[7] ने और अल्फ़ाज़ से क़ता नज़र करके कैशाँ 'कप्तान' पढ़ा।

भाई मिर्ज़ा ज़्ीमख़ाँ साहब शिमले गये हुये हैं। शायद आख़िरे माहे हाल याने जुलाई या अव्वल माहे आइन्दा, याने अगस्त में यहाँ आ जाएँ। आपको नवीदे[8] तख़फ़ीफ़ तसदी देता हूँ; आप नवाब साहब से किताब क्यों माँगें और ज़हमत क्यों उठाएँ? जिस क़दर के इल्म उनको इस ख़ानदाने मुहब्बत निशान के हाल पर हासिल हो गया है; काफ़ी है। मौलाना 'क़लक़' के नाम की अर्ज़ी उनको पहुँचा दीजिएगा और जनाब नादिर हुसेन साहब को मेरा सलाम फ़रमा दीजिएगा।

---

१. ईश्वर की ओर से। २. श्रेष्ठ वकील। ३. प्रेम पूर्वक पारिश्रमिक। ४. आनन्द दायक। ५. साक्षर। ६. सब का दास। ७. एक गाली। ८. समय नष्ट होने का सुसमाचार।

१५

(२४ अगस्त १८७०)

ख़ुदाबन्दे नेमत,

शर्फ़ अफ़ज़ा नामा पहुँचा। शाह इसरारुल हक़ के नाम का मकतूब[१] उनकी ख़िदमत में भेज दिया गया। जनाब शाहसाहब सालिके[२] मज्ज़ूब या मज्ज़ूबे[३] सालिक हैं; अगर जवाब भिजवा देंगे तो जनाब में इरसाल किया जायगा। क़सीदे को बारहा देखा और ग़ौर की। जिस तर्ज़ पर है उसमें गुंजाइश इस्लाह की न पाई, याने लफ़्ज़ की जगह लफ़्ज़े मुरादिफ़[४] बिलमाने लाना सिर्फ़ अपनी दस्तगाह[५] का इज़हार है, वर्ना कोई लफ़्ज़ बेमहल और बे मौक़ा नहीं। कोई तरक़ीबें फ़ारसी टकसाल बाहर नहीं है; मगर हाँ तर्ज़ें गुफ़्तार का बदलना उसके वास्ते चाहिए दूसरा क़सीदा, इस ज़मीन में एक और लिखना और वो तकल्लुफ़े बारद है। बल्के अगर, हज़रत को ये मंज़ूर भी न हो। पस शर्में कम ख़िदमती से दिलरीश[६] और फ़र्ते[७] ख़िजलत से सरे दरपेश[८] होकर क़सीदे को इस लिफ़ाफ़े में भेजता हूँ। ख़ुदा करे मौरिदे[९] अिताब न हूँ।

हज़रत, इन्हेदा[१०] में मसाकिन व मसाजिद का हाल क्या गुज़ारिश करूँ? बानी ए शहर को वो अहतमाम मकानात के बनाने में न होगा जो अब वालियाने मुल्क को ढाने में है। अल्लाह्, अल्लाह्! क़िले में अक्सर और शहर में बाज़ बाज़ वो शाहजहानी इमारतें ढाई गई हैं के कुदाल टूट-टूट गए

---

१. पत्र। २. चेतना युक्त मस्त। ३. मस्ती में चेतना युक्त। ४. पर्यायवाची शब्द। ५. सामर्थ्य। ६. व्यथित हृदय। ७. लज्जा की अधिकता से। ८. मस्तक आगे झुकाकर। ९. क्रोध की उत्पत्ति। १०. गिरना, भग्न होना।

हैं, बल्के क़िले में तो इन आलात से काम न निकला, सुरंगें खोदी गईं और बारूद बिछाई गई और मकानाते संगीं उड़ा दिए गए।

ग़ल्ले की गिरानी, आफ़ते आसमानी, अमराज़े दमवी[1] बला ए जानी, अनवावो[2] अक़साम के औराम[3] व बुसूर शाया[4]। चारा नासूद[5] मन्द और सई[6] ज़ाया। मैं नहीं जानता के ११ मई सन १८५७ को पहर दिन चढ़े वो फ़ौजे[7] बाग़ी मेरठ से दिल्ली आई थी या जूनूद[8] कहरे इलाही का पै दर[9] पै नुज़ुल[10] हुआ था। बक़द्र ख़ुसूसियते[11] साबिक़ दिल्ली मुमताज है वर्ना सर ता[12] सर क़मल रू हिन्द में फ़ितना व बला का दरवाज़ा बाज़ है। इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलहे राजऊन।

जनाब मीर अमजद अली साहब को बन्दगी। जनाब मुंशी नादिर हुसेनख़ाँ साहब को सलाम।

मरक़ूमा सहरगाहे[13] आदीना, २४ माहे अगस्त सन १८६० ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

१६

(२ जून १८६१)

पीरो मुर्शद,

मैं आपका बन्दा फ़रमा पिज़ीर और आपका हुक्म बतीबे[14] ख़ातिर बजा लाने वाला हूँ, मगर समझ तो लूँ के क्या लिखूँ। वो मकतूब कहाँ

---

१. रक्त सम्बन्धी रोग। २. विविध प्रकार के। ३. शोथ और फोड़े फुन्सी। ४. व्यापक। ५. उपाय निरर्थक। ६. प्रयत्न। ७. विद्रोही सेना। ८. ईश्वरीय प्रकोप की सेना। ९. लगातार। १०. अवतरण। ११. पिछली विशेषताओं के कारण। १२. हिन्दुस्तान में प्रत्येक उत्पात होता है। १३. मध्याह्न। १४. प्रसन्नता पूर्वक।

भेजूँ ? आपके पास भेज दूँ या उन्हीं मुन्शी साहब के पास भेज दूँ ? और रहीमुद्दीन व अमीरुद्दीन को मुन्शी, मीर, शेख़, ख़ाजा क्या करके लिखूँ ? दो हाकिम की राय की[1] शुमूल का क़ैदी और उस ज़माने में दरिया[2] ए शोर को भेजा जाता है जिस ज़माने में सैकड़ों जज़ीरा नशीं रिहाई पाकर अपने अपने घर आ गए। बईं हमा, मुन्शी को क्या अख़्तियार है के वो छोड़ दे। आया अमीरुद्दीन ने जिए महक्मे का वो मुन्शी है, उस महक्मे में ये मुक़दमा बतरीक़े मुराफ़ा पेश किया है, जो मुन्शी को कार परदाज़ी व कार-साज़ी की गुंजाइश हो ? ये आपकी तहरीर से मालूम नहीं हुआ के अपील हो गया है और मुक़दमा दायर है, बल्के ये भी तर्ज़े तहरीर से नहीं मालूम होता के अब सई मुनहसिर इसमें है के क़ैदी दरिया ए शोर को न जाए और यहीं महबूस[3] रहे, या ये मंज़ूर है के जज़ीरे को भी न जाए और यहाँ की क़ैद से भी रिहाई पाये। ख़्वाहिश क्या है और कार परदाज़ से किस तरह की इआनत[4] चाहूँ ! पहले तो ये सोचता हूँ के क्या लिखूँ, फिर जो कुछ लिखूँ उसको कहाँ भेजूँ ? तरीक़ा तो ये है के मियाँ अमीरुद्दीन वो निगारिश[5] लेकर मुन्शी साहब के पास जाएँ और बज़रिये उस ख़त के रूशनास[6] हों। मैं क्या जानूँ के अमीरुद्दीन का मस्कन कहाँ है। मुन्शी साहब को ख़त भेज दूँ। उनके नज़दीक अहमक़ बनूँ के किस अम्र मौहूमे मजहूल में मुझको लिखा है। क्यों कर हो सकता है के वो उस ख़त को पढ़कर तफ़हहुस करें के अमीरुद्दीन कौन है और कहाँ है और क्या चाहता है। बहरहाल इसी ख़त के साथ एक और लिफ़ाफ़ा आपके नाम का रवाना करता हूँ, उसमें सिर्फ़ एक ख़त मौसूम[7] ए मुन्शी साहब है खुला हुआ, उसको पढ़ कर मियाँ अमीरुद्दीन के पास भेज दीजिएगा गोंद लगा कर। और अगर ये मंज़ूर न हो तो मेरी तरफ़ से

---

१. सम्मिलित सम्मति। २. काला पानी। ३. बन्दी। ४. कृपा। ५. प्रार्थना पत्र। ६. परिचित। ७. मुन्शी साह के नाम का।

मुन्शीसाहब के नाम के ख़त का मसविदा लिख कर मेरे पास भेजिए और लिख भेजिए के उस मसविदे को साफ़ करके कहाँ भेजूँ।

सुबह यक शंबा २ जून सन् १८६१।

१७

(२२ अक्टूबर १८६१ ई०)

किब्ला व काबा,

क्या लिखूँ! उमूरे नफ़सानी में अज्दाद का जमा होना मुहालाते[१] आदिया में से है, क्यों कर हो सके के एक वक़्ते ख़ास में एक अम्रे ख़ास मूजिबे इन्शेरा[२] का भी और बायसे[३] इन्क़बास का भी हो। ये बात मैंने आपके इस ख़त में पाई के उसको पढ़ कर ख़ुश भी हुआ और ग़मगीन भी हुआ। सुभान अल्लाह। अक्सर उमूर में तुमको अपना हमताला[४] और हमदर्द पाता हूँ––अज़ीज़ों की सितमकशी[५] और रिस्तेदारों से नाख़ुशी। मेरा हम क़ौम[६] तो सरासर क़लम[७] रू ए हिन्द में नहीं, समरकन्द के दो चार या दश्ते ख़नचाक़ सौ दो सौ होंगे, मगर हाँ, अक़ुरबा[८] ए सब्ज़ी। पाँच बरस की उम्र से उनके दाम[९] में असीर[१०] हूँ। ६१ बरस सितम उठाये हैं।

गर देहम शरह सितम हाय अज़ीज़ाँ ग़ालिब
रस्मे उम्मीद हमाना ज़े जहाँ बरख़ीज़द

---

१. जिन बातों की आदत पड़ गई है, उनमें न होसकने वाली बात। २. हृदय की प्रफुल्लता। ३. दुःख का कारण। ४. समान भाग्य वाला। ५. अत्याचार। ६. सजातीय। ७. भारत भर में। ८. कारणिक बन्धु। ९. जाला। १०. बन्दी।

नवाब अनवरद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क़' के नाम

न तुम मेरी ख़बर ले सकते हो, न मैं तुमको मदद दे सकता हूँ। अल्लाह्, अल्लाह्, दरिया सारा तैर चुक हूँ।[१] साहल नज़दीक है, दो हाथ लगाये और बेड़ा पार है।

उम्र भर देखा किया मरने की राह
मर गये पर देखिये दिखलाएँ क्या ?

ये भी तो पूछो के आप के ख़त का जवाब इतना जल्द क्यों लिखा ? यान कमो बेश महीना भर के बाद। क्या करूँ ? शाह असरारुल हक़ को आपका और हाफ़िज़ निज़ामुद्दीन साहब का ख़त भिजवा दिया। हफ़्ता भर के बाद जवाब माँगा, जवाब दिया के अब भेजता हूँ। दस-बारह दिन हुए के हज़रत ख़ुद तशरीफ़ लाए। जवाब आपके और हाफ़िज़ जी के ख़त का माँगा। कहा के कल भेज दूँगा। इस वाक़े को आज करीब दो हफ़्ते के अर्सा हुआ। लाचार उनके जवाब से क़ते नज़र करके आप को ये चन्द सतरें लिखीं।

अज़[२] ख़ूने दिल नविश्तम् नज़दीक़े दोस्त नामा
इन्नीह राय तो दहरन मिन हिजरेक ल क़यामा

हाफ़िज़ जी साहब को मेरी बन्दगी कहियेगा और ये ख़त उनको पढ़वा दीजिएगा। जनाब मुंशी नादिर हुसेन ख़ाँ साहब को मेरा सलाम पहुँचे। अगर चे आप मुब्तिलाए रंजो अलम है मगर ये शरफ़ क्या कम है के अनवरद्दौला के हमदर्द हो।[३] मौरिदे सितम हाय रोज़गार होना शराफ़ते ज़ाती की दलील है सातै और बुरहान[४] हैं क़ातै।

हाँ हज़रत बहुत दिन से जनाब मीर अमजद अली साहब का कुछ हाल मालूम नहीं। उसके तख़ल्लुस ने मुझको हैरान कर रखा है। याने क़लक़

---

१. तट, किनारा। २. मैंने अपने हृदय के रक्त से अपने मित्र को पत्र लिखा है। मैं देखता हूँ तुम्हारे वियोग से संसार में प्रलय मच रही है। ३. संसार के अत्याचारों का लक्ष्य। ४. अकाट्य तर्क।

में मुब्तिला हूँ। आप उनका हाल लिखिये, ख़्वाजा इस्माईलख़ाँ साहब कहाँ हैं और किस तरह हैं। सुनिये क़िब्ला, मैं तो आप से शाह अनवारुल हक़ के ख़त के जवाब का तालिब नहीं हूँ के आप उनके ख़त के हासिल होने के इन्तज़ार में मुझको ख़त न लिख सकें। मुतरस्सिद[1] हूँ के इस अपने ख़त का जवाब जल्द पाऊँ।

सुबह सेशम्बा २२ अक्तूबर १८६१।

जवाब का तालिब
—ग़ालिब

१८

(१९ जून १८६२)

नावके[2] बेदाद का हदफ़ पीरे[3] ख़रफ़ याने ग़ालिब आदाब बजा लाता है।

नवाज़िशनामे को देख कर जाना के मैंने 'कमरे चन्द' के शेर पर ख़ते[4] बुतलान खींच दिया। ये तो कोई गुमान न करेगा के मैं 'कमर' को 'कमर-बन्द' नहीं जानता। माहाज़ा वहाँ पहले मिसरे में अगर 'कमर' बमानी 'कमर' फ़र्ज़ कीजिये, तो भी शेर काट डालने के क़ाबिल नहीं। क़स्द करके बैठा था के इस शेर पर साद[5] करूँगा। ख़ुदा जाने, क़लम ख़त क्यों कर खींच गया? अब हवास बजा नहीं, हाफ़िज़ा रहा नहीं। अक्सर अल्फ़ाज़ बेक़स्द लिख जाता हूँ। ७० बरस की उम्र हुई, कहाँ तक ख़राफ़त[6] आये। उस शेर का गुनहगार और हज़रत से शर्मसार हूँ। मेरी ख़ता माफ़ कीजिये। ज़्यादा हद्दे अदब।

पंज शबा १९ ज़िलहिज्जा, साले ग़फ़र।

---

१. प्रतीक्षा करता हूँ। २. अत्याचार के तीर का लक्ष्य। ३. बुद्धिहीन वृद्ध ४. गल्ती को अंकित करना। ५. स्वीकृति का चिह्न। ६. बुद्धि।

१९

(११ अगस्त १८६२)

सुबह दो शंबा, १३ सफ़र व ११ माहे अगस्त सन् १८६२ ई०।

पीरो मुर्शद,

आदाब[१] ततिम्मए, ग़लत नामए 'क़ाते बुरहान' को भेजे हुए तीन दिन और आप की ख़ैरो आफ़ियत मौलवी हाफ़िज़ आज़ीजुद्दीन की ज़बानी सुने हुए दो दिन हुए थे के कल आप का नवाज़िशनामा पहुँचा। 'क़ातै बुरहान' के पहुँचने मे इत्तिला पाई। मौतक़िदाने 'बुरहान क़ातै' बराछियाँ और तलवारें पकड़ पकड़ कर उठ खड़े हुए है। हनोज़ दो ऐतराज़ मुझ तक पहुँचे हैं। एक तो ये के 'क़ाते बुरहान' ग़लत है याने तरक़ीब खिलाफ़े क़ायदा है, कलाम क़ता[२] किया जाता है, बुरहान क़ता नहीं हो सकती है। लो साहब, 'बुरहाने क़ातै' सही और 'क़ातै बुरहान' ग़लत, मगर 'बुरहान' 'क़ाता' की फ़ाइल हो सकती है, 'क़ता' का फ़ेल आप नहीं क़ुबूल करती। 'क़ाता बुरहान' में जो 'बुरहान' का लफ़्ज़ है, ये मुख़फ़्फ़िफ़े 'बुरहान क़ातै' है। फिर 'बुरहान क़ाते' के रद को 'क़ता' समझकर 'क़ाते' नाम रखा तो क्या गुनाह हुआ? दूसरा ईराद ये है के बुरहान बा[३] इंग्लिसियान सितेज़ बेजा, इंग्लिस का नून तलफ़्फ़ुज़ में नही आता। मैं पूछता हूँ के ख़ुदा के वास्ते 'इंग्लिस' और 'अँगरेज़' का नून बऐलान कहाँ है? और अगर है भी तो ज़रूरते शेर के वास्ते। लुग़ाते अरबी मे सुकून[४] व हरकत को बदल डालते है। अगर 'इंग्लिस' के नून को गुन्ना कर दिया तो क्या गुनाह किया?

---

१. 'क़ातै बुरहान' पुस्तक का शुद्धिपत्र। २. काटा जाता है। ३. अँगरेज़ों से लड़ना निरर्थक है। ४. विराम और गति।

वो वरक़ छापे का जो आपके पास पहुँचा है, उसको ग़लतनामए शामिला के बाद लगा कर जिल्द बँधवा लीजिएगा।

हज़रत क्यों आपने मुरासिले[१] और मेरे मकतूब[२] का हाल पूछा।

ईं हम[3] के जवाबे न नवीसन्द जवाबस्त।

समझ लो और चुप रहो।

मैंने माना, जिसको तुमने लिखा है वो लिखेगा के मैंने मुख़्तार से पूछा, उसने यों कहा, फिर मैंने ये कहा, अब ये बात क़रार पाई है के इस तक़रीर को हज़रत ही बावर करेंगे। फ़क़ीर कभी न आवेगा। एक हिकायत सुनो। अमजद अली शाह की सल्तनत के आग़ाज़ में एक साहब, मेरे नीम आशना याने ख़ुदा जाने कहाँ के रहने वाले किसी ज़माने में वारिदे अकबराबाद हुए थे। कभी कहीं के तहसीलदार भी हो गए थे, ज़बानावर और चालाक। अकबराबाद में नौकरी की जुस्तजू की, कहीं कुछ न हुआ। मेरे हाँ दो एक बार आए थे, फिर वो ख़ुदा जाने कहाँ गए। मैं दिल्ली आ रहा। कमो बेश बीस बरस हुए होंगे। अमजद अली शाह के अहद में उनका ख़त नागाह[४] मुझको बसबीले डाक आया। चूंके उन दिनों में दिमाग़ दुरुस्त और हाफ़िज़ा बरक़रार था, मैंने जाना के ये वोही बुज़ुर्ग हैं। ख़त में मुझको पहले ये मिसरा लिखा--

अज़[४] वक़्त शुक्र दारम अज़ रोज़गार हम

आप से जुदा होकर बीस बरस आवारा फिरा। जयपूर में नौकर हो गया, वहाँ से दो बरस के बाद कहाँ गया और क्या किया, अब लखनऊ आया हूँ। वज़ीर से मिला हूँ। बहुत इनायत करते हैं। बादशाह की मुलाज़िमत उन्हीं के ज़रिए से हासिल हुई है। बादशाह ने 'ख़ानी' और 'बहादुरी' का

---

१. पत्र। २. हमारा उत्तर न देना ही हमारा उत्तर है। ३. आकस्मिक। ४. मैं समय और भाग्य का कृतज्ञ हूँ।

ख़िताब दिया है, मुसाहिबों में नाम लिखा है। मुशाहिरा अभी करार नही पाया। वज़ीर को मैंने आपका बहुत मुश्ताक़ किया है। अगर आप कोई क़सीदा हुज़ूर की मदह में और अर्ज़ी या ख़त, जो मुनासिब जानिए, वज़ीर के नाम लिख कर मेरे पास भेज दीजिएगा, तो बेशक बादशाह आपको बुलाएँगे और वज़ीर का ख़त मशर[1] फ़र्मान तलब आपको पहुँचेगा। मैंने उसी अर्से में एक क़सीदा लिखा था जिसकी बैते इस्म ये हैं—

अमजद[2] अली शाहाँ के बजौक़ें दुआए ऊ
मद रह नमाजे सुबह क़ज़ा कर्द रोजगार

मुतरद्दिद था के किसकी मारिफ़त भेजूँ। तवक्कलतो[3] अल अल्लाह्, भेज दिया। रसीद आ गई सिर्फ़। फिर दो हफ़्ते के बाद एक ख़त आया के क़सीदा वज़ीर तक पहुँचा, वज़ीर पढ़कर बहुत ख़ुश हुआ। ब आईने शाइस्ता[4] पेश करने का वादा किया। मैं मुतवक़्क़े हूँ के मियाँ बदरुद्दीन मुहरकन[5] से मेरी मुहर 'ख़िताबी' ख़ुदवा कर भेज दीजिये। चाँदी का नगीना[6] मुरब्बा, क़लमजली[7]। फ़क़ीर ने सरंजाम करके भेज दिया। रसीद आई और क़सीदे के बादशाह तक गुज़रने की नवीद, बस। फिर दो महीने तक उधर से कोई ख़त न आया। मैंने जो ख़त भेजा उल्टा फिर आया, डाक का ये तौक़ी के मकतूबे[8] अलै यहाँ नहीं। एक मुद्दत के बाद हाल मालूम हुआ के उस बुज़ुर्ग का वज़ीर तक पहुँचना और हाज़िर रहना सच। बादशाह की मुलाज़िमत और ख़िताब मिलना गलत। 'बहादुरी' की मुहर तुमसे बफ़रेब हासिल करके मुर्शिदाबाद को चला गया। चलते वक़्त वज़ीर ने दो सौ रुपये दिये थे।

---

१. आने का आदेश। २. अमजद अली शाह की कृपा ऐसी है कि लोगों ने सौ बरस अपनी नमाज़ें नहीं पढ़ीं। ३: ईश्वर पर विश्वास करके। ४. उचित रीति से। ५. मुहर खोदने वाला। ६. चौकोन नग। ७. मोटी क़लम। ८. पत्र जिसके नाम भेजा गया।

ये क़ायदे[1] कुल्लियात दिल्ली का समझ लो, खा़लिक़[2] की क़ुदरत मुक़्तजी इसकी है के जो इस शहर पनाह के अन्दर पैदा हो, मर्द या औरत खफ़क़ान व मिराफ़ उसकी खिल्क़त व फ़ितरत में हो। आठ दस बरस के बाद साँवन के अखीर मेह खूब बरसा लेकिन न दरिया जारी हुए न तूफ़ान आये। हाँ, शहर के बाहर एक दिन बिजली गिरी, दो एक आदमी कुछ जानवर तलफ़ हुए। मकान गिरे, दस बीस आदमी दब कर मरे, दो-तीन शख़्स कोठे पर से गिर कर मरे। मिराँक़ियों[3] ने गुल मचाना शुरू किया। अपने अपने अज़ीजा़ने[4] बेसफ़र रफ़्ता को लिखा। जाबजा अखबार नवीसों ने उनसे सुनकर दर्जे अखबार किया। लो, अब दस-बारह दिन से मेह का नाम नहीं, धूप आग से ज्यादातर तेज है। वही खफ़क़ाएनी साहब अब रोते फिरते हैं के खेतियाँ जली जाती है। अगर मेह न बरसेगा तो फिर काल पड़ेगा।

मकानात के गिरने का हाल ये है के चार-पाँच बरस ज़ब्त रहे; यग़माई[5] लोग कड़ी, तख़्ता, किवाड़, चौखट, बाज़ मकानात की छत का मसाला सब ले गये। अब उन ग़ुरबा[6] को वो मकान मिले तो उनमें मरम्मत का मक़दूर कहाँ! फ़रमाइए, मकानात क्यों कर न गिरे?

२०

पीरो मुर्शद,

आदाब। मिजा़जे मुक़द्दस। मेरा जो हाल आपने पूछा, इस पुरसिश का शुक्र बजा लाता हूँ और अर्ज करता हूँ के आपका बन्दए[7] बेदिरम खरीदा अच्छी तरह है। एक फ़स्द[8], बाईस मुंजिज़,[9] चार मुस्हिल, कहाँ तक आदमी को जईफ़

---

१. स्वीकृत तथ्य। २. ईश्वर का सामर्थ्य। ३. अफ़वाह उड़ाने वाले। ४. बिना यात्रा की इच्छा से बाहर गये हुए। ५. चोर उचक्के। ६. गरीब (ब० व०)। ७. बिना मूल्य का दास। ८. विकृत रक्त निकालने का एक तरीका। ९. दोषों को पकाने के लिए यूनानी चिकित्सा के अन्तर्गत एक उपाय।

न करे। बारे, आफ़ताब अक़रब[1] में आ गया, पानी बरफ़ाब हो गया है, काबुल वा काश्मीर का सेब बिकने लगा है। ये ज़ोफ़, ज़ोफ़े क़िस्मत तो नहीं के ऐसे ऐसे उमूर उसको ज़ायल न कर सकें।

ग़ज़लों को परसों से पढ़ रहा हूँ और वज्द कर रहा हूँ। ख़ुशामद मेरा शेवा नहीं है। जो इन ग़ज़लों की हक़ीक़त मेरी नज़र में है, वो मुझसे सुन लीजिये और मेरी दाद देने की दाद दीजिये। मौलाना 'क़लक़' ने मुतक़दे-मीन,[2] याने अमीर ख़ुसरो व सादी व जामी की रविश को सरहदे कमाल को पहुँचाया है, और मेरे क़िब्ला व काबा मौलाना शफ़क़ और मौलाना हाशमी और मौलाना असकरी मुताक़रीन[3] याने सायब व कलीम व क़ुदसी के अन्दाज़ को आसमान पर ले गये हैं। अगर तकल्लुफ़ और तमल्लुक़ से कहता हूँ तो ईमान नसीब न हो। ये जो आप अपने कलाम के हको इस्लाह के वास्ते मुझसे फ़रमाते है, ये आप मेरी आबरू बढ़ाते हैं। कोई बात बेजा हो, कोई लफ़्ज़ नारवा हो, तो मैं हुक्म बजा लाऊँ। ज़्यादा हद्दे अदब।

२१

(१५ फ़रवरी १८६४)

हरगिज़[4] न मीरद आँ के दिलश ज़िन्दा शुद ब इश्क
सब्तस्त बर जरीदए आलम दवामे मा

ख़ुदावन्दे नेमत,

आज दोशंबा, ६ रमज़ान की और १५ फ़रवरी की है, इस वक़्त, के, बारह पर तीन बजे हैं। उतूफ़त नामा पहुँचा। उधर पढ़ा इधर जवाब

---

१. वृश्चिक राशि। २. प्राचीन। ३. आधुनिक, पश्चात् कालीन। ४. जिस व्यक्ति का हृदय प्रेम में जीवित है, वह कभी नहीं मरता। रहती दुनिया तक उसका नाम संसार में रहता है।

लिखा। डाक का वक़्त न रहा। ख़त को मानून[1] कर रखा हूँ। कल शंबा १६ फ़रवरी को डाक में भिजवा दूँगा। साले गुज़िश्ता मुझ पर बहुत सख़्त गुज़रा। १२, १३ महीन साहबे फ़राश रहा, उठना दुश्वार था। चलना फिरना कैसा ? न तप न खाँसी, न इसहाल, न फ़ालिज न लक़वा। इन सब से बद्तर एक सूरते[2] पुर कुदूरत याने अहतराक़[3] का मर्ज़। मुख़्तसर ये के सर से पाँव तक बारह फोड़े, हर फोड़ा एक ज़ख़्म, हर ज़ख़्म एक गार; हर रोज बे मुबालिग़ा, बारह-तेरह फाये और पाव भर मरहम दरकार। नौ-दस महीने बे ख़ौरो[4] ख़ाब रहा हूँ और शबो रोज़[5] बेताब। रातें यों गुज़री हैं के अगर कभी आँख लग गई, दो घड़ी गाफ़िल रहा हूँगा, के एक-आध फोड़े में टीस उठी, जाग उठा, तड़पा किया, फिर सो गया, फिर होशियार हो गया, साल भर में से तीन हिस्से दिन यों गुज़रे, फिर तख़फ़ीफ़[6] होने लगी। दो-तीन महीने में लौट पौट कर अच्छा हो गया। नये सिर से रूह क़ालिब[7] में आई। अजल ने मेरी सख़्त जानी की क़सम खाई। अब अगरचे तन्दुरुस्त हूँ, लेकिन नातवाँ और सुस्त हूँ। हवास खो बैठा। हाफ़िज़े को रो बैठा। अगर उठता हूँ तो इतनी देर में उठता हूँ के जितनी देर में क़दे आदम[8] दीवार उठे। आपकी पुरसिश के क्यों न क़ुरबान जाऊँ के जब तक मेरा मरना न सुना मेरी ख़बर न ली। मेरे मर्ग के मुख़बिर[9] की तक़रीर और मिसलहु[10] मेरी ये तहरीर, आधी सच आधी झूट, दर सूरते[11] मर्ग नीम मुर्दा और दर हालते हयात[12] नीम-ज़िन्दा[13] हूँ।

---

१. पूर्ण रूप से तैयार। २. अत्यन्त कष्टदायक। ३. जलन। ४. बिना भोजन और नींद। ५. रात दिन। ६. कमी। ७. शरीर। ८. मनुष्य के शरीर के बराबर। ९. समाचार देने वाला। १०. हूबहू। ११. मृत्यु की दृष्टि से। १२. जीवन की दृष्टि से। १३. अर्ध जीवित।

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क़' के नाम

दर कशाकशे[1] ज़ोफ़म न गसलत रवाँ अस्तन
ईं के मन नमी मीरम हम ज़े नातवानी हास्त

अगर इन सुतूर की नक़्ल मेरे मख़दूम मौलवी गुलाम ग़ौस ख़ाँ बहादुर साहब मीर मुंशी लेफ़्टेंट गवर्नरी ग़र्बो शुमाल[2] के पास भेज दीजिएगा तो उनको ख़ुश और मुझको ममनून[3] कीजियेगा।

---

१. निर्बलता के संघर्ष में मेरी आत्मा शरीर से निकल ही नहीं सकती। मैं निर्बलता के कारण मरता भी नहीं हूँ। २. पश्चिमोत्तर प्रदेश। ३. आभारी।

सैयद यूसुफ़ मिर्ज़ा के नाम

१

(सन् १८५६)

कोई है ? ज़रा यूसुफ़ मिर्ज़ा को बुलाइयो। लो साहब वो आये। मियाँ मैंने कल खत तुमको भेजा है, मगर तुम्हारे एक सवाल का जवाब रह गया है। अब सुन लो—तफ़ज्जुल हुसेनखाँ अपने मामूँ मोइदुद्दीन खाँ के पास मेरठ है। शायद दिल्ली आया हो, मगर मेरे पास नहीं आया। वालिद उनके ग़ुलाम अलीखाँ अकबराबाद में हैं। मकतबदारी[१] करते हैं। लड़के पढ़ाते हैं, रोटी खाते हैं।

तुम लिखते हो के पचास महल[२] महल वाजिद अली शाह के कलकत्ते गये। तुम्हारे मामूँ मुहम्मद क़ुलीखाँ के खत में लिखते हैं के शाहे अवध बनारस आ गये। इस ख़बर का उस ख़बर के साथ मुनाफ़ात[३] नहीं है—उधर से आप बनारस को चले हों, इधर से बेगमात को वहाँ बुलाया हो। मगर मेरी जान हमको क्या !

आलम[४] पसे मर्गे मा चे दरिया चे सराब !

---

१. शिक्षक का काम। २. पत्नी। ३ विरोध। ४. हमारे मरने के पश्चात् दुनिया में समुद्र रहे अथवा मृग मरीचिका।

२

(जून १८५९)

ऐ मेरी जान, ऐ मेरी आँखें,

ज़े[1] हिजराने तिफ़्ले के दरख़ाक रफ़्त
चे नाली, के पाक आमदो पाक रफ़्त

वो ख़ुदा का मक़बूल[2] बन्दा था। वो अच्छी रूह[3] और अच्छी क़िस्मत लेकर आया था। यहाँ रह कर क्या करता! हरगिज़ ग़म न करो। ऐसी ही औलाद की ख़ुशी है तो आभी तुम ख़ुद बच्चे हो। ख़ुदा तुमको जीता रखे, औलाद बहुत। नाना-नानी के मरने का ज़िक्र क्यों करते हो! वो अपनी अजल से मरे हैं। बुज़ुर्गों का मरना बनी आदम[4] की मीरास[5] है। क्या तुम ये चाहते थे के वो इस अहद में होते और अपनी आबरू खोते! हां, मुज़फ़्फ़रद्दौला का ग़म मिन्जुमला[6] वाक़आते कर्बलाए मुअल्ला है। ये दाग़े मातम जाते जी न मिटेगा। वालिद की ख़िदमत वजा न लाने का हर्गिज अफ़सोस न चाहिए। कुछ हो सकता हो और न किया हो तो मुस्तहक़[7] मलामत होते। कुछ हो भी न सके तो क्या करो! अब तो फ़िक्र ये पड़ी हुई है कि रहिये कहाँ और खाइए क्या!

मौलाना का हाल कुछ तुमसे मुझको मालूम हुआ। कुछ तुम मुझसे मालूम करो। मुराफ़े में हुक्मे[8] दवामे हब्स बहाल रहा। बल्के ताकीद हुई के जल्द दरिया[9]

---

१. उस लड़के के मरने से उनके वियोग में क्यों रोता है? वे पवित्रावस्था में आए थे और पवित्रावस्था में चले गए। २. प्रिय। ३. आत्मा। ४. मानव-कुल। ५. दाय भाग। ६. सब मिला कर क़र्बला की दुर्घटना के समान। ७. पछतावे के अधिकारी। ८. आजीवन कारावास की आज्ञा। ९. काला पानी।

ए शोर की तरफ़ रवाना करो। चुनाचे तुमको मालूम हो जाएगा। उनका बेटा विलायत में अपील किया चाहता है। क्या होता है, जो होना था सो हो लिया। इन्नालिल्लाहे व इन्नाइलहे राजऊन।

नाज़िरजी को सलाम कहना और कहना के हाल अपना मुफ़स्सिल तुमको लिख चुका हूँ। वो 'देहली.उर्दू अख़बार' का परचा अगर मिल जाए तो बहुत मुफ़ीदे मतलब है, वर्ना ख़ैर कुछ महले[१] ख़ौफ़ व ख़तर नहीं है। हुक्कामे सदर ऐसी बातों पर नज़र न करेंगे। मैंने 'सिक्का' कहा नहीं और अगर कहा तो अपनी जान और—हुरमत बचा लेने को कहा। ये गुनाह नहीं; और अगर गुनाह भी है, तो क्या ऐसा संगीन है के मलिके[२] मौज़्ज़मा का इश्तेहार भी उसको न मिटा सके! सुभान अल्लाह्! गोलांदाज़ का बारूद बनाना और तोपें लगानी और बंक घर और मैगज़ीन का लूटना, माफ़ हो जाए और शायर के दो मिसरे माफ़ न हों? हाँ साहब, गोलांदाज़ का बहनोई मददगार है और शायर का साला भी जानिबदार[३] नहीं।

लो हज़रत, मीर इनायत हुसेन साहब कल आए। मीर इरतज़ा हुसेन का ख़त दे दिया। ऐनक लगाकर ख़ूब पढ़ा, कह गए है के इसका जवाब कल लाऊँगा। मै तो सुबह को ये ख़त रवाना करता हूँ। वो, आज या कल, जब ख़त लावेंगे, उसको ज़ुदागाना लिफ़ाफ़े में रवाना कर दूँगा। मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ा देखिए कब तक आवे और मुझसे क्यों कर मिले। एक लतीफ़ा परसों का सुनो। हाफ़िज़ मम्मू बेगुनाह साबित हो चुके। रिहाई पा चुके। हाकिम के सामने हाज़िर हुआ करते हैं। अमलाक[४] अपनी माँगते हैं। क़ब्ज़ो तसर्रुफ़[५] उनका साबित हो चुका है। सिर्फ़ हुक्म की देर। परसों, वो हाज़िर हैं, मिस्ल पेश हुई। हाकिम ने पूछा—हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श कौन! अर्ज़ किया के मैं।

---

१. भय का स्थान। २. साम्राज्ञी-विक्टोरिया। ३. पक्षपाती। ४. सम्पत्ति। ५. अधिकार और उपयोग।

फिर पूछा के हाफ़िज़ मम्मू कौन ! अर्ज़ किया के मैं, असल नाम मेरा मुहम्मद बख़्श है, मम्मू--मम्मू मशहूर हूँ। फ़रमाया--ये कुछ बात नहीं। हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श भी तुम, हाफ़िज़ मम्मू भी तुम, सारा जहाँ भी तुम, जो कुछ दुनिया में है वो भी तुम, हम मकान किसको दें ! मिस्ल दाख़िल दफ़्तर हुई। मियाँ मम्मू अपने घर चले आये।

हाँ साहब, ख़ाजा बख़्श दर्ज़ी कल सेपहर वो मेरे पास आया। मैंने जाना एक हाथी कोठे पर चढ़ आया, कहता था के आग़ा साहब को मेरी बन्दगी लिख भेजना। मीरन साहब आजकल पानीपत को जाया चाहते हैं। मीर काज़िम अली इब्न मीर क़लन्दर अली अलवर से आए हुए 'सुलतानजी' में उतरे हुए हैं, दिन पन्द्रहेक हुए मुहम्मद क़ुलीख़ाँ मेरी मुलाक़ात को आए थे, 'अलीजी' में रहते हैं। रज़ाशाह पटौदी गए हुए हैं। मीर अशरफ़ अली इब्न मीर असद अली मरहूम ने रिहाई पाई। अभी अमलाक की दरख़ास्त नहीं दी। हमारी भाभी साहिबा याने ज़ोजए[1] मीर अहमद अली ख़ाँ मग़फ़ूर[2] अपनी हवेली में चैन कर रही हैं। एकाध दिन में जाऊँगा। ख़ुदा जाने जुमे के दिन नाज़िर जी की दरख़ास्त पर क्या गुज़री। इस वक़्त तक उनका कोई ख़त नहीं आया, ध्यान लगा हुआ है। ज़्यादा क्या लिखूँ।

३

(१५ जुलाई १८५९)

मेरी जान, ख़ुदा तेरा निगाहबान[3],

मैंने 'गडफंक' को दाम में फंसाया फिर कफ़स में बन्द करके ये रुक़्क़ा लिखवाया। मीर इरतज़ा हुसेन को फ़क़्त उनके नाम की जो इबारत है वो पढ़ा देना ताके उनकी ख़ातिर जमा हो जाए। मसनवी कभी इस्लाह न पाएगी,

---

१. पत्नी। २. स्वर्गीय। ३. ईश्वर तेरा रक्षक।

जब तक सब न आएगी; लाख बातें बनाओ, मुझको ग़ीरत[1] दिलवाओ। गज़ल जब तक पूरी न हो, क़सीदा जब तक पूरा न हो, मसनवी जब तक सब न लिखी हो क्यों कर इस्लाह दी जाए? अपने छोटे मामूं साहब को मेरा सलाम बएतबार[2] मुहब्बत के, और बन्दगी बएतबार[3] सियादत के, और दुआ बएतबारे यगानगी[4] और उस्तादी के, कहना। और कहना के भाई और क्या लिखूँ! जिस हुक्म की नक़ल के वास्ते तुम लिखते हो वो अस्ल कहां है के जिसकी नक़ल लूं! हाँ, ज़बान[5] ज़दे ख़ल्क़ है के क़दीम नौकरों से बाज[6] पुरस नहीं। मुशाहिदा इसके ख़िलाफ़ है। ये लो, कई दिन उसके हमीदख़ाँ गिरफ़्तार आया है, पाँवों में बेड़ियां, हाथों में हतकड़ियाँ। हवालात में हैं। देखिए हुक्म अख़ीर क्या हो। सिर्फ़ नर्वेदराय की मुख़्तारकारी पर क़िनाअत की गई। जो कुछ होना है, वो हो रहेगा; हर शख़्स की सर[7] नविश्त के माफ़िक़ हुक्म हो रहे हैं। न कोई क़ानून है, न क़ायदा है; न नज़ीर काम आये, न तक़रीर पेश जाए। इर्त्तज़ाख़ाँ इब्न मुर्त्तज़ाख़ाँ की पूरी दो सौ रुपए की पिन्सन की मंज़ूरी की रिपोट गई, और उनकी दो बहनें सौ-सौ रुपए महाना पाने वालियों को हुक्म हुआ के चूं के तुम्हारे भाई मुज़रिम थे, तुम्हारी पिन्सन बतरीक़े तरह्हुम[8] दस-दस रुपया महीना तुमको मिलेगा। तरह्हुम ये है तो तग़ाफ़ुल[9] क्या क़हर होगा! मैं ख़ुद मौजूद हूँ और हुक्कामे सदर का रू शनास; पश्म[10] नहीं उखेड़ सकता। ५३ बरस का पिन्सन, तक़र्रुर उसका वतजवीज़े लार्ड लेक व मंज़ूरी ए गवर्मेण्ट और फिर न मिला है और न मिलेगा। ख़ैर, अेहतमाल है मिलने का। जानते हो के अली का बन्दा हूँ। उसकी क़सम कभी झूट नहीं खाता। इस वक़्त कल्लू के पास एक रुपया सात आने बाक़ी

---

१. लज्जा। २. प्रेम की दृष्टि से। ३. सैयद होने के कारण। ४. एकता और गुरुत्व के कारण। ५. प्रत्येक व्यक्ति की जीभ पर। ६. पूछ ताछ। ७. भाग्य म लिखा हुआ। ८. दया स्वरूप। ९. उपेक्षा। १०. बाल।

हैं। बाद उसके न कहीं से क़र्ज़ की उम्मीद है न कोई जिन्स रहन[1] व बै के क़ाबिल। अगर रामपूर से कुछ आया तो खैर वर्ना—इन्नालिल्लाहे व इन्ना इलहे राजऊन। बाज लोग ये भी गुमान करते हैं के इस महीने में पिन्सन की तक़सीम का हुक्म आ जाएगा। देखिए, आता है या नहीं! अगर आता है तो मैं मक़बूलों[2] में हूँ या मरदूदों[3] में! मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ा का ख़त अलवर से आ गया। बखैरो आफ़ियत पहुँचे। मीर क़ासिम अली का काफ़िला भी वहीं है। मीर क़ासिम अली की बीबी अलवर की तनख़ाह में से बमूजिबे सहामे[4] शरअिया दो सुल्स मुज़फ़्फ़र[5] मिर्ज़ा को और एक सुल्स[6] अपने को तजवीज़ करती है। जाहिरा बमूजिब तालीमे मीर क़ासिम अली के है।

मुर्हरिरे जुमा, १३ ज़िलहज्जा १२७५ हि० व १५ जुलाई साले हाल।

—ग़ालिब

४

(२८ जुलाई १८५९)

मियाँ,

परसों क़रीबे शाम मिर्ज़ा आग़ा जानी साहब आए। वो और उनके मुताल्लिक़ सब अच्छी तरह हैं। हस्सूबेग हाँसी गये। कल तुम्हारा ख़त आया। भाई, तुम्हें ख़ारिश क्यों हुई? हुसेन मिर्ज़ा साहब क्यों बीमार हुए? ख़ुदा या, इन आवागाने[7] दश्ते ग़ुरबत को जमीयत[8], जब तू चाहे, इनायत कर, मगर तसद्दुक़[9] मुर्तज़ा अली का, तन्दुरुस्त रख। अल्लाह, अल्लाह! हुसेन मिर्ज़ा की डाढ़ी सफ़ेद हो गई। ये शिद्दते ग़मो रंज की ख़ूबियां हैं।

---

१. रहन रखने और विक्रय के लिए। २. प्रिय। ३. अप्रिय, परित्यक्त। ४. शरा के अनुसार जो दाय भाग निश्चित है। ५. दो तिहाई। ६. एक तिहाई। ७. इन विपत्ति ग्रस्तों को। ८. सन्तोष। ९. हज़रत अली की न्यौछावर में।

इस ख़त के पहुँचते ही अपनी और उनकी ख़ैरो आफ़ियत लिखना। जहाँ तुमने अपने नाम का ख़त पढ़ा वहाँ का हाल ये है—

बुगुफ़्त[1] अहवाले मा बर्क़ें जिहानस्त
दमे पैदा व दीगर दम निहानस्त
गहे बर तारमे आला नशीनम
गहे बर पुश्ते पाये ख़ुद नबीनम

हमारे ख़ुदावन्द हैं, क़िब्ला व काबा हैं। ख़ुदा उनको सलामत रखे। अगर बाक़िर का इमाम बाड़ा इससे अलावा के ख़ुदावन्द का आज़ारख़ाना[2] है, एक बिना ए[3] क़दीम रफ़ी[4] मशहूर। इसके इनहदाम[5] का ग़म किसको न होगा। यहाँ दो सड़कें दौड़ती फिरती हैं—एक ठंडी सड़क और एक आहनी सड़क; महल इनका अलग अलग। इससे बढ़कर ये बात है के गोरों का बारक भी शहर में बनेगा; और क़िले के आगे जहाँ लाल डिग्गी है, एक मैदान निकाला जाएगा। महबूब की दूकानें, बहेलियों के घर, फ़ीलख़ाना, बुलाक़ी बेगम के के कूचे से 'ख़ास बाज़ार' तक ये सब मैदान हो जायगा। यों समझो के अम्मू जान के दरवाज़े से क़िले की खन्दक़ तक, सिवाय लाल डिग्गी और दो—चार कुओं के आसारे[6] इमारात बाक़ी न रहेंगे। आज जानिसार ख़ाँ के छत्ते के मकान डहने शुरू हो गए हैं। क्यों मैं दिल्ली की वीरानी से ख़ुश न हूँ? जब अहले शहर ही न रहे, शहर को लेके क्या चूल्हे में डालूँ? हुसेन मिर्ज़ा साहब को मेरा सलाम कहना, ये रुक़्क़ा पढ़ा देना। उनका ख़त मौसूमा मुहम्मद क़ुलीख़ां आया। कल्लू के हात उनके घर भिजवाया। उनका घर कहाँ? वो तो मीर

---

१. बिजली की तरह चंचल हमारी स्थिति है। एक क्षण में उत्पन्न होती है, दूसरे क्षण लुप्त हो जाती है। कभी कभी मैं बहुत ऊँचे स्थान पर बैठता हूं, कभी मुझे अपने पाँव के तलवे का भी ज्ञान नहीं होता। २. रोने की जगह, शियों का एक प्रकार का प्रार्थना-गृह। ३. प्राचीन। ४. ऊंचाई में प्रसिद्ध। ५. गिराना। ६. मकान के चिह्न।

अहमद अलीख़ाँ मरहूम की बीबी के हाँ रहते हैं। वो न थे; जब भाभी साहब को मालूम हुआ के मेरे देवर का आदमी है, उन्होंने मुद्दआ दरियाफ़्त करके ख़त रख लिया और कल्लू से कहा के भाई को सलाम कहना। और कहना के मुहम्मद क़ुलीख़ाँ 'अलीजी' गए हुए हैं, ख़त उनके पास भिजवा दूँगी। कल रज़ाशाह आये थे, मैंने उनको कहा था के तुम मीर अहमद अलीख़ाँ की बीबी कों ताकीद कर देना के ख़त ज़रूर का है। उसको ब अहतियात पहुँचा देना। साहब, तुम्हारी अन्ना को मैं क्या जानूँ? किस पते से ढूँढूँ! दद्दा से मैंने पूछा। अमीरुन्निसा को वो न समझी, वाजिदअली की माँ करके पहचाना। सो वो कहती थी के वाजिद अली मय अपनी मां के पहाड़गंज है। हमशीरा की अर्ज़ी के रवाना होने का हाल मालूम हुआ। तुम समझो, अगर वो अर्ज़ी फ़िल हक़ीक़त कमिश्नर ने भेज दी है, तो बेशक़ मुद्दआ[1] ए सायिला क़ुबूल करके भेजी है। अगर ख़ुद न मंज़ूर करता तो कभी न भेजता। बाक़र अली और हुसेन अली अपनी दादी के साथ ज़िया उद्दीनख़ाँ की वालिदा[2] के पास 'क़ुतुबसाहब' गए हुए हैं। अयाज़ और नियाज़ अली उनके साथ हैं। दो बन्दगियाँ और एक दुआ और दो आदाब मुल्तवी। दद्दा और कल्लू और कल्यान की बन्दगियाँ पहुँचें। क़मरुद्दीनख़ाँ परसों आया था। अब आएगा तो दुआ तुम्हारी उसको कह दूँगा।

—ग़ालिब

५

(१८ अगस्त १८५९ ई०)

हक़े ताला तुम्हें उम्रो दौलत व इक़बाले इज्ज़त दे।

ख़त मुहर्रिरा दोअम मुहर्रम में कोई मतलब जवाब तलब न था। मिर्ज़ा हैदर साहब की रेहलत की ख़बर थी, और बस। कल बुध का दिन, दोनों

१. प्रार्थी की इच्छा। २. माँ।

महीनों की १७ तारीख थी। सुबह के वक़्त मिर्ज़ा आग़ा जानी साहब आए और उन्होंने फ़रमाया के हुसेन मिर्ज़ा की हरम[1] लखनऊ से आई थी। बीफ़त्तन के यहाँ उतरी थी। अब वो पाटौदी को अपने बेटे के पास गई। कहती थी के नसीबे[2] आदा नाजिरजी बहुत बीमार हैं। खुदा खैर करे! यूसुफ मिर्ज़ा मेरी जान निकल गई। क्या करूँ, क्योंकर खबर मंगाऊँ? या अली, या अली, या अली! दस बारह बार दिल में कहा होगा के भदारी का बेटा दौड़ा हुआ आया और तीन खत लाया। याने के वो नीचे हवेली में था, डाक के हरकारे ने खत लाकर दिये। नियाज़ अली ऊपर ले आया। एक खत यारे अज़ीज़ का और एक खत हरगोपाल तफ़्ता का और एक खत ज़ुल्फ़िक़ारुद्दीन हैदर मौलवी का। मियाँ क़रीब था के खुशी के मारे रोना आ जाए। बारे छ उस खत को मैंने आंखों से लगा लिया, मरियाँ लीं। अब तुम तमाशा देखो—१३ मुहर्रम का खत १७ को मुझे पहुँचा। उसमें मुन्दर्ज के जुमे के दिन १९ को बसबीले डाक कलकत्ते जाऊँगा, और फिर हज़रत मुझसे मतालिब का जवाब माँगते हैं! हाँ जब कलकत्ते पहुँच लेंगे और वहाँ से मुझसे खत भेजेंगे और अपने मस्कन का पता लिखेंगे, तब जो कुछ मुझको लिखना होगा, लिखूँगा। आग़ा साहब को सब खत सुना दिया और उनको उसी वक़्त काशीनाथ के पास भेजा है ताके वो उसको गरमाएँ और शर्माएँ और कुछ सज्जाद मिर्ज़ा के वास्ते भिजवाएं। ज़िया उद्दीनखाँ दो हफ्ते से यहाँ हैं। अपने बाग़ में उतरे हुए हैं। दो बार मेरे पास भी दो-दो घड़ी के वास्ते आए थे। कुछ उनको मंज़ूर है रिआयते इखलास और मुहब्बते क़दीम। खुदा चाहे तो कुछ सज्जाद मिर्ज़ा को और कलकत्ते से उनके खत के आने के बाद कुछ नाज़िर जी को उनसे भिजवाऊँ। मेरा वही हाल है। भूका नहीं हूँ मगर किसी की खिदमत गुज़ारी की तौफ़ीक़[3] नहीं है। बुरे-भले हाल से

---

१. पत्नी। २. शत्रु का भाग्य। ३. सामर्थ्य।

गुज़रे जाती है, अफ़सोस। हज़ार अफ़सोस! जो तुमसे और नाज़िर जी से मेरे दिल का हाल है, अगर कहूँ तो कौन बावर करे। और वो बात ख़ुद कहने की नहीं, करने की है; सो करने का मक़दूर नहीं। तफ़ज़्ज़ुल हुसेन ख़ां इब्न[1] ग़ुलाम अली ख़ाँ मेरठ में अपने मामूँ के पास हैं। शहर में आया था। मेरे पास भी आया था; तुम्हारा सलाम कह दिया। परसों फिर वो मेरठ गया। भाई फ़जलू अरबसरा में रहते हैं। परसों से आए हुए हैं। यहीं उतरे हुए हैं। दौड़ते हैं; अर्ज़ियाँ देते फिरते हैं। कोई सुनता नहीं। तुमको सलाम कहते हैं। आमदो रफ़्त का टिकट मौक़ूफ़ हो गया। फ़क़ीर, और हथियार जिस पास हो वो, न आये। और बाक़ी हिन्दू-मुसलमान, औरत-मर्द, सवार-प्यादा जो चाहे चला आए, चला जाए। मगर बग़ैर आबादी के टिकट के रात को शहर में रहने न पाए।' वो शोरोग़ुल था के सड़कें निकलेंगी और गोरों की छावनी शहर में बनेगी, कुछ भी न हुआ। मर पट कर एक जान निसाख़ाँ के छत्ते की सड़क निकली है। दिल्ली वालों ने लखनऊ का ख़ाका उड़ा रखा है। सब कहते हैं के लाखों मकान ढा दिए और साफ़ मैदान कर दिया। मैं जानता हूँ ऐसा न होगा। बात इतनी ही है के जो तुमने लिखी है। बहरहाल अब जो कुछ हो लिखो, और नाज़िरजी के रवाना हो जाने की ख़बर और सज्जाद और अकबर उनकी माँ की ख़ैरियत और अपने बाप का हाल लिखो।

पंजशंबा १८ मुहर्रमुल हराम।

६

५ नवम्बर १८५९

मेरी जान शिकवा करना सीखो। ये बाब मैंने तुमको अभी पढ़ाया नहीं। कोई ख़त तुम्हारा नहीं आया के मैंने उसी दिन या दूसरे दिन जवाब न लिखा-

---

१. पुत्र।

हो, बल्के मैं ऐसा जानता हूँ के ये जो तुमने मुझको शिकायत नामा भेजा है, इसके बाद एक ख़त मेरा भी तुमको पहुँचा होगा। ये ख़त कल आया, आज मैं इसका जवाब लिखता हूँ। सुनो साहब, तुम जानते हो के मैं १४ पार्चे का ख़लत एक बार, और मलबूसे[1] ख़ास शाली रुमाल दुशाला एक बार, पेशगाहे हज़रत सुलताने आलम[2] से पा चुका हूँ, मगर ये भी जानते हो के वो ख़लत मुझको दो बार किसके ज़रिये से मिला है; याने जनाब क़िब्ला व काबा हज़रत मुज्तहदुल अस्र मद्‌ज़िल्लइलआली। अब आदमिय्यत इसकी मुक़्तज़ी नहीं है के मैं बे उनके तवस्सुत के मदह गुस्तरी का क़स्द करूँ। चुनाचे क़सीदा लिख कर और जैसा के मेरा दस्तूर है काग़ज़ को बनवा कर हज़रत पीरो मुर्शद की ख़िदमत में भेज दिया है। यक़ीन है के हज़रत ने वहाँ भेज दिया होगा और मैं तुमको भी लिख चुक हूँ के मैंने क़सीदा लखनऊ को भेज दिया है। उसी ख़त में ये भी तुमको लिखा है के हज़रत ज़ुब्दतुल उलमा सयद नक़ी साहब अगर कलकत्ते पहुँच गए हों तो मुझको इत्तला दो। दारोग़गी ए अमलात के बाब में जो मुनासिब और माक़ूल और वाक़ई है वो मैं बेपरदा आलीशान मुज़फ्फ़र हुसेन ख़ाँ के ख़त में लिखता हूँ। ये वरक़ पढ़कर उनकी ख़िदमत म गुज़रान दो और जो वो इर्शाद करें मुझको लिखो। तुम्हारे इस ख़त के मतालिब[3] मुन्दरजा का जवाब हो चुका। इससे ज़्यादा मेरे पास कोई बात इस वक़्त लिखने को नहीं है, मगर ये के एक ख़त तुम्हारे मामूँ साहब के नाम का भेज चुका हूँ, अगर वो पहुँचेगा, और ख़ुदा करे पहुँचे, तो उससे तुमको एक हाल मालूम होगा।

शंबा, ५ नवम्बर सन् १८५९।

—ग़ालिब

---

१. विशेष पोशाक। २. दिल्ली के अन्तिम बादशाह बहादुरशाह। ३. उपर्युक्त विषय।

७

(२८ नवंबर १८५९)

यूसुफ़ मिर्ज़ा,

मेरा हाल सिवाय मेरे ख़ुदा और ख़ुदावन्द के कोई नहीं जानता। आदमी क़सरते ग़म से सौदाई[1] हो जाते हैं, अक्ल जाती रहती है। अगर इस हुजूमे ग़म में मेरी क़ुव्वते[2] मुतफ़िक्करा में फ़र्क़ आ गया हो तो क्या अजब है ? बल्के इसका बावर न करना ग़ज़ब है। पूछो के ग़म क्या है ? ग़मे[3] मर्ग, ग़मे फिराक़[4], ग़मे रिज़्क[5] ग़मे इज़्ज़त ? ग़मे मर्ग में, क़िले[6] ना मुबारक से क़ते नज़र करके अहले[7] शहर को गिनता हूँ—मुज़फ़्फ़रुद्दौला मीर नासिरुद्दीन, मिर्ज़ा अशूर बेग मेरा भानजा, उसका बेटा अहमद मिर्ज़ा उन्नीस बरस का बच्चा, मुस्तफ़ाख़ाँ इब्न आज़मुद्दौला, उसके दो बेटे इर्तिज़ाख़ाँ और मुर्तज़ा ख़ाँ, क़ाज़ी फ़ैज़ुल्ला। क्या मैं इनको अपने अज़ीज़ों के बराबर नहीं जानता था ? ऐ लो, भूल गया—हकीम रज़ीउद्दीनख़ाँ, मीर अहमद हुसेन 'मैकश', अल्लाह्, अल्लाह् ! इनको कहाँ से लाऊँ ?

ग़मे फ़िराक़—हुसेन मिर्ज़ा, यूसुफ़ मिर्ज़ा, मीर मेहदी, मीर सरफ़राज़ हुसेन, मीरन साहब ख़ुदा इनको जीता रखे। काश ये होता के जहाँ होते, वहाँ ख़ुश होते। घर उनके बेचिराग़, वो ख़ुद आवारा। सज्जाद और अकबर के हाल का जब तसव्वुर करता हूँ, कलेजा टुकड़े टुकड़े होता है। कहने को हर कोई ऐसा कहता है, मगर मैं अली को गवाह करके कहता हूँ के उन अमवात[8] के ग़म में और ज़िन्दों के फ़िराक़ में आलम मेरी नज़र में तीरह व तार[9] है। हक़ीक़ी मेरा एक भाई दीवाना मर गया। उसकी बेटी, उसके चार बच्चे,

---

१. पागल। २. चिन्तन शक्ति। ३. मृत्यु का दुःख। ४. वियोग का दुःख। ५. भरण पोषण का दुःख। ६. अशुभ लाल क़िला। ७. नगर निवासी। ८. मौत (ब० व०)। ९. अन्धकार पूर्ण।

उनकी माँ याने मेरी भावज, जैपुर में पड़े हैं। इस तीन बरस में एक रुपया उनको नहीं भेजा। भतीजी क्या कहती होगी के मेरा भी कोई चचा है ! यहाँ अग़निया[1] और उमरा के अज़वाज[2] व औलाद भीक माँगते फिरें और मैं देखूँ ! इस मुसीबत की ताब लाने को जिगर चाहिए।

अब ख़ास अपना दुख रोता हूँ। एक बीवी, दो बच्चे, तीन चार आदमी घर के, कल्लू, कल्यान, अयाज़ ये बाहर, मदारी के जोरू बच्चे बदस्तूर, गोया मदारी मौजूद है। मियाँ घम्मन गये गये महीना भर मे आ गये के भूका मरता हूँ। अच्छा भाई, तुम भी रहो, एक पैसे की आमद नहीं; बीस आदमी रोटी खाने वाले मौजूद। मुक़ामे मालूम से कुछ आये जाता है; वो बक़द्रे सद्दे[3] रमक़ है। मेहनत वो है के दिन-रात में फ़ुर्सत काम से कम होती है। हमेश एक फ़िक्र बराबर चली जाती है। आदमी हूँ, देव नहीं, भूत नहीं। इन रंजों का तहम्मुल[4] क्योंकर करूँ ? बुढ़ापा, ज़ोफ़े[5] क़ुआ; अब मुझे देखो तो जानो के मेरा क्या रंग है। शायद कोई दो-चार घड़ी बैठता हूँ, वर्ना पड़ा रहता हूँ, गोया साहबेफ़र्राश हूँ, न कही जाने का ठिकाना, न कोई मेरे पास आनेवाला। वो अर्क़[6] जो, बक़द्रे ताक़त बनाये रखता था, अब मयस्सर नहीं। सबसे बढ़-कर आमद आमदे गवर्मेण्ट का हंगामा है। दरबार में जाता था, ख़लते फ़ाखिरा[7] पाता था, वो सूरत अब नज़र नहीं आती। न मक़बूल हूँ न मुरदूद हूँ, न बेगुनाह हूँ, न गुनहगार हूँ, न मुख़बिर, न मुफ़सिद,[8] भला अब तुम ही कहो के अगर यहाँ दरबार हुआ और मैं बुलाया जाऊँ तो नज़र कहाँ से लाऊँ। दो महीने दिन रात ख़ूने जिगर खाया और एक क़सीदा ६४ बैत का लिखा। मुहम्मद फ़ज़ल मुसव्विर को दे दिया। वो पहली दिसंबर को मुझको देगा। उसका मतला है—

---

१. सम्पन्न व्यक्ति। २. पत्नियाँ। ३. केवल पेट भराई। ४. सन्तोष। ५. शरीर की निर्बलता। ६. शराब। ७. प्रतिष्ठित वेश। ८. उत्पाती।

सैयद यूसुफ़ मिर्जा के नाम

जे साले[1] नौ दिगर आवें बरू ए कारामद
हज़ारो हश्त सदो शस्त दर शुमारामद।

इसमें इल्तज़ाम[2] अपनी तमाम सरगुज़िश्त के लिखने का क्या है ? इसकी नक़्ल तुमको भेजूँगा। मेरे आक़ा[3] ज़ाद ए रोशन गुहर जनाब मुफ़्ती मीर अब्बास साहब को दिखाना। इस बुझे हुए बल्के मरे हुए दिल पर कलाम का ये असलोब[4] है ! जहाँ पनाह की मदह का फ़िक्र न कर सका। ये क़सीदा ममदूह की नजर से गुज़रा न था, मैंने इसी में अमजद अली शाह की जगह वाजिद अली शाह को बिठा दिया। ख़ुदा ने भी तो यही किया था। अनवरी ने बारहा ऐसा किया है के एक का क़सीदा दूसरे के नाम पर कर दिया। मैंने अगर बाप का कसीदा बेटे के नाम पर कर दिया तो क्या ग़ज़ब हुआ ? और फिर कैसी हालत और कैसी मुसीबत में के जिसका ज़िक्र बतरीके अख़्तसार ऊपर लिख आया हूँ। इस क़सीदे से मुझको अर्ज़े दस्तगाहे[5] सुख़न मंज़ूर नहीं, गदाई मंज़ूर है। बहरहाल ये तो कहो क़सीदा पहुँचा या नहीं पहुँचा। परसों तुम्हारे मामूँ का ख़त आया। वो क़सीदे का पहुँचना लिखते हैं, कल तुम्हारा ख़त आया, उसमें क़सीदे के पहुँचने का ज़िक्र नहीं। इस तफ़र्के[6] को मिटाओ और साफ़ लिखो के क़सीदा पहुँचा या नहीं ? अगर पहुँचा तो हुज़ूर में गुज़रा या नहीं ? अगर गुज़रा तो किसकी मारफ़त गुज़रा और क्या हुक्म हुआ ? ये उमूर जल्द लिखो और हाँ, ये भी लिखो के अमलाक वाक़े शहर देहली के बाब में क्या हुआ ? मैं तुमको इत्तिला देता हूँ के कल मैंने फ़र्दे फ़ेहरिस्ते देहात व बाग़ात व अमलाक

---

१. नये वर्ष के कारण काम में एक नई प्रकार की शोभा उत्पन्न हो गई है। यह साल है १८६० ई०। २. आवश्यकता। ३. मालिक का पुत्र मोती की तरह दमकने वाला। ४. ढंग। ५. कवित्व की शक्ति प्रदर्शित करना अभीष्ट नहीं। ६. अन्तर।

मय हासिले हर बाग़ो देह[1] व मिल्क नाज़िरजी को भेज दी है। इस ख़त से एक दिन पहले वो फ़र्द पहुँचेगी। ये फ़र्द कलक्टरी के दफ्तर से ली है, मगर इतना ही मालूम है के शहर की इमारत, जो सड़क में नहीं आई और बरसात में ढह नहीं गई वो सब ख़ाली पड़ी है। किरायेदार का नाम नहीं। मुझको यहाँ की अमलाक का इलाका हुसेन मिर्ज़ा साहब के वास्ते मतलूब है। मैं तो पिन्सन के बाब में हुक्मे अख़ीर सुन लूँ फिर रामपूर चला जाऊँगा। जमादिअलअव्वल से ज़िलहज्जा तक आठ महीने और फिर मुहर्रम से, सन् १२७७ हिज़री से साल शुरू होगा। इस साल के दो-चार, हद दस-ग्यारह महीने, ग़रज़ के १९-२० महीने हर तरह बसर करने हैं। इसमें रंज़ो राहत व ज़िल्लत व इज़्ज़त जो मक़सूम में है वो पहुँच जाए, और फिर अली-अली कहता हुआ मुल्के अदम को चला जाऊं। जिस्म रामपूर में और रूह आलमे नूर में, या अली—या अली—या अली !

मियाँ, हम तुम्हें एक और ख़बर लिखते हैं। बरह्मा का पुत्तर दो दिन बीमार पड़ा, तीसरे दिन मर गया। है, है ! क्या नेकबख़्त ग़रीब लड़का था। बाप उसका शिवजीराम उसके ग़म में मुर्दे से बदतर है। ये दो मुसाहिब मेरे यों गए एक मुर्दा, एक दिल अफ़्सुर्दा। कौन है जिसको तुम्हारा सलाम कहूँ। ये ख़त अपने मामूँ साहब को पढ़ा देना और फ़र्द उनसे लेकर पढ़ लेना और जिस तरह उनकी राय में आये उस पर हुसूले मतलब की बिना उठाना; और इन सब मदारिज़ का जवाब शिताब[2] लिखना। ज़ियाउद्दीनख़ाँ रोहतक चले गए और वो कल न कर गए, देखिए आकर क्या कहते हैं। या रात को आ गए हों या शाम तक आ जाएं। क्या करूँ ? किसके दिल में अपना दिल डालूँ।

---

१. गाँव। २. शीघ्र।

ब मुर्त्तज़ाअली ! पहले से नीयत में ये है के जो शाहे अवध से हात आए हिस्सए[1] बिरादराना करूं । निस्फ़[2] हुसेन मिर्ज़ा और तुम और सज्जाद, निस्फ़ मैं गुफ़लिसों[3] का मदार। हयात ख़यालात पर है, मगर उसी ख़यालात से उनका हुस्ने तबियत मालूम हो जाता है ।

वस्सलाम ख़ैर ख़त्ताम ।

दो शंबा, दोअम जमादिल अव्वल सन् १२७६ हि० मुताबिक़ २८ नवम्बर सन् १८५९ ई० वक़्ते सुबह ।

८

(२९ नवम्बर १८५९)

मियाँ,

कल सुबह को तुम्हारे नाम का ख़त रवाना किया। शाम को तुम्हारा एक ख़त और आया । हज़रत ज़ुब्दतुल उलमा का अब तक वहाँ न पहुंचना ताज्जुब की बात है । हक़ ताला उनको, जहाँ रहें, अपने हिफ़्ज़ो[4] अमान में रखे । जब चाहें वहाँ पहुंचे। मेरा मक़सूद तो इतना ही है के क़सीदा गुज़रे और कुछ हमारे-तुम्हारे हात आए; लेकिन कल के ख़त की पुश्त पर जो सतरें नाज़िरजी के हात की लिखी हुई थीं, उसके देखने से आस टूट गई । कुछ हात आता नज़र नहीं आता ।

अमलाक वाक़ए शहरे देहली के सवाल का जवाब अबके वार क़लमन्दाज़ हुआ । मुकर्रर[5] अगर कहा जाएगा तो बेशक ये जवाब आएगा के हमने तुमको एवज़ उन मकानात के ये मकानात दिए; मावजा हो गया । भाई, मैं पहले ही जानता था के ये अमलाक क़त्ल हुई और वो सवा लाख रुपया

१. भाई बन्धु का हिस्सा । २. आधा । ३. दारिद्रों का केन्द्र । ४. रक्षा । ५. पुनः ।

जो अलावा ज़रे मुक़र्ररा मिला है, वो दिल्ली को अमलाक का खूँ बहा है। परसों नाज़िरजी के नाम के सरनामे मे फ़र्दे फ़ेहरिस्त मजमू अमलाक भेज चुका हूं। ख़ैर, ये वार भी ख़ाली गया। मौलाना ग़ालिब अलिइर्रहमा[1] ख़ूब फ़रमाते हैं——

मुनहस्सिर मरने पै हो जिसकी उमीद
ना उमीदी उसकी देखा चाहिए

तुम्हारे मामूं साहब की दस्तख़तो तहरीर ने जो मेरा हाल किया है, वो किस ज़बान मे अदा करूं! है, है! हुसैन मिर्ज़ा और ये कहे के मैं कहाँ जाऊ, और क्या करू! और मुझ कमबख़्त से उसका जवाब मरे अंजाम न हो सके। बहुत बड़ा आसरा था उस सरकार का। ख़िदमत न सही, ओहदा न सही, इलाका न सही, सौ डेढ़ सौ रुपये दरमाह मुक़र्रर हो जाना क्या मुश्किल था! दिल्ली के आदमी ख़ुसूसन उ[illegible]गाही हर शहर मे बदनाम इतने हैं के लोग उनके साये से भागते हैं। मुर्शिदाबाद भी एक सरकार थी, हैदराबाद बहुत बड़ा घर है, मगर बे ज़रिया व वास्ता क्यों कर जाए! और जाए तो किससे मिले? क्या कहे? नाचार वहीं रहो। किसी तरह शाहे अवध का सामना हो जाए, और मै कहाँ की सलाह बताऊं? वो साहब रोहतक गए हैं। कल यक़ीन है के आ गए होंगे। मुझको अभी ख़बर नहीं आई। अगर मशियते[2] इलाही में है, तो दिसम्बर महीने में कुछ ज़हूर में आ जाएगा। नवाब गवर्नर जनरल बहादुर, यक़ीन है आज आगरे में रौनक़ अफ़रोज़ हों। अलवर, जैपूर, धौलपूर, गवालियर, टोंक, जावरा, छ रईसों की वहाँ मुलाज़िमत की ख़बर है। ख़ैर हमको क्या? लैसदौला हुसैन अलीख़ाँ बहादुर की ख़िदमत में मेरा सलामो नियाज़ और शुक्रे यादावरी।

मरक़ूमे सुबह से शंबा २९ नवम्बर, ३ जमादिउल अव्वल हिसाबे जंत्री।

---

१. स्वर्गीय। २. भाग्य।

९

(२३ अप्रैल, १८६० ई०)

मियाँ,

तुम्हारा खत रामपूर पहुँचा और रामपूर से दिल्ली आया। मैं २३ शाबान को रामपूर से चला और ३० शाबान को दिल्ली पहुँचा, उसी दिन चाँद हुआ। यकशंबा रमज़ान की पहली, आज दो शंबा ९ रमज़ान की है; सो नवा दिन मुझे यहाँ आये हुए है। मैने हुसेन मिर्ज़ा साहब को रामपूर से लिखा था के यूसुफ़ मिर्ज़ा को मेरे आने तक अलवर न जाने देना। अब उनकी ज़बानी मालूम हुआ के वो मेरा खत उनको तुम्हारी रवानगी के बाद पहुँचा। जो मुझको अपने मामूँ के मुकदमे में लिखते हो, क्या मुझको उनके हाल से ग़ाफ़िल और उनकी फ़िक्र से फ़ारिग़ जानते हो? कुछ बिना[१] डाल आया हूँ। अगर खुदा चाहे तो कोई सूरत निकल आये। अब तुम कहो के कब तक आओगे? सिर्फ़ तुम्हारे देखने को नही कहता। शायद तुम्हारे आने पर कुछ काम भी किया जाए। मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ा का और हमशीरा साहिबा का आना तो कुछ जरूर नही, शायद आगे बढ़ कर कुछ हाजत पड़े। बहर हाल, जो होगा वो समझ लिया जाएगा। तुम चले आओ। हमशीरा अज़ीज़ा को मेरी दुआ कह देना। मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ा को दुआ पहुँचे। भाई, तुम्हारा खत रामपूर पहुँचा। इधर के चलने की फ़िक्र में जवाब न लिख सका। बख्शी साहबों का हाल ये है के आग़ा सुलतान पंजाब को गये, जगरावें में मुंशी रज्जब अली के मेहमान हैं। सफ़दर सुलतान और यूसुफ़ सुलतान वहाँ हैं। नवाब मेहदी अली खाँ बक़द्रे क़लील[२] बल्के अक्ल कुछ उनकी खबर लेते हैं। मीर जलालुद्दीन खुश-नवीस[३] और वो दोनों भाई बाहम रहते हैं। मैं वहीं था के सफ़दर सुलतान

---

१. कार्य प्रारम्भ कर आया हूँ। २. थोड़ा, अपितु थोड़े से थोड़ा। ३. सुलेखक।

दिल्ली को आये थे। अब जो मैं वहाँ आया तो सुना के वो मेरठ गये, खुदा जाने, रामपुर जाएँ या किसी और तरफ़ का क़स्द करें। तबाही है, क़हरे इलाही है। मुझको लड़कों ने बहुत तंग किया, वर्ना चंद रोज़ और रामपूर में रहता। ज़्यादा क्या लिखूँ ?

मरक़ूमे दो शंबा ९ रमज़ान व २ अप्रेल।

राक़िम--

ग़ालिब

१०

(२९ अप्रेल १८६०)

आओ साहब, मेरे पास बैठ जाओ।

आज यकशंबे का दिन है। सातवीं तारीख़ शव्वाल की और २९ वीं अप्रेल की। सुबह को भाई फ़ज़लू, जिनको मीर काज़िमअली भी कहते हैं और हमने अहतालमद्दौला ख़िताब दिया है, वो तीन पाव खजूरें और एक टीन का लोटा और दो सूत की रस्सियाँ लेकर भटियारे के टट्टू पर सवार होकर, अलवर को रवाना हुए। पहर दिन चढ़े डाक का हरकारा तुम्हारा ख़त मेरे नाम का, और एक हुक्म नामा महकमे लाहौर मौसूमा मीर क़ाज़िम अली लाया। यहाँ तक लिख चुका था के तुम्हारे मामूँ साहब मय[1] सज्जाद मिर्ज़ा तशरीफ़ लाये। तुम्हारा ख़त उनको दे दिया वो उसको पढ़ रहे हैं और मैं ये ख़त तुमको लिख रहा हूँ। पहले तो ये लिखता हूँ के हुक्मनामा मीर काज़िम-अली को दे देना और मेरी तरफ़ से ताज़ियत करना के ख़ैर भाई सब्र करो और चुप हो रहो।

---

१. साथ।

सैयद यूसुफ़ मिर्ज़ा के नाम

तारीख़ के दो क़तों में एक कता रहा । 'महरुख़े[1] ख़ुश ख़िराम' जगह 'महेरुख़ ख़ुश खिराम' बना दिया है । क़ता अच्छा है, बशर्ते आँ के मुतवफ़्फ़िया[2] का शौहर ये अल्फ़ाज़ अपनी ज़ोजा के वास्ते गवारा करे।

ख़ाजा जान झूट बोलता है। वाली ए रामपूर को इस पिन्सन के इजर में कुछ दख़ल नहीं । ये काम ख़ुदासाज़[3] है, बअली[4] इब्ने अली तालिब अले सलाम । नाज़िर जी ने तुम्हारे क़ौल की तसदीक़ की और कहा के हाँ मसविदा अर्जी का मेरे पास आ गया, मैं तुमको दिखा दूँगा । ख़ैर तुमने जो लिखा होगा वो मुनासिब होगा । ख़ुदा रास लाये और काम बन जाये ।

अलेक्जेंडर हैडरली साहब मेरे दोस्त के फ़र्ज़न्द हैं और नेकबख़्त और आदत मन्द हैं । मीर काज़िम अली वग़ैरा की तनख़ाह में मेरी सिफ़ारिश का दख़ल नहीं है । तुम मीर काज़िम अली से दरियाफ़्त कर लो, हाँ दो मुक़दमों में मैंने उनको दो ख़त लिखे, मगर उन्होंने एक का भी जवाब नहीं लिखा और उन मुक़दमों में कोशिश भी नहीं की, अब इसको समझकर जो कुछ तुम लिखो उसके माफ़िक़ अमल में लाऊँ ।

नाज़िर जी साहब और सज्जाद मिर्ज़ा अपने घर गये । वो तुमको दुआ और सज्जाद को बन्दगी कह गया है । अपने आने में जल्दी न करो। माँ की रज़ाजोई को सब उमूर पर मुक़दम जानो । मैं अभी रामपूर नहीं जाता बरसात बाद, बशर्ते हयात जाऊँगा, याने अवाखिर अक्तूबर या अदायल नवंबर में क़स्द है। यक़ीन है के ये ख़त दो दिन मीर काज़िम अली के पहुँचने से पहले तुम्हारे पास पहुँचे। उनके नाम का हुक्मनामा बहुत अहतियात से अपने पास रहने देना । ख़बरदार ! जाना न रहे। जब वो पहुँचें तब उनके हवाले करना ।

---

१. चन्द्रमुख, अच्छी चाल वाला । २. स्वर्गीय । ३. ईश्वर कृत ४. हज़रत अली कृपा करें ।

साहब, न खुम्स[1] न नज़र, ये बातें ग़ैरियत की हैं। जिस तरह अपने और बच्चों को दूँगा मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ा को और तुमको भी उसी तरह भिजवा दूँगा। हमशीरा अज़ीज़ा को याने अपनी वालिदा को मेरी दुआ कहना।

मरक़ूमा यकशंबा, वक़्ते नीमरोज, हफ़्तुम शव्वाल व २९ अप्रैल।

—ग़ालिब

११

(९ मई १८६०)

यूसुफ़ मिर्ज़ा को बाद दुआ के मालूम हो के तुम्हारा ख़त कल मंगल को पहुँचा। आज बुध १७ शव्वाल और ९ मई को, उसका जवाब भेजता हूँ। खुदा की क़सम! तामस हैडरली साहब से मेरी मुलाक़ात नहीं है। हाँ, अलख साहब से है; सो उनके नाम का ख़त लिखा हुआ तुमको भेजता हूँ, पढ़ कर, बन्द कर उनको दो और उनसे मिलो और जो कुछ वो कहें मुझको लिखो।

अहतलामद्दौला[2] भाई फ़ज़्लू मीर काज़िम अली बहादुर क्या जानें किताब किसको कहते हैं, और आगरा किस हथियार का नाम और सिकंदरशाह कौन से दरख़्त का फल है? मेरा उर्दू का दीवान मेरठ को गया। सिकन्दरशाह ले गये; मुस्तफ़ा ख़ाँ को दे आये। डाक में उसकी रसीद आ गई। न 'बुरहाने क़ातै' न 'क़ातै बुरहान'।

कल जिस वक़्त तुम्हारा ख़त आया उस वक़्त मुंशी मीर अहमद हुसेन मेरे पास बैठे थे और इस वक़्त सालिक मज्ज़ूब बैठा हुआ है। ये दोनों साहब

---

१. पंचमांश (शरा के अनुसार जजिया) और न भेंट २. एक व्यंगपूर्ण उपाधि।

तुमको और भाई फ़ज़लू को सलाम कहते हैं। और भाई फ़ज़लू से ये कह देना के बइत्तफ़ाक़े राय मुंशी मीर अहमद हुसेन, अब बाग़ की दरख़्वास्त की अर्ज़ी बेफ़ायदा बल्के मुज़िर[1] है। तुम्हारा काग़ज़ क़ीमती एक रुपये का मुंशी-जी के पास मौजूद है। वो उसको बेच कर रुपया तुमको भिजवा देंगे।

—ग़ालिब

१२

(१९ मई १८६०)

यूसुफ़ मिर्ज़ा,

क्यों कर तुझको लिखूँ के तेरा बाप मर गया। और अगर लिखूँ, तो फिर आगे क्या लिखूँ के अब क्या करो, मगर सब्र, ये एक शेव ए[2] फ़रसूदा अब्ना ए रोज़गार का है। ताज़ियत यों ही किया करते हैं और यही कहा करते हैं के सब्र करो। हाय! एक का कलेजा कट गया है और लोग उसे कहते हैं के तू न तड़प। भला क्यों कर न तड़पेगा? सलाह इस अम्र में नहीं बताई जाती, दुआ को दख़ल नहीं, दवा का लगाव नहीं। पहले बेटा मरा, फिर बाप मरा, मुझसे अगर कोई पूछे के बे[3] सरोपा किसको कहते हैं, तो मैं कहूँगा यूसुफ़ मिर्ज़ा को।

तुम्हारी दादी लिखती हैं के रिहाई का हुक्म हो चुका था, ये बात सच है? अगर सच है तो जवाँ मर्द एक बार दोनों क़ैदों से छूट गया न क़ैदे[4] हयात रही, न क़ैदे[5] फ़रंग। हाँ साहब, वो लिखती हैं के पिन्सन का रुपया

---

१. हानिकर। २. संसार का यह ढंग पुराना है। ३. सर्वथा निस्सहाय। ४. जीवन का बन्धन। ५. अंग्रेजों को जेल।

मिल गया था, वो तजहीज़ों[1] तकफ़ीन के काम आया। ये क्या बात है? जो मुजरिम होकर १४ बरस को मुक़य्यद हुआ हो उसका पिन्सन क्यों कर मिलेगा और किसकी दरख़्वास्त से मिलेगा? रसीद किससे ली जाएगी? मुस्तफ़ाख़ाँ की रिहाई का हुक्म हुआ मगर पिन्सन ज़ब्त। हर चंद इस पुरसिश से कुछ हासिल नहीं। लेकिन बहुत अजीब बात है। तुम्हारे ख़याल में जो कुछ आए वो मुझको लिखो। दूसरा अम्र याने तब्दीले मज़हब, अयाज़न बिल्लाह अली का ग़ुलाम कभी मुरतद न होगा। हाँ ये ठीक के हज़रत चालाक और सुख़नसाज़ और ज़रीफ़[2] थे, सोंचे होंगे के इन दमों में अपना काम निकालो और रिहा हो जाओ। अक़ीदा कब बदलता है? अगर ये भी था तो उनका गुमान ग़लत था। इस तरह रिहाई मुमकिन नहीं। क़िस्सा मुख़्तसर तुम्हारी दादी का ख़त जो तुम्हारे भाई ने मुझको भेजा था वो मैंने तुम्हारे मामूँ के पास भेज दिया। उनकी जादाद की वागुज़ाश्त का हुक्म हो तो गया है, अगर उनके बड़े भाई के यार उनको छोड़ें। देखिए अंजामे कार क्या होता है। मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ा को दुआ पहुँचे।

तुम्हारा ख़त जवाबतलब न था। तुम्हारे चचा का आग़ाज़[3] अच्छा है। ख़ुदा करे अंजाम[4] सी आग़ाज़ के मुताबिक़ हो। उनका मुक़दमा देख कर तुम्हारी फूफी का और तुम्हारा सरंजाम देखा जावेगा के क्या होता है। होगा क्या? अगर जादादें मिल भी गई तो क़र्ज़दार दाम दाम ले लेंगे। रज़्ज़ाक़े[5] हक़ीक़ी पिन्सन दिलवा दे के रोटी का काम चले।

जनाब मीर क़ुर्बान अली साहब को मेरा सलामे नियाज़ और काज़िम-अली को दुआ।

मरक़ूमए शंबा, २७ शव्वाल व १९ मई साले हाल—

—ग़ालिब

---

१. क्रिया-कर्म। २. हास्यशील। ३. प्रारंभ। ४. परिणाम। ५. वास्तविक दाता (ईश्वर)।

मिर्ज़ा यूसुफ़अलीख़ां 'अज़ीज़' के नाम

१

(१८५६ ई०)

सआदतो इक़बाले निशाँ मिर्ज़ा यूसुफ़अलीख़ाँ को बाद दुआ के दिलनशीं हो के तज़कीर[१] व तानीस हर्गिज़ मुत्तफ़िक़[२] अलै जम्हूर[३] नहीं। अे लो! 'लफ़्ज़' इस मुल्क के लोगों के नज़दीक मुज़क्कर[४] है। अहले पूरब इसको मुअन्नस[५] बोलते हैं। ख़ैर, जो मेरी ज़बान पर वो मैं लिख देता हूँ। इस बाब में किसी का कलाम हुज्जत और बुरहान[६] नहीं है। एक गिरोह ने कुछ मान लिया, एक जमात ने कुछ जान लिया, इसका क़ायदा मुन्ज़बत[७] नहीं। अलिफ़ मुज़क्कर; बे, ते, से मुअन्नस; जीम मुज़क्कर; हे, ख़े मुअन्नस; दाल, ज़ाल मुअन्नस; रे, ज़े मुअन्नस; सीन, शीन मुज़क्कर; स्वाद, ज़्वाद, तोय, ज़ोय मुअन्नस; ऐन, ग़ैन मुज़क्कर; फ़े मुअन्नस; क़ाफ़, काफ़, लाम, मीम, नून मुज़क्कर; वाव, हे, ए मुअन्नस; हम्ज़ा मुज़क्कर; लाम, अलिफ़ हुरूफ़े मुफ़रिदा[८]; में नहीं; मगर बोलन में मुज़क्कर—बोला जाएगा। मसलन 'लाम-अलिफ़ क्या ख़ूब लिखा है' कहेंगे, 'क्या ख़ूब लिखी है' न कहेंगे।

ख़ुज़ादा 'ख़ुदावन्दज़ादा' का मुख़फ़्फ़फ़[९] है। लेकिन फ़ारसी-अरबी नहीं, रोज़मर्रा था। 'ख़ुज़ादा' और 'ख़ुज़ादी' मुरादिफ़ 'साहबज़ादा' और 'साहबज़ादी' है, मगर फ़ी ज़मानेना[१०] मतरूक है।

---

१. पुल्लिग और स्त्रीलिंग। २. सर्व सम्मत। ३. प्रजातंत्रीय। ४. पुल्लिग। ५. स्त्रीलिग। ६. तर्क। ७. नियमबद्ध। ८. पृथक। ९. संक्षिप्त। १०. वर्त्तमान में।

'फ़क़' फ़ारसी लुग़त नहीं हो सकता, अरबी भी नहीं; रोज़मर्रा उर्दू है, जैसा के मीर हसन लिखता है--

के रुस्तुम जिसे देख रह जाए फ़क़
शोराए हाल के कलाम में नज़र नहीं आता।

'तकिया' लफ़्ज़ अरबी उल अस्ल है। फ़ारसी व उर्दू में मुस्तमिल, दोनों ज़बानों में हम बमानी 'बालिश' और हम बमानी 'मकाने फ़क़ीर' आता है; ईरान में 'तकिया मिर्ज़ा सायब' मशहूर है। 'गुले तकिया' लफ़्ज़ मुरक्कब है। हिन्दी और फ़ारसी से 'गुल' मुख़फ़्फ़िफ़ 'गाल' का और 'तकिया' बमाने 'बालिश' व छोटा गोल तकिया जो रुख़सार के तले रखें 'गुले तकिया' कहलाता है। 'गल' बमानी फारसी अँगरेज़ी लुगत है। अँगरेज़ी ज़बान ने बंगाले में सौ बरस से और दिल्ली-अकबराबाद में साठ बरस से रिवाज पाया है, गुले तकिया। वज़ा किया हुआ नूरजहाँ बेगम का है। जहाँगीर के अहद में अहले हिंद क्या जानते थे के गुल क्या चीज़ है ?

'माने[1] मुफ़र्रद बलफ़्ज़े जमा' इस जुमले को मैं अच्छी तरह नहीं समझा, 'मानी' मुफ़र्रद 'मआनी' जमा। और ये जो उर्दू के मुहावरे में तक़रीर करते हैं के 'इस शेर के माने क्या है' या 'इस शेर के माने क्या ख़ूब हैं' इसमें दख़ल नहीं किया जाता। ख़ासो आम की ज़बान पर यों ही है। 'मआनी' की जगह 'मानी' बोलते हैं। 'रत' लफ़्ज हिन्दी उल अस्ल 'रथ' है, बहाये[2] मुज़मिरा। बाज़ मुज़क्कर बोलते है, बाज़ मुअन्नस शेर बहुत अच्छा है, साफ़ व हम वार।

राक़िम--ग़ालिब

२

मियाँ,

कल ज़ैनुल आबदीन 'फ़ौक़' का ख़त मय अशार के, टिकटदार लिफ़ाफ़े के अन्दर रख कर बसबीले डाक भिजवा दिया है। आज सुबह को तुम्हारा ख़त

१. एकवचन के लिए जो शब्द आता है वही बहुवचन के लिए भी।
२. जिसमें हकार लुप्त है।

आया। दोपहर को मैंने जवाब लिखा। तीसरे पहर को रवाना किया। 'मोतियों का फुनका' अलबत्ता बहुत मुनासिब है। ख़ैर 'मोतियों का निवाला' भी सही।

हाफ़िज़ के शेर की हक़ीक़त जब समझोगे के क़वायदे मुक़र्ररा अहले सुख़न दरयाफ़्त कर लोगे। क़ायदा ये है के अगर मतले में या और अशार में काफ़िये की ऐहतयाज़ आ पड़े और उसकी इत्तला एक शेर में कर दे तो वो ऐब जाता रहता है। जैसा के उस्ताद का क़ता है, उसमें 'रेव' वा 'ग़रेव' व 'कालेव' क़ाफ़िया है और शेर अख़ीर क़ते का ये है—

ग़लत[1] कर्दम दरीं माना के गुफ़्तम
ज़नख़दाने निगारे ख़ीशरा 'सीव'

हालाँ के सही 'सेब' है, 'ब' बाये मुहहा ? शायर ने इत्तला दी के मैंने ग़लत किया जो 'सीव' लिखा। इसी तरह हाफ़िज़ फ़रमाता है—

बिबीं, तफ़ाउते राह अज़ कुजास्त ता बकुजा !

हासिल इसका ये के 'देख कितना तफ़ाउत[2] है! एक हरफ़े रवी साकिन और एक जगह मुतहर्रिक। मगर यहाँ अभी मौतरिज़[3] को गुंजाइश है के वो ये कहे के हाँ, तफ़ाउत को हम भी जानते हैं। सवाल ये है के ये तफ़ाउत तुमने क्यों रखा? इसका जवाब पहला मिसरा है—

सलाहेकार कुजा व मने ख़राब कुजा !

याने हाफ़िज़ फ़रमाता है के मैं आशिक़े[4] ज़ार दीवाना हूँ। सलाहेकार से मुझको क्या काम? पूरब के मुल्क में जहाँ तक चले जाओगे तज़कीरो तानीस का झगड़ा बहुत पाओगे। 'साँस' मेरे नज़दीक मुज़क्कर है, लेकिन अगर कोई मुअन्नस बोलेगा तो मैं उसको मना नहीं कर सकता, खुद साँस को मुअन्नस न कहूँगा।

---

१. एक नुक़्ते वाला। २. अन्तर। ३. आक्षेप कर्त्ता। ४. अत्यधिक प्रेमी।

'सैफ़' को 'अदूकुश' कहो और 'कमन्द' को 'अदूबन्द'; सैफ़ अदूबन्द नही हो सकती। तुमको कहता हूँ के तुम तलवार को अदूबन्द न कहो, कोई और अगर कहे तो उससे न लड़ो।

ज़ुल्फ़ को 'शबरंग' और 'शबगूँ' कहते हैं, 'शबगीर' ज़ुल्फ़ की सिफ़्त हरगिज़ नही हो सकती। शबगीर उस सफ़र को कहते हैं के फिर छ घड़ी रात रहे चल दे। 'नाले शबगीर आहोज़ारी' आखिरे शब को कहते है। ज़ुल्फ़े शबगीर न मसमू[1] न माक़ूल।

'सुख़न' का क़ाफ़िया 'बुन' भी दुरुस्त है और 'तन' भी जायज़ है। याने 'सुख़न' का दूसरा हुरुफ़ मज़मूम[2] भी है और मफ़तूह[3] भी है और इस पर मुतक़दमीन और मुताख़रीन और अहले ईरान और अहले हिन्द को इत्तफ़ाक़ है।

'क़ुब्बए' ख़शख़ाश' पोस्तके डौड़े को कहते हैं। इसमे कुछ ताम्मुल न चाहिए। तुम अपनी तकमील की फ़िक्र में रहा करो; जिन्हार किसी पर ऐतराज़ न किया करो। वद्दुआ।

३

(१८५६ ई०)

भाई,

तुम क्या फ़रमाते हो? जान बूझ कर अनजान बने जाते हो। वाक़ई में ग़दर में मेरा घर नहीं लुटा, मगर मेरा कलाम मेरे पास कब था के न लुटता? हाँ, भाई ज़ियाउद्दीन ख़ाँ साहब और नाज़िर हुसेन मिर्ज़ा साहब हिन्दी और फ़ारसी नज़्म और नस्र के मसविदात मुझसे लेकर अपने पास जमा कर लिया करते थे, सो उन दोनों घरों पर झाड़ू फिर गई, न किताब रही न असबाब रहा।

---

१. न सुना गया और न उचित। २. पेशयुक्त। ३. ज़बर वाला।

फिर अब मैं अपना कलाम कहाँ से लाऊँ। हाँ, तुमको इत्तिला देता हूँ के मई की ११वीं सन् १८५७ ईस्वी से जुलाई ३१ वीं सन् १८५८ ई० तक १५ महीने का अपना हाल मैंने नस्र में लिखा है और वो नस्र फ़ारसी ज़बाने क़दीम में है के जिसमें कोई लफ़्ज़ अरबी न आये और एक क़सीदा फ़ारसी मुतारिफ़, अरबी और फ़ारसी मिली हुई ज़बान में हज़रत फ़लके[1] रफ़त जनाब मलिकए मुअज़्ज़िमए इंग्लिस्तान की सतायश में उस नस्र के साथ शामिल है। ये किताब मतबए मुफ़ीदे ख़लायक़, आगरा मुंशी नबीबख़्श साहब 'हक़ीर' और मिर्ज़ा हातम अली बेग 'मेहर' और मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' के अहतमाम में छापी गई है। फ़िलहाल मजमुआ मेरी नज़्मो नस्र को उसके सिवा और कहीं नहीं। अगर जनाब मुंशी अमीर अली ख़ाँ साहब मेरे कलाम के मुश्ताक़[2] हैं तो ये नुस्ख़ा मौसूम[3] ब 'दस्तंबू' मतबए मुफ़ीदे ख़लायक़ में से मँगा लें और मुलाहिज़ा फ़रमायें। फ़क़त।

---

१. गगनचुम्बी। २. प्रेमी। ३. दस्तम्बू नामक।

मीर अहमद हुसेन 'मयकश' के नाम

१

(१८५६ ई०)

मियाँ,

अजब इत्तेफ़ाक़ है। न मैं तुम्हारे देखने को आ सकता हूँ और न तुम मेरे देखने को क़दमरंजा फ़रमा सकते हो। वो क़दमरंजा कहाँ से करो? सरापा रंजा हो। लाहौलावला क़ुव्वता। ये तातील के दिन क्या नाखुश गुज़रे। यूसुफ़ मिर्ज़ा से, मीर सरफ़राज़ हुसेन से तुम्हारा हाल सुन लेता हूँ और रंज खाता हूँ। खुदा तुम्हारे हाल पर रहम करे और तुमको शफ़ा[1] दे। ख़ाहिश ये है के नातवानी का उज़्र न करो और अपना हाल अपने हात से लिखो, वद्दुआ।

—असद

२

(१८५६ ई०)

भाई मयकश,

आफ़री, हज़ार आफ़री! तारीख़ ने मज़ा दिया। ख़ुदा जाने वो ख़ुर्मे[2] किस मज़े के होंगे जिनकी तारीख़ ऐसी है। देखो साहब—

क़लन्दर[3] हर चे गोयद दीदा गोयद

---

१. स्वास्थ्य। २. खजूर। ३. क़लन्दर जो कुछ कहता है आँखों देखा कहता है।

मीर अह्मद हुसेन 'मयकश' के नाम

तारीख़ देखी। उसकी तारीफ़ के खुर्मे खाएँगे। उसकी तारीफ़ करेंगे। कहीं ये तुम्हारे ख़याल में न आवे के ये हुस्ने[1] तलब है के नाहक़ तुम दीन मुहम्मद ग़रीब को दुबारा तक़लीफ़ दो। अभी रुक़्क़ा लेकर आया है। अभी ख़ुर्में लेकर आवे। लाहौलावला क़ुवता इल्लहा बिल्लाहि अली उल अजीम। अगर बफ़र्ज़े मुहाल तुम यों ही अमल में लाओगे और मियाँ दीन मुहम्मद साहब के हात ख़ुर्मे भिजवाओगे तो हम भी कहेंगे–

ताज़ा[2] शै बेहतर, बारह सै बहत्तर

---

१. किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से न माँगकर उसकी प्रशंसा करना।
१. ताजा चीज अच्छी होती है। सन् १२७२ (हि०)।

सैयद गुलाम हुसनेन 'क़द्र' बिलगिरामी

१

(२३ फरवरी १८५७)

बन्दापरवर,

आप के इनायत नामे के आने से तीन तरह की ख़ुशी मुझको हासिल हुई। एक तो ये के आपने मुझको याद किया, दूसरे आपकी तर्ज़[१] इबारत मुझको पसंद आई, तीसरे आप हज़रत अल्लामा अब्दुल जलील और 'आज़ाद' मग़फ़ूर की यादगार हैं और मैं उनके हुस्ने[२] कलाम का मौतक़द[३]। ख़ाहिश आपकी क्या मुमकिन है के मक़बूल न हो? जब मिज़ाज में आये, आप नज़्मो नस्र भेज दें, मैं देखकर भेज दिया करूँगा और आराइशे[४] गुफ़्तार याने हक्को[५] इस्लाह में कोशिश दरेग़ न होगी।

बारह बरस की उम्र से काग़ज़ नज़्मो नस्र में मानिन्द अपने नाम ए आलाम के स्याह कर रहा हूँ। ६२ बरस की उम्र हुई। ५० बरस इस शेवे की वर्ज़िश[६] में गुज़रे, अब जिस्मो[७] जान में ताबो[८] तवाँ नहीं। नस्र फ़ारसी लिखनी यकक़लम[९] मौक़ूफ़, उर्दू सो उसमें भी इबारत आराई[१०] मतरूक, जो ज़बान पर आवे वो क़लम से निकले। पाँव रकाब में हैं, और हात बाग पर, क्या लिखूँ और क्या करूँ? ये शेर अपना पढ़ा करता हूँ—

---

१. लेखन शैली। २. काव्य सौन्दर्य। ३. भक्त। ४. वाणी की सजावट। ५. संशोधन। ६. अभ्यास। ७. शरीर और प्राण। ८. सामर्थ्य। ९. सर्वथा। १०. अलंकृत भाषा।

सैयद ग़ुलाम हुसनैन 'क़द्र' बिलगिरामी

उम्र भर देखा किए मरने की राह
मर गए पर, देखिए, दिखलाएँ क्या ?

आप मुलाहिज़ा फ़रमाएँ, हम आप किस ज़माने में पैदा हुए हैं ! और की फ़ैज़रसानी और क़द्रदानी को क्या रोयें ? अपनी तकमील ही की फ़ुरसत नहीं। तबाही रियासते अवध ने बाआँ के बेगाना महज़ हूँ, मुझको और भी अफ़सुर्दा दिल कर दिया। बल्के मै कहता हूँ के सख़्त नाइन्साफ़ होंगे वो अहले हिन्द जो अफ़सुर्दा दिल न हुए होंगे। अल्लाह् ही अल्लाह् है ?

कल आपका ख़त आया। आज मैंने जवाब लिखा, ताके इन्तज़ारे जवाब में आपको मलाल न हो। वस्सलाम माउल अकराम।

निगाश्तए बिस्तो[1] सुअम फ़रवरी सन् १८५७ ई०।

२

(१८५७ ई०)

हज़रत,

मैंने चाहा के हुक्म बजा लाऊँ और इबारत को इस्लाह दूँ, मगर मैं क्या करूँ ? आप ग़ौर करें के इस्लाह की जगह कहाँ है ! अगर बमिस्ल आप ख़ुद नज़रे[2] सानी में कोई लफ़्ज़ बदलना चाहें तो हर्गिज़ जगह न पायें। जिस काग़ज़ पर इस्लाह मंजूर होती है, तो बैनुल[3] सुतूर ज़्यादा छोड़ते हैं। जब इस इबारत को और काग़ज़ पर नक़्ल करूँ तब हक्को इस्लाह का तौर बने। मेरा काम इस्लाहे इबारत है, न किताबत।

---

१. २३। २. पुनर्निरीक्षण। ३. पंक्तियों का अन्तर।

[1]ज़रदश्ते आतिश कदा इलाआखिर ही,

ज़रदश्त को आतिशकदे से वो निस्बत नहीं, जो साक़ी को मयखाने से। ज़रदश्त ब ऐतक़ादे[2] मजूस पैग़म्बर था, आतिशक़दे के पुजारी को 'मोबद' और 'हेरबद' कहते हैं।

'आबे हरामे इश्तियाक़'। 'आबे हराम' 'शराब' को महले मुनासिब पर कहें तो कहें वर्ना 'नबीज़' और 'वादा' और 'रहीक़' और मय और 'करक़फ़' और 'काविक़' की तरह इस्म नहीं। नाचार 'शराबे शौक़' या 'बादए शौक़' लिखना चाहिए। 'इश्तियाक़' से 'शौक़' बेहतर है।

'मा हम्दो सह जायगी अली उलतवातरज़दाबूदम'

'मा ज़दा बूदम' तुम्हारा दिल इस तरक़ीब को क़ुबूल करता है? 'मनज़दा बूदम' या 'मा ज़दा बूदम'। इसके अलावा 'दो सेह जामगी ब काफ़े फ़ारसी याने चे? "जाम" 'मालूम' काफ़े तस्ग़ीर[3] का 'जामक' चाहिए 'जामत' क्या! मगर ये पैरवी 'क़तील' की है, के वो ईरानियों की तक़रीर के माफ़िक़ तहरीर अपनी बनाना चाहता है। ज़हूरी, जलाल, ज़हीर, ताहीरे वहीद किसके हाँ जाम को जामक नहीं लिखा। 'दो सह जामगी' की जगह 'दो सह साग़र' या 'दो सह क़दह' लिखो।

'पा चनारी गुलिस्ताँ बर बाग़बान अस्त व तीमारी वो बरक़द्रदाँ' मैं इस फ़िक्रे को नहीं समझा याने 'बरबाग़बाँ' क्या है! 'तीमारी' क्या है? 'तीमार' बमाने 'बीमारदारी' व ग़मख़ारी है। लफ़्ज़ ख़ुद फ़ादए माने मस्दरी करता है, तो याये मस्दरी कैसी?

---

१. अग्निपूजक जरदश्त इत्यादि। २. अग्निपूजक पारसियों के विश्वास के अनुसार। ३. छोटा, लघु 'क'।

'तीरा शबें हा बसर आमद'
'तीरा शबीहा बसर आमद'

ख़ैर, ''तीरा शबी हा बसर आमद'', याने चे ?

'लैलाए दीदम के बा हज़ार तुर्र ए तर्रार'। 'तुर्रा' ज़ुल्फ़ को कहते हैं, वो दो होती हैं, न के हज़ार दर हज़ार।

'जामगी' मुकर्रर देखा गया। मालूम हुआ के हज़रत ने जो कहीं 'जामगी-ख़ार' देखा है, तो उसको 'जामख़ार' बमाने शराबख़ार समझा है। ये ग़लत है। जामगीख़ार उस नौकर को कहते हैं के जिसकी तनखा कुछ न हो। रोटी कपड़े पर उससे काम लेते हैं। 'निज़ामी' नौकर हज़रत ख़िज़्र के कितना रोज़ीनाए सुखन पाते हैं, जो ख़िज़्र फ़रमाते हैं के--

ऐ जामगी ख़ारे तदबीरे मन।
ज़ जामे सुख़न चाशनीगीरे मन ?

'दरे तोबा बाज़ अस्त व बाब रहमत फ़राज़।' माने इसके ये के 'तोबा का दर खुला है, और दरवाज़ा रहमत का बन्द।' 'फ़राज़' अज़दाद में से नहीं है। 'बाज़' खुला, 'फ़राज़' बन्द। 'क़द्र ज़ाफ़रान ज़ार रा बूए गुल कर्द।' इसका लुत्फ़ कुछ मेरी समझ में नहीं आया। 'क़द्रे ज़ाफ़रान ज़ार' क्या ? और फिर उसको किसने 'बूए गुल' कर दिया ?

'सिकर्रर' कुदाम ज़बानस्त अरबी या फ़ारसी ?

'हस्बे लियाक़ते ख़ुद' काफ़ी अस्त। 'ख़ुदम' चे महल दाहरद ? मगर हमाँ शेवए 'क़तील'। 'बन्दा मजबूरम' 'हमा सिक्कए क़तील'। साहबे बन्दा, तहरीर में असातिजा का ततब्बो करो, न मुग़ल के लहजे का। लहजे का ततब्बो[1] भाँडों का काम है, न दबीरों[2] और शायरों का। ऐसी तक़लीद[3] को मेरा सलाम। फ़क़्त। ज़्यादा ज़्यादा !

---

१. अनुकरण। २. लेखक। ३. अनुकरण।

जनाब नौरोज अली साहब की ख़िदमत में मेरा सलामे नियाज़ अर्ज़ कीजिएगा। और ये कहिएगा के बैरंग ख़त का एक आना देना पड़ेगा। हर महीने में आठ ख़त तक बल्के सोलह ख़त तक मैं न घबराऊँगा, भेजिए। रहा जवाब का लिखना, काश, आप यहाँ होते और मेरा हाल देखते तो जानते। हर रोज़ सुबह को क़िले जाना, दोपहर को आना। बाद खाना खाने के हज़रत के मस्विदों का दुरुस्त करना। अहबाब के ख़त लिखने की फ़ुरसत बहुत कम हात आती है। वस्सलाम।

३

यार से छेड़ चली जाए 'असद'
गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही

नासिक़—

रहन रखवा कर तेरा अम्मामा[१] दिलवा दूं शराब
ज़ाहिदा तुमको करूँ मरहूने[२] अहसाँ तो सही

इस 'सही' और 'तो सही' का तर्जुमा फ़ारसी लुग़त में क्या आया है ?

—क़द्र।

जवाब—

अस्मा[३] के या लुग़ात के वास्ते ये बात है के अरबी मे ये कहते हैं और फ़ारसी में ये और हिन्दी में ये। तर्ज़े गुफ़्तार हिन्दी का फ़ारसी, और फ़ारसी का हिन्दी कभी नहीं हो सकता; मसलन 'चोरी का गुड मीठा' इसकी फ़ारसी न पूछेगा मगर नादान, 'सही' और 'तो सही' की फ़ारसी क्योंकर बने ? ये रोज़मर्रा उर्दू है—

'गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही।'

---

१. साफ़ा। २. कृतज्ञ। ३. संज्ञाएँ।

सैयद गुलाम हुसनेन 'क़द्र' बिलगिरामी

इसी मतलब के मुताबिक़ फ़ारसी इबारत यों हो सकती है—

वस्ल[1] अगर नीस्त हसरत नीज़ आलमे दारद
ज़ाहिदा तुझको करूँ मरहूने अहसाँ तो सही

एक नौह[2] की तंबीह, एक क़िस्म का दावा है। नामर्द बाशम अगर "फ़लां-कार 'न कुनम' ता फ़लांकार न कुनम निया सायेम।" अहले हिन्द की फ़ारसी इसी तरह 'ख़ाम' और ना तमाम रही के उसूल में उन्होंने फ़ारसी के क़वायद की ततबीख[3] अरबी से चाही और उर्दू के ख़ास रोज़मर्रा की फ़ारसी बनाई कैसी ? हिन्दी में 'कुछ नहीं' की जगह 'ख़ाक नहीं' बोलते है। फ़ारसी में 'हे च नीस्त' की जगह 'ख़ाक नीस्त' कोई न कहेगा। 'क़तील' चारों शाने चित्त गिरा है—

'कुश्ता बरकुश्ता तपां बूद दिगर ख़ाक न बूद याने 'हे च न बूद' ला हौला बला क़ुव्वता ! एक जगह से मुझको ख़त आया; चूँ के मैं बल्लीमारों के मुहल्ले में रहता हूँ, उसने पता लिखाके 'दर[4] मुहल्ला गुर्बा कुशाँ', वाह फ़ारसी !

ग़ालिब—

मर्दुम[5] अज़मन दास्तां रानंदो अज़ दौराने चर्ख़
गश्त सर्फ़े तोमए जाग़ो ज़ग़न अनक़ाय मन

---

१. यदि मिलन नहीं हुआ है तो उसकी आकांक्षा ही सही। २. प्रकार। ३. पुष्टि। ४. बिल्ली मानने वालों का मुहल्ला। ५. लोग आकाश के चक्कर और मेरी दुरवस्था की कहानी कहा करेंगे। मेरे अनक़े (एक काल्पनिक पक्षी) को कव्वे और चील खा गये।

४

(१८५७)

क़द्र—

काट कर ग़ैरों का सद लाये जो मेरी नज़र को
डाल दूँ सोने का ग्रांडू पांव में जल्लाद के

'ग्राँडू' बदाले हिन्दी या बदाले अरबी ; भाई, वल्लाह ! ये लफ़्ज़ कभी मेरी ज़बान पर नहीं आया। मैं इसकी हक़ीक़त से आगाह नहीं। हाँ सुना है, के फ़लाना सरदार ऐसा बहादुर साबित क़दम था के मारके कारज़ार[1] मे हाथी के पांवों में 'ग्राँडू' डलवा दिए। ज़ाहिरा कोई चीज होगी, के हाथी को माने[2] रफ़्तार हो। इससे ये मालूम होता है के वो एक बंदे ख़ास है। इस्तेमाल इस लफ़्ज़ का महल इनाम में न चाहिए।

'आबस्तन' और 'आबस्त' के बाब में क़ौल मौतरिज़ का ग़लत है के 'आबस्त' को बजाए 'आबस्तन' जायज़ समझता है। 'आबस्त' कोई लफ़्ज़ नहीं। अस्ल लफ़्ज़ और 'आबस्तनी' मज़ीद[3] अलै, ये दोनों सही; बल्के आबस्तनी ज़्यादा फ़सीह। अगर मौतरिज़ 'फ़ैज़ी' को नहीं मानता, तो आप मौतरिज़ को क्यों मानते हैं ? 'फ़ैज़ी' की सनद मक़बूल और मसमू। 'अरमुग़ां' और 'अरमुग़ानी' 'आबस्तन' और 'आबस्तनी' ये तो फ़ारसी लुग़त है। फ़ारसी-गोयां ने हुज़ूर को हुज़ूरी और फ़ुज़ूल को फ़ुज़ूली, और नुक़्सान को नुक़्सानी लिखा है।

आज तक सुना नहीं के 'रब्बे किब्रिया' किसी ने लिखा हो। हाँ 'किब्रिया ए-इलाही' याने ख़ुदा की बुज़ुर्गी, इस नज़र पर रब्बे कबीर लिखेंगे, न 'रब्बे

१. लड़ाई के मैदान में। २. गति में बाधक। ३. अधिक।

किब्रिया।' 'किब्रिया' सिफ़ते वाक़ई है, लेकिन अगर सिफ़त से मौसूफ़ मुराद रखें तो मुमकिन है, जैसा के 'ज़ैद-अद्ल' बजाय 'ज़ैदे आदिल।' 'जनाबे किब्रिया' बजाये 'जनाबे इलाही' जायज़। एक नुक्ता दक़ीक़ है। यानें मज़हब[1] हक़्के इमामिया में मजमूए[2] सिफ़ात ऐनेज़ात है। पस, अगर ख़ुदा को महज़ कुदरत का महज़ अज़मत कहा तो माफ़िक़ हिदायते नबी और अइमा[3] के हमारा क़ौल दुरुस्त है।

'हाल' की जगह 'हालात' या 'अहवाल' लिखना क़बीह नहीं है। खुसूसन 'अहवाल' के ये बमानी वाहद मुस्तमिल है। और ये इस्तेमाल यहाँ तक पहुँचा है के 'अहवाल' बमानी जमा मुस्तमिल नहीं होता। जैसे हूर के बमानी हूरा के। अहले फ़ारस इसको सीग़ावाहिद क़रार देकर अलिफ़, नून के साथ इसका जवाब लाते है। 'सादी' कहता है--

हूराने[4] बहिश्ती रा दोज़ख़ बुवद आहराफ़। अज़[5] दोज़ख़ियाने पुर्स के अहराफ़ बहिश्त अस्त"।

बलके हूर को हूरी कह कर जमा हूरियाँ लाते है। हाफ़िज लिखता है :

शुक्रे[6] ईज़द के मियाने मनो ऊ सुलह फ़ेनाद
हूरियाँ रक्स कुना साग़रे शुकराना ज़ दन्द

---

१. शिया सम्प्रदाय। २. सब विशेषताओं का तत्व। ३. इमाम का बहुवचन। ४. स्वर्ग की हूरों के लिए 'आहराफ़' (स्वर्ग और नरक के बीच का एक स्थान) नरक के तुल्य है। ५. यदि नरकवासियों से आहराफ़ के सम्बन्ध में पूछा जाय तो वे कहेंगे यह हमारे लिए स्वर्ग है। ६. मुझमें और उसमें जो समझौता हुआ वह ईश्वर की कृपा है। हूरें नांचती हुई धन्यवाद के प्याले पर प्याले पी गईं।

मैंने एक मक़्ते में हाल की जगह अहवाल लिखा है—

जाने[1] ग़ालिब ताबे गुफ़्तारी गुमाँदारी हनोज़
सख्त बेदर्दी के मी पुरसी ज़ मा अहवाले मा

आख़िर मुझको और फ़ैज़ी को मौतरिज़ से ज़्यादा असातिज़े[2] अजम के कलाम पर इत्तिला है। वो आबस्तनी[3] क्यों लिखता और मैं अहवाल क्यों लिखता? 'सायब' की एक ग़ज़ल है के जिसका एक मिसरा य है—

हर[4] लहज़ा दारम नीयते चूँ क़ुर्ए रम्माल हा

इसी ग़ज़ल में उसी ने एक जगह 'अहवाले हा' लिखा है।

दाद का तालिब
—ग़ालिब

'मुल्के मग़रिब, बल्दए देहली, कटरा रौदगरां ये क्या लिखा करते हो? शहर का नाम और मेरा नाम काफ़ी है। 'महल्ला' ग़लत, 'मुल्क' ज़ायद, हिन्दुस्तान में दिल्ली को सब जानते हैं और दिल्ली में मुझको सब पहचानते हैं।

५

'तईं' का लफ़्ज़ मतरूक व और मरदूद, क़बीह, और ग़ैर फ़सीह। ये पजाब की बोली है। मुझे याद है के मेरे लड़कपन में एक असील[5] हमारे हाँ नौकर

---

१. हे ग़ालिब के प्राण, तुम समझते हो मैं अब भी बातचीत कर सकता हूँ। यह धारणा ठीक नहीं। तुम निर्दय हो जो मुझसे मेरा हाल पूछते हो। २. ईरान के आचाय। ३. गर्भवती। ४. जिस तरह ज्योतिषी जब जब पासे डालता है, भविष्यवाणी में परिवर्त्तन होता है, इसी तरह मेरी भी धारणा बदलती रहती है। ५. सेविका।

रही थी। वो तई' बोलती थी तो बीबियाँ और लौंडियाँ सब उस पर हँसती थीं।

ख़रूशे[1] रादे ग़र्रा मी शवद पा दर रिकाब अज़ बीम
अनाँ बर सीना चूँ पेचद कुरंगे बर्क़ जौलानश

ये शेर 'नातिक़' का है और नातिक़ क़ौम का बलूच, सिन्ध का रहने वाला। उसका मन्तिख़ क्या और उसकी ज़बान क्या? 'या दर रकाब होना' इबारत है सैरो सफ़र के आमादा व मुस्तैद होने से, ख़ाही मंशाए अज़ीमत[2] खौफ़ हो, ख़ाही कोई और सबब। 'अनाँ बर सीना पेचीदन' मोहमल व महज़ मोहमल, न रोज़मर्रा न मुहावरा न इस्तला, न मुफ़ीदे माने दिरंग, न मुफ़ीदे मान ए शताब। —ग़ालिब

'तय्यार' सीग़ा मुबालिग़े का है। लुग़ते अरबी इमला इसकी तायें[3] हुत्ती से। 'तैर' सलासी मुजर्रद[4]। 'तायर' फ़ायल; 'तियूर' जमा। बाज़दारों में इस लफ़्ज़ ने जनम लिया। हक़ीक़त बदल गई। तोय ते बन गई। याने जब कोई शिकारी जानवर शिकार करने लगा, बाज़दारों ने बादशाह से अर्ज़ की के "फ़लाँ बाज़, फलाँ शकरा, तैयार शुदा अस्त व सैद[5] मी गीरद"। बहरहाल अब तायें[6] क़ुरेशत से ये लफ़्ज़ नया निकल आया। इस लफ़्ज़ को मुस्तहदिस[7] और दरअस्ल उर्दू और ब ताए क़ुरेशत बमानी आमादा अशख़ास और अशिया पर आम तसव्वुर करना चाहिए और इबारते फ़ारसी में इस्तेमाल इसका कभी जायज़ न होगा।

—ग़ालिब

---

१. जब विद्युत-रूपी घोड़ा सजकर तैयार होता है तो भय के मारे गर्जन भी भागने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। २. इच्छा। ३. तोय ط। ४. एकाकी। ५. शिकार पकड़ा। ६. ते ت। ७. नाशशील।

फ़क़ीर के नज़दीक़ नक़ाब और क़लम और 'दही तर्जुम ए जुग़रात[1]' ये तीनों इस्म मुज़क्कर हैं। मुनकिर[2] से मुझे बहस नहीं, मुजीब[3] का मैं अहसानमन्द नहीं। लुग़ते फ़ारसी और रोज़गर्रा फ़ारसी हो तो अहले ज़बान के कलाम से सनद करें। मन्तिके फ़ारसी में तस्कीरो तानीस कहां? इस अमर के मालिक और अहले ज़बान हम हैं और ये हम सीग़े मुत्कल्लिम माउल ग़ैर है, याने हम और तुम मजमू[4] ए शुरफ़ा और शोअरा ए देहली व लखनऊ। ऐसे दस आदमी का इत्तेफ़ाक सनद है। ज्यादा झगड़ा बे फ़ायदा।

—**ग़ालिब**

बनाईं 'क़द्र' की गज़लें जनाब 'ग़ालिब' ने
तमाम जौहरे तेग़े ज़बाँ उभर आए

ग़ज़ल की ज़े यहाँ साकिन है। लेकिन ये सुकून जायज़ है। 'क़दम मुफ़र्रद'[5], क़दमों जमा है।

"खो रहा हूँ" मुताद्दी है। पूरबी इसको लाज़मी जानते हैं। 'लाज़मी खो गया हूँ।' हम कहेंगे जागते हैं, अहले पूरब कहेंगे—जगते हैं। जानो दिल, दिलो जिगर ये सही। जानो जिगर टकसाल बाहर। फरियाद मोअन्नस है। 'फ़रियाद करनो चाहिए।' फरियाद करना अंग्रेजी बोली है। फ़िक्र मुअन्नस है। माशूक़ को हमजाद[6] बनाना, जुरफ़ा को अपने ऊपर हँसाना है।

ले राक़मे[7] अँदेशए[8] बलन्दखे ला मकाँ नवर्द
चूँ खास्त बाये जाहे तुरा नर्द बाँ निहाद

---

१. दही। २. अस्वीकार करने वाला। ३. समर्थक। ४. प्रतिष्ठित लोग। ५. एक वचन। ६. अपने जैसा बनाना। ७. लेखक। ८. जो चिन्तन उच्चतम ईश्वर के निवास स्थान तक पहुँचा उसी ने जब तुम्हारी प्रतिष्ठा का स्थान देखना चाहा तो सीढी लगाई। पहाड़ पर चढ़ने के बाद भी आकाश अपने ही स्थान पर दिखाई देता है, उसी सहस्रों सीढियाँ फर्कदान नक्षत्र पर रखीं किन्तु वह तुम्हारे रहस्य को न समझ सका।

सैयद गुलाम हुसनैन 'क़द्र' बिलगिरामी

दीदश हमा बजा चूँ मिप्हेर अज़ फ़राज़े कोह
बादज़ हज़ार पाया के बर फ़र्क़दाँ निहाद

पहले मिसरे में अँदेशा फ़ायल[1] है। 'ख़ास्त' का जो मिसर ए सानी में, "निहाद' बमानें मस्दरी है। दूसरे शेर में 'दीद' का और 'निहाद' का फ़ायल वही अंदेशा है। अब एक बात समझो जब पहाड़ के पास से आसमान को देखोगे, तो ये मालूम होगा के हम पहाड़ पर चढ़ जाएँ, तो आसमान को छू लें। मगर जब चोटी पर पहुँचोगे तो आसमान को उतना ही दूर पाओगे, जितना ज़मीन से नज़र आता था। 'फ़र्क़दाँ' एक सूरत है या एक क़ौकब[2] है आठवें आसमान पर। हमारे क़यास में आया के फ़र्क़दाँ पर से बाम जाहे ममदूह नज़र आवेगा बहुत क़रीब। हम फ़र्क़दाँ पर गये, वहाँ भी क़रीब न पाया। फ़र्क़दाँ पर हज़ार पाई रखी, उस पर चढ़ कर देखा, तो बामे ममदूह में और उस मुक़ाम में उतना ही बोद है जितना पहाड़ में और आसमान में। ये मुबालिग़ा हदे[3] तबलीग़ व ग़लो से गुज़र गया।

'लगा देते हो' और 'उठा देते हो' ख़िताबे जमे हाज़िर है[4] और ताज़ीमन मुफ़रद पर आता है याने तुम। माशूक़े मजाज़ी वो तुम और तू दोनों तरह याद करते हैं ख़ुदा को या 'तू' कहते हैं या सीग़ा[5] जमा ग़ायब। याने सीग़ा जमा ग़ायब का नज़र बक़रीना इफ़ादा क़ज़ा व क़द्र का रखता है। तुम्हारी ग़ज़ल में दो चार जगह 'देते हो' इस तरह आया है के महबूबे मजाज़ी उससे मुराद कभी नहीं हो सकता।

'लाके दुनिया में हमें ज़हरे फ़ना देते हो
हाय इस भूल भुलैया में दग़ा देते हो'

---

१. कर्म। २. एक नक्षत्र। ३. अत्युक्ति की सीमा। ४. आदर में भी एक के लिए बहुवचन आता है। ५. अन्य पुरुष बहुवचन।

कहो किससे कहते हो ? सिवाय क़ज़ा व क़द्र के कोई रंडी, कोई लौंडा इसका मुखातिब नहीं हो सकता। और अलाहाज़ल क़यास दो-एक शेर और भी। नाचार सीग़ा जमा रख दिया ताके 'ख़ूबाँ' और 'बुताँ' की तरफ़ ज़मीर[२] राजे हो या शख़्से वाहिद की तरफ़ 'आप' के लफ़्ज़ के साथ, या क़ज़ा व क़द्र की तरफ़। अब ख़िताब माशूक़ाने मजाज़ी[१] और कज़ा व क़द्र में मुश्तरिक रहा।—ग़ालिब।

'बुग्रदा' और 'बाशिद' के दोनों सीगे मुज़ारे के हैं, बमाने 'हस्त' आते हैं या नहीं ?—क़द्र।

अलबत्ता आते हैं।—ग़ालिब।

(सवाल) नज़्मो नस्र, माज़ीमुतलक़[२] को माज़ी इस्तमरारी[२] के माने पर लिखना कैसा है ?—क़द्र

बेजा है। जब तक अलामते इस्तमरार न हो, मानी इस्तमरारी क्यों कर लिये जाएँगे।—ग़ालिब

(सवाल) फ़ारसी मे मसदर मुक़्तज़ब और ग़ैर मुक़्तज़ब की क्या शनाख़्त है ?—क़द्र

(जवाब) ख़ुद अरबी में मसदर की सिफ़त मुक़्तज़ब नहीं आई, फ़ारसी में कहाँ से होंगी ? मुक़्तज़ब सिफ़त बहर की है, न सिफ़त मसदर की।—ग़ालिब

(सवाल) किस किस्म के मसदर लाज़मी से मसदर मुताद्दी बनता है और किस तौर के मसदर से नहीं बनता है ?—क़द्र

(जवाब) जब लाज़मी को मुताद्दी करना चाहें, तो मुज़ारअ में से मसदर बनाएँ और उसमें फ़क़्त अलिफ़, नून या अलिफ़-नून और तहतानी बढ़ाएँ, मसलन 'गुश्तन' को 'गुपूतान्दन' न लिखेंगे। 'गर्दद' से मसदर बनाएँगे गर्दीदन

१. सांसारिक प्रेमिका। २. पूर्णभूत।

और उसको 'गर्दान्दिन' और 'गर्दानीदन' कहेंगे। जिस मसदर के साथ मुज़ारअ न होगा वो मुताद्दी न बनेगा; जैसे—'बरश्तन' और 'खस्तन'।—ग़ालिब

(सवाल) 'पनाह' का तर्जुमा लुग़ाते उर्दू में क्या आया है ?—क़द्र

(जवाब) उर्दू मुरक्कब है फ़ारसी और हिन्दी से याने 'पनाह' का लफ़्ज़ मुश्तरिक है उर्दू में और फ़ारसी में। 'पनाह' का तर्जुमा उर्दू में पूछना नादानी है। हाँ, पनाह की हिन्दी आसरा है।—ग़ालिब।

'बर न आना' फ़सीह, 'न बर आना' टकसाल बाहर, क़ाफ़िया हाय असली अलिफ़िया सैंकड़ों हैं। उनको छोड़ कर 'नुस्खा' और 'नामा' और अफ़साना इन अल्फ़ाज़ को क़ाफ़िया कहना तुम्हारे नज़दीक़ नामुनासिब नहीं ? ऐसा क़ाफ़िया गज़ल भर में एक जगह लिखो।

—ग़ालिब

६

हज़रत,

आप के खत का काग़ज़ बारीक और एक तरफ़ से सरासर सियाह। दूसरी तरफ़ अगर कुछ लिखा जाए तो मेरी तहरीर एक तरफ़; तुम खुद अपनी इबारत को दुरुस्त न पढ़ सकोगे। नाचार जुदागाना वरक़ पर सवालात का जवाब लिखता हूँ।

'रंग' ब वज़ने 'संग', तर्जुमा 'लौन' और लफ़्ज़ फ़ारसी उल अस्ल है। जब इसको उर्दू मे मुन्सरिफ़ या बक़ौले बाज़े मत्सर्रिफ़ करेंगे, तो नून का तलफ़्फ़ुज़ मौहूम सा रह जाएगा।

'रँगना' बवज़ने 'चंद जा' न कहेंगे। बल्के वो लहजा और है; जैसा के इस मिसरे मे—'हमने कपड़े रँगे हैं शगरफ़ी'—ये सही और फ़सीह है।

हमने रँगे हैं कपड़े शंगरफ़ी बऐलान नून गँवारी बोली और ग़ैर सही और क़बीह है।

'खिराम' को कौन मुअन्नस बोलेगा, मगर वो के दावाए फ़साहत से हात धो लेगा। 'रफ़्तार' मुअन्नस और 'खिराम' मुजक्कर है। 'रफ़्तार' की तानीस को 'खिराम' की तानीस को सनद ठहराना क़यास माउल फ़ारिक़ है।

हरफ़े[1] मसरूरी, जिसको सनाई भी कहते हैं मौहेदा[2] से जाए[3] मौजमा तक अलिफ़ की जगह तहतानी[4] भी क़ुबूल करते हैं। मौलवी आले नबी सहारनपुरी और मौलवी इमाम बख्श देहलवी में इस बात पर बड़ा झगड़ा हुआ। मौलवी इमाम बख्श बा को बे कहना जायज़ नहीं रखते थे। आखिर मौलवी आले नबी ने अइम्म ए फन्ने कलाम के कलाम से उसका जवाज़[5] साबित कर दिया मगर सिर्फ़ अज़रूए तलफ़्फ़ुज़ और उसकी इजाज़त का कोई क़ायदा खास इसके वास्ते नहीं। उर्दू में ता को तोय और ज़ा को ज़ोय कहते हैं और बाक़ी हुरूफ़ के आखिर में तहतानी बोलते हैं। लिसाने[6] अरब व अजम में मुस्हदा से जाए मौजमा तक अवाखिरे हुरूफ़ में अलिफ़ भी लाते हैं और तहतानी भी। 'ता' 'ज़ा' को 'ता' 'ज़ा' ही कहेंगे, न 'तोय,ज़ोय' न 'ते, ज़े' अलाहाज़ल[7] क़यास हुरूफ़ बाक़या।

राक़िम—असदुल्ला खाँ

अनवरी—

बअहदे[8] जूद तो दायम बयक शिकम ज़ायद
ज़े गायते करम अन्दर करामे तो ये नेस्त

---

१. उर्दू-वर्णमाला के दो नुक़्ते वाले अक्षर। २. एक नुक़्ते वाले अक्षर से लेकर। ३. 'जे' तक। ४. नीचे नुक़्ता रखने वाले अक्षर। ५. प्रमाण। ६. अरबी और अन्य भाषाएँ। ७. अन्य अक्षरों के सम्बन्ध में भी यही समझा जाये। ८. तेरी उदारता की यह बात है कि अपने शासन काल में इच्छुक के लिए आप 'न' का शब्द नहीं बोलते। प्रश्न और स्वीकृत दो भिन्न शब्द नहीं है। यदि 'नकार' सुनाई देता है तो केवल 'नै' (वंशी) शब्द में ही।

सैयद गुलाम हुसनेन 'क़द्र' बिलगिरामी

ज़माना सौते मवालो मदाए आरे रा
ब ऐतक़ादे तो सद जूस्त नून मगर नैरा

७

(१८५८ ई०)

हजरत,

क्या फ़रमाते हो ? 'हवा भी हो', 'क़ज़ा भी हो' इस रदीफ़ के साथ क़ाफ़िया मामूली आ नही सकता; 'बेताबी हो' 'महताबी हो' क्योंकर दुरुस्त होगा ? वहाँ मौहद्दा के माबाद हाय हव्वज है, यहाँ मौहद्दा के आगे। 'चापी' के बाए फ़ारसी और या ए हत्ती है; 'चापी' और 'कापी' और 'रापी' और 'बापी' ये क़ाफ़िए हम्दगर हो सकते हैं। 'चापी' लुगते अँगरेज़ी है। इस ज़माने में इस इस्म का शेर में लाना जायज़ है, बल्के मज़ा देता है। तार-बिजली और दुखानी[1] जहाज़ के मज़ामीन मैंने अपने यारों को दिए हैं, औरों ने भी बांधे हैं। 'रूबकारी' और 'तलबी' और 'फ़ौजदारी' और 'सरिश्तेदारी' खुद ये अल्फ़ाज़ मैंने बाँधे हैं। 'चाबी' बमाने 'कलीद' शौक़ से लिखो, न 'चाभी'। नासिक़ लिखता है, मेम साहब के आगे अल्फ़ाज़ भूल गया हूँ, आखिर मिसरा ये है--

······मिस के नाज़ बेजा उठाऊँ किस किसके

इलाही बख़्श ख़ाँ 'मारूफ़ लिखते हैं--

नगीने दिल सिवा खोदे तो घर नीलाम हो जाए

वस्सलाम।

--ग़ालिब

---

१. धूम्रयुक्त।

साहब, तुमने मसनवी ख़ूब लिखी है ! कहीं इमला में, कहीं इंशा[1] में जो अग़लात थे, दूर किए और हर इस्लाह की हक़ीक़त उसके तहत में लिख दी। फ़िक्रे तारीख़ मसनवी से मुद्दतुल[2] उम्र माफ़ रहूँ।

—ग़ालिब

८

(१८६० ई०)

मुशफ़िक़ मेरे,

मैं बाद आपके जाने के दिल्ली से रामपूर आया और यहाँ मैंने आपका दूसरा ख़त पाया। पहला ख़त मुझे दिल्ली में पहुँचा था मगर चूँके उस ख़त मे आपने मस्कन का पता नहीं लिखा था मैं तहरीरे जवाब मे क़ासिर रहा। अब जो ये ख़त रामपूर में पहुँचा उसमें पता मरक़ूम था, मैं पासिख़ निगार हुआ। आप के मसविदात एक बक्स में थे। वो बक्स वहीं रहा। अब जब तक दिल्ली न जाऊँगा, उनको न पाऊँगा। और एक आपको इत्तला देता हूँ के जब मैं दिल्ली में था तो एक ख़त मियाँ नौरोज़ अलीख़ाँ का तुम्हारे नाम बनिशान मेरे मुक़ाम के आया था। चूँके उन दिनों में मुझको आपका मस्कन मालूम न था मैंने उस पर लिख दिया के वो बिलगिराम गए। ख़ुदा जाने तुम्हारे पास वो ख़त पहुँचा या नहीं ?

बरख़ुरदार मिर्ज़ा अब्बास को दुबारा तहरीर की हाजत नहीं। अगर वो सआदतमन्द है तो वही एक ख़त काफ़ी है अब आप जो मुझको ख़त भेजिए तो रामपूर भेजिए। पता मुक़ाम का कुछ ज़रूर नहीं। रामपूर का नाम और मेरा नाम किफ़ायत करता है।

ख़ुशनूदी का तालिब—ग़ालिब

---

१. गद्य। २. आयुपर्यन्त।

९

(१३ मार्च १८६०)

सैयद साहब,

तुम्हारा मेहरबानी नामा मय दो ग़ज़लों के पहुँचा। जवाब के लिखने में अगर दिरंग हुई तो आज़ुर्दा न होना। अब ग़ज़लों को देखा, कहीं हक्को इस्लाह की हाजत न पाई। मुद्दआए ख़ास का जवाब ये है के अज्ज़ाए[1] ख़िताबी यहाँ शामिले[2] इस्म नहीं है, सिर्फ़ इस्मे मुबारक ख़ुतूत व अरायज़[3] पर लिखा जाता है। रहा क़सीदे का भेजना ज़ायदे महज़ और बे फ़ायदा। अगर मैं यहाँ रहता और तुम भी तकलीफ़े रहरवी उठाते और यहाँ आते और क़सीदा गुज़रानते, तो बतरीक़े सिला कुछ मिलने का अहतमाल था। ये तर्ज़ के तुम भेजो और मैं गुज़रानूँ इससे क़ते नज़र के अहतमाले नफ़ा भी नहीं रखती बतवस्सुत मेरे ख़िलाफ़े वज़ा है। मुझको माफ़ रखिए और अब जो ख़त भेजिये दिल्ली को भजिएगा के मैं इस महीने में उधर को जाऊँगा। रूयते[4] हिलाले माहे सयाम अग़लब है के दिल्ली ही में हो।

वस्सलाम माउल अिकराम से शम्बा १३ मार्च सन् १८६० ई०।

—ग़ालिब

१०

(१८६१ ई०)

सआदतो इक़बाले निशान मीर गुलाम हुसनेन को ग़ालिबे गोशानशी[5] की दुआ पहुँचे।

---

१. उपाधि के अंश। २. नाम से युक्त। ३. प्रार्थना पत्र। ४. रमज़ान के चाँद का देखना। ५. एकान्तवासी।

हज़रत 'कश्फ़ी' के दीवान के इन्तबा की तारीख़ अच्छी है। कहीं इस्लाह की हाजत नहीं। मगर दूसरी तारीख़ मेरी समझ में नहीं आई। इस फ़न के वायदे के माफ़िक़ मिसरए तारीख़ में से 'तकल्लुफ़' के अदद निकालने चाहिएँ याने पान सौ तीस।

कलोख़न्दाज़ रा पादाश संग अस्त

इस मिसरे के आदाद[1] में इतनी गुंजायश कहाँ के पान सौ तीस निकल जाएँ और १२७८ बच रहें। साहब, तुम बहुत दिन से बेकार हो। एक जगह मसादते[2] रोज़गार की सूरत है। तुम बेतकल्लुफ़ मेरा ये रुक़्क़ा मुहंरी लेकर लखनऊ चले जाओ। मतबए अवध अख़बार में मेरे शफ़ीक़े[3] दिली याने मुंशी नवल किशोर साहब से मिलो और रुक़्क़ा उनको पढ़वा दो। अपनी नज़्मो नस्र उनको दिखाओ और अपना मबलग़े[4] इल्म उन पर ज़ाहर करो। अगर वो अपनी मर्ज़ी के माफ़िक़ तुमको कारगुज़ार समझेंगे तो मतबे का काम तुम्हारे सुपुर्द कर देंगे; मशाहिदा ख़ातिरख़ाह तुमको मुक़र्रर हो जाएगा, मौज़्ज़ज़[5] व मुकर्रम रहोगे। ज़िन्दगी का लुत्फ़ उठाओगे लेकिन शर्त्त ये है के जल्द चले जाओ। लखनऊ तुमसे नज़दीक है। इतनी राह का[6] क़ता करना कुछ दुश्वार नहीं। अगर नौकर न हो जाओगे, फिर चले आना, बख़्त[7] आज़माई है।

११

१८६१ ई०

बन्दा परवर,

आपका ख़त लखनऊ से आया। हालात मालूम हुए। ये न मालूम हुआ के क्या काम आपके सुपुर्द हुआ है। ये भी लिखिये। चंद रोज़ सब्र करो। अगर

---

१. संख्या। २. काम। ३. सुहृद्। ४. योग्यता। ५. प्रिय और समादृत। ६. राह काटना। ७. भाग्य की परीक्षा।

वतन में होते तो इस बेकारी में घर की खबर क्या लेते ? जिस तरह जब गुज़रती अब भी गुज़र जाएगी, बल्कि तुम्हारा ख़र्च कम हो गया। बहरहाल अभी इज़ाफ़े के वास्ते न तुम कहो, न मैं लिखूँ। दो चार महीने काम करो, इसमें अगर बिलगिराम में छापेख़ाना जारी हो गया, तो इस्तेफ़ा[1] देकर चले जाइये। यहाँ बाद चंद रोज के इज़ाफ़ा होना भी तौहुय्यज़े[2] इमकान से बाहर नहीं।

१२

(५ मई १८६२ ई०)

सैयद साहब सआदत व इक़बाले निशान मीर ग़ुलाम हुसनैन साहब को ग़ालिब की दुआ पहुँचे।

आपका ख़त आया और मैंने उसका जवाब भिजवाया। इस रुक़्के की तहरीर से मुराद ये है के जनाब मुंशी साहब से मेरा सलाम कहिए और ये रुक़्क़ा उनको पढ़ा कर अर्ज़ कीजिये के ग़ालिब पूछता है के फ़ारसी की कुल्लियात का छापा मुल्तवी है या जारी है ? मुल्तवी है तो कब तक खुलेगा ? जारी है तो तरही किस तौर पर है ? क़सीदे और तारीख़े कुल्लियात का मतबे में पता लगा है या नहीं ? अगर वो दोनों काग़ज़ गुम हो गए हैं तो मुसन्ना[3] भेज दूँ।

यूसुफ़ मिर्ज़ा साहब बज़रिये मेरे ख़त के आप से मिल गए या नहीं ? क़ातै बुरहान' के अज्ज़ा की जिल्दें बँध गईं या नहीं ? अगर बँध गई हों तो जनाब मुंशी साहब से कहकर वो जो पचास जिल्दें मैंने ली हैं, उनमें से एक जिल्द लेकर जनाब फ़ैज़माब[4] ख़ुदावन्दनेमतेआयए रहमत क़िब्ला व काबा जनाब मुज़्तहिदुल अस्र की ख़िदमत में हाज़िर हो और मेरी तरफ़ से कोर्निश[5] अर्ज़

---

१. त्याग पत्र। २. आशाप्रद। ३. प्रतिलिपि। ४. माननीय। ५. अभिवादन।

करो और किताब नज़र करो और कहो के ग़ुलाम ने बहुत ख़ूने जिगर खाकर फ़ारसी तहक़ीक़ को उस पाए पर पहुँचाया है के उससे बढ़कर मुतसव्विर नहीं। ये मजाल कहाँ के दाद का तलबगार हूँ। सिर्फ़ इज़्ज़े[1] क़ुबूल का उम्मीदवार हूँ।

समझे सैयद साहब ? मुंशी साहब से चारों सवालों का जवाब और जो क़िब्ला व काबा फ़रमाएँ उस तक़रीर में तग़य्युर[2] बिलमरादिफ़ भी न हो। जो अल्फ़ाज़ हज़रत की ज़बान से सुनो, हूबहू लिख भेजो। हाँ, मौलवी हादी अली साहब का जो हाल मालूम हो वो भी ज़रूर लिखना और इस ख़त का जवाब बहुत जल्द भेजना। भाई, मैं अज़राहे अेहतियात तलफ़ होने के डर से इस ख़त को बैरंग भेजता हूँ।

दो शंबा पंजुम ज़ीक़ादा व मई साले रस्ताख़ीज़।

१३

(२४ मई १८६२)

सैयद साहब,

आपका ख़त, जिसमें क़िब्ला व काबा का मुहरी व दस्तख़ती तौक़ी मलफ़ूफ़ था, पहुँचा। मैं तुमसे बहुत राज़ी हुआ के तुमने तकलीफ़ उठाई और मेरी नज्र वहाँ पहुँचाई। अब एक तकलीफ़ और देता हूँ के जनाब मुंशी साहब से मेरा सलाम कहकर उनके हुक्म से एक नुस्ख़ा 'क़ातै बुरहान' का मतबे में से लो और मकान मालूम करके जनाब मुफ़्ती मीर अब्बास साहब के पास जाओ और मेरा सलाम कहो और किताब दो और अर्ज़ करो के जो ख़ूने जिगर मैंने इस तालीफ़ में खाया है, यक़ीन है के उसकी दाद[3] तुम्हारे सिवा और से न पाऊँगा।

---

१. स्वीकृति का आदर। २. परस्पर अविरोधी। ३. प्रशंसा।

हाँ साहब, जनाब मुंशी साहब से ये कह देना के पचास में तीन जिल्द मैंने पाईं। अब क़ीमत का रुपया भेजकर 'सैंतालीस' और मँगाए लेता हूँ। 'कुल्लियात' के इन्तबा की तारीख़ मैं क्यों लिखूँ? अहले मतबा को ख़ुदा मुंशी साहब के साये[1] उतूफ़त में सलामत रखे, कह लेंगे। छापा ७८ में शुरू हुआ, ७९ में तमाम होगा। मौलवी हादी अली साहब के मतबे में आने का हाल तुम लिखो और 'कुल्लियात' के कापीनिगार के आने का भी हाल मालूम करके लिखो।

जवाब का तालिब।

—ग़ालिब

१४

(जून १८६२)

सैयद साहब,

आपने ख़ूब किया के मुफ़्ती मीर अब्बास का हदिया[2] ग़ैर को न दिया। अपने पास अमानत रखिए। जब मुफ़्ती साहब आयें उनको पहुँचा दीजिए।

तुम्हारा क़स्द यकुम जून को बिलगिराम जाने का था। वहाँ के में कुछ सुस्ती पाई जो फ़स्खे[3] अज़ीमत किया? इसकी कैफ़ियत ज़रूर लिखिए और जो कुछ तुमने सिफ़ारिश के बाब में लिखा है, मैं इस ख़ाहिश को क्यों कर क़ुबूल करूँ? वो शख़्स मेरा शागिर्द नहीं, मुरीद नहीं, सूरत आशना भी तो नहीं। क्योंकर लिखूँ? माहाजा तुम्हारे वास्ते मेरा लिखना मुज़िर है। याने वो साहब समझेंगे के हज़रत ने कुछ मेरी शिकायत व हिकायत लिखी होगी जब ग़ालिब ने मुझको ये लिखा है। इस वक़्त आपकी वहशत[4] अंगेज़

---

१. छत्रछाया। २. भेंट। ३. विचार स्थगित। ४. आतंकपूर्ण।

तहरीर पहुँची। उधर उसको पढ़ा और इधर ये ख़त तुम्हें और एक मिर्ज़ा अब्बास को और एक ख़त तहनियत का मुंशी साहब को लिखा लेकिन चूँ के बलादे[1] शर्क़िया को डाक नौ-दस बजे रवाना होती है, नाचार ये तीनों ख़त बन्द करके तुम्हारा और मिर्ज़ा अब्बास का ख़त बैरंग और मुंशी जी का ख़त पेड़ रख छोड़ता हूँ। कल सुबह को बाद[2] अज़ तुलूए आफ़ताब डाक में भिजवा दूँगा। ख़ातिर जमा रखो, मैंने बरखुरदार को ऐसा कुछ लिखा होगा के मुफ़ीदे[3] मतलब होगा। इंशा अल्लाहुल अली अल अज़ीम।

चहारशंबा, १२ पर ३ बजे।

ख़ुशनूदी[4] ए अहबाब का तालिब
—ग़ालिब

१५

साहब,

वल्लाह! सिवाय इस ख़त के तुम्हारा कोई ख़त नहीं आया। कैसे चार ख़त तुमने भेजे? क्यों बातें बनाते हो? यहाँ भी टिकट पर तहरीर की मुमानियत है। बहतर यही है के तरफ़ैन[5] से ख़ुतूत बैरंग भेजे जाएँ के ये क़िस्सा मिट जाए। बरखुरदार मिर्ज़ा अब्बास की बदली की ख़बर मैंने पहले ही से सुनी है, मगर ये नहीं मालूम था के वो कहाँ गए। अब दरियाफ़्त हुआ के तुम्हारे हमसाए[6] में आए हैं। अब उनसे मिलिए, ख़ुदा उनको मुरव्वत की तौफ़ीक़[7] दे। मतले में नाम अपना लिखना रस्म नहीं है, 'मीर' का

---

१. पूरब के शहर। २. सूर्योदय के पश्चात्। ३. लाभदायक। ४. बांधवों का शुभेच्छुक। ५. दोनों ओर से। ६. आश्रय। ७. उपदेश।

तख़ल्लुस और सूरत रखता है 'मीरजी' और 'मीर साहब' करके वो अपने को लिख जाता है। और को इस विदत का ततब्बो न चाहिए।

—ग़ालिब

१६

(२२ फरवरी १८६३)

साहब, तुमसे पहले ये पूछा जाता है के जब तुम जानते हो के मिर्ज़ा अब्बास मेरी हक़ीक़ी बहन का बेटा है तो फिर मैं मिर्ज़ा की औलाद का नाना क्यों कर बना? मिर्ज़ा की बीबी मेरी बहू है, बेटी नहीं। तुमने जो लिखा है के मेरे नवासे की शादी है क्या समझ के लिखा? मैं मिर्ज़ा की औलाद का नाना क्यों कर बना? भानजे की औलाद पोता-पोती है, न नवासा-नवासी। मुझको उसकी औलाद का जिद्दे[1] फ़ासिद लिखना टकसाल बाहर बात है।

ख़ैर, ये तो ज़राफ़त[2] थी। तुम ये तो बताओ के मिर्ज़ा लखनऊ क्यों जाता है? और अगर असबाब ख़रीदना था, तो एक मौतमद को भेज दिया होता, बज़ाते ख़ुद इस तकलीफ़े[3] बेजा को गवारा करना क्या ज़रूर? ये बात जवाब तलब है।

मेरे आने की ये सूरत है के मिर्ज़ा की इस्तेदुआ से क़ते नज़र मेरा दिल भी तो पत्थर या लोहे का नहीं जो अपने बच्चों को देखने को न चाहे। एक बहन, उसकी मजमू औलाद वहाँ, मेरा तो वो ख़ाना[4] बाग़ है। बहार[5] के मौसम में बाग़ की सैर को किसका जी न चाहेगा? बशर्ते सेहत आऊँगा। इंशा अल्लाह्।

सुबह यकशंबा ३ रमज़ान, २२ फ़रवरी साले हाल।

१. विपरीत। २. हास्य। ३, निरर्थक कष्ट। ४. घर। ५. वसन्त।

१७

(१८६३ ई०)

मीर साहब,

माजरा ये है के मैं हमेशा नवाब गवर्नर जनरल बहादुर के दरबार में सीधी सफ़[1] में दसवाँ लंबर और सात पारचा और तीन रक़म जवाहर ख़लत पाता था। ग़दर के बाद पिन्सन जारी हो गई, लेकिन दरबार और ख़लत बन्द। अब के जो लार्ड साहब यहाँ आए, तो अहले दफ़्तर ने बमूजिबे हुक्म के मुझको इत्तला दी के तुम्हारा दरबार और ख़लत वागुज़ाश्त हो गया; मगर दिल्ली में दरबार नहीं। अम्बाले आओगे तो दरबार में लबर और ख़लत मामूली पाओगे। मैंने ख़बर में वजदान[2] का मज़ा पाया और अम्बाले न गया। राबर्ट मांटगुमरी साहब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर कलम रू ए पंजाब यहाँ आए, दरबार किया। मैं दरबार में न गया। दरबार के बाद एक दिन बारह बजे चपरासी आकर मुझको बुला ले गया। बहुत इनायत फ़रमाई और अपनी तरफ़ से ख़लत अता किया।

आग़ाज़े दीवान के शेर याने मतले में हर्गिज़ हुरूफ़ व अल्फ़ाज़ की क़ैद नहीं है। हाँ, रदीफ़ अलिफ की ये अमर क़ाबिले पुर्सिश के नहीं, बदीही है। देख लो और समझ लो। ये जो दीवान मशहूर हैं—हाफ़िज़ व सायब व सलीम व कलीम। इनके आग़ाज़ की ग़ज़ल के मतले देखो और हुरूफ़ व अल्फ़ाज़ का मुक़ाबिला करो, कभी एक सूरत, एक तरकीब, एक ज़मीन, एक बहर न पाओगे, चे जाए[3] इत्तेहादे हुरूफ़ो अल्फ़ाज़, लाहौला वलाक़ूव्वता, इल्लाह् बिल्लाह्।

---

१. पंक्ति। २. परम आनन्द। ३. अक्षर और शब्द का मिलना कैसे।

१८

(२२ अगस्त १८६३ ई०)

साहब,

मैं बरस दिन से बीमार था। एक फोड़ा अच्छा हुआ दूसरा पैदा हुआ। अब फ़िलहाल दोनों पावों-हातों में नौ फोड़े हैं। दोनों पाँवों पर दो फोड़े, पिंडली की हड्डी पर ऐसे हैं के जिनका उमक़[1] हड्डी तक है। उन्होंने मुझको बिठा दिया। उठ नहीं सकता, हाजती धरी रहती है, पलंग पर से खिसल पड़ा, फिर पड़ रहा। रोटी भी इसी तरह खाता हूँ। पाख़ाने, क्या कहूँ, क्योंकर जाता हूँ। सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक पड़ा रहता हूँ। ये सुतूर लेटे लेटे लिखे हैं। नीम मुर्दा हूँ, क़रीब बमर्ग हूँ, इफादा व इस्तफ़ादा व इस्लाह के हवास नहीं। ग़ज़ल रहने दो। ये हाल तुमको लिख भेजा।

शंबा, २२ अगस्त सन् १८६३ ई०।

नजात का तालिब--ग़ालिब

१९

(२४ नवम्बर १८६३)

सैयद साहब,

तुमने जो ख़त में बरख़ुरदारे कामगार मिर्ज़ा अब्बास बेग ख़ाँ बहादुर की रियासत और इनायत का शुक्रिया अदा किया है, तुम क्यों शुक्र गुज़ार होते हो? जो कुछ नेकी और निकोई उस इक़बाले[2] निशान ने तुम्हारे साथ की है,

---

१. गहराई। २. शुभ लक्षण।

वोबेऐनही मेरे साथ की है। उसका सिपास मैं अदा करूँ। खुदा की क़सम दिल से दुआएँ दे रहा हूँ भाई, उसका जौहरे तबा अजरूए फ़ितरत शरीफ़ है। परवर दिगार उसको सलामत रखे और मदारिजे आला को पहुँचाये। ये अपने वालिदैन के खानदान का फ़ख्र है और चूँके उसकी माँ का और मेरा लहू और गोश्त और हड्डी और खून और ज़ात एक है, पस वो फ़ख्र मेरी तरफ़ भी आयद होता है। वो अपने जी में कहता होगा के मामूँ मेरी बेटी के व्याह में न आया और सिर्फ़ ज़र से जी चुराया है। मैं तो ज़र को खाक व खाकिस्तर के बराबर भी नहीं समझता, मगर क्या करूँ के मुझमें दम ही न था। काश के जब ऐसा होता, जैसा के अब हूँ तो सबसे पहले पहुँचता। जी उसके देखने को बहुत चाहता है, देखूँ उसका देखना कब मयस्सर आता है? मैं अब अच्छा हूँ। बरस दिन साहबे फ़राश रहा हूँ। छोटे-बड़े ज़ख्म बारह और हर ज़ख्म खूँ[1] चकाँ; एक दर्जन फ़ाये लग जाते थे। जिस्म में जितना लहू था, पीप होकर निकल गया। थोड़ा-सा जो जिगर में बाक़ी है, वो खाकर जीता हूँ; कभी खाता हूँ, कभी पीता हूँ। मर्ज़ के आसार में से अब भी ये निशान मौजूद हैं के दोनों पाँवों की दो-दो उँगलियाँ टेढ़ी हो गई हैं, माहाज़ा मुतवर्रम[2] है, जूता नहीं पहना जाता। ज़ोफ़ का तो बयान हो ही नहीं सकता, मगर हाँ ये मेरा शेर—

दर कशाकशे ज़ोफ़म नगसलद रवाँ अज़तन
ई के मन न मी मीरम हम ज़ नातवानी हास्त

अबके रज्जब याने माहे आइन्दा की आठवीं तारीख से सत्तरवाँ बरस शुरू होगा।

चो हफ़्ताद[3] आमद आज़ा रफ़्त अज़कार

---

१. रक्तवाही। २. शोथ युक्त। ३. सत्तरवाँ साल क्या आया अंगों ने उत्तर दे दिया।

पस अब शिकवए ज़ोफ़ नादानी है, ईमान सलामत रहे ।

से शम्बा २४ नवम्बर १८६३ ई० ।

नजात का तालिब—ग़ालिब

२०

(१८६५ ई०)

क़ुर्रतुल[1] ऐन मीर ग़ुलाम हुसनेन सल्लमुकुम्मल्लाहुताला ।[2] तुम्हारा ख़त पहुँचा । दिल ख़ुश हुआ । मौलवी नजफ़अलीख़ाँ साहब की क्या तारीफ़ हो, तुम कुछ लिखो, तो जानूँ । वल्लाह अगर कभी मौलवी साहब मेरे घर आए हों या मैंने उनको देखा हो, 'चे जाए[3] अख़्तलात व इर्तबात' ! सिर्फ़ व रियायत जानिबे हक़ चन्द कलमात उन्होंने लिखे हैं, तुम मेरे यार हो और मेरी ख़िदमत गुज़ारी के हुक़ूक़ हैं तुम पर, मुझको मदद दो और अपनी क़ुव्वते इल्मी सर्फ़ करो, 'मुहर्रिक़ क़ातै बुरहान' मेरे पास मौजूद है; मुझसे मँगवाओ । मैं हर मौक़े पर ख़ता और ज़िल्लते[4] मौल्लिफ़ का इशारा कर दूँगा । तुम हर फ़िक़रे को बग़ौर देखो और बेरब्ती ए अल्फ़ाज़ और लग़वियते माने को मीज़ाने[5] नज़र में तोलो । आमी नहीं हो, आलिम हो । आख़िर मौलवी नजफ़ अली साहब ने भी तो अपनी क़ुव्वते आक़िला से बे इआनते[6] ग़ैर 'मुहर्रिक़' के जामे की धज्जियाँ उड़ाई हैं । तुम्हारे पास दो नुस्ख़े—एक 'दाफ़े हिज़यान' एक 'सवा-लाते अब्दुल करीम' मय इस्तफ़ता[7] व इफ़्ताए दस्तख़ती उल्मा ए देहली मौजूद हैं और अब उस किताब के साथ मेरे इशारात सूदमंद[8] पहुँचेंगे । तुमको मारिज़ा

---

१. मेरी दृष्टि । २. ईश्वर तुम्हें सकुशल रखे । ३. मेल मिलाप के लिए । ४. सम्पादक का कलंक । ५. दृष्टि तुला । ६. किसी की सहायता लिए बिना । ७. हज़रत अली का सेवक और बारह इमामों को मानने वाला । ८. लाभकर ।

बहुत आसान होगा। मुद्दई का कलाम दरअस्ल लग्वो, फिर तुम्हारे पास सरमाय ए इल्मी मौजूद और ये तीन नुस्खे माक़ूल उस पर मज़ीद अलै उस पर। 'मुर्हरिक़' 'साहबे मुर्हरिक़' का ख़ाका उड़ जाएगा। मेरे ख़त के पहुँचते हीं जवाब लिखिये और इजाज़त भेजिए के मैं नुस्खे मतबुआ[1] और नामतबुआ[2] 'मुर्हरिक़' बसबीले डाक भेज दूँ। मगर जिस दिन से किताब पहुँच जाए उसी दिन से आप उर्दू ज़बान में रिसाला लिखना शुरू कीजिए और बाद इख़्तताम[3] मुझे इत्तला दीजिए। फिर जैसा लिखूँ वैसा अमल में लाइए।

—ग़ालिबे इस्ना अशरी ए[4] हैदरी

हाँ साहब, आग़ा मुहम्मद हुसेन नाखुदा ए शीराज़ी का ख़त मय अशार आया और मैंने उसका जवाब भिजवाया। अब जो ढूँढा तो मेरा मसविदा हात आया मगर आग़ा का ख़त न आया। उस मसविदे को साफ़ करके तुम्हारे पास भेजता हूँ। आग़ा साहब का जब ख़त निकल आवेगा वो भी भिजवा दिया जाएगा। सआदत व इक़बाले निशान मिर्ज़ा अब्बास बेग ख़ाँ को मेरी दुआ कहना और ये वरक़ उनको सरासर पढ़ा देना।

२१

(१८६७ ई०)

सैयद साहब,

तुम 'क़द्र' और नूरे चश्म मिर्ज़ा अब्बास क़द्रदाँ। ख़ातिर जमा रखो, नौकरी तुम्हारी हो जाएगी। साहब[5] की और राजा[6] की तारीफ़ के क़सीदे

---

१. मुद्रित। २. अमुद्रित। ३. समाप्ति। ४. शिया ग़ालिब। ५. विलियम हैंडफ़ोर्ड, संचालक शिक्षा विभाग अवध। ६. महाराजा मानसिंह।

वाकई गुलदस्ते हैं मगर मिर्ज़ा[1] की मदह के क़सीदे को गुलदस्ता न कहो, ये तो एक बाग है, सरसब्जो[2] शादाब, जिसमें गुलबन हज़ार दर हज़ार, मेवादार दरख़्त बेशुमार। ज़मीन सरासर सब्ज़ाज़ार, बहुत हौज़, बहुत नहरें, मिट्टी नज़र नहीं आती; सब्ज़ा, या लहरें। फ़क़ीर ग़ालिब तुम्हारा ख़ैरख़ाह और तुम्हारे ममदूह का दुआगो है।

२२

(१८६८ ई०)

हज़रत,

फ़क़ीर ने शेर कहने से तोबा की है, इस्लाह देने से तोबा की है। शेर सुनना तो मुमकिन ही नहीं; बहरा हूँ। शेर देखने से नफ़रत है। पचहत्तर बरस की उम्र, पन्द्रह बरस की उम्र से शेर कहता हूँ। ६० बरस बका, न मदह का सिला मिला न गज़ल की दाद, बक़ौले अनवरी—

ऐ दरेग़ा नीस्त ममदूहे सज़ावारे मदीह
वै दरेग़ा नीस्त माशूक़े सज़ावारे ग़ज़ल

सब शोरा से और अहबाब से मुतवक्के हूँ के मुझे ज़ुम्र ए[3] शोरा में शुमार न करें और इस फ़न में मुझसे कभी पुरसिश न हो।

—असदुल्लाहख़ाँ अलमुतख़ल्लुस बग़ालिब व अलमुख़ातिब बनज्मुद्दौला ख़ुदायश[4] बया मुरज़ाद।

---

१. मिर्ज़ा मुहम्मद अब्बास बेग, अतिरिक्त सहायक जिलाधीश लखनऊ। २. हरा भरा और सरस। ३. कवियों की पंक्ति। ४. ईश्वर उसे क्षमा करे।

नवाब मुहम्मद यूसुफ़ अलीख़ां बहादुर, रामपुर नरेश के नाम

१

(१५ फ़रवरी १८५७)

हज़रत वली ए नेमत आयए[1] रहमत सलामत,

आदाब बजा लाता हूँ। ग़ज़लों के मसविदात साफ़ कर कर हुज़ूर में भेजता हूँ। मसविदात अपने पास रहने दिए हैं। इस नज़र से के अगर अह्यानन डाक में लिफ़ाफ़ा तलफ़ हो जाए तो मैं फिर उसको साफ़ कर कर भेज दूँ, वर्ना मौक़ ए हको इस्लाह मुझे क्या रहेगा।

मैं नहीं चाहता के आपका इस्मे सामी और नामे नामी तख़ल्लुस रहे। नाज़िम, आली, अनवर, शौकत, नैसाँ इनमें से जो पसंद आए वो रहने दीजिए, मगर ये नहीं के ख़ाही न ख़ाही आप ऐसा ही करें। अगर वही तख़ल्लुस मंज़ूर हो तो बहुत मुबारक। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो क़यामत तक।

रोज़े यकशबा १५ फ़रवरी सन् १८५७ ई०।

इनायत का तालिब—ग़ालिब

२

जनाबे आली,

कुछ कम एक महीना हुआ के मैंने हुज़ूर की ग़ज़लों को देखकर ख़िदमत में रवाना किया है और उसके पहुँचने से इत्तला नहीं पाई। अब डाक में

---

१. दया का कारण।

ख़त तलफ़ भी हो जाया करते हैं। इस वास्ते मैं मुतरद्दुद हूँ और मुद्दआ इस तहरीर से ये है के अगर वो लिफ़ाफ़ा न पहुँचा हो तो मै उस मस्विदे को फिर साफ़ कर कर रवाना करूँ। ज्यादा हद्दे अदब।

निगाश्ता सुबहे पंज शंबा, २७ शाबान सन् १२७३ हि०।

अज़--ग़ालिब

३

जनाबे आली,

आदाब बजा लाता हूँ और अर्ज़ करता हूँ के उजूरादार[1] पहुँचा मगर लुटा हुआ और भीगा हुआ और भागता हुआ। गूजरों ने उसे लूट लिया, रुपया-कम्मल सब ले लिया। ख़त उस दारोगीर में गिर पड़ा, भीग गया, लिफ़ाफ़ा मुझ तक न पहुँचा। ख़त मय हुण्डवी के पहुँचा, ख़त में से अलक़ाब[2] बतकल्लुफ़ पढ़ा और ये जुम्ला 'सिफ़तचए मुबल्लग़ दो सद[3] व पिंजाह रुपया' पढ़ा गया और बाक़ी ख़ैरो आफ़ियत। 'मुकर्रर आँ के' इसके बाद जो कुछ लिखा था उसमें से 'मौलवी' ये लफ़्ज़ और बाद एक लफ़्ज के 'ख़ाँ साहब' ये पढ़ा गया; और कुछ नहीं। मुझको ग़म ये है के ग़ज़ल हाये[4] इस्लाही और दीवाने उर्दू की रसीद मैंने न पाई।

हुण्डवी का बेऐनही वो हाल जो हाल मेरे खत का था, कुछ पढ़ा जाए, कुछ न पढ़ा जाए। आपका नाम और ढाई सौ रुपया ये पढ़ा गया। चूँ के महाजन मुझको जानता था, उसने उस भीगे हुए काग़ज़ को अपनी चिट्ठी में लपेट कर रामपूर उस महाजन के पास भेजा है, जब वो सही कर भेजेगा,

१. कर्मचारी २. काव्य नाम के साथ उपाधि। ३. ढाई सौ।४. सम्पूर्ण संशोधित ग़ज़ल।

तब वो मुझको रुपया देगा। उसके सही करने में क्या ताम्मुल है। मैंने सिर्फ़ बतरीक़े इत्तला लिखा है। और ग़ज़लों की और दीवान की रसीद और जो इस ख़त में 'मुक़र्रर आँ के' बाद मतालिब मुन्दर्ज थे वो फिर ऐसे ही बारीक काग़ज़ पर लिखकर उस साहूकार को दीजिएगा और उसको ताकीद कीजिएगा के इसको भेज दे। यहाँ के साहूकार ने मेरी खातिर से इस रुक़्क़े को अपनी चिट्ठी में रवाना किया है।

पंजुम ज़िल हज्जा।

—ग़ालिब

४

(७ नवम्बर १८५८)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

मंशूरे[१] अतूफ़त के देखने से ज़िन्दगी की सूरत नज़र आई। मुख़म्मस[२] और ग़ज़लों के पहुँचने की इत्तला पाई। ये भी एक बख़्शिश का बहाना पैदा करना है, वर्ना हुज़ूर के कलाम को इस्लाह की अहतयाज[३] क्या है? मेरी क्या सुख़नवरी और सुख़नसराई है? आपकी क़द्रदानी बल्के क़द्र अफ़ज़ाई है। तकल्लुफ़ है अगर कहूँ के ताक़यामत[४] रहो। बेतकल्लुफ़ दुआ ये है के ख़ुदा करे एक सौ बीस बरस तक सलामत रहो।

इस क़रीने से के बसबब कम फ़ुरसती के उनका मुलाहिज़ा न करना मरकूम हुआ, रेख़्ता के दीवान और इस किताब का पहुंचना मालूम हुआ। दीवान के देखने न देखने में आपको अख़्तियार है। मगर ये चार जुज़्वा का

---

१. आनन्दपूर्ण पत्र। २. पाँच शेर की कविता। ३. आवश्यकता। ४. प्रलय पर्यंत!

रिसाला जो अब भेजा है, इसका देखना ज़रूर दरकार है। फ़ारसी ए क़दीम और फिर इस्तेमाले और सनते अल्फ़ाज़[1] बा ईं हमा हर अम्र की अहतयात[2] और हर बात का लिहाज़।

जनाबे आली तुरफ़ा[3] मामला है। ख़ुदा का शुक्र है और अपनी क़िस्मत का गिला है। ख़ुदा का शुक्र ये के बावजूदे ताल्लुके क़िला किसी तरह के जुर्म का बनिस्बत मेरे अहतमाल भी नहीं। क़िस्मत का गिला ये के अता ए पिन्शने क़दीम का हुक्काम को खयाल भी नहीं। ये नवम्बर सन् १८५८, उन्नीसवाँ महीना है। गोया बिन खाए जीना है। कहते हैं के जनवरी शुरू साल में पिन्सनदारों को रुपया मिलेगा, देखिए क्या नया गुल खिलेगा? पहली नवम्बर को यहाँ इश्तेहारे आम हो गया है के अब क़लम रू ए हिंदुस्तान में अमले मलिकए मुअज़्ज़मए आली मुक़ाम हो गया है। मैं पहले से मदाहों में अपना नाम लिखवा चुका हूँ और वुज़रा[4] ए मलिक ए दारा-दरबान के दो सार्टीफिकट पा चुका हूँ। अगर इस इजमाल की तफ़सील मालूम किया चाहिए तो इसी किताब मौसूम ब 'दस्तम्बू' में देखा चाहिए।

निगाश्तए रोज़े यकशंबा हफ़्तुम नवम्बर सन् १८५८ ई०।

ख़ुशनूदी का तालिब—

—ग़ालिब

५

(१७ नवम्बर १८५८)

ख़ुदावन्द नेमत सलामत,

जो आप बिन मांगे दें उसके लेने में मुझे इन्कार नहीं। और जब मुझको हाजत आ पड़े तो आप से माँगने में आर नहीं।

---

१. शब्दालंकार। २. सावधानी। ३. विचित्र समस्या। ४. जिस रानी (विक्टोरिया) के द्वारपाल का नाम दारा (ईरान का एक प्रसिद्ध शासक) है, उसके मंत्री।

बारे, गिराने ग़म से पस्त हो गया हूँ। आगे तंगदस्त था, अब तिहीदस्त हो गया हूँ। जल्द मेरी ख़बर लीजिए और कुछ भिजवा दीजिए।

चार शंबा, याज़दहुम[1] रबीउस्सानी सन् १२७५ हि० व १७ नवम्बर सन् १८५८ ई०।

इनायत का तालिब

—ग़ालिब

६

(३ दिसम्बर १८५८)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद आदाब बजा लाने के अर्ज़ करता हूँ के मंशूरे[2] राफ़त लिखा हुआ २५ नवम्बर का जुमे के दिन तीसरी दिसम्बर को इस दुआगोए[3] दौलत के पास पहुँचा। ढाई सौ रुपए को हुण्डवी मौतमद के हवाले की गई। आज या कल रुपया आ जाएगा।

ख़ातिरे अक़दस जमा रहे।

मेरे हाज़िर होने को जो इरशाद होता है, मैं वहाँ न आऊँगा तो और कहाँ जाऊँगा? पिन्सन के वसूल का ज़माना क़रीब आया है। इसको मुल्तवी छोड़कर क्यों कर चला आऊँ? सुना जाता है और यक़ीन भी आता है के जनवरी आग़ाज़ साल ५९ ई० में ये क़िस्सा अंजाम पाए। जिसको रुपया मिलना है उसको रुपया, जिसको जवाब मिलना है, उसको जवाब मिल जाए।

---

१. ११। २. गौरवपूर्ण पत्र। ३. समृद्धि का प्रार्थी।

हुज़ूर ने ये क्या तहरीर फ़रमाया है के इन बारह ग़ज़लों की इस्लाह में कलामे ख़ुश मतलूब है, अगली ग़ज़लों की तरह न हों। मगर अगली ग़ज़लों की इस्लाह पसंद न आई, और उन अशार में कलाम ख़ुश न था। हज़रत का तो उन ग़ज़लों में भी वो कलाम है के शायद औरों के दीवान में वैसा एक शेर भी न निकलेगा। मैं बक़द्र अपनी फ़हम व इस्तादाद के कभी इस्लाह में क़ुसूर नहीं करता।

ज़्यादा हद्दे अदब। मारूज़ए जुमा, २६ रबीउस्सानी सन् ७५ हि० व ३ दिसम्बर ५८ ई०।

अर्ज़दाश्ते ग़ालिब

७

(२८ मार्च १८५९)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

मैं इस दौलते[1] अबद मुद्दत का अज़ राहे मौदत ख़ैरख्वाह हूँ। अम्रे[2] मलाल अगेज़े अन्दोहावर में आरायशे गुफ़्तार गवारा नहीं कर सकता। नवाब मिर्ज़ा ने दिल्ली आकर पहले नवीदे[3] बज़्म आराई सुनाई। चाहता था के उसकी तहनियत लिखूँ। कल उसने अज़ रूए ख़ते आमदे रामपूर, हज़रत जनाब आलिया के इन्तक़ाल की ख़बर सुनाई। क्या कहूँ, क्या ग़म व अन्दोह का हुजूम हुआ। हज़रत के ग़मगीन होने का तसव्वुर कर और ज़्यादा मग़मूम हुआ। बेदर्द नहीं हूँ, के ऐसे मुक़ाम में बतरीक़े इशा परदाज़ी इबारत आराई करूँ। नादान नहीं हूँ के आप जैसे दानादिले दीदावर को तलक़ीने[4] सब्र व शकेबाई करूँ।

---

१. अनन्तकाल तक रहने वाली सम्पत्ति। २. दुःखद समाचार। ३. आनन्दोत्सव का समाचार। ४. धैर्य रखने का उपदेश।

अज़[1] दस्ते गदा ए बेनवा नायद हीच
जुज़ आँ के बसिदक़े दिल दुआए बेकुनद

हक़ताला ज़ाते सुतूदा[2] सिफ़ात को दायमन[3] और अबदन जाहो[4] जलाल व दौलतो इक़बाल के साथ सलामत बा करामत रखे।

मरक़ूमा यकशंबा २१ शाबान व २८ मार्च साले हाल।

अरीज़ा निगार—असदुल्लाह अल मुतख़ल्लुस
ब ग़ालिब

८

(१७ अप्रेल १८५६ ई०)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

एक ख़त मुश्तमिल अपने हाल पर और एक ख़त जनाब बेगम साहिबा व क़िब्ला[5] मग़फ़ूरा[6] की ताज़ियत में रवाना कर चुका हूँ। अब एक क़ते तारीख़ भेजता हूँ। अगर चे एक का तामिया[7] है, लेकिन तामिया कितना ख़ूब और बेतकल्लुफ़ है।

मारूज़ए १३ रमज़ान व १७ अप्रल साले हाल

अर्ज़ दाश्ते—
असदुल्लाह

क़ता

[8]जनाबे आलिया अज़बख़्शिशे हक़
बफ़िरदौसे बरीं चूँ कर्द आराम

१. फ़क़ीर केवल प्रार्थना कर सकता है। २. जिसके गुणों की प्रशंसा की गई हो। ३. शाश्वत और अनन्त काल तक। ४. प्रताप और प्रतिष्ठा के साथ। ५. पूज्य। ६. स्वर्गीया। ७. तारीख़ कहते हुए अपने उद्देश्य को गुप्त रूप से प्रकट करना। ८. ईश्वर की दया से स्वर्गीया ने जब स्वर्ग में विश्राम किया तब ग़ालिब उनके निधन की तिथि निवेदन करता है, मेरा निवेदन इलहाम रूप में है—मृतात्मा स्वर्ग में निवास करें। "ख़ुलद ख़ुल्द" (१२७५)।

नवाब मुहम्मद यूसुफ़अलीख़ां बहादुर, रामपुर-नरेश के नाम

सख़ुन परदाज़े 'ग़ालिब' साले रेहलत
'ख़ुलूदे ख़ुल्द' गुफ़्त अज रू ए इलहाम

सन् १२७५ हि० ।

१

(१८ अप्रेल १८५६)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम के अर्ज़ करता हूँ—आज दो शंबे का दिन १४ रमज़ानुल मुबारक की और १८ माहे अप्रेल की सुबह के वक़्त डाक का हरकारा आया और मंशूरे अतूफ़त लाया। मैंने सर पर रखा, आँखों से लगाया। ताज्जुब है के मेरे दो ख़तों की रसीद इस इनायतनामे में मरक़ूम नहीं। आया न पहुँचे, या पहुँचे और न पढ़े गए; कुछ मालूम नहीं।

पहले खत में ये अर्ज़ किया है के मजमू[1] पिन्सनदारों की मिस्ल मुरत्तिब है, और हनोज सदर को रवाना नहीं हुई। नवाब गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग बहादुर ने कलकत्ते से मेरे पिन्सन के कवाग़ज़ तलब किए, और वो काग़ज़ फ़ेहरिश्त में से अलग होकर लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर पंजाब की ख़िदमत में इरसाल हुए। वहाँ से कलकत्ते को भेजे जाएँगे फिर वहाँ से हुक्मे मंज़ूरी पंजाब होता हुआ यहाँ आएगा और यहाँ मुझको रुपया मिल जाएगा। आज रुपया मिला, कल मैंने आपसे सवारी और बारबरदारी माँगी। आज सवारी और बारबरदारी पहुँची और कल मैंने रामपूर की राह ली। बल्के उसी

---

१. सम्पूर्ण।

नियाज़ नामे में कुछ हुस्ने तलब भी था। अफ़सोस के ऐसा ख़ते ज़रूरी न पहुँचे।

दूसरा ख़त जनाज़े आलिया मग़फ़ूरा की ताज़ियत में था। उसका भी ज़िक्र इस इनायतनामे में न था। नाचार पहले ख़त का मज़मून इस वरक़ में मुकर्रर लिख दिया और दूसरे ख़त के सिर्फ़ ज़िक्र पर इकतफ़ा[1] किया। हक़ ताला आपको सलामत रखे और सब्रो सबात व दौलते इक़बाल व उम्रो[2] जाहो जलाल ब तरीक़े[3] दवाम इनायत करे।

दो ग़ज़लें मिन्जुम्ला १२ ग़ज़लों के बादे इस्लाह इरसाल कर चुका हूँ। ख़ुदा करे पहुँच गई हों। परसों एक क़ता जनाब बेगम साहब व क़िब्ला की तारीख़े वफ़ात का भेजा है। यक़ीन है के पहुँचेगा। अज़ राहे अहतियात[4] वो क़ता इस वरक़ में फिर लिखता हूँ। और नीज़ अज़ राहे अेहतियात ये खत बैरंग रवाना करता हूँ।

ज़्यादा हद्दे अदब।

मारूज़ए दो शंबा, चहारदहुम[5] रमज़ान सन १२७५ हि० मुताबिक़ हज़दहुम[6] अप्रेल सन् १८५९ ई०।

अरीज़ ए असदुल्लाह ख़ाँ।

क़ता—

जनाबे आलिया अज़ बख़्शीशे हक़
बफ़िरदौसे बरीं चूँ कर्द आराम
सख़ुन परदाज़ ग़ालिब साले रेहलत
ख़ुलूदे ख़ुल्द गुफ़्त अज़ रू ए इलहाम

सन् १२७५ हि०।

---

१. सन्तोष। २. आयु, प्रताप और ऐश्वर्य। ३. स्थायी रूप से। ४. सावधानी के लिए। ५. १४। ६. १८।

१०

(१ अक्तूबर १८५९)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

नवाज़िशनामे के वुरूद[१] मसूद की इत्तला देता हूँ और हुण्डवी के पहुँचने का शुक्र बजा लाता हूँ। सितम्बर सन् १८५९ के महीने के सौ रुपए पहुँचे। ख़ातिरे अक़दस जमा रहे। अज़्मे[२] विलायत का हाल मालूम हुआ। हक़ ताला आपको हर जगह मुज़फ़्फ़र[३] व मनसूरो[४] कामयाब रखे। ख़िदमत गुज़ार हूँ और दुआ व सना मेरा काम है। बुढ़ापे ने खो दिया। जुज[५] नफ़्से चंद मुझमें कुछ बाक़ी नहीं।

ज़्यादा हद्दे अदब।

मारुज़ए यकुम अक्तूबर सन् १८५९ ई०।

अर्जदास्त—ग़ालिब

११

(५ नवम्बर १८५९ ई०)

हज़रत वली नमत आयए रहमत सलामत,

बाद तक़दीमे[६] तसलीम गुज़ारिश करता हूँ—परसों एक नियाज़नामा भेजा है। यक़ीन है के पहुँचेगा, और उसका जवाब जल्द इनायत होगा। कल नवाज़िशनामा, जिसमें सौ रुपये की हुण्डवी बाबत माहे अक्तूबर सन्

---

१. पहुँच। २. विदेश जाने का विचार। ३. विजयी। ४. सफल। ५. कुछ साँस। ६. अभिवादन।

१८५९ थी, शर्फ़े वुरूद लाया। ज़र मुन्दरज़ ए हुण्डवी मारिज़े वसूल में आया। ख़ातिरे अक़दस जमा रहे।

१२

(७ नवंबर १८५९)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद बजा लाने आदाबे नियाज़ के अर्ज़ करता हूँ। ये मेरा दर्दे दिल है। नामे तहनियत में इसका इन्दराज मुनासिब नहीं जाना। मैं अंगरेज़ी सरकार में इलाक़े रियासते दूदमानी का रखता हूँ। माश अगरचे क़लील[1] है, मगर इज़्ज़त ज़्यादा पाता हूँ। गवर्मेंट के दरबार में दाहिनी सफ़ में दसवाँ नंबर और सात पार्चे जेग़ा[2], सरपेच, मालाए[3] मरवारीद, ख़लत मुक़र्रर है। लार्ड हार्डिंग साहब के अहद तक पाया। लार्ड दलहौसी यहाँ नहीं आए। अब ये नवाब[4] मुअल्ला अलक़ाब आते हैं। ज़माने का रंग और, कोई हाकिम, कोई सेक्रेतर मेरा आशना नहीं। बड़े मेरे मुरब्बी क़द्रदान[5] जनाब अडमिन्स्टन साहब वो भी चीफ़ सेक्रेतर नहीं रहे, लेफ़्टेंट गवर्नर हो गए। वो सेक्रेतर रहते तो मुझे कुछ ग़म न था। अब तक मैं अपने को ये भी नहीं समझा के बेगुनाह हूँ या गुनाहगार। मक़बूल हूं या मरदूद। माना के कोई ख़ैरख़ाही नहीं की जो नये इनाम का मुस्तहक़ हूं, लेकिन कोई बेवफ़ाई भी सरज़द[6] नहीं हुई, जो दस्तूरे क़दीम को बरहम मारे, बहरहाल इस तशवीश में हूं। राहे चारा मसदूद, और दुख मौजूद। 'उर्फ़ी' ख़ूब कहता है—

मरा[7] ज़मानए तन्नाज़ दस्तवस्ता व तेग़

---

१. किंचिन। २. सरपेंच। ३. मोतियों का हार। ४. जिनकी उपाधियाँ बड़ी हैं। ५. अभिभावक। ६. प्रकट। ७. आक्षेप करने वाले ज़माने ने मेरे हाथ बाँध दिए हैं, वह तलवार से सिर पर प्रहार कर रहा है और कहता ह सिर खुजाते रहो।

नवाब मुहम्मद यूसुफ़अलीख़ां बहादुर, रामपुर-नरेश के नाम

ज़नद बफ़र्क़मो गोयद के हाँ सरे मी खार

मरक़ूमा सुबह यकशंबा ७ नवंबर १८५९।

१३

(२७ नवंबर १८५९)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद बजा लाने आदाबे नियाज़ के अर्ज़ करता हूँ--मंशूरे अतूफ़त पहुँचा। नवाबे आली जनाब की मलाज़िमत का हाल बसबीले[१] इजमाल मुन्दर्ज था। मैं अज़ रू ए अख़बार ब तफ़सील दरयाफ्त कर चुका हूँ। हिन्दुस्तान में किसी रईस के वास्ते ये बात काहे को हुई है; मसनद तकिया किसी को कब मिला है? ये कमाले इज़्ज़ो शान और इस्तहक़ामे[२] बिना ए रियासत का निशान है। लुत्फ़ ये है के अब साहेबान कोर्ट आफ़ डरैक्तर हायल[३] नहीं रहे; नवाब गवर्नर जनरल बहादुर नायब सल्तनत हैं। इस सूरत में जो कुछ दिया है वो अतिया हज़रते फ़लक[४] रफ़त मलिकए मौज़्ज़िमा का है। ऐसे शाहंशाह की सरकार से विसादा[५] सरवरी का अता होना बहुत बड़ी नवाज़िश और सज़ावारे सदगुना[६] नाज़िश है। ये चार वालिशें[७] इमारत[८] और 'काशीपूर' का ज़मीमए[९] मिल्के मौरूसी[१०] होना पहले आपको और फिर वली अहद बहादुर

---

१. संक्षेप में उल्लिखित। २. राज्य के स्थायी अधिपति की मान्यता। ३. बाधक। ४. आकाश की तरह ऊँचा। ५. सरदारी का तकिया। तकिया लगाकर बैठने का गौरव, गद्दी पर बैठने का गौरव। ६. सौ गुना। ७. चार तकिये। ८. शान शौकत। ९. पैतृक सम्पत्ति का एक अंश। १०. पैतृक सम्पत्ति।

को और फिर आपके औलादो[1] इख़वानो अन्सार को और सब के बाद ग़ालिबे दुआगो ए गोशानशीं को मुबारक हो।

ज़्यादा हद्दे अदब।

मरक़ूमा सुबह यक शंबा २७ नवंबर १८५९ ई०।

१४

(८ दिसम्बर १८५९)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

आदाबे नियाज़ बजा लाकर अर्ज़ करता हूँ के सौ रुपए की हुण्डवी बाबत मसारिफ़े[2] माह नवंबर १८५९ पहुँची और रुपया वसूल में आया और सर्फ़ हो गया; और बदस्तूर भूका और नंगा रहा। तुमसे न कहूँ तो किससे कहूँ? इस मशाहिरए मुक़र्ररी से अलावा दो सौ रुपया अगर मुझको और भेज दीजिएगा तो जिला लीजिएगा, लेकिन इस शर्त से के इस अतिया मुक़र्ररी में महसूब[3] न हो, और बहुत जल्द मरहमत हो।

ज़्यादा हद्दे अदब।

मारूज़ए सुबह पंज शंबा, हश्तुम दिसंबर सन् १८५९ ई०।

बमुजर्रदे वुरूदे इनायतनामा मरक़ूमा माहे हाल।

अर्ज़दाश्त—ग़ालिब

१५

(७ फरवरी १८६०)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

आदाबे नियाज़ बजा लाता हूँ और मिज़ाजे अक़दस की ख़ैर पूछता हूँ और

---

१. सन्तान, बन्धु और साथी। २. नवम्बर का ख़र्च। ३. हिसाब में काटा जाना।

बकमाले नाचारी बसद गुनाह शर्मसारी अर्ज़ करता हूँ के आज सेशंबा ७ फ़रवरी की है। जो लोग के मेरे साथ हैं, गोश बर[1] आवाज़ है और जो वज़ीफ़ाख़ार दिल्ली में हैं वो चश्मे[2] ब राह होंगे।

ज़्यादा हद्दे अदब।

सुबह से शंबा, ७ फरवरी सन् १८७०।

ख़ुशनूदी का तालिब

—ग़ालिब

१६

(२२ अप्रैल १८६०)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

तक़दीमे[3] मरासिमे तसलीम मुक़दमा इस गुज़ारिश का है के आलम दो हैं। एक आलमे शहादत,[4] एक आलमे[5] ग़ैब। जिस तरह आलमे शहादत में आप मेरी दस्तगीरी कर रहे ह, आलमे ग़ैब में आपका इक़बाल मुझको मदद पहुँचा रहा है। तफ़सील इस अिजमाल[6] की ये के वो नक़्शा पिन्सनदारों का जो यहाँ से सदर को गया था वो अब सदर मे बाद सुदूरे[7] हुक्म आ गया। हुक्म बनिस्बत हर वाहद[8] के मुख़्तलिफ़ है। तक़लील बहुत है। सौ रुपए महीने वाले को पछत्तर भी हैं और पच्चीस भी हैं, और दस भी हैं। अब फ़रमाइये मेरे वास्ते क्या अेहतमाल गुज़रता है? यामे[9] कुल्ली है। लेकिन वाक़आ ये हुआ के सब से पहले मेरा नाम और पूरे पिन्सन की

१. उत्सुक हैं। २. प्रतीक्षा में लग हुए। ३. अभिवादन के समस्त शिष्टाचारों को पहले पूर्ण करते हुए। ४. प्रत्यक्ष जगत। ५. परलोक। ६. संक्षेप। ७. आदेश के साथ। ८. व्यक्ति। ९. पूरी परेशानी।

वागुज़ाश्त का हुक्म। तुर्फ़ा[1] ये के मेरे नाम के साथ एक अंगरेज़ी तहरीर है के जिसके देखने से मालूम होता है के गवर्मेन्ट का हुक्मे मंज़ूरी इस तहरीर पर मुतफ़र्रअ है। हुक्काम के अमले में और विकला और अहले शहर में ये मशहूर है के वो तहरीर विलायत से आई है। बहरहाल दो अम्र हनोज़ मुब्हम हैं, एक इस अंगरेज़ी तहरीर का हाल और दूसरे मेरे भाई के पिन्सन की हक़ीक़त। सो ये दोनों अम्र चंद रोज़ में मालूम हो जाएँगे। और जो मालूम होगा वो अर्ज़ किया जाएगा।

—ग़ालिब

१७

(१३ जुलाई १८६०)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

शुक्र बन्दा परवरी बजा लाकर अर्ज़ करता हूँ के कल १२ जुलाई को नवाज़िशनामा मय सौ रुपये की हुण्डवी के पहुँचा और रुपया मारिज़े वसूल में आया। मुतवक़्क़े हूँ के ये अतिया चौथी-पाँचवी अंगरेज़ी को जैसा के हमेशा पहुँचता था, पहुँचा करे। दसवीं-बारहवीं न हुआ करे।

तुम सलामत रहो क़यामत तक।

सुबह जुमा, २३ ज़िलहज्जा सन् १२७६ मुताबिक़ १३ जुलाई सन् १८६०।

खुशनूदी का तालिब
—ग़ालिब

---

१. आश्चय।

१८

(७ अप्रेल १८६१)

वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तसलीम मारूज़ है—इनायतनामे के वुरूद से मैंने इज़्ज़त पाई। सौ रुपए की हुण्डवी बाबत मसारिफ़े मार्च सन् १८६१ के पहुँची; ज़रे मुन्दर्जए मौरिज़े वसूल में आया। ख़ातिरे अक़दस क़रीने जमीयत रहे। कुल्लियाते फ़ारसी के पहुँचने से और इस नज़्र के मक़बूल होने से मुझको बहुत ख़ुशी हासिल हुई।

तुम सलामत रहो क़यामत तक।

सुबह यकशंबा ७ अप्रेल सन् १८६१ ई०।

इनायत का तालिब

—ग़ालिब

१९

वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बादे तस्लीम तोरे[1] और ख़लत के अतिए का आदाब बजा लाता हूँ। ख़ुदा आपको सलामत रखे और अपनी औलाद की शादियां करनी और उन शादियों में तोरा व ख़लत की तक़्सीम नसीब हो।

ये तहरीर नहीं, मकालिमा[2] है। गुस्ताखी माफ़ करवा के और आप से इजाज़त ले के बतरीक़ इन्बेसात[3] अर्ज़ करता हूँ के ये सवा सौ रुपए जो तोरे व ख़लत के नाम से मरहमत हुए हैं, मैं काल का मारा अगर ये सब रुपया

---

१. किश्तियाँ। २. वार्त्तालाप। ३. प्रसन्नता।

खा जाऊँगा, और इसमें लिबास न बनाऊँगा तो मेरा ख़लत हुज़ूर पर बाक़ी रहेगा या नहीं ?

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

दो शंबा, 'बहिसावे' ताज़ियादारान[1] ५वीं और अज़ रूए दूज ६ मुहर्रमुल हराम सन् १२७८।

दाद का तालिब
—**ग़ालिब**

२०

(२२ जुलाई १८६१)

वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बादे तस्लीम मारूज़ है—आठ-सात बरस से मस्दरे[2] ख़िदमत और शरीके दौलत हूँ। लाज़िम कर लिया है के बेहूदा गुज़ारिश न करूँ और कभी किसी की सिफ़ारिश न करूँ। भाई हसनअलीख़ाँ के बेटों के बाब में जो अलीबख़्शख़ाँ साहब को लिखा इसको मैं सिपारिश न समझा था। मुख़बिर बना, और आपके अहलेकारों को उस बात की खबर दी के जिसका तदारुक[3] साहबाने मुल्क व हाकिमाने अहद पर लाज़िम है; सो बमुक़्तज़ा[4] ए निस्फ़त व अदालत वो मुक़दमा फ़ैसल हो गया। मीर सरफ़राज़ हुसेन और मीरन साहब को वल्लाह बिल्लाह अगर मैंने भेजा हो। नौकरी की जुस्तजू को निकले थे। मीर सरफ़राज़ हुसेन नौकरीपेशा और मीरन मर्सिया[5] ख़ाँ और यहाँ के

---

१. शिया। २. सेवा योग्य। ३. दण्ड। ४. आपके न्याय पर निर्भर। ५. मर्सिया कहने वाला।

मर्सियाख़ानों में मुमताज़[1]। ख़ानसामाँ साहब को जो मैंने ये लिखा के ये ऐसे हैं और ऐसे हैं, ग़र्ज़ इससे ये थी के मुहर्रम में जहाँ दस-पाँच मर्सियाख़ाँ मुक़र्रर होते हैं, मीरन भी मुक़र्रर हो जाएँ। आख़िर जाबजा थानेदार, कोतवाल, तहसीलदार नौकर हैं। मीर सरफ़राज़हुसेन होशियार और कार गुज़ार आदमी हैं। किसी इलाक़े पर ये भी मुक़र्रर हो जाएँ ये दोनों अम्र या इन दोनों में से एक हो जाता, बहतर था न हुआ, बहतर। दरहक़ीक़त सिपारिश न थी। सिर्फ़ मौर्रफ़[2] होना था। सिपारिश करता तो क्या मैं आपको न लिख सकता था। मेरी तरफ़ से ख़ातिरे आतिर जमा रहे—

[3]ज़ सीना ताब लबम सालहा नियाबद राह
हर आँ नफ़्स के रज़ा ए तो अन्दर आँ बुवद।

दो शंबा २२ जुलाई सन् १८६१।

दाद का तालिब
—ग़ालिब

२१

(२१ नवंबर १८६१ ई०)

वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम के अर्ज़ करता हूँ और तुलू ए[4] सितारा इक़बाल की मुबारकबाद देता हूँ। यक़ीन है के इस सफ़रे फ़ैज़ असर में रेलगाड़ी की सवारी की भी सैर देख ली होगी। ये उस मैमनत[5] व शिको व शौकत से अलावा एक तमाशा नया देखा। हक़ ताला हज़रत को सलामत बा करामत रखे।

---

१. श्रेष्ठ। २. परिचित। ३. जिस साँस में आपके लिए प्रसन्नता न हो उसे वक्षस्थल से ओठों तक बरसों मार्ग नहीं मिलेगा। ४. सौभाग्य-नक्षत्र के उदय की बधाई। ५. शुभ।

दुआगो एक महीना भर से बीमार है। इब्तदा वही कौलंजे[1] दौरी। बसबबे इस्तमाले[2] अदवियए हार्रा, के इस मर्ज़ में उससे गुरेज़ नहीं। तप ने आ घेरा, कई बारियाँ भुगतीं। अब दो बारियाँ टल गई हैं, लेकिन ताक़त बिल्कुल सल्ब हो गई है और ज़ौफ़े दिमाग़ ने क़रीब ब हलाकत पहुँचा दिया है। बिलफ़ैल आबे सेब[3] का इस्तेमाल है।

तरीक़े दुआगोई व सनाख़ानी की रियायत से नौ बैत बसवीले मसनवी, के जिसमें हुसूले अतियए सुलतानी की हिजरी व ईसवी तारीख़ है, बहरहाल लिख ली हैं। कल वुरूदे इनायतनामा से मौज़िज़ होकर आज वो अशार नज़र करता हूँ।

ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो क़यामत तक

दो शबा ११ नवम्बर सन् १८६१।

शफ़क़्क़त का तालिब

--ग़ालिब

२२

(१५ सितम्बर १८६२)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बादे तस्लीम मारूज़ है--कल एक शेर ज़हूरि ए मग़फ़ूर का और एक शेर ग़ालिबे मरहूम का एक बरक़ पर लिखकर सुबह को डाक में भिजवा दिया।

---

१. पेट का दर्द। २. उष्ण औषधियों के सेवन से। ३. सेव का रस।

शाम को तौक़ीए[1] वक़ीहरकारा डाक ने ला दिया। अगस्त सन् १८६२ की परवरिश की हुण्डवी पहुँची और सौ रुपए वसूल हो गए।

फ़क़ीर का शेवा सिद्क़[2] व सद्दाद का है। चंद रोज़ से तफ़क़्क़ुद[3] व इल्तफ़ाते क़दीम में ख़ुदा न ख़ास्ता बाशद, कुछ कमी चाहता हूँ। अगर ग़लत है मेरा गुमान ब शर्फ़ इत्तला मुशर्रफ़[4] फ़रमाइए। और अगर मेरा दिले दीवाना सच समझा है तो मुतवक़्क़े हूँ के अिताब[5] के सबब से आगही पाऊँ। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

मारूज़ए सुबहे दो शंबा, १५ सितम्बर सन् १८६२ ई०।

: मुहर : —ग़ालिब सन् १२७८ हि०

ये अर्ज़दास्त जुदा है, अलबत्ता इसके जवाब का उम्मीदवार हूँ और रसीदे मामूली जुदा है।

२३

(१५ सितम्बर १८६२)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—नवाज़िशनामा मय सौ रुपयों की हुण्डवी के पहुँचा; अगस्त सन् १८६२ ई० के महीने की परवरिश का रुपया वसूल हुआ।

१, प्रतिष्ठापूर्ण आदेश। २. सत्य भाषिता। ३. पुरानी कृपा। ४. कृतार्थ। ५. रोष।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

दो शंबा, १५ सितम्बर सन् १८६२ ई० ।

:मुहर: —ग़ालिब सन् १२७८ हि०

२४

(१० अक्टूबर १८६२)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बादे तस्लीम मारूज़ है—नवाज़िशनामा मय हुण्डवी सौ रुपए के सर्फ़ वुरूदं लाया; सौ रुपया मसारिफ़ सितम्बर सन् १८६२ का मारिज़े वसूल में आया ।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

मारूज़ए दहुम अक्तूबर सन् १८६२ ।

खुशनूदी ए मिज़ाज का तालिब
—ग़ालिब

२५

(१६ मार्च १८६३)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—नवाज़िशनामा रबूबियत[1] तिराज़; मौरखे ११ मार्च सन् १८६३, १४ माहे मज़कूर को मैंने पाया । दो सौ रुपए की हुण्डवी

१. सन्तुष्ट करने वाला पत्र ।

का शुक्र बजा लाया। कहाँ तक शुक्र बजा लाऊँगा, किस किस इनायत का सिपास[1] अदा करूँगा ?

"शुक्र[2] नेमत हाय तो चंदाँ के नेमत हाय तो"

अब सुनिए अपने दुआगो की दास्तान। मंगल, ३ मार्च को जनाब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर ने ख़लत अता किया और फ़रमाया के हम तुम्हें मुज़्दा[3] देते हैं के नवाब गवर्नर जनरल बहादुर ने अपने दफ़्तर में तुम्हारे दरबार और ख़लत के बदस्तूर बहाल रहने का हुक्म लिखवा दिया। मैंने अर्ज़ किया के मैं अम्बाले जाऊँ ? फ़रमाया अलबत्ता अम्बाले जाना होगा।

बाद जनाब नवाब साहब के जाने के शहर में शोहरत हुई के दिल्ली के लोग अम्बाले जाने से ममनू हैं। घबराया और साहब कमिश्नर के पास गया। आप ख़त अपना दे आया। ज़बानी पुरसिश की, जवाब ज़बानी पाया। फिर ख़त के जवाब में ख़त मुहर्रिरए ७ मार्च आया, चुनाचे लिफ़ाफ़ा बलिहाज़े गिरानि[4]ए वज़न रहने देता हूँ, और ख़त[5] बजिन्सेही हज़रत को भेजता हूँ। कल से एक और ख़बर उड़ी है के नसीबे[6] आदा लार्ड साहब की तबीयत नासाज़ हो गई है, अम्बाले में दरबार न करेंगे और शिमले को चले जाएँगे। अब मैं दो वजह से बैतुल[7] सफ़र व सुकून मुतरद्दुद हूँ। पहली वजह ख़ास, दूसरी वजह आम। दो सौ में से सौ लेकर साज़ो सामान दुरुस्त किया है और सौ महाजन के हाँ डाले और ख़र्चे राह के वास्ते रहने दिए हैं। तार बर्क़ी में जनाब नवाब साहब से हुक्म मँगवाऊँगा। जो हुक्म आएगा आपसे अर्ज़ करके उसकी तामील करूँगा।

---

१. अभिनन्दन। २. आपकी ओर से जितनी कृपाएँ हो रही हैं, मैं भी उन्हीं कृपाओं के अनुसार कृतज्ञ होता जा रहा हूँ। ३. शुभ समाचार। ४. अधिक भार को ध्यान में रखते हुए। ५. ज्यों का त्यों। ६. शत्रुओं के भाग्य। ७. यात्रा या घर में रहना।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के दिन हों पचास हज़ार

मारूज़ए १६ मार्च सन् १८६३ ई० ।

:मुहर: —ग़ालिब सन् १२७८ हि०

२६

(४ अगस्त १८६३)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—जब अंबाले मेरा जाना हुआ, तो मैंने क़सीदए-मदह, जो दरबार की नज़र के वास्ते लिखा था, बतरीक़े डाक जनाब चीफ़ सेक्रेतर बहादुर को इस मुराद से भेजा के आप इसको जनाब नवाब मौल्ला अलक़ाब की नज़र से गुज़रानें और ये दस्तूरे क़दीम था के जब मैं क़सीदए मदहिया[1] भेजता तो साहब सेक्रेतर बहादुर का ख़त बेवासतिये[2] हुक्कामे मातहत मुझको आ जाता। अब जो मैंने मुआफ़िक़े मामूल क़सीदा भेजा, यक़ीन है के मार्च या अप्रेल के महीने में वो लिफ़ाफ़ा यहाँ से लश्कर को गया। सदाए[3] बर न ख़ास्त, ना उम्मीद होकर बैठ रहा, बल्के ये ख़याल गुज़रा के जब रस्मे तहरीरे ख़ुतूत न रही, तो दरबार और ख़लत कहाँ? नागाह, कल शाम को साहब सेक्रेतर बहादुर का ख़त डाक में आया। वही अफ़शानी[4] काग़ज़, वही अलक़ाब, जी चाहता था के असले ख़त मय सरनामा भेज दूँ ताके हुज़ूर मुलाहिज़ा फ़रमाएँ। मगर बरसात का अंदेशा माने[5] आया। नक़ल सरनामे और ख़त की भेजता हूँ।

---

१. प्रशंसात्मक। २. बिना अधिकारियों के माध्यम से। ३. कुछ ज्ञात नहीं हुआ। ४. विवाह आदि अवसरों के लिए तैयार किया गया काग़ज़। ५. बाधक।

नवाब मुहम्मद यूसुफ़अलीखां बहादुर, रामपुर-नरेश के नाम

तुम सलामत रहो क़यामत तक
दौलतो इज़्ज़ो जाह रोज़ अफ़ज़ूँ

सुबह सेशंबा, ४ माहे अगस्त सन् १८६३ ।

हुज़ूर की खुशनूदी का तालिब
—ग़ालिब

२७

(५ जुलाई १८६४ ई०)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम के मारूज़ है—नवाज़िशनामा और उसके साथ दो भँगियाँ[१] दो सौ आमों की पहुँचीं ।

शुक्र नेमत हाय तो चन्दाँ के नेमत हाय तो
ज़्यादा हद्दे अदब ।

तुम सलामत रहो क़यामत तक
दौलतो इज़्ज़ो जाह रोज़ अफ़ज़ूँ

से शंबा पंजुम जुलाई सन् ६४ ।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

२८

(११ अगस्त १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—मंशूरे उतूफ़त मय क़तए हुण्डवी शर्फ़े वुरूद लाया; सौ रुपया बाबत तनख़ाहे जुलाई सन् १८६४ के मारिज़ वसूल में आया—

१. टोकरियाँ ।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

तरह्हुम[1] का तालिब
—ग़ालिब

२९

(९ सितम्बर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—नवाज़िशनामा मय हुण्डवी इज़्ज़े वुरूद लाया। सौ रुपया बाबते तनख़ा माहे अगस्त सन् १८६४ मारिज़ वसूल में आया। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

जुमा, नहुम सितम्बर सन् १८६४।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

३०

(१७ अक्टूबर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—सुदूरेवाला नामा से मैंने इज़्ज़त पाई। बज़रिये

१. कृपाकांक्षी।

हुण्डवी सौ रुपए बाबत तनख़ा सितंबर सन् १८६४ वसूल हुए। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

दहुम अक्तूबर सन् १८६४ ई०।

तरह्हुम का मुस्तहक़ और तफ़क्क़ुद का तालिब
—ग़ालिब

३१

(८ नवम्बर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीमो नयाज़ मारूज़ है—जब से हज़रत की नासाज़िए[१] मिज़ाजे मुबारक का हाल ख़ारिज से मसमू हुआ है, आलमुल ग़ैब गवाह है के मुझ पर और मेरी बीबी और मेरे फ़र्ज़न्द हुसेन अली पर क्या गुज़री है। एक दिन-रात मेरे घर में रोटी नहीं पकी। हम सब ने फ़ाक़ा किया। बारे, वो ख़बर वहशत असर ग़लत निकली। हवास ठिकाने हुए। बिल्कुल इत्मीनान जब होगा के आपके ग़ुस्ले सेहत की नवीद सुनूँगा और क़तए तारीख़े ग़ुस्ले सेहत लिखकर भेजूँगा। फ़िलहाल इतना चाहता हूँ के इस ख़त का जवाब पाऊँ और हक़ीक़ते मर्ज़ से आगही हो। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

तुम्हारी सलामती का तालिब
—ग़ालिब

---

१. अस्वस्थता।

३२

(१३ नवम्बर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—इब्तदा ए यकुम नवंबर से ११ तक अर्ज नहीं कर सकता के लैलो[1] निहार मुझ पर कैसे गुज़रे हैं। राह दूर, मैं रंजूर, माहाज़ा बे मक़दूर। अगर दिल्ली से रामपूर तक शिकरम की[2] डाक जाती होती तो मैं यहाँ एक दम न ठहरता और खिदमत में हाजिर होता। तारे बर्क़ी[3] भी नहीं जो सेहत व आफ़ियत की खबर जल्द हासिल हो। नाचार अज़ राहे इस्तरार ८ माहे हाल याने नवम्बर को अरीज़ा रवाना किया। खुदा की इनायत और मुर्शदे[4] कामिल यानी हज़रत की हिदायत ने उस खत के जवाब आने की मुद्दत से पहले मुझे गर्दाबे[5] इज़्तराब से निकाला। कल १२ नवम्बर को नवाजिशनामा आ गया। गोया मेरी जान बच गई, बल्के एक और नई जान मेरे बदन में आ गई, अब इस्तदुआ ये है के हाले नासाज़ी मिज़ाजे अक़दस मुफ़स्सल मालूम हो। ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार

यक शंबा १३ नवम्बर सन् १८६४।

आफ़ियत का तालिब
—ग़ालिब

---

१. रात दिन। २. एक तरह का टाँगा। ३. टेलिग्राम। ४. पूर्ण गुरु। ५. विपत्तियों का भवँर।

३३

(१३ नवंबर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—इनायतनामा मय हुण्डवी शर्फ़े वुरूद लाया। सौ रुपया बाबत अक्तूबर सन् १८६४ मारिज़ वसूल में आया। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो क़यामत तक
दौलतो इज़्ज़ो जाह रोज़ अफ़ज़ूँ

आफ़ियत का तालिब
—ग़ालिब

३४

(२७ नवंबर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—किस ज़बान से कहूँ और किस क़लम से लिखूँ के ये हफ़्ता[1] अशरा किस तरद्दुद व तशवीश से बसर हुआ है। हर रोज़ शाम तक जानिबे दर[2] निगराँ रहता के डाक का हरकारा आये हज़रत का नवाज़िश-नामा लाए। बारे, ख़ुदा की मेहरबानी हुई। अज़ सरे[3] नौ मेरी ज़िन्दगानी हुई के कल चार घड़ी रात गए डाक के हरकारे ने वो उतूफ़त नाम ए आली दिया जिसको पढ़कर रूह ताज़ा[4] रगो पै में दौड गई। नींद किसकी, सोना किसका? रोशनी के सामन बैठा और अशारे तहनियत लिखने लगा। ७ शेर मय माद्दए

---

१. आठ-दस दिन। २. दरवाजे की ओर देखना। ३. नवीन रूप से। ४. नसों मे नई आत्मा दौड़ गई।

हुसूले[1] सेहत जब लिख लिए तब सोया। अब इस वक़्त वो मसविदा साफ़ करके इरसाल करता हूँ।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के दिन हों पचास हज़ार

ख़ैरो आफ़ियत का तालिब
—ग़ालिब

३५

(१२ दिसंबर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—नवाज़िशनामा इज़्ज़े वुरूद लाया। अज़ रूए हुण्डवी सौ रुपए बाबते तनख़ाह माहे नवंबर सन् १८६४ मारिज़े वसूल में आया। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के दिन हों पचास हज़ार

१३ रज्जब व दिसंबर सन् १८६४।

तुम्हारी सलामती का तालिब
—ग़ालिब

३६

(२६ दिसंबर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बादे तस्लीम मारूज़ है—हज़रत के क़दमों की क़सम, चोब चीनी के इरसाल

---

१. स्वास्थ्य लाभ।

का हुक्म डाक से मैंने नहीं पाया। २२ दिसंबर को हरकारा आया। नवाज़िश-नामए शर्फ़ अफ़ज़ा[1] लाया। दिल्ली अब शहर नहीं; छावनी है, कम्प है। न क़िला है, न शहर के उमरा, न अतराफ़े शहर के रऊसा[2]। बहरहाल तीन-चार दिन में हरेक जगह से मंगवा कर रंगीन व संगीन व बेगिरह[3] या कम गिरह खुद चुनकर पाँच सेर क़त्तात चोब चीनी एक ठिलिया में रखकर आटे से मुँह बन्द किया, फिर कपड़ा लपेटा। डोरे से ख़ूब मज़बूत बाँधकर दो जगह अपनी मुहर की और ठिलिया कहार को सौंपी।

तुम सलामत रहो क़यामत तक
दौलतो इज़्ज़ो जाह रोज़ अफ़ज़ूँ

रोज़े दो शंबा, २६ दिसंबर सन् १८६४, वक़्ते सुबह हवाले कहारे सरकार।

:मुहर: ग़ालिब

३७

(१५ जनवरी १८६५)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—नवाजिशनामे के वुरूद से इज़्ज़त और इदराके[4] सेहत व आफ़ियते मिजाजे अक़दस से मसर्रत हासिल हुई। परचए हुण्डवी उस तौक़ी में मलफ़ूफ़ पाया। सौ रुपया बाबते तनख़ा दिसंबर सन् १८६४ मारिज़े वसूल में आया। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो कयामत तक
दौलतो इज़्ज़ो जाह रोज़ अफ़ज़ूँ

हुज़ूर की सलामती का तालिब
—ग़ालिब

१. स्वास्थ्य की सूचना। २. रईस (व० व०) ३. बिना गाँठ का। ४. स्वास्थ्य लाभ।

अज़दद्दौला हकीम .गुलाम नजफ़ख़ां के नाम

१

(२१ दिसम्बर १८५७)

मियां,

हक़ीक़ते हाल इससे ज़्यादा नहीं है के अब तक जीता हूँ, भाग नहीं गया, निकाला नहीं गया, लुटा नहीं, किसी महकमे में अभी तक बुलाया नहीं गया, मारिज़े बाज़पुर्स में नहीं आया। आइन्दा देखिए क्या होता है। शेर ज़माख़ाँ ने मुझे आगरे से खत लिखा। उसमें एक रुक्क़ा शेख़ नज़्मुद्दीन हैदर साहब की तरफ़ से बनाम ज़हीरुद्दीन के। अब मुझको ज़रूर आ पड़ा के उसको तुम्हारे पास भेजूं। आदमी कोई ऐसा नज़र न चढ़ा, नाचार, बतरीक़े डाक भेजता हूं। अगर पहुँच जाए तो आगरे का जवाब लिखकर मेरे पास भेज देना। मैं यहाँ से आगरे को रवाना कर दूँगा।

मुरस्सिलए दो शंबा, चारुम जमादिल अव्वल सन् १२७४ हि०।

जवाब तलब

—ग़ालिब

२

(२६ दिसम्बर १८५७)[1]

मियाँ,

तुम्हारा ख़त पहुँचा। आज मैंने उसको अपने ख़त में मलफ़ूफ़ करके आगरे को रवाना किया। तुम जो कहते हो के तुमने कभी मुझको ख़त नहीं

लिखा और अगर शेख़ नज्मुद्दीन हैदर का ख़त न आता तो अब भी न लिखते, इन्साफ़ करो। लिखूं तो क्या लिखूँ? कुछ लिख सकता हूँ, कुछ क़ाबिल लिखने के है? तुमने जो मुझको लिखा तो क्या लिखा और अब जो मैं लिखता हूँ तो क्या लिखता हूँ? बस इतना ही है के अब तक हम जीते हैं। ज़्यादा इससे न तुम लिखोगे, न मैं लिखूँगा। ज़हीरुद्दीन को दुआ कहना और मेरी तरफ़ से प्यार करना। तुमको और ज़हीरुद्दीन और उसकी माँ को और बहन को और उसकी लड़की को तुम्हारी माँ दुआ कहती है और दुआएं देती है। ये रुक़्क़ा हैदर हुसेन ख़ाँ के नाम का है। उनको हवाले कर देना।

निगाश्तए शंबा २६ दिसम्बर सन् १८५७ ई०।

—असदुल्लाह

३

(१९ जनवरी १८५८)

सआदतो इक़बाले निशान हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ाँ ताला[1] बक़ाहहू,

तुम्हारा रुक्क़ा पहुँचा। जो दम है, ग़नीमत है। इस वक़्त तक मैं मय अयालो[2] अतफ़ाल जीता हूं; बाद घड़ी भर के क्या हो, कुछ मालूम नहीं। क़लम हात में लिए, पर, जी बहुत लिखने को चाहता है, मगर कुछ नहीं लिख सकता। अगर मिल बैठना क़िस्मत में है तो कह लेंगे वर्ना इन्नाल्लिलाह् व इन्ना-इलहे राजऊन।

नवासी का हाल मालूम हुआ। हक़ ताला उसकी माँ को सब्र दे और जिन्दा रखे। मैं यों समझता हूं के ये छोकरी क़िस्मतवाली और हुरमतवाली थी। तुम्हारी उस्तानी[3] तुमको और ज़हीरुद्दीन को और उसकी माँ को और

---

१. चिरंजीवी हो। २. सपरिवार। ३. गुरुपत्नी।

उसकी बहन को दुआ कहती हैं और मैं ज़हीरुद्दीन को प्यार करता हूँ और दुआ देता हूँ।

से शंबा, १९ जनवरी सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिब

४

(१८५८ ई०)

भाई,

होश में आओ। मैंने तुमको ख़त कब भेजा और रुक्क़े में कब लिखा के शेर ज़माँख़ाँ का ख़त तुम्हारे पास भेजता हूँ। मैंने तो एक लतीफ़ा लिखा था के शेर ज़माँख़ाँ ने मेरे ख़त में तुमको बंदगी लिखी थी और मैं वो बन्दगी इस रुक्क़े में लपेट कर तुमको भेजता हूँ। बस बात इतनी ही थी, वही बन्दगी लिखी हुई, गोया लिपटी हुई थी सो हज़रत को पहुँच गई। ख़ातिरे आतिर जमा रहे।

—ग़ालिब

५

(१ अप्रेल १८५८ ई०)

मियाँ,

तुमको मुबारक हो के हकीम साहब पर से वो सिपाही जो उनके ऊपर मुतइय्यन था उठ गया और उनको हुक्म हो गया के अपनी वज़ा पर रहो मगर शहर में रहो। बाहर जाने का अगर क़स्द करो तो पूछ कर जाओ और हर हफ़्ते में एक बार कचहरी में हाज़िर हुआ करो। चुनाचे वो कच्चे बाग़ के

पिछवाड़े मिर्ज़ा जागन के मकान में आ रहे। सफ़दर मेरे पास आया था, ये उसकी ज़बानी है। जी उनके देखने को चाहता है, मगर अज़राहे अहतियात जा नहीं सकता।

मिर्ज़ा बहादुर बेग ने भी रिहाई पाई। अब इस वक़्त सुना है के वो ख़ाँ साहब के पास आए हैं। यक़ीन है के बाद मुलाक़ात बाहर चले जाएंगे। यहाँ न रहेंगे। क़दम शरीफ़ में वो रहते हैं।

आज पाँचवाँ दिन है के हकीम महमूदख़ाँ मय[1] क़बायल व अशायर पटियाले को गए। मैं बमुक़्तज़ा[2] ए वक़्त अपनी सुकूनत के मकान छोड़कर यहाँ रहा हूँ, इस तरह के महलसरा में ज़नाना और दीवानख़ाने में मर्दाना।

पिन्सन की दरख़ास्त का अभी कुछ हुक्म नहीं मालूम हुआ। कलेक्टर से कैफ़ियत तलब हुई है। देखिये बाद कैफ़ियत के जाने के पिन्सन मिलता है या जवाब।

पंजशंबा १६ शाबान सन् १२७४ हि० मुताबिक़ यकुम अप्रेल सन् १८५८ ई०।

६

(अप्रेल १८५८)

भाई,

मेरा दुख सुनो। हर शख़्स को ग़म माफ़िक़ उसकी तबीयत के होता है। एक तन्हाई से नफ़ूर[3] है, एक को तन्हाई मंज़ूर है। ताहहुल[4] मेरी मौत है। मैं कभी इस गिरफ़्तारी से ख़ुश नहीं रहा। पटियाले जाने में एक सुब[5] की

---

१. परिवार और परिचारकों के साथ। २. समय के अनुसार। ३. घृणा। ४. बाल बच्चों में रहना। ५. अपमान।

ग्रौर जिल्लत थी । ग्रगर चे मुझको दौलते तन्हाई मयस्सर ग्रा जाती, लेकिन इस तन्हाई चन्द रोज़ा ग्रौर तजवीद[1] मुस्तार की क्या ख़ुशी ? ख़ुदा ने लावलद[2] रखा था, शुक्र बजा लाता था । ख़ुदा ने मेरा शुक्र मक़बूल व मंज़ूर न किया । ये बला भी क़बीलेदारी की शक्ल का नतीज़ा है, याने जिस लोहे का तौक़, उसी लोहे की दो हतकड़ियाँ भी पड़ गईं । ख़ैर, इसका क्या रोना है ? ये क़दे[3] जावेदानी[4] है ।

जनाब हकीम साहब एक रोज़ ग्रज़ राहे इनायत यहाँ ग्राए । क्या कहूँ के उनके देखने से दिल क्या ख़ुश हुग्रा है । ख़ुदा उनको ज़िन्दा रखे । मियाँ, मैं कसीरुल[5] ग्रहबाब शख़्स हूँ । सैकड़ों बल्के हज़ारों दोस्त इस बासठ बरस में मर गए । ख़ुसूसन इस फ़ितना व ग्राशोब में तो शायद कोई मेरा जानने वाला न बचेगा । इस राह से मुझको जो दोस्त ग्रब बाक़ी हैं, बहुत ग्रज़ीज़ हैं । वल्लाह् दुग्रा माँगता हूँ के ग्रब इन ग्रहिब्बा[6] में से कोई मेरे सामने न मरे; क्या मानें के जो मैं मरूँ, कोई मेरा याद करने वाला ग्रौर मुझ पर रोने वाला भी तो दुनिया में हो ।

मुस्तफ़ा ख़ां का हाल सुना होगा । ख़ुदा करे मुराफ़े में छूट जाए; वर्ना हब्से[7] हफ़्तसाला की ताब उस नाज़[8] परवर्द में कहां ? ग्रहमद हुसेन 'मयकश' का हाल कुछ तुमको मालूम है या नहीं ? मख़नूक़[9] हुग्रा, गोया इस नाम का ग्रादमी शहर में था ही नहीं ।

पिन्सन की दरख़ास्त दे रखी है । बशर्त्ते इजरा भी मेरा क्या गुज़ारा होगा ? हाँ दो बातें हैं, एक तो ये के मेरी सफ़ाई ग्रौर बे गुनाही की दलील है, दूसरे ये के मुग्राफ़िक क़ौले ग्रवाम—चूल्हे दलद्दर न होगा ।

---

१. पृथक रहना । २. निस्सन्तान । ३. शाश्वत बन्धन । ४. चिरकालीन । ५. बहुमित्र । ६. प्रिय । ७. सात वर्ष की जेल । ८. कोमल । ९. जिसे फाँसी दी गई ।

तुझको मेरी जानकी क़सम। अगर मैं तन्हा होता तो इस वजह क़लील में कैसा फ़ारिग़ुल[1] बाल और ख़ुशहाल रहता? ये भी ख़ब्त है जो मैं कह रहा हूँ, ख़ुदा जाने पिन्सन जारी होगा या न होगा। एहतमाले तैय्युश व तनउम[2] बशर्त्ते तजरीद सूरत इजरा ए पिन्सन मैं सोंचता हूँ, और वो मौहूम[3] है। 'बेदिल' का शेर मुझको मज़ा देता है—

न[4] शामे मा रा सहरे नवीदे, न सुबह मा रा दम सुपैदे
चू हासिले मास्त ना उमीदी, ग़ुबारे दुनिया बफ़र्क़े उक़बा।

इस वक़्त जी तुमसे बातें करने को चाहा। जो कुछ दिल में था वो तुमसे कहा। ज़्यादा क्या लिखूँ?

अज़—ग़ालिब

बनाम—जानो जानाँ। व अज़ जानो जाना अज़ीज़तर हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ाँ सल्लमुहल्लाह् ताला।

७

(१८५८ ई०)

मियाँ,

पहले ज़हीरुद्दीन का हाल लिखो, फिर हकीम साहब की हक़ीक़त लिखो। कहीं और जाएँगे या यहाँ आएँगे? अगर यहाँ आएँगे तो कब तक आएँगे? फिर तुम ख़त लिखो मियाँ निज़ामुद्दीन को, और उसमें लिखो के तुमने ग़ालिब के ख़त का जवाब नहीं लिखा। वो कहता है के मैं हैरान हूँ के मियाँ निज़ा-

---

१. निश्चिन्त, सन्तुष्ट। २. विलास और वरदान। ३. सन्दिग्ध। ४. मेरी सन्ध्या को प्रातःकाल होने की आशा नहीं, यदि प्रातःकाल हो भी जाए तो वह प्रकाशमान न होगी। जब मेरा प्राप्तव्य असफलता है तो जीवन का दुःख प्रलय-दिवस के दुःख से बढ़कर है।

मुद्दीन और मेरे ख़त का जवाब न लिखें ! ख़ुदा जाने मुझसे ऐसी क्या तक़सीर[1] हुई है ।

नजात का ख़ुदा से, और तुमसे इस रुक़्क़े के जवाब का तालिब--

--ग़ालिब

८

(जुलाई १८५८)

भाई,

तुम्हारे रुक़्क़े का जवाब पहले तुमको शेर ज़मांखाँ ने दिया होगा, फिर ज़हीरुद्दीनख़ाँ ने तुमसे कहा होगा । कहो, कोई तरह शहर में तुम्हारे आने की भी ठहरी या नहीं ? बोद[2] तीस कोस और आध कोस का बराबर है । मेरी जान, तुम हनोज़ दोजाने में हो । मुझको भी तुम जानते हो के मेरा शहर में रहना बइजाज़त सरकार के नहीं और बाहर निकलना बे टिकट मुमकिन नहीं । फिर मैं क्या करूँ, क्यों कर वहाँ आऊँ ? शहर में तुम होते तो जुरत करके तुम्हारे पास चला आता । शेरज़माख़ाँ साहब एक बार आए थे । कह गए थे के फिर भी आऊँगा । मगर नहीं आए । ख़ुदा जाने उनके वालिद की रिहाई हुई या नहीं । अगर तुमसे मिलें तो मेरा सलाम कहना और उनको मेरे पास भेज देना और तुम, उनके वालिद का जो हाल उनकी ज़बानी मालूम हुआ हो वो मुझको लिख भेजो । ज़हीरुद्दीन को दुआ । वद्दुआ ।

अज़--ग़ालिब

---

१. अपराध । २. दूरी ।

९

(अगस्त १८५८)

भाई,

हाँ, ग़ुलाम फ़क़रुद्दीनख़ाँ की रिहाई, ज़िन्दगी दुबारा है। ख़ुदा तुमको मुबारक करे, सुना है लुहारू भी उन दोनो साहबों को मिल गया। ये भी एक तहनियत है। ख़ुदा सब का भला करे। मुझको डिप्टी कमिश्नर ने बुला भेजा था। सिर्फ़ इतना ही पूछा के ग़दर में तुम कहाँ थे? जो मुनासिब हुआ वो कहा गया। दो-एक खत आमद विलायत मैंने पढ़ाए। तफ़सील लिख नहीं सकता। अन्दाज़े[1] अदा से पिन्सन का बहाल व बरक़रार रहना मालूम होता है, मगर पन्द्रह महीने पिछले मिलते नज़र नहीं आते।

मियाँ ये अलवर में क्या फ़साद बरपा हुआ है? ख़ुदा ख़ैर करे। वास्ते ख़ुदा के जो तुमको मालूम हुआ हो और जो मालूम हो जाए उससे मुझको भी इत्तिला देना।

—ग़ालिब

१०

(१८५८ ई०)

क़िब्ला,

ये तो मालूम हुआ के बाद क़त्ल होने दस आदमी के, के दो उसमें अज़ीज़ भी थे ये सब वहाँ से निकाले गए। मगर सूरत नहीं मालूम के क्यों कर निकले। प्यादा या सवार? तिहीदस्त या मालदार? मस्तूरात[2] को रथें दे दी थीं। ज़ुकूर का हाल क्या हुआ और फिर वहाँ से निकलने के बाद क्या हुआ?

१. रंग ढंग। २. महिलाएँ।

कहाँ रहे और कहाँ रहेंगे ? सरकार अंगरेज़ी की तरफ़ से मौरिद तफ़क्क़ुद व तरहहुम हैं या नहीं ? रंग क्या नज़र आता है। जब्र[1] कसर की तवक़्क़ो है या नहीं ?

तफ़ज़्ज़ुल हुसेनख़ाँ का हाल ख़ुसूसन और इन सवालात का जवाब उमूमन लिखो। मिर्ज़ा मुग़ल मेरा हक़ीक़ी भानजा, के वो मुंशी ख़लीलुद्दीनख़ाँ मरहूम का ख़ीश है; उसकी बीबी है और शायद एक या दो बच्चे भी हैं। इज़ानी[2] है ये अम्र के वो भी क़ाफ़िले के साथ होगा। अगर आपको मालूम हो तो उसका हाल बइन्फ़राद[3] लिखिए। ख़ाजा जान और ख़ाजा अमान की हक़ीक़त भी बशर्त्ते इत्तिला ज़रूर तहरीर फ़रमाइए। और हाँ साहब, आप जानते होंगे अली मुहम्मदख़ाँ को, वो जो मीर मुंशी अज़ीज़ुल्लाख़ाँ का ख़ीश[4] है। अगर कुछ उसका भी ज़िक्र सुना हो तो मैं उसका ख़ैर[5] तलब हूँ।

जवाब तलब।

—ग़ालिब

११

(२१ जनवरी १८६०)

मियाँ,

मैं तुमसे रुख़सत होकर उस दिन मुरादनगर में रहा। दूसरे दिन याने जुमे को मेरठ पहुंचा। नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ ने एक दिन रख लिया। आज शंबा २१ जनवरी यहाँ मुक़ाम है। ९ बज गए हैं। बैठा हुआ ये ख़त लिख रहा हूँ। मुफ़्त का खाना है। ख़ूब पेट भर कर खाऊँगा। कल शाहजहाँपुर, परसों गढ़-

---

१. अत्याचार में कमी। २. विश्वास है। ३. व्यक्तिशः। ४. आत्मीय। ५. शुभेच्छक।

मुकतेसर रहूँगा। मुरादाबाद से फिर तुमको ख़त लिखूँगा। लड़कों के हात के दो ख़त लिखे हुए उनकी दादी को भिजवा दिए हैं। तुम इस अपने नाम के ख़त को लेकर डेवढ़ी पर जाना और अपनी उस्तानी जी को पढ़कर सुना देना। और ख़ैरो आफ़ियत कह देना। जनाब ख़ाँ साहब को मेरा सलामे नियाज़ और ज़हीरुद्दीन अहमद को दुआ कह देना।

हाँ भाई, में अज़ रू ए मसलिहत अपने को मुक़ामाते मुख़्तलिफ़[1] का आज़िम[2] कह आया हूँ। अब जो शख़्स तुमसे पूछा करे उससे पर्दा न करना और साफ़ कह देना के रामपूर को गया है। याने सब को मालूम हो जाए और कोई तअ़ज्जुब में न रहे।

मरक़ूमए चाश्तगाहे शंबा, २१ जनवरी।

१२

(३ फरवरी १८६०)

बरख़ुरदार सआदतो इक़बाले निशान हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ाँ को मेरी दुआ पहुँचे।

तुम्हारी तहरीर पहुँची। तुम जुदागाना ख़त क्यों न लिखा करो ? ख़त लिखा और बैरंग या पोस्ट-पेड जिस तरह चाहा अपने आदमी के हात डाकघर भेज दिया। मकान का पता ज़रूर नहीं। डाकघर मेरे घर के पास, डाक-मुंशी मेरा आशना। अब तुम एक काम करो, आज या कल डेवढ़ी पर जाओ और जितने ख़त जमा हैं, वो लो, भानसिगो मज़बूत काग़ज़ का लिफ़ाफ़ा करो और 'बैरंग' लिख कर कल्याण के हात डाकघर में भिजवा दो। और अपने ख़त में जो हाल शहर में नया हो वो मुफ़स्सिल लिखो। जनाब हकीम साहब को सलामे नियाज़ और ज़हीरुद्दीन अहमदख़ां को दुआ कहना।

---

१. विविध। २. इच्छुक।

अब मेरा हाल सुनो। ताज़ीम[1] व तौक़ीर बहुत, मुलाक़ातें तीन हुई हैं; एक मकान, के, वो तीन चार मकानों पर मुश्तमिल है, रहने को मिला है। यहाँ पत्थर तो दवा को भी मयस्सर नहीं। ख़िश्ती[2] मकान गिनती के हैं; कच्ची दीवारें और खपरैल। सारे शहर की आबादी इसी तरह पर है। मुझको जो मकान मिले हैं, वो भी ऐसे हैं। हनोज़ कुछ गुफ़्तगू दर्मियान नहीं आई। मैं ख़ुद उनसे इब्तदा[3] न करूँगा। वो भी मुझसे बिलमुशाफ़ा[4] न कहेंगे, मगर ब वास्तए कार परदाज़ान सरकार[5]। देखूँ क्या कहते हैं और क्या मुक़र्रर करते हैं, मैं समझा था के मेरे पहुँचने के बाद जल्द कोई सूरत क़रार पाएगी; लेकिन आज तक, के, जुमा आठवाँ दिन मेरे पहुँचे को है, कुछ कलाम नहीं हुआ। खाना दोनों वक़्त सरकार से आता है और वो सब को काफ़ी होता है। ग़िज़ा मेरे भी ख़िलाफ़े[6] तबा नहीं। पानी का शुक्र किस मुँह से अदा करूँ! एक दरिया है 'कोसी'। सुभान अल्लाह्! इतना मीठा पानी के पीने वाला गुमान करे के ये फीका शरबत है; साफ़, सुबुक,[7] गवारा, हाज़िम, सरीउल[8] नफ़ूज़। इस आठ दिन में क़ब्ज़ व इन्क़बाज़ के सदमे से महफ़ूज़ हूँ। सुबह को भूक ख़ूब लगती है; लड़के भी तन्दुरुस्त, आदमी भी तवाना[9] मगर हाँ एक इनायतुल्ला दो दिन से कुछ बीमार है। ख़ैर अच्छा हो जाएगा। वद्दुआ।

जुमा ३ फ़रवरी सन् १८६० ई०।

१३

(१४ फरवरी १८६०)

मियाँ,

तुमने बुरा किया के लिफ़ाफ़ा खोलकर न पढ़ लिया। बारे, आज

---

१. आदर सत्कार। २. ईंट। ३. प्रारम्भ। ४. प्रत्यक्ष। ५. सरकारी कर्मचारियों के द्वारा। ६. स्वभाव के विरुद्ध। ७. हलका। ८. शरीर को तुरन्त प्रफुल्ल करता है। ९. हृष्ट पुष्ट।

अज़दद्दौला हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ां के नाम

सेशंबा १४ फ़रवरी, सुबह के वक़्त ये लिफ़ाफ़ा पहुँचा और उसी वक़्त पढ़वाया गया। ख़त लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर का नहीं। ये ख़त नवाब गवर्नर जनरल बहादुर के चीफ़ सेक्रेतर का है। तर्जुमा उसका ये है—

"अज़ दफ़्तरख़ाना सेक्रेतर आज़म। हुक्म दिया जाता है अर्ज़ी देने वाले को के जवाब इस अर्ज़ी का नवाब गवर्नर जनरल बहादुर बाद दरियाफ़्त के इर्शाद फ़रमाएँगे। अज़ केम्प लूधियाना, २८ जनवरी सन् १८६० ई०।"

यहाँ का ये हाल है के नवाब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर आगरा, मुरादाबाद आया चाहते हैं। मुरादाबाद यहाँ से बारह कोस है। नवाब साहब दौरे को, अपने मुल्क के, गए हैं। दो-चार दिन में फिर आएँगे। अगर उनकी मुलाक़ात को मुरादाबाद जाएँगे, मैं भी साथ जाऊँगा। अगर चे गवर्नर ग़र्बो शुमाल को दिल्ली से कुछ इलाक़ा नहीं, मगर देखूँ क्या गुफ़्तगू दरमियान आती है, जो वाक़े होगा तुम्हें लिखूँगा।

ये तुम क्या लिखते हो के घर में ख़त जल्द जल्द लिखा करो। तुमको जो ख़त लिखता हूँ, गोया तुम्हारी उस्तानीजी को लिखता हूँ। क्या तुमसे इतना नहीं हो सकता के जाओ और पढ़ कर सुना आओ? अब उनको ख़याल होगा के इस अंगरेज़ी ख़त में क्या लिखा है। तुम ये ख़त मेरा हात में लिए जाओ और हर्फ़ ब हर्फ़ पढ़ सुनाओ।

लड़के दोनों अच्छी तरह हैं, कभी मेरा दिल बहलाते हैं, कभी मुझको सताते हैं। बकरियाँ, कबूतर, बटेरें, तुक्कल, कनकौआ सब सामान दुरुस्त है। फ़रवरी महीने के दो-दो रुपए लेकर दस दिन में उठा डाले। फिर परसों छोटे साहब आए के दादाजान कुछ हमको क़र्ज़े हसना[1] दो। एक रुपया दोनों को क़र्ज़े हसना दिया गया। आज १४ है। महीना दूर है।

---

१. बिना ब्याज का ऋण।

देखिए कै बार क़र्ज़ लेंगे। यहां का रंग नवाब साहब के आने पर जो होगा और जो क़रार पाएगा वो मुफ़स्सिल तुमको लिखूँगा। और तुम अपनी वालिदा को सुना देना। और हां भाई ये भी घर में पूछ लेना के केदार-नाथ ने अन्दर-बाहर की तनखा बांट दी? मैंने तो वफ़ादार[1] और हलाल[2]-ख़ोरी तककी भी तनखा भेज दी है।

से शंबा, १४ फ़रवरी सन् १८६० ई०।

—ग़ालिब

१४

(११ जनवरी १८६३)

साहब,

कल आखिरी रोज तुम्हारा ख़त आया। मैंने पढ़ा। आंखों से लगाया फिर भाई ज़ियाउद्दीन ख़ाँ साहब के पास भिजवाया। यक़ीन है के उन्होंने पढ़ लिया होगा। मा कुतुबे फ़ी[3] मालूम किया होगा। तुम्हारे यहाँ न होने से हमारा जी घबराता है। कभी कभी नागाह ज़हीरुद्दीन का आना याद आता है। कहो, अब ख़ैर से कब आओगे? कै बरस, कै महीने, कै दिन राह दिखाओगे? यहाँ का हाल, जैसा के देख गए हो, बदस्तूर है।

ज़मी सख़्त है आसमाँ दूर है

जाड़ा ख़ूब पड़ रहा है। तवाँगर[4] ग़ुरूर से, मुफ़लिस[5] सर्दी से अकड़ रहा है। आबकारी के वन्दोबस्ते जदीद[6] ने मारा; अर्क़ के न खींचने की क़ैदे शदीद[7] ने मारा। इधर इन्सदादे[8] दरवाज़ए आबकारी है, उधर विलायती अर्क़ की क़ीमत भारी। इन्नालिल्लाहे व इन्नाइलहे राजऊन।

---

१. नौकर-चाकर। २. भंगी से संबन्धित। ३. जो कुछ भी उसमें लिखा गया। ४. धनी लोग। ५. दरिद्र। ६. नवीन। ७. कड़ा बन्धन। ८. रोक।

अजदद्दौला हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ां के नाम

मौलवी फ़ज़्ले रसूल साहब हैदराबाद गए हैं। मौलवी ग़ुलाम इमाम 'शहीद' आगे से वहाँ हैं। मुहिउद्दौला, मुहम्मदयारख़ाँ सूरती ने इन सूरतों को बुलाया है, पर यह नहीं मालूम के वहाँ इनको क्या पेश आया है। अगर तुम मालूम कर सको या कुछ तुमको मालूम हो गया है, तो मुझको ज़रूर लिखो। ज़्यादा क्या लिखूं ?

क्यों ज़हीरुद्दीन, क्या मैं इस लायक़ न था के तू एक ख़त मुझको अलग लिखता या अपने बाप के ख़त में अपने हात से अपनी बन्दगी लिखता ! हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ाँ ख़त लिखने बैठे, तेरी बन्दगी लिख दी। तेरे फ़रिश्तों को भी ख़बर नहीं। इस बन्दगी के आने की मुझे क्या ख़ुशी ?

सुबह यक शंबा, ११ जनवरी सन् १८६३ ई०।

—ग़ालिब

१५

(१८६४ ई०)

भाई,

मैं तुमको क्या बताऊँ के मैं कैसा हूँ ? ताक़त यक क़लम जाती रही है। फोड़ा बदस्तूर है; रिसता है। ख़ैर, महले अँदेशा नहीं है; रिस रिस कर माद्दा निकल जाएगा। इससे और ज़्यादा ख़स्ता व अफ़सुर्दा हूँ—क़ब्ज़ के वो दुश्मने[१] जानी है, इन दिनों में हद को पहुँच गया है। बहरहाल—

मर्गऽस्त[२] बनामे ज़िन्दगानी

हज़रत, ग़ौर की जगह है। एक मकान दिलकुशा, कूचे की सैर, बाज़ार का तमाशा, दो कमरे, दो कोठरियाँ, आतिशदान, सहन वसी। इसको छोड़

---

१. प्राण लेवा। १. मेरा जीवन क्या है ? मृत्यु।

कर वो मकान लूँ जो एक तंग गली के अन्दर है। दरवाज़ा वो तारीक[1] के दिन को बग़ैर चिराग़ के राह न मिले। और डेवढ़ी पर हलालख़ोरों का मजमा, गोह के ढेर, कहीं हलालख़ोरों[2] का बच्चा हग रहा है, कहीं बैल बँधा हुआ है; कहीं कूड़ा पड़ा हुआ है। अयाज़न बिल्लाह। ख़ुदा न ले जाए ऐसे मकान में।

तुमने वो मसविदा क्यों नहीं भेजा? मैं ख़िदमत गुज़ारी को आमादा हूँ।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

१६

शंबा, ४ ज़ीक़ादा (१२८१ हि०) यकुम अप्रेल (१८६५ ई०)

मियाँ, तुम्हारा गिला मेरे सरो चश्म पर लेकिन मेरा हाल सुन लो और अपने वहम[3] व क़यास पर अमल न करो। पहले ज़हीर दिल पज़ीर का ख़त आया। पढ़ते ही उसका जवाब लिख रखा। दूसरे दिन डाक में भिजवाया। मज़मून[4] बतग़य्युरे अल्फ़ाज ये—तुम जो फोडे फुन्सी में मुब्तिला रहते हो इसका सबब ये के मुझमें तुम्हारा लहू मिलता है और मैं अहतराक़े[5] ख़ून का पुतला हूँ। फिर तुम्हारा ख़त आया। तीसरे दिन उसका जवाब भिजवा दिया। मज़मून ये के तुमसे तो मेरा प्यारा पोता ज़हीरुद्दीन अच्छा के जाते वक़्त मुझसे मिल गया और वहाँ पहुँचते ही मुझको ख़त लिखा। रसीद डाक-घर से मिलती नहीं। ख़त दोनों पेड़ थे। यहाँ के डाक घर में मुमकिन नहीं के मेरे वे दोनों ख़त रह गए हों, शेख़ूपुर की डाक के हरकारों ने न पहुँचाया, मेरा क्या क़ुसूर? अलबत्ता सरनामे पर सिर्फ़ बस्ती का नाम और तुम्हारा

---

१. अन्धकार पूर्ण। २. गू। ३. भंगी। ४. बदले हुए शब्दों में उसका आशय। ५. उष्ण रक्त।

नाम था। महल्ले का नाम न था। शायद इस सबब से ख़त न पहुँचा हो। इसी वक़्त तुम्हारा ख़त आया। मैंने लेटे लेटे ये सतरें लिखीं। अब इनायतुल्ला को तुम्हारे घर भेजता हूँ और पुछवा मँगवाता हूँ के पता वहाँ से क्या लिखा जाता है। लो साहब, इनायतुल्ला आया और पुर्ज़ा लाया है। पता सरनामे पर लिखता हूँ, मगर डाक का वक़्त नही रहा, कल भेज दूँगा।

हकीम ज़हीरुद्दीन खाँ को दुआ। बेटा अब इस वक़्त मुझमे दम नही, दुआ पर क़िनाअत कर। तेरे ख़त का जवाब जैसा के ऊपर लिख आया हूँ, भेज चुका हूँ। झूटे पर लानत। तू भी कह 'बेशबाद[1]'।

नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ कल शहर में आ गए। मअ क़बायल[2] आए हैं। ज़ीक़ादा में छोटे लड़कों की ख़तना, और ज़िलहज्जा[3] में मुहम्मद अली ख़ाँ की शादी करेंगे।

आज पाँचवाँ दिन है। शहर में मुर्ग़ के अंडे के बराबर ओले पड़े; कहीं-कहीं इससे बड़े भी। नवाब लेफ्टेंट गवर्नर बहादुर जदीद[4] आए। दरबार किया, मेरी ताज़ीम और मुझ पर इनायत, मेरी तमन्ना से ज़्यादा की। आओगे तो मुफ़स्सिल सुन लोगे।

नजात का तालिब
—**ग़ालिब**

१७

मियाँ,

चाँवल बुरे-बढ़ते नहीं, लंबे नहीं, पतले नहीं। अब ज़्यादा क़िस्सा न करो। पुराने और पतले चाँवल आयें, एक रुपए के ख़रीद करके भेज दो। याद रहे,

---

१. अधिक हो। २. सपरिवार। ३. एक महीने का नाम। ४. नये।

नये चाँवल क़ाबिज़ होते हैं और पुराने चाँवल क़ाबिज़ नहीं होते। ये मेरा तजर्बा है।

शाम को मीर मजदुद्दीन साहब कहते थे के हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ाँ के पास एक कातिब है। भाई, दस बारह जुज़्व की एक किताब नस्र की मुझको लिखवानी है। ये मालूम करलो के वो साहब रुपये के कै जुज़्व लिखेंगे और रोज़ किस क़दर लिख सकते हैं। ये तो अब लिखो और फिर दोपहर बाद उनको पास भेज दो ताके मैं उनको काग़ज़ और मनक़ूल[1] अना हवाले करूँ।

ज़हीरुद्दीन को दुआ कहो और उसका हाल लिखो।

—ग़ालिब

१८

(११ अक्टूबर १८६५)

बरख़ुरदार हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ाँ को फ़क़ीर ग़ालिब अली शाह की दुआ पहुँचे।

बुध का दिन, पहर भर दिन चढ़ा होगा के मैं फ़क़्त पालकी पर मुरादाबाद पहुँचा। २० जमादिल अव्वल की, ११ अक्तूबर की है। दोनों लड़के, दोनों गाड़ियाँ और रथ और आदमी सब पीछे हैं। अब आए जाते हैं। रात बख़ैर गुज़रे, बशर्त्ते हयात कल रामपूर पहुँच जाएँगे। घबराया हुआ हूँ। तीसरा दिन है, पायख़ाना फिरे को। लड़के बख़ैरो आफ़ियत हैं। अपनी उस्तानी से कह देना। मिर्ज़ा शहाबुद्दीनख़ाँ को दुआ। नवाब ज़ियाउद्दीन को सलाम। मेरा रुक़्क़ा इन दोनों साहबों को पढ़ा देना, ज़रूर ज़रूर। ज़हीरुद्दीन 'दुआ' से ख़फ़ा होगा। उसको मेरी बन्दगी कहना।

—ग़ालिब

---

१. जो लेख्य है।

१९

(२१ अक्टूबर १८६५)

सुबह शंबा, २१ माहे अक्तूबर सन् १८६५ ई०।

इक़बाले निशान अजदद्दौला हकीम गुलाम नजफ़ख़ाँ को ग़ालिब अली शाह की दुआ पहुँचे।

तुम्हारे ख़त से मालूम हुआ के तुमको मेरे खाने-पीने की तरफ़ से तशवीश है। ख़ुदा की क़सम मैं यहाँ ख़ुश और तन्दुरुस्त हूँ। दिन का खाना ऐसे वक़्त आता है के पहर दिन चढ़े तक मेरे आदमी भी रोटी खा चुकते हैं। शाम का खाना भी सवेरे आता है। कई तरह के सालन, पुलाव, मुतंजन,[1] पसिंदे[2]; दोनों वक़्त रोटियाँ ख़मीरी, चपातियाँ, मुरब्बे, आचार, मैं भी ख़ुश—लड़के भी ख़ुश। कल्लू अच्छा हो गया है। सक़्क़ा, मशलची, खाकरोब[3], सरकार से मुतय्यन हैं। हज्जाम और धोबी नौकर रख लिया है। आज तक दो मुलाक़ातें हुई हैं। ताज़ीम, तवाज़े, अख़लाक़ किसी बात में कमी नहीं।

ज़हीरुद्दीन ख़ाँ बहादुर को दुआ पहुँचे। ये ख़त लेकर तुम अपनी दादी साहब के पास जाओ और ये ख़त पढ़कर सुनाओ। और उनसे ये कह दो के वो बात, जो मैंने तुमसे कही था, वो ग़लत है; उसकी कुछ अस्ल नहीं है। बाक़ी ख़ैरो आफ़ियत।

२०

(२४ अक्तूबर १८६५)

साहब,

तुम सच कहते हो। भाई फ़ज़लुल्लाह ख़ाँ की गमख़ारी और मददगारी का क्या कहना है! मगर अलवर से मुझको लहना नहीं। याद रखना के वहाँ

---

१. एक प्रकार का पुलाव। २. एक प्रकार का मांसीय शाक। ३. मेहतर।

से मुझे कुछ न आएगा। बफ़र्ज़े महाल अगर मिला तो ढाई सौ रुपया, सो वो भी मुझे भाई फ़ज़लुल्लाख़ाँ का देना है। उनका क़र्ज़ अदा हो जाएगा। अहयानन अगर, खिलाफ़ मेरे अक़ीदे के, पान सौ रुपए का हुक्म हुआ और वो आ जाएँ, तो तुम बाद इत्तला ढ़ाई सौ मियाँ फ़ज़ल को देकर मुझको लिखना। बाक़ी के वास्ते मैं जिस तरह लिखूँ उस तरह करना। लो साहब, शेख़चिल्ली बना। ख़याली पुलाव पका लिया।

अब रूदाद सुनो। नवाब साहब का इख़्लास[1] व इल्तफ़ात अफ़ज़ूँ है। आज मंगल का दिन चार जमादिस्सानी की और २४ अक्तूबर की है। खाने की और घोड़ों और बैलों के घास-दाने की नक़दी हो गई। लेकिन इसमें फ़ायदा है। नुक़्सान नहीं। दिसम्बर की पहली से जश्न शुरू होगा। हफ़्ते दो हफ़्ते की मुद्दत उसकी है। बाद जश्न के रुख़्सत होंगे। ख़ुदा चाहे तो आख़िर दिसम्बर तक तुमको आ देखता हूँ। ज़हीरुद्दीन खाँ को दुआ।

२१

(२२ नवम्बर १८६५)

साहब,

तुम्हारे दो ख़त मुतवातिर आये। ज़हीरुद्दीन का आगरे जाना, मेरा ख़त उसका मौसूमा तुम्हारे पास पहुँचना और उसका आगरे को रवाना होना। ज़हीरुद्दीन की दादी का ये आरिज़ए सुरफ़ा[2] व सुवाल[3] रंजूर होना, किदारनाथ का मुझसे ख़फ़ा होना, मकान के रोकने की इजाज़त का मांगना, फ़ज़ले हसन से मेरे वास्ते दरयूज़ा[4] तफ़क्क़ुद करना, ये मदा-रिज व मतालिब मालूम हुए। ज़हीरुद्दीन का ख़त तुमने क्यों खोला ? वो मग़लूबुल[5] ग़ज़ब है। तुम पर ख़फ़ा होगा। उसकी दादी इस

---

१. शिष्टाचार। २, ३. खाँसी। ४. भीख माँगना। ५. बात बात पर क्रोध करने वाला।

मौसम में हमेशा इन अमराज़ में मुब्तिला हो जाती है। एक नुस्ख़ा उसके पास माउल्लहम[1] का है, वो खिंचवा दो और जरा ख़बर लेते रहो, किदारदनाथ लड़का है। वो मुझसे क्या ख़फ़ा होगा? रुपया जो ख़ज़ाने में जमा होगा आख़िर वही लाएगा। ख़फ़ा मैं हूँ के रुपया दाम दाम पाया और मेरा तमस्सुक न दिया और चिट्ठा '२३' रुपए ८ आने का न बाँटा। मकान के रोकने को और किस तरह लिखूँ? शहाबुद्दीनख़ां को लिखा। शमशादअली बेग को लिखा, अब तुमको लिखता हूँ।

सितम्बर को '५ रुपए ८ आने' दे आया हूँ। अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर ये '१६ रुपए ८ आने' आकर दूँगा? बल्के अगर मौक़ा बनेगा तो ये सेमाहा यहाँ से बतरीक़े हुण्डवी भेज दूँगा।

इस्माइल ख़ां साहब को मेरी दुआ कहो और कहो के डेवढ़ी की सीढ़ी बनवा दें और हवेली के पायख़ाने की सूरत दुरुस्त करवा दें। हाय क़िस्मत: इस क़िस्मत पर लानत के मियाँ फ़ज़ले हसन मेरे मुरव्बी व मुहसिन बनें और फिर वाये[2] महरूमी के मतलब बर आरी न हो! ख़ुदा करे न हो। लौंडों का अहसान ज़हरे क़ातिल है। फ़ज़लुल्लाख़ाँ मेरा भाई है। उसका अहसान मुझको गवारा। सौ बार उससे कहा और हज़ार बार कहूँगा। ख़ैर जो हुआ सो हुआ। अब आप उससे ज़िन्हार न कहिएगा, न लिखिएगा। अगर कुछ कहो तो फ़ज़ल से कहो, तफ़ज़्ज़ुल से कहो, व इल्लाला[3], नवाब साहब दौरे से, या आज शाम को या कल, आ जाएँगे। जश्ने जमशीदी की तैयरियाँ हो रही हैं।

यकशंबा १२ नवम्बर सन् १८६५ ई० सुबह का वक़्त।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

---

१. एक प्रकार की औषधि, विविध पक्षियों के मांस से निकाला गया अर्क़।

२. सफलता प्राप्त नहीं हुई, दुःख है। ३. इनके अतिरिक्त अन्य किसी से नहीं।

२२

(१८६६ ई०)

मियाँ,

आज सुबह को तुम आए थे। मैं उस टिकट के क़िस्से में ऐसा उलझा के तुमसे कहना भूल गया। अब मीर इनायत हुसेन साहब तुम्हारे पास पहुँचते हैं। जिस अम्र में ये तुमसे कोशिश चाहें, तुमको मेरी जान की क़सम बदिल मुतवज्जह् होकर उस काम को अंजाम दो। अम्र सहल है। कुछ बात नहीं है, मगर दर सूरत सई ख़ुदा के हाँ से तुमको बड़ा अजर मिलेगा और मैं तुम्हारा ममनून हूँगा।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

२३

(१८६६ ई०)

हक़ीम ग़ुलाम नज़फ़ख़ाँ,

सुनो—अगर तुमने मुझे बनाया है, याने उस्ताद और बाप कहते हो, ये अम्र अज़ रूए तमस्ख़ुर है, तो ख़ैर, और अगर अज़ रूए ऐतक़ाद है, तो मेरी अर्ज मानो और हीरासिंघ की तक़सीर माफ़ करो। भाई, इन्साफ़ करो, उसने अगर हकीम अहसनुल्लाख़ाँ से रुजू की, वो तुम्हारे भाई भी हैं और तुमको उनसे इस्तफ़ादा भी है। अगर घबरा कर हकीम महमूदख़ाँ के पास गया तो उनके बाप से तुमको निस्बत तलम्मुज़[1] की है। इब्तदा में उनसे पढ़े

---

1. शिष्य।

हो। पस, ये ग़रीब सिवाय तुम्हारे अगर गया तो तुम्हारे ही इलाक़े में गया वो भी घबरा कर और खफ़क़ान से तंग आकर। अब जो हाज़िर होता है तो लाज़िम है के इस पर बनिस्बत साबिक़ के तवज्जो ज़्यादा फ़रमाओ और बदिल उसका मालिजा[1] करो।

इल्तफ़ात का तालिब
-ग़ालिब

---

१. चिकित्सा।

मीर मेहदी हुसेन 'मजरूह' के नाम

१

(७ फरवरी १८५८)

मियाँ,

आज यक शम्बे का दिन, ७वीं फ़रवरी की और शायद २२वीं जमादि-उस्सानी की है। दोपहर के वक़्त शेख़ मुशरफ़ अली, रहने वाले 'उस्ताद-हामिद के कूचे' के, मेरे पास आए और उन्होंने तुम्हारा ख़त, लिखा हुआ १५ जमादिउस्सानी का, दिया। डाक का ख़त हर्गिज़ मुझ तक नहीं पहुँचा, और न मैं शहर से कहीं गया। जहाँ रहता था वहीं हूँ। ख़ुदा जाने वो ख़त मुस्तरद क्यों हुआ। भला ये हो सकता है के तुम्हारा ख़त आवे और मैं फेर दूँ। तुम ख़ुद कहते हो के उस पर ये लिखा हुआ आया के मकतूब[1] अलै यहाँ नहीं है। मैं होता और ये लिखता के मैं नहीं हूँ। आगरे और अलवर और कोल से बराबर ख़त चले आते है।

तुम्हारी वालिदा का मरना सुनकर मुझको बड़ा ग़म हुआ। ख़ुदा तुमको सब्र दे और उस अफ़ीफ़ा[2] को बख़्शे। मरा हक़ीक़ी भाई मिर्ज़ा यूसुफ़ ख़ाँ दीवाना भी मर गया।

कैसा पिन्सन और कहां उसका मिलना! यहाँ जान के लाले पड़े हैं—

> है मौजेज़न[3] इक क़ुल्ज़ुमे[4] ख़ूँ काश यही हो
> आता है अभी देखिए, क्या क्या मेरे आगे ?

---

१. पत्र प्राप्त करने वाला। २. पवित्र। ३. उत्ताल लहरें। ४. रक्त का समुद्र।

मीर मेहदी हुसेन 'मजरूह' के नाम

अगर ज़िन्दगी है और फिर मिल बैठेंगे तो कहानी कही जाएगी। तुम कहते हो के आया चाहता हूँ। अगर आओ तो बेटिकट के न आना। मीर अहमद अली साहब को लिखते हो के यहाँ हैं। मुझको नहीं मालूम के कहाँ हैं। मुझसे मिलते तो अच्छा करते। मैं मख़फ़ी[1] नहीं हूँ, रू पोश नहीं हूँ। हुक्काम जानते हैं के ये यहाँ है, मगर न बाज़पुर्सों[2] गीरोदार में आया हूँ न खुद अपनी तरफ़ से क़स्द मुलाक़ात का किया है। बाईहमा, ऐमन भी नहीं। देखिए, अन्जामेकार क्या है ?

नस्र क्या लिखूँगा और नज़्म क्या कहूँगा। वो नस्र जो तुम देख गए हो, वही दो चार वरक़ और भी सियाह किए गए हैं। भेजना मुमकिन नहीं। जब आओगे और मुझको जीता पाओगे तो देख लोगे।

'मयकश' चैन में है; बातें बनाता फिरता है। 'सुलतानजी' मे था। अब शहर में आ गया है। दो-तीन बार मेरे पास भी आया। पाँच-सात दिन से नहीं आया। कहता था के बीबी को और लड़के को बहरामपूर मीर वज़ीर-अली के पास भेज दिया है। खुद यहां लूट की किताबें ख़रीदता फिरता है। मीरन साहब की ख़ैरो आफ़ियत मालूम हुई। मगर न मालूम हुआ के वो वहाँ मय क़बायल हैं या तन्हा हैं। अगर तन्हा हैं तो क़बायल कहाँ हैं ?

तुम्हारे छोटे भाई को तो मैं जानता हूँ के वो यहाँ हैं और अच्छी तरह हैं। बड़े भाई का हाल क्यों न लिखा। यक़ीन है के वो और तुम यकजा हो। गो उनको रब्त मुझसे ज़्यादा नहीं, लेकिन फ़र्ज़न्द होने में तुम और वो बराबर हो।

खत भेजने में तरद्दुद न करो, ओर डाक में बेताम्मुल भेजा करो, ज़्यादा-ज़्यादा।

यकशंबा ७ फ़रवरी सन् १८५८ ई० । वक़्ते रसीदन नामा।

—ग़ालिब

---

१. गुप्त। २. पूछताछ।

२

(८ मार्च १९५८)

साहब,

दो ख़त तुम्हारे बसबीले डाक आए। कल दोपहर ढले एक साहब अजनबी, साँवले सलौने, डाढ़ी मुँड़े, बड़ी बड़ी आँखों वाले तशरीफ़ लाए। तुम्हारा ख़त दिया। सिर्फ़ उनकी मुलाक़ात की तक़रीब मे था। बारे, उनसे इस्मे[1] शरीफ़ पूछा गया। फ़रमाया—अशरफ़ अली। क़ौमियत का इस्तफ़सार[2] हुआ। मालूम हुआ सैयद हैं। पेशा पूछा—हकीम निकले। याने हकीम मीर अशरफ़ अली। मैं उनसे मिलकर ख़ुश हुआ। ख़ूब आदमी हैं और काम के आदमी हैं। कितने ओछे हो? 'मुस्तलाहातुश्शोरा, मुस्तलाहातुश्शोरा[2]!' भाई, वो किताब तुम्हारी है; मैंने ग़सब[3] नहीं की। मेरे पास मस्तार[4] है; देख चुकूँगा, भेज दूँगा। तक़ाज़ा क्यों करो? मियाँ मुहम्मद अफ़ज़ल तस्वीर खींच रहे हैं, जल्दी न करो। देर आयद दुरुस्त आयद।

सरफ़राज़ हुसेन और मीरन साहब और मीर नसीरुद्दीन को दुआएँ।

सुबह चहार शंबा, हफ़्तुम रमज़ान, हश्तुम मार्च।

३

(मई १८५८)

क्यों यार क्या कहते हो? हम कुछ आदमी काम के हैं या नहीं? तुम्हारा ख़त पढ़कर दो सौ बार ये शेर पढ़ा—

---

१. शुभ नाम। २. पूछ। ३. हजम नहीं की। ४. अमानत।

मीर मेहदी हुसेन 'मजरूह' के नाम

वाद[1] ए वस्ल चूँ शवद नज़दीक
आतिशे शौक़ तेज़तर गर्दद

कल्लू को मालवी मज़हर अली साहब के पास भेज कर कहला भेजा के आप कहीं जाइएगा नहीं, मैं आता हूँ। भला भाई, अच्छी हिकमत की। क्या वो मेरे बाबा के नौकर थे के मैं उनको बुलाता? उन्होंने जवाब में कहला भेजा के आप तकलीफ़ न करें, मैं हाज़िर होता हूँ। दो घड़ी के बाद वो आए। इधर की बात, उधर की बात, कोई अंगरेज़ी काग़ज़ दिखाया। कोई फ़ारसी ख़त पढ़वाया। 'अजी क्यों हज़रत, आप मीरन साहब को नहीं बुलाते?' साहब, मैं तो उनको लिख चुका हूँ के तुम चले आओ और एक मुक़ाम का उनको पता लिखा है के वहाँ ठहर कर मुझको इत्तिला करो। मैं शहर में बुला लूँगा। 'साहब, अब वो ज़रूर आएँगे।' आख़िरकार उनसे इजाज़त लेकर अब तुमको लिखता हूँ के उनसे मुख़्तसर ये कलमा कह दो के भाई, ये तो मुबालिगा है, के रोटी वहाँ खाओ तो पानी यहाँ पीओ। ये कहता हूँ के ईद वहाँ करो तो बासी ईद यहाँ करो।

ये मेरा हाल सुनो, के बेरिज़्क[2] जीने का ढब मुझको आ गया है। इस तरफ़ से ख़ातिर जमा रखना। रमज़ान का महीना रोज़ा रवा खाकर काटा। आइन्दा ख़ुदा रज़्ज़ाक़ है। कुछ और खाने को न मिला तो ग़म तो है। बस साहब जब एक चीज़ खाने को हुई, अगर चे ग़म ही हो, तो फिर क्या ग़म है?

मीर सरफ़राज़ हुसेन को मेरी तरफ़ से गले लगाना और प्यार करना। मीर नसीरुद्दीन को दुआ कहना और शफ़ी अहमद साहब को और मीर अहमद अली साहब को सलाम कहना। मीरन साहब को न सलाम न दुआ। ये ख़त पढ़ा दो और इधर को रवाना करो। क्या ख़ूब बात याद आई!

---

१. जब मिलने का निश्चित समय निकट आता है तो उत्सुकता अधिक तीव्र हो जाती है। २. बिना खाये पिये।

हूँ ? क्यों वो शहर से बाहर ठहरें और क्यों किसी के बुलाने की राह देखें। शिकरम[1] में, कराची[2] में, चौपहिए में याने डाक में आएँ, बल्लीमारों के महल्ले में मेरे मकान पर उतर पड़ें। मिर्ज़ा क़ुरबान बेग के मकान में मौलवी मज़हरअली रहते हैं। मेरे उनके मस्कन में एक मीर ख़ैराती की हवेली दरमियान है। डाक को ज़िन्हार कोई नहीं रोकता। ये सलाह तो ऐसी है, के अगर इस ख़त के पहुँचते ही चल दें तो ईद भी यहीं करें।

४

(८ अगस्त १८५८ ई०)

ख़ूबी[3] ए दीनो दुनिया रोज़ी बाद,

मीर अशरफ़ अली साहब ने तुम्हारा ख़त दिया। वो, जो तुमने लिखा था के तेरा ख़त मेरे नाम का मेरे हमनाम के हात जा पड़ा, साहब, क़ुसूर तुम्हारा है। क्यों ऐसे शहर में रहते हो, जहाँ दूसरा मीर मेहदी भी हो ! मुझको देखो के मैं कब से दिल्ली में रहता हूँ; न कोई अपना हमनाम होने दिया न कोई अपना हम उर्फ़ बनने दिया, न अपना हमतख़ल्लुस बहम पहुँचाया। फ़क़्त।

पिन्सन की सूरत ये है के कोतवाल से कफ़ियत तलब हुई। उसने अच्छी लिखी। कल हफ़्ते का दिन सातवीं अगस्त की, मुझको अजर्टन साहब बहादुर ने बुलाया। कुछ सहल सवाल मुझसे किए। अब ऐसा मालूम होता है के तनख़ा मिले और जल्द मिले। तरद्दुद अगर है तो इसमें है के १५ महीने पिछले भी मिलते हैं या सिर्फ़ आइन्दा को मुक़र्रर

---

१. एक तरह का टांगा। २. लड्ढा, माल ढोने की दो पहियों की गाड़ी।
३. धर्म और संसार के प्रति कर्त्तव्य में वृद्धि हो।

होती है। ग़ुलाम फ़ख़्रुद्दीनख़ाँ की दो एक रूबकारियाँ हुई हैं। सूरत अच्छी है। ख़ुदा चाहे, तो रिहाई हो जाए।

साह्ब, हमने घबरा कर उस तह्रीरे फ़ारसी को तमाम किया। दफ़्तर बन्द कर दिया और ये लिख दिया के यकुम अगस्त सन् १८५८ ई० तक मने १५ महीने का हाल लिखा और आइन्दा लिखना मौक़ूफ़ किया। तुमको आगे इससे लिखा था के तुम अपने औराक़ का फ़िक़्र[1] ए अख़ीर लिख भेजो। अब फिर तुमको लिखा जाता है के जल्द लिखो ताके मैं उसके आगे की इबारत तुमको लिख कर भेज दूँ। हाँ, साह्ब, मीर अशरफ़अली साह्ब भी यही फ़रमाते थे के मीर सरफ़राज़ हुसेन पानीपत आया चाहते हैं। अगर आ जाएँ तो मुझको इत्तिला करना।

५

(९ सितम्बर १८५८)

मियाँ,

तुमको पिन्सन की क्या जल्दी है ? हर बार पिन्सन को क्यों पूछते हो ? पिन्सन जारी हो, और मैं तुमको इत्तला न दूँ ? अभी तक कुछ हुक्म नहीं। देखूँ क्या हुक्म हो और कब हो ? मीरन साह्ब जैपुर पहुँचे। तुम शापुरी[2] बताते हो। शायद सच यही हो। हाँ, मीर महमूद अली और ये, बीरबर और अबूफ़ज़्ल तो थे; मगर देखा चाहिए। दरख़्त जगह से उखड़ कर बदुश्वारी जमता है। खुलासा मेरी फ़िक्र का ये है के अब बिछड़े हुए यार कहीं क़यामत ही को जमा हों तो हों। सो वहाँ क्या ख़ाक जमा होंगे ? सुन्नी अलग, शिया अलग; नेक जुदा, बद जुदा।

---

१. अन्तिम वाक्य। २. शाहपुर ही।

मीर सरफ़राज़ हुसेन को दुआ। मीर नसीरुद्दीन को पहले बन्दगी, फिर दुआ। किताब का नाम 'दस्तम्बू' रखा गया। आगरे में छापी जाती है। तुमसे तुम्हारे हात के औराक लिखे लूँगा। तब एक किताब तुमको दूँगा।

रोज़े वुरूदेनामा पंजशम्बा ९ सितम्बर सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिब

६

(अक्टूबर १८५८)

सैयद साहब,

तुम्हारे ख़त के आने से वो ख़ुशी हुई जो किसी दोस्त के देखने से हो, लेकिन ज़माना वो आया है के हमारी क़िस्मत में ख़ुशी है ही नहीं। ख़त से मालूम हुआ, तो क्या मालूम हुआ के ढाई सौ दिए। इन दिनों में ढाई रुपए भी भारी हैं; ढाई सौ कैसे? सुभान अल्लाह्! बावजूद इस तिहीदस्ती के फिर भी कहना पड़ता है के रुपए गए, बला से; आबरू बची, जान बची। अब मीर सरफ़राज़ हुसेन को चाहिए के अलवर चले जाएँ। शायद नए बंदोबस्त में कोई सूरत नौकरी की निकल आए। मेरी दुआ कहो और ये कहो के अपना हाल और अपना क़िस्सा, अपने हात से मुझको लिखें। पिन्सन का हाल कुछ मालूम हुआ हो तो कहूँ। हाकिम ख़त का जवाब नहीं लिखता। अमले में हरचन्द तफ़ह्हुस[1] कीजिए के हमारे ख़त पर क्या हुक्म हुआ। कोई कुछ नहीं बताता। बहरहाल इतना सुना है और दलायल[2] और करायन से मालूम हुआ है के मैं बेगुनाह क़रार पाया हूँ; और डिप्टी कमिश्नर बहादुर की राय में पिन्सन पाने का इस्तहक़ाक़[3] रखता हूँ। बस, इससे ज़्यादा न मुझे मालूम, न किसी को ख़बर।

---

१. खोज। २. युक्ति और रंग ढंग। ३. पात्रता।

मीर मेहदी हुसेन 'मजरूह' के नाम

मियाँ, क्या बातें करते हो? मैं किताबें कहाँ से छपवाता! रोटी खाने को नहीं, शराब पीने को नहीं, जाड़े आते हैं, लिहाफ़-तोशक की फ़िक्र है; किताबें क्या छपवाऊँगा? मुंशी उम्मीदसिंघ इन्दौर वाले दिल्ली आए थे। साबिक़ ए[१] मारिफ़त मुझसे न था। एक दोस्त उनको मेरे घर ले आया। उन्होंने वो नुस्खा देखा। छपवाने का क़स्द किया। आगरे में मेरा शागिर्दे[२] रशीद मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' था। उसको मैंने लिखा। उसने इस एहतमाम को अपने ज़िम्मे लिया। मसविदा भेजा गया। ८ आने फ़ी जिल्द क़ीमत ठहरी। पचास जिल्दें मुंशी उम्मीदसिंघ ने लीं। २५ रुपए छापेखाने में बतरीक़े हुण्डवी भिजवा दिए। साहबे[४] मतबाने[३] बशुमूले[५] सई ए मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' छापना शुरू किया। आगरे के हुक्काम को दिखाया। इजाज़त चाही। हुक्काम ने बकमाले[६] ख़ुशी इजाज़त दी। पान सौ जिल्द छापी जाती हैं। उस पचास जिल्द में शायद २५ जिल्द मुंशी उम्मीदसिंघ मुझको देंगे। मैं अज़ीज़ों को बाँट दूँगा। परसों ख़त तफ़्ता का आया था, वो लिखते हैं के एक फ़रमा छपना बाक़ी रहा है। यक़ीन है के इसी अक्तूबर में क़िस्सा तमाम हो जाए। भाई, मैंने ११ मई सन् १८५७ ई० से इकतीसवी जुलाई सन् १८५८ ई० तक का हाल लिखा है और ख़ातमे में इसकी इत्तिला दे दी है। अमीनुद्दीनख़ाँ की जागीर के मिलने का हाल और बादशाह की रवानगी का हाल क्यों कर लिखता? उनको जागीर अगस्त में मिली। बादशाह अक्तूबर में गए। क्या करता अगर तहरीर मौक़ूफ़ न करता? मुंशी उम्मीदसिंघ इंदौर जाने वाले थे। अगर ख़त्म कर कर मसविदा उनके सामने आगरे न भेज देता तो फिर छपवाता कौन?

अहले[७] ख़ित्ता का हाल अज़ रू ए तफ़सील मुझको क्यों कर मालूम हो? सुनता हूँ के दाव[८] ए ख़ून पेश किया चाहते हैं, सौदा हो गया है। मसविदा

---

१. पूर्व परिचय। २. सुशिष्य। ३. प्रेस के स्वामी। ४. प्रयत्नों के साथ। ५. प्रसन्नता पूर्वक। ६. एक स्थान के रहने वाले। ७. कत्ल का दावा।

हो रहा है। ब्लंक साहब के जैपूर में टुकड़े उड़ गए, गवर्नर मुद्दई न हुए, क़िसास[1] न हुआ। अब एक हिन्दुस्तानी के ख़ून का क़िसास कौन लेगा ?

ऐ[2] सब्ज़ ए सरे राह, अज़ जोरे पा चे नाली ?
दर कैश रोज़गारानें गुल खूँबहा नदारद

ख़ैर, जो होना है, हो रहेगा। बाद वक़्, हम भी सुन लेंगे। तुम इतना क्यों दिल जला रहे हो।

७

भाई,

एक खत तुम्हारा पहले पहुँचा और एक खत कल आया। पहले ख़त में कोई अम्र जवाब तलब न था। अगरचे कल के ख़त में भी सिर्फ़ किताबों की रसीद थी, लेकिन चूँके दो अम्र लिखने के लायक़ थे इस वास्ते एक लिफ़ाफ़ा तुम्हारी पसंद का तुम्हारे नज़र करना पड़ा। पहला अम्र ये के आज मीर नसीरुद्दीन जो दोपहर को मेरे पास आए थे, उनको देखकर मेरा दिल ख़ुश हुआ। तुमने भी खत में लिखा था के मीर सरफ़राज़ हुसेन अलवर गए थे, और मीर नसीरुद्दीन भी कहते थे के मैं और वो एक दिन पानीपत से चले; वो इधर गए, मैं इधर आया। ज़ाहिरा पार्सल के पहुँचने से पहले वो रवाना हुए हैं। उनकी किताब रह गई, अब उन तक क्योंकर पहुँचेगी ? ख़ुदा ख़ैर करे।

मियाँ लड़के, सुनो, मीर नसीरुद्दीन औलाद में से हैं शाह मुहम्मद आज़म साहब के। वो ख़लीफ़ा थे मौलवी फ़ख़रुद्दीन साहब के, और मैं मुरीद हूँ उस ख़ानदान का। इस वास्ते मीर नसीरुद्दीन को पहले बन्दगी लिखता हूँ और

---

१. कत्ल नहीं हुआ। २. अरी राह की हरियाली यदि तुझ पर कोई पाँव रखता है तो तू क्यों रोती है ? संसार का यही रंग ढंग है, लोग फूल तोड़ते हैं किन्तु मूल्य कोई नहीं देता।

फिर तुम्हारे इलाके[१] से दुआ। सूफ़ी साफ़ी हूँ और हज़राते[२] सूफ़िया हिफ़्ज़े मरातिब मलहूज़ रखते हैं—

गर[3] हिफ़्ज़े मरातिब न कुनी ज़िन्दीक़ी

ये जवाब है तुम्हारे उस सवाल का के जो पहले ख़त में तुमने लिखा था।

अबके ख़त में तुमने मीरन साहब की ख़ैरो आफ़ियत क्यों न लिखी ? ये बात अच्छी नहीं। मैं तो डर गया था के अगर तुम्हारे ख़त में उनको दुआ-सलाम लिखूँगा तो उनसे तुम काहे को कहोगे ? पीरज़ादा साहब याने मीर नसीरुद्दीन ने उनकी बन्दगी मुझसे कही है। वास्ते ख़ुदा के मेरी दुआ उनको कह देना।

८

(२२ दिसंबर १८५८)

वाह वाह सैयद साहब,

तुम तो बड़ी इबारत आराइयाँ करने लगे। नस्र में ख़ुदनुमाइयाँ[४] करने लगे। कई दिन से तुम्हारे ख़त के जवाब की फ़िक्र में हूँ मगर जाड़े ने बेहिस्सो[५] हरकत कर दिया है। आज जो बसवब[६] अब्र के वो सर्दी नहीं, तो मैंने ख़त लिखने का क़स्द किया है। मगर हैरान हूँ के क्या सेहर साज़ी करूँ, जो सुख़न परदाज़ी करूँ ? भाई, तुम तो उर्दू के मिर्ज़ा 'क़तील' बन गए हो। उर्दू बाज़ार में नहर के किनारे रहते रहते रूदे[७] नील बन गए हो। क्या 'क़तील' क्या रूदेनील, ये सब हँसी की बातें हैं। लो, सुनो, अब तुम्हारी दिल्ली की बातें हैं। चौक में बेगम के बाग़ में दरवाज़े के सामने, हौज़ के पास, जो कुआँ था,

---

१. सम्बन्ध। २. सूफ़ी पद प्रतिष्ठा के अनुसार सब से यथोचित मिलते हैं। ३. तू यदि दूसरे की पद-प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखेगा तो गर्हणीय है, काफ़िर हो जाएगा। ४. ऐंठ, गर्व। ५. निष्क्रिय। ६. बादल के कारण। ७. नील नदी।

उसमें संगो ख़िश्त व ख़ाक डालकर बन्द कर दिया। बल्लीमारों के दरवाज़े के पास की कई दूकानें ढाकर रास्ता चौडा कर लिया। शहर की आबादी का हुक्म, ख़ासो आम कुछ नहीं। पिन्सनदारों से हाकिमों का काम कुछ नहीं। ताजमहल, मिर्ज़ा क़ैसर, मिर्ज़ा जवाँबख़्त के साले बिलायत बेग जैपूरी की ज़ोजा इन सब की इलाहाबाद से रिहाई हो गई। बादशाह, मिर्ज़ा जवाँ बख़्त, मिर्ज़ा अब्बास, शाह ज़ीनतमहल कलकत्ते पहुँचे और वहां से जहाज़ पर चढ़ाई होगी। देखिए, केप में रहें या लदन जाएँ। ख़ल्क़ ने अज़रूए क़यास, जैसा के दिल्ली के ख़बर तराशों का दस्तूर है, ये बात उड़ा दी है. सो सारे शहर में मशहूर है के जनवरी, शुरू साल सन १८५९ ई० में लोग उमूमन शहर में आबाद किए जाएँगे और पिन्सनदारों को झोलियाँ भर भर रुपए दिए जाएँगे।

ख़ैर, आज बुध का दिन २२ दिसम्बर की है। अब शम्बे को 'बड़ा दिन' और अगले शंबे को जनवरी का पहला दिन है। अगर जीते हैं तो देख लेंगे क्या हुआ? तुम इस ख़त का जवाब लिखो और शिताब लिखो।

मेरी जान, सरफ़राज़ हुसेन तुम क्या कर रहे हो और किस ख़याल में हो? अब सूरत क्या है और आइन्दा अज़ीमत[1] क्या है?

अशरफ़ अली साहब, आप तो दायर सायर थे। पानीपत में मुक़ीम क्यों कर हो गए? कुछ लिखिए तो मैं जानूँ।

मीर नसीरुद्दीन को सिर्फ़ दुआ और इश्तियाक़े दीदार।

मीरन साहब कहां हैं? कोई जाए और बुला लाए। हज़रत आए। सलामलेकुम। मिज़ाजे मुबारक। कहिए, मौलवी मज़हर अली ने आप के ख़त का जवाब भेजा या नहीं? अगर भेजा तो क्या लिखा? मैं जानता हूँ के मीर अशरफ़ अली और मीर सरफ़राज़ हुसेन कम, और ये सितम पेशा मीर मेहदी

---

१. इच्छा।

बहुत, आपकी जनाब में गुस्ताखियाँ करते हैं। क्या करूँ, मैं कहीं--तुम कहीं। वहाँ होता तो देखता के क्योंकर तुमसे बेअदबियाँ कर सकते हैं। इंशा अल्लाह ताला, जब यकजा होंगे, तो इन्तक़ाम लिया जायगा। है, है। क्यों कर यकजा होंगे? देखिए ज़माना और क्या दिखाएगा। अल्लाह्, अल्लाह्, अल्लाह् !!!

९

(९ फरवरी १८५९)

सैयद साहब,

न तुम मुजरिम न मैं गुनहगार, तुम मजबूर, मैं नाचार! लो अब कहानी सुनो; मेरी सर गुज़िश्त मेरी ज़बानी सुनो। नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ ब मियाद सात बरस के क़ैद हो गए थे। सो उनकी तक़सीर माफ़ हुई और उनको रिहाई मिली। सिर्फ़ रिहाई का हुक्म आया है। जहाँगीराबाद की ज़मींदारी और दिल्ली की अमलाक और पिन्सन के बाब में हनोज़ हुक्म कुछ नहीं हुआ। नाचार वो रिहा होकर मेरठ ही में एक दोस्त के मकान में ठहरे हैं। मैं बमुजर्रदे[1] इस्तमा इस ख़बर के डाक में बैठकर मेरठ गया। उनको देखा, चार दिन वहाँ रहा, फिर डाक में अपने घर आया। तारीख़ आने जाने की याद नहीं; मगर हफ़्ते को गया, मंगल को आया। आज बुध दूअम फ़रवरी है। मुझको आए हुए नवाँ दिन है। इन्तज़ार में था के तुम्हारा ख़त आए तो उसका जवाब लिखा जाए। आज सुबह को तुम्हारा ख़त आया। दोपहर को मैं जवाब लिखता हूं--

रोज़ इस शहर में एक हुक्म नया होता है
कुछ समझ में नहीं आता है के क्या होता है!

मेरठ से आकर देखा के यहाँ बड़ी शिद्दत है और ये हालत है के गोरों की पासबानी[2] पर क़िनाअत[3] नहीं है। लाहौरी दरवाज़े का थानेदार मूंढा

---

१. सुनते ही। २. पहरेदारी। ३. सन्तोष।

बिछा कर सड़क पर बैठता है। जो बाहर से, गोरे की आँख बचा कर आता है, उसको पकड़ कर हवालात में भेज देता है। हाकिम के यहाँ से पाँच-पाँच बद लगते हैं या दो रुपया जुर्माना लिया जाता है, आठ दिन क़ैद रहता है। इससे अलावा सब थानों पर हुक्म है के दरियाफ़्त करो कौन बे टिकट मुक़ीम है और कौन टिकट रखता है। थानों में नक़्शे मुरत्तिब होने लगे। यहां का जमादार मेरे पास भी आया। मैंने कहा भाई, तू मुझे नक़्शे में न रख मेरी कैफ़ियत की इबारत अलग लिख। इबारत ये के असदुल्लाह-ख़ाँ पिन्सनदार सन् १८५० ई० से हकीम पटियाले वाले के भाई की हवेली में रहता है। न कालों के वक़्त में कहीं गया, न गोरों के ज़माने में निकला और न निकाला गया। करनेल ब्रोन साहब बहादुर के ज़बानी हुक्म पर उसकी इक़ामत का मदार है। अब तक किसी हाकिम ने वो हुक्म नहीं बदला। अब हाकिमे वक़्त को इख़्तियार है। परसों ये इबारत जमादार ने महल्ले के नक़्शे के साथ कोतवाली में भेज दी है। कल से ये हुक्म निकला के ये लोग शहर के बाहर मकान-दूकान क्यों बनाते हैं? जो मकान बन चुके हैं, उन्हें ढा दो, और आइन्दा को मुमानियत का हुक्म सुना दो और ये भी मशहूर है के पाँच हज़ार टिकट छापे गए हैं। जो मुसलमान शहर में इक़ामत चाहे वक़्दरे मक़दूर[1] नज़राना दे। उसका अन्दाज़ा क़रार देना हाकिम की राय पर है। रुपया दे और टिकट ले। घर बरबाद हो जाए, आप शहर में आबाद हो जाए। आज तक ये सूरत है। देखिए शहर के बसने की कौन महूरत है? जो रहते हैं, वो भी इख़राज[2] किए जाते हैं, या जो बाहर पड़े हुए हैं वो शहर में आते हैं? अल मुल्के लिल्लाह् व अल हुक्मे लिल्लाह्।

नूरे चश्म मीर सरफ़राज़ हुसेन और बरखुरदार मीर नसीरुद्दीन को

---

१. यथाशक्ति। २. निर्वासित।

दुआ, और जानिब मीरन साहब को सलाम भी और दुआ भी। इसमें से वो जो चाहें क़ुबूल करलें।

१०

(फरवरी १८५९)

मेरी जान,

ख़ुदा तुझको १२० बरस की उम्र दे। बूढ़ा होने आया। डाढी में बाल सफ़ेद आ गये, मगर बात समझनी न आई। पिन्सन के बाब में उलझे हो और क्या बेजा उलझे हो। ये तो जानते हो के दिल्ली के सब पिन्सनदारों को मई सन् १८५७ ई० से पिन्सन नहीं मिला। ये फ़रवरी सन् १८५९ ई०, बाईसवां महीना है। चन्द अशख़ास को इस बाईस महीने में साल भर का रुपया बतरीक़े मदद खर्च मिल गया। बाक़ी चढ़े हुए रुपए के बाब में आइन्दा माह ब माह मिलने के वास्ते अभी कुछ हुक्म नहीं हुआ। तो अब अपने सवाल को याद करो, के इस वाक़ए से उसको कुछ निस्बत है या नहीं? ये हज़रत का सवाल अमीर ख़ुसरो की अनमली है—

चील बसोला ले गई तो काहे से फटकूँ राब?

अलीबख़्शख़ाँ पचास रुपया महीना पाते थे, बाईस महीने के ११ सौ होते हैं। उनको ६ सौ रुपए मिल गए। बाक़ी रुपया चढ़ा रहा। आइन्दा मिलने में कुछ कलाम नहीं। ग़ुलाम हसन खाँ सौ रुपए महीने का पिन्सदार, २२ महीने के बाईस सौ रुपए होते हैं। उसको बारह सौ मिले। दीवान किशनलाल का डेढ़ सौ रुपया महीना, बाईस महीने का तीन हज़ार, तीन सौ होते हैं, उसको १८ सौ मिले। मत्ता जमादार दस रुपए महीने का सख लंबर, साल भर के १२० ले आया। इसी तरह पन्द्रह-सोलह आदमियों को मिला है; आइन्दा के वास्ते किसी को कुछ हुक्म नहीं। मुझको फिर मदद ख़र्च नहीं मिला। जब

कई खत लिखे तो अख़ीर ख़त पर साहब कमिश्नर बहादुर ने हुक्म दिया के सायल को बतरीक़े मदद ख़र्च सौ रुपए मिल जाएँ। मैंने वो सौ रुपए न लिए और फिर साहब कमिश्नर बहादुर को लिखा के मैं बासठ रुपए आठ आना महीना पाने वाला हूँ। साल भर के साढ़े सात सौ रुपए होते हैं। सब पिन्सदारों को साल साल भर का रुपया मिला। मुझको सौ रुपए कैसे मिलते है? मिस्ल औरों के मुझे भी साल भर का रुपया मिल जाए। अभी इसमे कुछ जवाब नहीं मिला।

अबादी का ये रंग है के ढंढोरा पिटवाकर, टिकट छपवाकर, अजर्टन साहब बहादुर बतरीक़े डाक कलकत्ते चले गए। दिल्ली के हुमक़ा,[1] जो बाहर पड़े हुए हैं, मुँह खोलकर रह गए। अब जब वो माविदत[2] करेंगे तब शायद आबादी होगी और या कोई और नई सूरत निकल आए। मीर सरफ़राज़ हुसेन और मीर नसीरुद्दीन और मीरन साहब को दुआएँ पहुँचे।

११

(फरवरी १८५९)

मियाँ,

क्यों ताज्जुब करते हो यूसुफ़ मिर्ज़ा के ख़ुतूत के न आने से? वो वहाँ अच्छी तरह है; हाकिमों के हाँ आना-जाना, नौकरी की तलाश। हुसेन मिर्ज़ा साहब भी वहीं हैं। वहाँ के हुक्काम से मिलते हैं। वहाँ पिन्सन की दरख़ास्त कर रहे हैं। इन दोनों भाइयों के हर हफ़्ते में एक दो ख़त मुझको आते हैं। जवाब भेजता हूँ। भाई, लखनऊ में वो अम्नो[3] आमान है के न हिन्दुस्तानी अमलदारी में ऐसा अम्नो अमान होगा न इस फ़ितना व फ़साद से पहले अंगरेज़ी अमलदारी में ये चैन होगा। उमरा और शुर्फ़ा[4] की हुक्काम से मुलाक़ातें बक़दरे[5] रुतबा ताज़ीम[6] व तौक़ीर पिन्सन की तक़सीम अलल[7] उमूम आबादी का हुक्मे आम; लोगों को कमाले लुत्फ़ और नर्मी से आबाद करते जाते हैं।

---

१. मूर्ख। २. लौटना। ३. शान्ति। ४. शरीफ़, प्रतिष्ठित (ब० व०)। ५. पद-प्रतिष्ठा के अनुसार। ६. अभिवादन। ७. सामान्य रूप से।

और एक नक़ल सुनो। वहाँ के साहब कमिश्नर बहादुरे आज़म ने जो देखा के अमले में हुनूद भरे हुए हैं, अहले इस्लाम नहीं हैं, हुनूद को और इलाक़ों पर भेज दिया और उनकी जगह मुसलमानों को भर्ती किया। ये तो आफ़त दिल्ली पर ही टूट पड़ी है। लखनऊ के सिवा और सब शहरों में अमलदारी की वो सूरत है जो ग़दर से पहले थी। अब यहाँ टिकट छापे गए हैं। मैंने भी देखे। फ़ारसी इबारत ये है—

"टिकटे आबादिए दरूने शहरे देहली ब शर्ते इदख़ाले जुर्माना।"

मिक़दार रुपए की हाकिम की राय पर है। आज पांच हज़ार टिकट छप चुका है। कल इतवार योमुत्तातील[1] है। परसों दो शंबे से देखिए ये काग़ज़ क्यों कर तक़्सीम हों।

ये तो कैफ़ियत उमूमन शहर की है। ख़ुसूसन मेरा हाल सुनो—बाईस महीने के बाद परसों कोतवाल को हुक्म आया है के असदुल्लाह ख़ां पिन्सन-दार की कैफ़ियत लिखो के वो बेमक़दूर[2] और मोहताज है या नहीं। कोतवाल ने माफ़िक़ ज़ाब्ते के मुझ से चार गवाह माँगे हैं। सो कल चार गवाह कोतवाली चबूतरे जाएँगे और मेरी बे मक़दूरी ज़ाहिर कर आएँगे। तुम कहीं ये न समझना के बाद सुबूत मुफ़लिसी चढ़ा हुआ रुपया मिल जाएगा और आइन्दा को पिन्सन जारी हो जाएगा। ना साहब, ये तो मुमकिन ही नही। बादे सुबूते इफ़लास[3] मुस्तहक़ ठहरूँगा छ महीने का या बरस दिन का रुपया अलल हिसाब पाने का।

मीरन साहब जो बुलाए गए हैं, उस तलब के जवाब में यही क्यों नही लिखते थे टिकट मेरे नाम का हासिल करके भेज दो तो मैं आऊँ। देखो, अब दस-पांच दिन में सब हाल खुला जाता है। मीर सरफ़राज़

---

१. छुट्टी का दिन। २. निस्सहाय। ३. दरिद्रता।

हुसेन को दुआ कहना और मेरी तरफ़ से गले लगाना और प्यार करना। मीर नसीरुद्दीन को दुआ कहना और मीरन साहब को मुबारकबाद कहना।

१२

(मार्च १८५९)

मेरी जान,

सुनो दास्तान। साहब कमिश्नर बहादुरे देहली, याने जनाब सान्डर्स साहब बहादुर ने मुझको बुलाया। पंजशंबा २४ फ़रवरी को मैं गया। साहब शिकार को सवार हो गए थे। मैं उल्टा फिर आया। जुमा २५ फ़रवरी को गया। मुलाक़ात हुई। कुर्सी दी। बाद पुरसिशे मिज़ाज के एक ख़त अँगरेज़ी चार वरक़ का उठा कर पढ़ते रहे। जब पढ़ चुके तो मुझसे कहा के ये ख़त है मेकलोड साहब हाकिमे अकबरे सदर[1] बोर्ड पंजाब का। तुम्हारे बाब में लिखते हैं के इनका हाल दरियाफ़्त करके लिखो, सो हम तुमसे पूछते हैं के तुम मलिकए मौज़्ज़िमा से ख़लत क्या माँगते हो? हक़ीक़त कही गई। एक काग़ज़ आमदे विलायत ले गया था, वो पढ़वा दिया। फिर पूछा के तुमने किताब कैसी लिखी है? उसकी हक़ीक़त बयान की। कहा—एक मेकलोड साहब ने देखने को माँगी है और एक हमको दो। मैंने अर्ज़ किया—कल हाज़िर करूँगा। फिर पिन्सन का हाल पूछा, वो भी गुज़ारिश किया। अपने घर आया और ख़ुश आया।

देखो, मीर मेहदी, हाकिमे पंजाब को मुक़दमए विलायत की क्या ख़बर? किताबों से क्या इत्तिला? पिन्सन की पुरसिश से क्या मुद्दआ। ये इस्तफ़सार बहुक्मे नवाब गवर्नर जनरल बहादुर हुआ है और ये सूरत मुक़दमा फ़तह[2] व फ़ेरोज़ी है। ग़र्ज़ के दूसरे दिन यकशंबा, यौमुत्तातील था। मैं अपने घर

१. मुख्य। २. सफलता और विजय।

रहा। दो शंबा २८ फ़रवरी को गया। बाहर के कमरे में बैठकर इत्तिला करवाई। कहा—अच्छा, तौक़्क़ुफ़[1] करो। बाद थोड़ी देर के गढ़ कप्तान की चिट्ठी आई। सवारी माँगी। जब सवारी आ गई, बाहर निकले। मैंने कहा—वो किताबें हाज़िर हैं। कहा—मुंशी जीवनलाल को दे आओ। वो उधर सवार हो गये। मैं इधर सवार होकर अपने मकान पर आया।

से शंबा यकुम मार्चको फिर गया। बहुत इस्तेन्बात[2] और अख़्तलात[3] से बातें करते रहे। कुछ सर्टिफ़िकेट गवर्नरों के ले गया था। वो दिखाए। एक ख़त मेकलोड साहब बहादुर के नाम का ले गया था। वो देकर ये इस्तदुआ की के किताब के साथ ये भी भेजा जाए। बहुत अच्छा कह कर रख लिया। फिर मुझसे कहा के हमने तुम्हारे पिन्सन के बाब में अजर्टन साहब को कुछ लिखा है। तुम उनसे मिलो। अर्ज़ किया—बेहतर। अजर्टन साहब बहादुर, जैसा के तुमको मालूम था, गए हुए थे। कल वो आये, आज मैंने उनको ख़त लिखा है। जैसा के वो हुक्म देंगे, उसके मुआफ़िक़ अमल करूँगा। जब बुलाएँ तब जाऊँगा। देखो, सैयद असदुल्लाह्‌उल[4] ग़ालिब अले सलाम की मदद को, के अपने ग़ुलाम को किस तरह से बचाया। बाईस महीने तक भूका-प्यासा भी न रहने दिया, फिर किस महकमे से के वो आज सल्तनत का देहन्दा[5] है, मेरे तफ़क़्क़ुद का हुक्म भिजवाया। हुक्काम से मुझको इज़्ज़त दिलवाई। मेरे सब्रो[6] सबात की दाद मिली। सब्रो सबात भी उसी का बख़्शा हुआ था। म क्या अपने बाप के घर से लाया था। मीर सरफ़राज़ हुसेन को ये ख़त पढ़ा देना और उनको और नसीरुद्दीन 'चिराग़े देहली' को और मीरन साहब को दुआ कहना।

---

१. ठहरो। २. पूछताछ। ३. प्रेम। ४. हज़रत अली। ५. ऋणी। ६. धैर्य।

१३

(७ मार्च १८५९ ई०)

मीर मेहदी जीते रहो,

आफ़रीं, सद हज़ार आफ़रीं! उर्दू इबारत लिखने का अच्छा ढंग पैदा किया है के मुझको रश्क आने लगा। सुनो दिल्ली के तमाम मालो मता व ज़र[1] व गौहर की लूट पंजाब इहाते में गई है। ये तर्ज़ इबारत[2] ख़ास मेरी दौलत थी; सो एक ज़ालिम, पानीपत, अन्सारियों के मुहल्ले का रहने वाला लूट कर ले गया। मगर मैंने उसको बहल[3] किया, अल्लाह बरकत दे। मेरे पिन्सन और विलायत के इनाम का हाल, कमाहू[4] हक़्क़ हूँ समझ लो। वर्रहमन[5] अल्ताफ़ ख़ुफ़िया। एक तर्ज़ ख़ास पर तहरीक हुई। नवाब गवर्नर जनरल बहादुर ने हाकिमे पंजाब को लिखा के हाकिमे दिल्ली से फ़लां शख़्स के पिन्सन के कुल चढ़े हुए रुपए के एक मुश्त पाने की और आइन्दा माह ब माह मिलने की रिपोर्ट मँगवा कर अपनी मंज़ूरी लिख कर, हमारे पास भेज दो, ताके हम हुक्मे मंज़ूरी देकर तुम्हारे पास भेज दें। सो यहाँ उसकी तामील बतर्ज़ मुनासिब हो गई। कमोबेश दो महीने में सब रुपया मिल जाएगा और हाँ, साहब कमिश्नर बहादुर ने ये भी कहा के अगर तुमको ज़रूरत हो तो सौ रुपए ख़ज़ाने से मँगवा लो। मैंने कहा—साहब, ये कैसी बात है के औरों को बरस दिन का रुपया मिला और मुझे सौ रुपए दिलवाते हो? फ़रमाया के तुमको अब चंद रोज़ में सब रुपया और इज्रा का हुक्म मिल जाएगा, औरों को ये बात बरसों में मयस्सर आएगी। मैं चुप रहा। आज दो शंबा यकुम शाबान और हफ़्तुम मार्च है। दोपहर हो जाए तो अपना

---

१. सोना और मोती। २. लिखने की शैली। ३. क्षमा। ४. जो कुछ सुना सच हो। ५. दयालु की अदृश्य कृपा से।

आदमी मय रसीद भेजकर सौ रूपया मँगालूँ। पर, यार, विलायत के इनाम की तवक़्क़ो ख़ुदा ही से है। हुक्म तो इस हुक्म के साथ उसकी रिपोट करने का भी आया है मगर ये भी हुक्म है के अपनी राय लिखो। अब देखिए ये दो हाकिम याने हाकिमे देहली और हाकिमे पंजाब अपनी राय क्या लिखते हैं। पंजाब के गवर्नर बहादुर का ये भी हुक्म है के 'दस्तम्बू' मंगाकर और तुम देखकर हमको लिखो के वो कैसी है और उसमें क्या लिखा है। चुनाँचे हाकिमे देहली ने एक किताब यही कह कर मुझसे माँगी और मैंने दी। अब देखूँ, हाकिमे पंजाब क्या लिखता है।

इस वक्त तुम्हारा एक ख़त और यूसुफ़ मिर्ज़ा का एक ख़त आया। मुझको बातें करने का मज़ा मिला। तुम दोनों का जवाब अभी लिखकर रवाना किया। अब मैं रोटी खाने जाता हूँ। मीर सरफ़राज़ हुसेन, मीरन साहब, मीर नसीरुद्दीन को दुआ।

१४

(२७ मार्च १८५९)

सैयद,

ख़ुदा की पनाह! इबारत लिखने का ढंग हात क्या आया है के तुमने सारे जहाँ को सर पर उठाया है। एक ग़रीब सैयद मज़लूम के चेहरए नूरानी पर मोहासा निकला है, तुमको सरमायए[1] आरायश गुफ़्तार बहम पहुँचा है। मेरी उनको दुआ पहुँचाओ और उनकी ख़ैरो आफ़ियत जल्द लिखो।

भाई, यहाँ का नक़्शा ही कुछ और है। समझ में किसी की नहीं आता के क्या तौर है। अवायल[2] माहे अँगरेज़ी में रोक-टोक की शिद्दत होती थी,

---

१. वाणी को अलंकृत करने की सम्पत्ति। २. अँग्रेज़ी मास के आरंभ में।

आठवीं-दसवीं से वो शिद्दत कम हो जाती थी। इस महीने में बराबर वही सूरत रही है। आज २७ मार्च की है। पाँच-चार दिन महीने में बाक़ी हैं। आँच वैसी ही तेज है। ख़ुदा अपने बंदों पर रहम करें।

मुझ पर मेरे अल्लाह् ने एक और इनायत की है, और इस ग़मज़दगी में एक गुना ख़ुशी, और कैसी बड़ी ख़ुशी, दी है। तुमको याद होगा के एक 'दस्तम्बू[२]' नवाब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर की नज़्र भेजी थी। आज पाँचवाँ दिन है के नवाब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर का ख़त मुकामे इलाहाबाद से बसबीले डाक आया। वही काग़ज़ अफ़शानी, वही अलक़ाबे[१] क़दीम, किताब की तारीफ़, इबारत की तहसीन, मेहरबानी के कलमात[२]। कभी तुमको ख़ुदा यहाँ लाएगा तो उसकी ज़ियारत करना। पिन्सन के मिलने का भी हुक्म आज कल आया चाहता है और ये भी तवक़्क़ो पड़ी है के गवर्नर जनरल बहादुर के हाँ से भी किताब की तहसीन और इनायत के मज़ामीन की तहरीर आ जाए।

मीरन साहब को सलाम पहले लिख चुका हूँ। मीर सरफ़राज़ हुसेन और मीर नसीरुद्दीन को दुआ कह देना और ये ख़त दिखा देना।

१५

(अप्रेल १८५९)

मार डाला यार, तेरी जवाब तलबी ने! इस चर्ख़े[३] कज रफ़्तार का बुरा हो। हमने इसका क्या बिगाड़ा था? मुल्को माल[४] व जाहो जलाल[५] कुछ नहीं रखते थे। एक गोशा[६] व तोशा[७] था। चन्द मुफ़लिस[८] व बेनवा एक जगह फ़राहम होकर कुछ हँस-बोल लेते थे।

---

१. पुरानी उपाधियाँ। २. वाक्य। ३. विपरीत गति में चलने वाला आकाश। ४. देश और सम्पति। ५. ऐश्वर्य। ६. एकान्त। ७. भोजन। ८. दरिद्र।

मीर मेहदी हुसेन 'मजरूह' के नाम

सो भी न तो कोई दम देख सका ऐ फ़लक
और तो याँ कुछ न था एक मगर देखना

याद रहे ये शेर ख़ाजा मीर दर्द का है। कल से मुझको 'मयकश' बहुत याद आता है। सो साहब, अब तुमही बताओ के मैं तुमको क्या लिखूँ? वो सोहबतें और तक़रीरें जो याद करते हो और तो कुछ बन नहीं आती, मुझसे ख़त पर ख़त लिखवाते हो। आँसुओं प्यास नहीं बुजती। ये तहरीर तलाफ़ी उस तक़रीर की नहीं कर सकती। बहरहाल कुछ लिखता हूँ, देखो क्या लिखता हूँ।

सुनो, पिन्सन की रिपोर्ट का अभी कुछ हाल नहीं मालूम। देर आयद दुरुस्त आयद।

भई, मैं तुमसे बहुत आज़ुर्दा हूँ। मीरन साहब की तन्दुरुस्ती के बयान में न इज़हारे मसर्रत और न मुझको तहनियत बल्के इस तरह से लिखा है के गोया उनका तन्दुरुस्त होना तुमको नागवार हुआ है। लिखते हो के मीरन साहब वैसे ही हो गये, जैसे आगे थे; उछलते-कूदते फिरते हैं। इसके ये माने के—है है, क्या ग़ज़ब हुआ के ये क्यों अच्छे हो गये? ये बातें तुम्हारी हमको पसन्द नहीं आतीं। तुमने 'मीर' का वो मक़्ता सुना होगा, बतग़य्युरे अल्फ़ाज़ लिखता हूँ—

क्यों न 'मीरन' को मुग़्तनिम जानूँ
दिल्ली वालों में इक बचा है ये

मीर तक़ी का मक़्ता यों है—

'मीर' को क्यों न मुग़्तनिम जानें
अगले लोगों में इक रहा है ये

'मीर' की जगह 'मीरन' और 'रहा' की जगह 'बचा'। क्या अच्छा तसरुफ़ है!

अरे मियाँ, तुमने कुछ और भी सुना। कल यूसुफ़ मिर्ज़ा का ख़त लखनऊ से आया। वो लिखता है के नसीरख़ाँ उर्फ़ नवाबजान वालिद उनका दायमुल[१] हब्स हो गया। हैरान हूँ के ये क्या आफ़त आई! यूसुफ़ मिर्ज़ा तो झूट काहे को लिखेगा, ख़ुदा करे उसने झूट सुना हो।

लो भई, अब तुम चाहो बैठे रहो, चाहो जाओ अपने घर; मैं तो रोटी खाने जाता हूँ। अन्दर बाहर सब रोज़ादार हैं। यहाँ तक के बड़ा लड़का बाक़र-अलीख़ाँ भी। सिर्फ़ एक मैं और एक मेरा प्यारा बेटा हुसेन अलीख़ाँ, ये हम रोज़ाख़ार हैं। वही हुसेन अली ख़ाँ, जिसका रोज़मर्रा है—'खिलौने मँगा दो' "मैं भी बजार जाऊंगा।" मीर सरफ़राज़ हुसेन को दुआ कहना और ये ख़त उनको जरूर सुना देना। बरख़ुरदार मीर नसीरुद्दीन को दुआ पहुँचे।

१६

(१८५९ ई०)

बरख़ुरदार कामगार[२] मीर मेहदी,

क़ता तुमने देखा? सचमुच मेरा हुलिया है। वाह, अब क्या शायरी रह गई है। जिस वक़्त मैंने ये क़ता वहाँ के भेजने के वास्ते लिखा, इरादा था के ख़त भी लिखूँ। लड़कों ने सताया के दादा जान चलो, खाना तैयार है, हमें भूक लगी है। तीन ख़त और लिखे हुए रखे थे, मैंने कहा के अब क्यों लिखूँ? उसी कागज़ को लिफ़ाफ़े में रखकर टिकट लगा, सरनामा लिख कलयान के हवाले कर घर में चला गया, और हाँ, एक छेड़ भी थी के देखूँ मेरा मीर मेहदी ख़फ़ा होकर क्या बातें बनाता है। सो वही हुआ। तुमने जले फफोले फोड़े। लो अब बताओ, ख़त लिखने बैठा हूँ, क्या लिखूँ? यहाँ का हाल, ज़बानी मीरन साहब के सुन लिया होगा। मगर वो जो कुछ तुमने सुना होगा, बे अस्ल बातें

---

१. आजीवन कारावास। २. सौभाग्य शाली।

हैं। पिन्सन का मुक़दमा कलकत्ते में नवाब गवर्नर जनरल बहादुर के पेश नज़र, यहाँ के हाकिम ने अगर एक रूबकारी लिख कर अपने दफ़्तर में रख छोड़ी, मेरा उसमें क्या ज़रर।

यहाँ तक लिख चुका था के दो-एक आदमी आ गए, दिन भी थोड़ा रह गया। मैंने बक्स बन्द किया। बाहर तख़्तों पर आ बैठा। शाम हुई। चिराग़ रोशन हुआ। मुंशी सैयद अहमद हुसेन सिरहाने की तरफ़ मूँढे पर बैठे हैं। मैं पलंग पर लेटा हुआ हूँ, के नागाह चश्मो चराग़[1] दूदमाने इल्मो यक़ीन सैयद नसीरुद्दीन आया; एक कोड़ा हाथ में और एक आदमी साथ। उसके सर पर टोकरा। उस पर घास हरी बिछी हुई। मैंने कहा—अहा हा हा ! सुलतानुल-उलमा मौलाना सरफ़राज़ हुसेन देहलवी ने दुबारा रसद भेजी है। बारे, मालूम हुआ के वो नहीं है। ये कुछ और है। फ़ैज़े ख़ास नहीं, लुत्फ़े आम है। शराब नहीं, आम है। ख़ैर, ये अतिया भी बेख़लल है। बल्के नेमुल[2] बदल है। एक एक आम को एक एक सर्बो[3] मोहर गिलास समझा, लिक्वर से भरा हुआ; मगर वाह, किस हिकमत से भरा है के पैसठ गिलास में से एक क़तरा नहीं गिरा है ! मियाँ कहता था के ये अस्सी थे। पन्द्रह बिगड़ गए, बल्के सड़ गए। ता उनकी बुराई औरों में सरायत न करे, टोकरे में से फेंक दिए। मैंने कहा—भाई, ये क्या कम है ? मगर मैं तुम्हारी तकलीफ़ और तकल्लुफ़ से ख़ुश नहीं हुआ। तुम्हारे पास रुपया कहां जो तुमने आम ख़रीदे ? ख़ाना आबाद, दौलत ज्यादा।

लिक्वर एक अँगरेज़ी शराब होती है, क़ेवाम[4] बहुत लतीफ़ और रंगत की बहुत ख़ूब और तौम की ऐसी मीठी जैसा क़न्द का क़ेवाम पतला। देखो, इस लुग़त के माने किसी फ़रहंग में न पाओगे। हाँ फ़रहंगे सरूरी में हो तो हो।

---

१. वंश का नेत्र और दीपक। २. तत्स्थानीय। ३. मुहरबन्द। ४. तरल पदार्थ, चाशनी।

'मुज्तहिदुल अस्र' और हकीम मीर अशरफ़अली को के वो उनके इल्म की कुंजी है और टके टके की किताबें चालीस-पचास रुपये को ले गए हैं, मेरी दुआ कह देना।

१७

(जुलाई १८५९)

भाई,

तुमतो लड़कों की सी बातें करते हो। जो माजरा मैंने सुना था वो अलबत्ता मूजिबे तशवीश[1] था। तुम्हारी तहरीर से वो तशवीश रफ़ा हो गई। फिर तुम क्यों हाय-वावेला करते हो ? ऊपर का हाकिम माफ़िक़ है, मातहत का हाकिम जो मुख़ालिफ़ था सो गया, फिर क्या क़िस्सा है ?

'क़ातै बुरहान' के मसविदे सब मैंने फाड़ डाले, इस वास्ते के हर नज़र में उसकी सूरत बदलती गई। वो तहरीर बिल्कुल मग़शूश हो गई। हाँ उसकी नक़लें साफ़, के जिसमें किसी तरह की ग़ल्ती नहीं, नवाब साहब ने कर ली हैं। एक मेरे वास्ते, एक भाई ज़ियाउद्दीन के वास्ते। मेरी मिल्क की जो किताब है, उसकी जिल्द बँध जाए तो बतरीक़े[2] मुस्तार भेज दूँगा। तुम उसकी नक़ल लेकर मेरी किताब मुझको फेर देना और ये अम्र बाद मुहर्रम वाक़े होगा। मगर याद रहे के जो साहब इसको देखेंगे वो हर्गिज़ न समझेंगे, सिर्फ़ 'बुरहानक़ातै' के नाम पर जान देंगे। कई बातें जिस शख़्स में जमा होंगी वो उसको मानेगा—पहले तो आलिम हो, दूसरे फ़ने लग़त को जानता हो। तीसरे फ़ारसी का इल्म ख़ूब हो और इस ज़बान से उसको लगाव हो। असातिज़ ए[3] सलफ़

---

१. चिन्ता का कारण, विकृत। २. देखकर वापिस करने के लिए। ३. प्राचीन आचार्य।

का कलाम बहुत कुछ देखा हो और कुछ याद भी हो। चौथे मुन्सिफ़ हो, हट धरम न हो। पाँचवें तबे[1] सलीम व ज़हने मुस्तक़ीम रखता हो, माविजुल[2] ज़हन और कज[3] फ़हम न हो। न ये पाँच बातें किसी में जमा होंगी और न कोई मेरी मेंहनत की दाद देगा।

'फ़हमायश' का लफ़्ज़ मिया बुधा वल्द मिया जुमा और लाला गनेशीदास वल्द भरों नाथ का घड़ा हुआ है। मेरी ज़बान से कभी तुमने सुना है ? अब तफ़सील सुनो--अम्र के सीग़े के आगे 'शीन' आता है तो वो अम्र माने मसदरी देता है और इसको हासिले[4] बिल मसदर कहते हैं। 'सोख़्तन' मसदर, 'सोजद[5]' मुज़ारअ, 'सोज़' अम्र, 'सोज़िश' हासिल बिल मसदर। इसी तरह हैं– 'ख़ाहिश' व 'काहिश' व 'गुज़ारिश' व 'गुदाज़िश' व 'आराइश' व 'पैराइश' व 'फ़रमाइश'। 'फ़हमीदन' फ़ारसी उल अस्ल नहीं है। मसदर जाली है; 'फ़हम' लफ़्ज़ अरबी उल अस्ल है। 'तलब' लफ़्ज़ अरबी उल अस्ल है। इनको माफ़िके क़ायदए तफ़रीस[6] 'फ़हमीदन' व 'तलबीदन' कर लिया है। और इस क़ायदे में ये कुलिया है के लुग़ते अस्ली अरबी आख़िर को अम्र बन जाता है। 'फ़हम' याने 'बफ़हम', 'समझ', 'तलब' याने 'बतलब', 'मांग', 'फ़हमद' मुज़ारअ बना, 'तलबद' मुज़ारअ बना। ख़ैर, ये फ़र्ज़ कीजिए के जब हमने मसदर और मुज़ारअ और अम्र बनाया तो अब हासिल बिल मसदर क्यों न बनायें ? सुनो, हासिल बिल मसदर 'फ़हमश' और 'तलबश' चाहिए। 'फ़हम' था सीग़ा अम्र, 'फ़हमद' में से निकला था; अलिफ़ और ये कहाँ से लाया ? 'फ़हमाए' तो नहीं जो फ़हमायश दुरुस्त हो। कहीं 'फ़रमायश' को इसका नज़ीर गुमान न करना। वो मसदरे असली फ़ारसी 'फ़रमूदन' है; 'फ़रमायद' मुज़ारअ, 'फ़रमाए' अम्र, हासिले मसदर– 'फ़रमायश' ज्यादा-ज्यादा !

---

१. सुस्वभाव। २. मट्ठस। ३. निर्बुद्ध। ४. क्रियार्थक संज्ञा। ५. विधि लिंग। ६. अन्य भाषा के शब्दों के फ़ारसीकरण का नियम।

पहले हकीम मीर अशरफ़ अली को दुआ और बेटा पैदा होने की मुबारकबाद। मियाँ मैंने रात को अपने आलमे[1] सरख़ुशी में तारीख़ी नाम का ख़याल किया। मीर क़ाजिमदीन के बारह सौ पचहत्तर होते हैं। लेकिन ये इस्म भी मानिंदे लफ़्ज़ 'फ़हमायश' टकसाल से बाहर है।

१८

(१५ अक्टूबर १८५९)

मेरी जान,

तुमको तो बेकारी में ख़त लिखने का शग़ल है। क़लम दवात ले बैठे! अगर ख़त पहुंचा है तो जवाब वर्ना शिकवा व शिकायत व इताबो[2] ख़िताब लिखने लगे।

कल हकीम मीर अशरफ़ अली आये थे। सर मुंडवा डाला है। 'मुहल्लेक़ीन[3] रूसकम' पर अमल किया है। मैंने कहा के सर मुंडवाया है तो दाढ़ी रखो। कहने लगे—'दामन[4] अज़ कजा आरम के जामा नदारम।' वल्लाह उनकी सूरत क़ाबिल देखने के है। कहते थे के मीर अहमदअली साहब आ गये और बहाल व बरक़रार रहे। ख़ुदा का शुक्र बजा लाया, कभी तो ऐसा भी हो के किसी अज़ीज़ की अच्छी ख़बर सुनी जाए। मेरा सलाम कहना और मुबारकबाद देना। खबरदार भूल न जाइयो।

तुम्हारी शिकायत हाए बेजा का जवाब ये है के तुमने जो ख़त मुझको पानीपत से भेजा था और करनाल की रवानगी की इत्तला दी थी, मैंने तजवीज़ कर

---

१. मस्ती। २. अप्रसन्न होना, सम्बोधित करना। ३. अपने सर मुंडवाने वाले। ४. जब कपड़ा नहीं है तो दामन कहाँ।

लिया था के जब करनाल से खत आएगा तो मैं जवाब लिखूँगा। आज शबा १५ अक्तूबर सुबह का वक़्त। अभी खाना पका भी नहीं, तबरीद पीकर बैठा था के तुम्हारा ख़त आया और पढ़ा और ये जवाब लिखा। कल्यान बीमार है। अयाज़ को खत देकर डाकघर रवाना किया। बोलो तुम्हारा गिला बेजा या बजा ? भाई गिला करो तो अपने से करो। तुमने करनाल पहुँचकर ख़त लिखने में क्यों देर की ? और हाँ, ये क्या सबब है के बहुत दिन से मीर नसीरुद्दीन का नाम तुम्हारे क़लम से नहीं निकलता ? न उनकी ख़ैरो आफ़ियत, न उनकी बन्दगी। अगर वो मुझसे ख़फ़ा हैं तो उनकी बन्दगी न लिखते, ख़ैरो आफ़ियत तो लिखते। ये बातें अच्छी नहीं।

मीरन साहब के बाब में हैरान हूँ। तन्हा तुम्हारे साथ गए हैं। वालिदा उनकी पानीपत में है। वहाँ कोई मकान लेकर वालिदा को वहीं बुलाएँगे या ख़ुद बाद चन्द रोज़ के यहाँ आ जाएंगे ? ये दो बातें जवाब तलब हैं। मीर नसीरुद्दीन की बन्दगी न लिखने का सबब और मीरन साहब की बूदो[1] बाश की हक़ीक़त लिखो। रहा मेरा पिन्सन; उसका ज़िक्र न करो। अगर मिलेगा तो तुमको इत्तला दी जाएगी। शहर की आबादी का चर्चा हुआ। किराए को मकान मिलने लगे। चार-पान सौ घर आबाद हुए थे के फिर वो क़ायदा मिट गया। अब खुदा जाने क्या दस्तूर जारी हुआ है, आइन्दा क्या होगा ?

सुलतान उल उलेमा मुज्तहिदुल अस्र मौलवी सैयद सरफ़राज़ हुसेन को अगरचे नज़र उनके मदारिज[2] इल्मो अमल पर, बन्दगी चाहिए, मगर ख़ैर, मैं अज़ीज़दारी व यगानगी की राह से दुआ लिखता हूँ; मीरन साहब को दुआ और बाद दुआ बहुत-सा प्यार। मीर नसीरुद्दीन को दुआ। ज़्यादा क्या लिखूँ?

---

१. रहन सहन। २. पद-प्रतिष्ठा की दृष्टि से।

१९

(८ नवम्बर १८५९)

भाई,

न काग़ज़ है न टिकट है, अगले लिफ़ाफ़ों में से एक बैरंग लिफ़ाफ़ा पड़ा है। किताब में से एक काग़ज़ फाड़ कर तुमको ख़त लिखता हूँ और बैरंग लिफ़ाफ़े में लपेट कर भेजता हूँ। ग़मगीन न होना कल शाम को कुछ फ़ुतूह[१] कहीं से पहुँच गई है; आज काग़ज़ व टिकट मँगा लूंगा। से शम्बा ८ नवंबर सुबह का वक़्त है, जिसको अवाम[२] बड़ी फ़ज्र[३] कहते हैं। परसों तुम्हारा ख़त आया था। आज जी चाहा के अभी तुमको ख़त लिखूं, इस वास्ते ये चन्द सतरें लिखीं।

बरख़ुरदार मीर नसीरुद्दीन पर उनकी बेटी का क़दम मुबारक हो। नाम तारीख़ी तो मुझसे ढूंढ़ा न जाएगा। हाँ, अज़ीमुन्निसा बेगम नाम अच्छा है, के इसमें एक रिआयत है, शाह मुहम्मद अज़ीम साहब रहमतुल्ला अले के नाम की। 'मुज्तहिदुल अस्र' को मेरी दुआ कहना। तुमको क्या हुआ है के तुम उनको अपना छोटा भाई जान कर 'मुज्तहिदुल अस्र' नहीं लिखा करते? ये बे अदबी अच्छी नहीं। मीरन साहब को बहुत दुआ कहना और मेरी तरफ़ से प्यार करना।

शहर का हाल क्या जानूं क्या है? 'पौन्टोटी'[४] कोई चीज़ है, वो जारी हो गई है। सिवाय अनाज और ऊपले के कोई चीज़ ऐसी नहीं जिस पर महसूल न लगा हो। जामा मस्जिद के गिर्द पच्चीस-पच्चीस फ़ुट गोल मैदान निकलेगा। दूकानें, हवेलिआँ ढाई जाएंगी। 'दारुलबक़ा'[५] फ़ना हो जाएगी। रहे

१. ऊपरी आय। २. सामान्य जनता। ३. प्रातः काल। ४. चूँगी। ५. कबरिस्तान।

नाम अल्लाह का ! खान चन्द का कूचा 'शाह बोला के बड़' तक डहेगा। दोनों तरफ़ से फावड़ा चल रहा है। बाक़ी ख़ैरो आफ़ियत है। हाकिमे अकबर की आमद आमद सुन रहे हैं। देखिए दिल्ली आएं या नहीं। आएं तो दरबार करें या नहीं, दरबार करें तो मैं गुनहगार बुलाया जाऊं या नहीं। बुलाया जाऊँ तो खलत पाऊं या नहीं। पिन्सन का तो न कहीं ज़िक्र है, न किसी को ख़बर है।

सेशम्बा ८ नवम्बर सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

२०

मेरी जान,

तू क्या कह रहा है ! बनिये से स्याना सो दीवाना। सब्रो तसलीम व तवक्क़लो[1] रज़ा, शेवा सूफ़िया का है। मुझसे ज़्यादा इसको कौन समझेगा, जो तुम मुझको समझाते हो ! क्या मैं ये जानता हूँ के इन लड़कों की परवरिश मैं करता हूँ ! अस्तग़फ़रुल्लाह[2] ! ला मौसरफ़िलवजूद[3] इल्लिल्लाह। या तुम ये समझे हो के मैं शेख़चिल्ली की तरह से ये खयाल बांधता हूँ के मुर्ग़ी मोल लूंगा और उसके अंडे-बच्चे बेचकर बकरी ख़रीदूंगा। और फिर क्या करूँगा और आख़िर क्या होगा। भाई, ये तो मैंने अपना राज़े[4] दिल तुमसे कहा था के आरज़ू यों थी और अब वो नक़्श बातिल[5] हो गया। एक हसरत का बयान था न ख़ाहिश का। देखा इस पिन्सने क़दीम का हाल ? मैं तो इससे हात धोये बैठा हूँ। लेकिन जब तक जवाब न पाऊँ कहीं और क्यों कर चला जाऊं ! हाकिमे अकबर की आने की ख़बर गर्म है। देखिये कब आये ! आये, तो मुझे भी

---

१. ईश्वर पर विश्वास करना, ईश्वर प्रदत्त आफ़त को प्रसन्नता से स्वीकार करना। २. ईश्वर की शरण। ३. ईश्वर के अतिरिक्त सब नाशमान। ४. हृदय का रहस्य। ५. गुप्त चिन्ह।

दरबार में बुलाये या न बुलाये। ख़लत मिले। या न मिले इस पेच में एक और पेच आ पड़ा है। उसको देखलूँ। और फिर सिर्फ़ उसी का इन्तेज़ार नहीं। इस मरहले के तय होने के बाद पिन्सन के मिलने न मिलने का तरद्दुद रहेगा। सुबुक[1] सैर क्यों कर बनवाऊँ! ये सब उमूर मुल्तवी छोड़कर निकल जाऊँ। पिन्सन जारी हुये पर भी तो सिवा रामपूर के कहीं ठिकाना नहीं है। वहां तो जाऊँ और ज़रूर जाऊँ। तीन बरस सिबाते[2] क़दम अख़्तियार किया। अब अंजामेकार में इज़्तराब की क्या वजह!

चुपके हो, रहो और मुझको किसी आलम में ग़मगीन और मुज़्तिर गुमान न करो। हर वक़्त में जैसा मुनासिब होता है वैसा अमल में आता है। साहब, ये मीरन साहब ने जो दो सतरें दस्तख़ते ख़ास से लिखी थीं, वल्लाह मैं कुछ नहीं समझा के ये किस मुक़दमे का ज़िक्र है।

२१

(२ दिसम्बर १८५९)

भाई,

क्या पूछते हो? क्या लिखूँ? दिल्ली की हस्ती मुन्हसिर कई हंगामों पर थी—क़िला, चाँदनी चोक, हर रोज़ा[3] बाज़ार मस्जिदे जामा का, हर हफ़्ते सैर जमना के पुल की। हर साल मेला फूल वालों का। ये पाँचों बातें अब नहीं। फिर कहो—दिल्ली कहाँ? हाँ, कोई शहर क़लमरू ए हिन्द में इस नाम का था।

नवाब गवर्नर जनरल बहादुर १५ दिसम्बर को यहाँ दाख़िल होंगे। देखिए कहाँ उतरते हैं और क्योंकर दरबार करते हैं? आगे के दरबारों में सात

---

१. अधिक सामान रखने वाला यात्री। २. एक स्थान पर स्थिर। ३. दैनिक।

जागीरदार थे, के उनका अलग अलग दरबार होता था--झज्जर, बहादरगढ़, बल्लबगढ़, फ़रुख़ नगर, दोजाना, पाटौदी, लोहारू। चारों मादूमे[1] महज़ हैं जो बाक़ी रहे, उसमें से दोजाना व लोहारू तहत हुकूमत हाँसी-हिसार, पाटौदी हाज़िर। अगर हाँसी-हिसार का कमिश्नर उन दोनों को यहाँ ले आया तो तीन रईस वर्ना एक रईस, बस। रहे दरबार आम वाले महाजन लोग, सब मौजूद। अहले इस्लाम में से सिर्फ़ तीन आदमी बाक़ी हैं--मेरठ में मुस्तफ़ाख़ां, सुलतान-जी में मौलवी सदरुद्दीन, बल्लीमारों में सगे[2] दुनिया मौसूम ब असद तीनों मर-दूद[3] व मतरूद, महरूम[4] व मग़मूम--

तोड़ बैठे जब के हम जामो[5] सुबू फिर हमको क्या
आसमाँ से बाद[6]-ए-गुलफ़ाम गर बरसा करे

तुम आते हो, चले आओ। जाँनिसारख़ाँ के छत्ते की सड़क, ख़ानचन्द के कूचे की सड़क देख जाओ। बुलाक़ी बेगम के कूचे का ढैना, जामा मस्जिद के गिर्द सत्तर-सत्तर गज़ गोल मैदान निकलना, सुन जाओ। 'ग़ालिबे' अफ़सुर्दा दिल को देख जाओ, चले जाओ।

'मुज़्तहिदुल[7] अस्र' मीर सरफ़राज़ हुसेन को दुआ। हकीमुल मुल्क हकीम मीर अशरफ़ अली को दुआ। 'क़ुतुबुल मुल्क' मीर नसीरुद्दीन को दुआ। यूसुफ़े हिन्द मीर अफ़ज़ल अली को दुआ।

मरक़ूमए सुबह जुमा, ६ जमादिल अव्वल, २ दिसम्बर साले हाल।

---

१. सर्वथा नष्ट। २. संसार का कुत्ता। ३. निकम्मा। ४. अभागा। ५. सुराही और प्याला। ६. पुष्पवर्णी सुरा। ७. अपने युग का सबसे बड़ा आदमी।

२२

(१३ दिसम्बर १८५९)

बेमय[१] न कुनद दर कफ़े मन ख़ामा रवाई
सर्दस्त हवा आतिशे बेदर्द कुजाई !

मीर मेहदी,

सुबह का वक़्त है। जाड़ा ख़ूब पड़ रहा है। अँगीठी सामने रखी हुई है। दो हुर्फ़ लिखता हूँ। आग तापता जाता हूँ। आग में गरमी सही मगर हाय, वो आतिशे[२] सय्याल कहाँ के जब दो जुरे पी लिये, फ़ौरन रगो पै में दौड़ गई, दिल तवाना हो गया। दिमाग़ रोशन हो गया। नफ़्से[३] नातिक़ा को तवाजिद बहम पहुँचा। साक़ी ए कौसर का बन्दा और तिश्ना लब[४] ! हाय ग़ज़ब, हाय ग़ज़ब !

मियाँ, तुम पिन्सन पिन्सन क्या कर रहे हो ? गवर्नर जनरल कहाँ और पिन्सन कहां! डिप्टी कमिश्नर, साहब कमिश्नर, लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर। जब इन तीनों ने जवाब दिया हो, तो उसका मुराफ़ा गवर्मेन्ट में करूँ। मुझे तो दरबारी खलत के लाले पडे हैं। तुमको पिन्सन की फ़िक्र है। यहाँ के हाकिम ने मेरा नाम दरबार की फ़र्द में नहीं लिखा। मैंने इसका अपील लेफ़्टेंट गवर्नर के हाँ किया है।

देखिए क्या जवाब आता है।

बहरहाल जो कुछ होगा, तुमको लिखा जायगा।

---

१. जब मैं पान नहीं करता लेखनी में शक्ति नहीं आती, हवा ठंडी है, शराब कहाँ है ? २. शराब। ३. वाक् शक्ति। ४. प्यासा।

अजी, वो यूसुफ़े हिन्द न सही, यूसुफ़े[१] दहर सही, यूसुफ़े[२] असर सही। यूसुफ़े[3] हफ़्त किशवर सही, उनकी जुलेखा ने सितम बरपा कर रखा है। मुझे तो ख़बर नहीं, कहीं हज़रत कह गए हैं के मैं साढ़े सात रुपया महीना भेजे जाऊँगा। अब उसका तक़ाज़ा है। रहीम बख़्श रोज़ आता है और कहता है के फूफाजान को लिखो के फूफीजान भूकी मरती हैं, ख़र्च जल्द भेजो वर्ना नालिश की जाएगी और तुमको गवाह क़रार दिया जायगा। बहरहाल मीरन साहब को ये इबारत पढ़वा देना।

मीर सरफ़राज़ हुसेन को दुआ, मीर नसीरुद्दीन को दुआ। हकीम मीर अशरफ़ अली को दुआ। यूसुफ़े हफ़्त किशवर को दुआ।

से शम्बा १३ दिसम्बर सन् १८५९ ई०।

२३

(१ जनवरी १८६०)

मियाँ लड़के,

कहाँ फिर रहे हो! इधर आओ, ख़बरें सुनो। दरबार लार्ड साहब का मेरठ में हुआ। दिल्ली के इलाक़े के जागीरदार बमूजिब हुक्म कमिश्नर देहली मेरठ गए। मुआफ़िक़े दस्तूरे क़दीम मिल आये। ग़र्ज़ के पंच शंबा २९ दिसम्बर को पहर दिन चढ़े लार्ड साहब यहाँ पहुँचे। काबली दरवाजे की फ़सील के तले देरे हुए। उसी वक़्त तोपों की आवाज़ सुनते ही मैं सवार होकर गया। मीर मुंशी से मिला। उनके ख़ीमे में बैठकर साहब सेक्रेतर को ख़बर करवाई। जवाब आया के फ़ुर्सत नहीं। ये जवाब सुनकर नौमीदी की पोट बाँध कर

---

१. २. समय का यूसुफ़। ३. सात देशों का यूसुफ़।

आया। हर चंद पिन्सन के बाब में हनोज़ ला व[1] नाम नहीं। मगर कुछ फ़िक्र कर रहा हूँ। देखूँ क्या होता है। लार्ड साहब कल या परसों जाने वाले हैं। यहाँ कुछ कलाम व पयाम नहीं मुमकिन। तहरीर डाक में भेजी जाएगी। देखिये क्या सूरत पेश आएगी।

मुसलमानों की अमलाक की वागुज़ाश्त का हुक्म आम हो गया है। जिनको किराये पर मिली है उनको किराया माफ़ हो गया है। आज यक शंबा यकुम जनवरी सन् १८६० है। पहर दिन चढ़ा है के ये ख़त तुमको लिखा है। अगर मुनासिब जानो तो आओ अपनी अमलाक पर क़ब्ज़ा पाओ। चाहो यहीं रहो, चाहो फिर चले जाओ। मीर सरफ़राज़ हुसैन, मीर नसीरुद्दीन, मीरन साहब को मेरी दुआएँ कहना और हकीम मीर अशरफ़ अली को बाद दुआ के ये कह देना के वो हुबूब[2] जो तुमने मुझको दी थीं उनका नुस्ख़ा जल्द लिखकर भेज दो। अल्लाह् मौजूद, मासिवा मादूम। अपनी मर्ग का तालिब—

—ग़ालिब

२४

(फरवरी १८६०)

अहा हा हा! मेरा प्यारा मीर मेहदी आया। आओ भाई, मिज़ाज तो अच्छा है! बैठो। ये रामपूर है। दारुस्सुरूर[3] है, जो लुत्फ़ यहाँ है वो और कहाँ है? पानी, सुभान अल्लाह्! शहर से तीन सौ क़दम पर एक दरिया है और कोसी उसका नाम है। बेशुबा[4] चश्मए आबे हयात की कोई सोत उसमें मिली है। ख़ैर, अगर यों भी है तो, भाई, आबे हयात उम्र बढ़ाता है, लेकिन इतना शीरीं कहाँ होगा?

---

१. नहीं और हाँ। २. गोलियां। ३. आनन्द धाम। ४. निस्सन्देह, अमृत स्रोत।

तुम्हारा ख़त पहुँचा। तरद्दुद अबस, मेरा मकान डाकघर के क़रीब और डाक मुंशी मेरा दोस्त है। न उर्फ़ लिखने की हाजत, न मुहल्ले की हाजत। बेवसवास[1] ख़त भेज दिया कीजिये और जवाब लिया कीजिए। यहाँ का हाल सब तरह ख़ूब है और सोहबत[2] मरग़ूब है। इस वक़्त तक मेहमान हूँ, देखूँ क्या होता है। ताज़ीम व तौक़ीर में कोई दक़ीक़ा फ़रो गुज़ाश्त[3] नहीं है। लड़के दोनों मेरे साथ आये हैं। इस वक़्त इससे ज़्यादा नहीं लिख सकता।

२५

(६ अप्रेल १८६०)

मीर मेहदी,

तुम मेरे आदात को भूल गए। माहे मुबारक रमज़ान में कभी मस्जिदे जामा की तरावी[4] नाग़ा हुई है? मैं इस महीने में रामपूर क्यों कर रहता? नवाब साहब माने[5] रहे और बहुत मना करते रहे। बरसात के आमों का लालच देते रहे मगर भाई मैं ऐसे अंदाज़ से चला के चाँद रात के दिन यहाँ आ पहुँचा। यकशंबे को ग़ुर्रए[6] माहे मुक़द्दस हुआ। उसी दिन से हम सुबह को हामिद अलीख़ाँ की मस्जिद में जाकर जनाब मौलवी जाफ़र अली साहब से क़ुरान सुनता हूँ, शब को मस्जिदे जामा जाकर नमाज़ तरावी पढ़ता हूँ। कभी जो जी में आती है तो वक़्ते सोम 'महताब बाग़' में जाकर रोज़ा खोलता हूँ और सर्द पानी पीता हूँ। वाह-वाह! क्या अच्छी तरह उम्र बसर होती है।

अब असल हक़ीक़त सुनो। लड़कों को साथ ले गया था। वहाँ उन्होंने मेरा नाक में दम कर दिया। तन्हा भेज देने में वहम आया के ख़ुदा जाने अगर

१. निश्चिन्त होकर। २. संगति अनुकूल। ३. अन्तर। ४. रमज़ान में पढ़ी जाने वाली विशेष नमाज़। ५. बाधक। ६. रमज़ान की पहली तारीख़।

को अम्र[1] हादिस हो तो बदनामी उम्र भर रहे। इस सबब से जल्द चल आया वर्ना गर्मी-बरसात वहाँ काटता। अब बशर्त्ते हयात, जरीदा[2] बाद बरसात जाऊँगा और बहुत दिनों तक यहाँ न आऊँगा। क़रारदाद ये है के नवाब साहब जुलाई सन् १८५९ से, के जिसको ये दसवां महीना है, सौ रुपया मुझे माह बमाह भेजते हैं। अब जो मैं वहाँ गया तो, सौ रुपया महीना बनाम दावत और दिया याने रामपूर रहे तो दो सौ रुपया महीना पाऊँ और दिल्ली रहूँ तो सौ रुपया। भाई, सौ दो सौ में कलाम नहीं, कलाम इसमें है के नवाब साहब दोस्ताना व शागिर्दाना देते हैं। मुझको नौकर नहीं समझते हैं। मुलाक़ात भी दोस्ताना रही। मानिक़ा[3] व ताज़ीम जिस तरह अहबाब में रस्म है, वो सूरत मुलाक़ात की है। लड़कों से मैंने नज्र दिलवाई थी, बस। बहरहाल ग़नीमत है। रिज़्क के अच्छी तरह मिलने का शुक्र चाहिए। कमी का शिकवा क्या? अँगरेज़ की सरकार से दस हज़ार रुपए साल ठहरे। उसमें से मुझको मिले ७५० रुपये साल, एक साहब ने न दिए, मगर तीन हज़ार रुपये साल इज्ज़त में वो पाया, जो रईसज़ादों के वास्ते होता है, बना रहा। "खान साहब बिसियार महरबाँ, दोस्ताँ" अलक़ाब, खलत-सात पार्चा और जेग़ा सरपेच व मालाए मरवारीद। बादशाह अपने फ़र्ज़न्दों के बराबर प्यार करते थे। बख्शी नाज़िर, हकीम, किसी से तौक़ीर कम नहीं, मगर फ़ायदा वही क़लील। सो मेरी जान यहाँ भी वही नक़्शा है। कोठरी में बैठा हूँ, टट्टी लगी हुई है, हवा आ रही है, पानी का झज्जर धरा हुआ है, हुक़्क़ा पी रहा हूँ, ये खत लिख रहा हूँ। तुमसे बातें करने को जी चाहा, ये बातें कर लीं।

मीर सरफ़राज़ हुसेन और मीरन साहब और मीर नसीरुद्दीन को ये खत पढ़ा देना। और मेरी दुआ कह देना।

जुमा, ६ अप्रेल।

---

१. दुर्घटना। २. एकाकी। ३. मिलना और अभिवादन। ४. मित्रों पर अत्यधिक दयालू।

२६

(मई १८६०)

मियाँ,

क्यों नासिपासी[1] व नाहक़ शिनासी करते हो? चश्मे[2] बीमार ऐसी चीज़ है के जिसकी कोई शिकायत करे? तुम्हारा मुँह चश्मे बीमार के लायक़ कहाँ! चश्मे बीमार मीरन साहब क़िब्ला की आँख को कहते हैं। जिसको अच्छे-अच्छे आरिफ़ देखते रहते हैं। तुम गंवार, चश्मे बीमार को क्या जानो? ख़ैर, हँसी हो चुकी, अब हक़ीक़त मुफ़स्सिल लिखो। तुम तो ज़हीर[3] की आदत रखते हो। अवारिज़े[4] चश्म से तुमको क्या इलाक़ा? मेरे नूरे चश्म की आँख क्यों दुखी? मैंने ख़त तुम्हें, जानकर, नहीं लिखा। तुमने लिखा था के बाद ईद मैं वहाँ आऊँगा, मुझको ख़त भेजने में ताम्मुल हुआ। लिखते कुछ हो, करते कुछ हो। तनख़ा की सुनो। तीन बरस के दो हज़ार, दो सौ पचास रुपये हुए। सौ मदद ख़र्च के जो पाये थे वो कट गये। डेढ़ सौ अमला[5] फ़ैला के नज़र हुए, मुख़्तारे कार दो हज़ार लाया। चूँके मैं उसका क़र्ज़दार हूँ, रुपये उसने अपने घर में रखे और मुझसे कहा के मेरा हिसाब कीजिए। हिसाब किया, सूद-मूल सात कम पन्द्रह सौ हुए। मैंने कहा—'मेरे क़र्जे मुतफ़र्रिक़ का हिसाब कर'। कुछ ऊपर ग्यारह सौ निकले। मैं कहता हूँ—'ये ग्यारह सौ बाँट दे, नौ सौ बचे, आधे तू ले, आधे मुझे दे।' वो कहता है—'पन्द्रह सौ मुझको दो। पान सौ सात तुम लो' ये झगड़ा मिट जाएगा, तब कुछ हात आएगा। ख़ज़ाने से रुपया आ गया है। मैंने आँख से देखा हो तो आँखें फूटें। बात रह गई, पत रह गई। हासिदों को मौत आ गई। दोस्त शाद हो गये। मैं जैसा नंगा-

---

१. अकृतज्ञता। २. बीमार के नेत्र। ३. पेचिश की बीमारी। ४. आँखों की बीमारी। ५. सरकारी कर्मचारी।

भूका हूँ, जब तक जीऊँगा ऐसा ही रहूँगा। मेरा दारो गीर से बचना मौजिज़ए[1] असदुल्लाही है, इन पैसों का हात आना अतियए[2] यदुल्लाही है। हाकिमे शहर लिख दे के ये शख़्स हर्गिज़ पिन्सन पाने का मुस्तहक़ नहीं, हाकिमे सदर मुझको पिन्सन दिलवाये और पूरा दिलवाये।

मीरन साहब को दुआ कहता हूँ और मिज़ाज की ख़बर पूछता हूँ। जवाबे[3] तुर्की, तुर्की; जवाबे अरबी, अरबी। जो उन्होंने लिखा वो मैंने भी लिखा। 'मुज्तहिदुल असर' को बन्दगी लिखूँ, दुआ लिखूं, क्या लिखूँ? नहीं भई वो मुज्तहिद[4] हों, हुआ करें; मेरे तो फ़र्ज़न्द हैं। मैं दुआ ही लिखूँगा और इसी तरह मीर नसीरुद्दीन को भी दुआ।

२७

(६ जून १८६०)

जाने ग़ालिब,

अब के ऐसा बीमार हो गया था के मुझको ख़ुद अफ़सोस था। पाँचव दिन ग़िज़ा खाई; अब अच्छा हूँ; तन्दुरुस्त हूँ। ज़िलहज्जा सन् १२७६ तक कुछ खटका नहीं है। मुहर्रम की पहली तारीख़ से अल्लाह मालिक है। मीर नसीरुद्दीन आए कई बार, मगर मैंने उनको देखा नहीं। अब के बार दर्द में मुझको ग़फ़लत बहुत रही; अक्सर अहबाब के आने की खबर नहीं हुई। जब से अच्छा हुआ हूँ, सैयद साहब नहीं आए।

तुम्हारी आँखों की ग़ुबार की वजह ये है के जो मकान दिल्ली में ढाए गए और जहाँ जहाँ सड़कें निकलीं, जितनी गर्द उड़ी, उसको आपने अज़राहे

---

१. हज़रत अली का चमत्कार। २. हज़रत अली का दान। ३. जैसे को तैसा। ४. मौलवी।

मुहब्बत अपनी आँखों में जगह दी। बहरहाल, अच्छे हो जाओ और जल्द आओ। मुज्तहिदुल अस्र मीर सरफ़राज़ हुसेन का खत आया था। मैंने मीरन साहब की आज़ुर्दगी के खौफ़ से उसका जवाब नहीं लिखा। ये रुक़्क़ा उन दोनों साहबों को पढ़ा देना ताके मीर सरफ़राज़ हुसेन साहब अपने खत की रसीद से मुत्तले हो जाएँ और मीरन साहब मेरे पास उलफ़त[1] पर इत्तला पाएँ।

चहार शंबा ६ जून सन् १८६० ई०।

२८

(१८ दिसम्बर १८६० ई०)

मियाँ,

तुम्हारे खत का जवाब मुनहस्सिर तीन बातों पर है, दो का जवाब लिखता हूँ, तीसरी बात का जवाब तुम बताओ के तुम्हें क्या लिखूँ? पहली बात मियाँ मुहम्मद अफ़ज़ल तस्वीर ले गए। अब वो तस्वीर खींचा करें और तुम इंतज़ार। दूसरी बात मीर नसीरुद्दीन आए और इन तीनों साहबों का जींद के जाने का हाल मुफ़स्सिल मालूम हुआ। हक़ ताला अपने बंदो पर रहम फ़रमाये। तीसरी बात—मीरन साहब को जब तक तुम न कहो मैं दिल्ली न बुलाऊँ। गोया उनके आशिक़ तुम्हीं हो, मै नही। भाई, होश मे आओ, ग़ौर करो। ये मक़दूर मुझ में नही के उनको यहाँ बुलाकर एक अलग मकान रहने को दूँ और अगर ज्यादा न हो तो तीस रुपया महीना मुक़र्रर करूँ, के भाई ये लो और दरीबा और चावड़ी और अजमेरी दरवाज़े का बाज़ार और लाहौरी दरवाजे का बाज़ार नापते फिरो और उर्दू बाज़ार और खास बाज़ार और बुलाक़ी बेगम का कूचा और खान दौरानखाँ की हवेली के खँडर गिनते फिरो। अै मीर मेहदी, तू दरमाँदा[2] व आजिज़ पानीपत में पड़ा रहे, मीरन साहब वहाँ

---

१. स्नेह। २. विवश।

पड़े हुए दिल्ली देखने को तरसा करें, सरफ़राज़ हुसेन नौकरी ढूंढ़ता फिरे और मैं इन ग़महाय[1] जाँगुदाज़ की ताब लाऊँ? मक़दूर होता तो दिखा देता के ने क्या किया।

अं[2] बसा आरज़ू, के ख़ाक शुदा!

अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह!!!

से शम्बा, ४ जमादि उस्सानी १८ दिसम्बर।

२९

(९ जनवरी १८६१)

मियाँ,

तुम्हारी तहरीर का जवाब ये है के वो तस्वीर जो मैंने मियाँ मुहम्मद अफ़ज़ल को दी थी वो उन्होंने वापिस दी और उसकी नक़ल के बाब में ये कहा के अभी तैयार नहीं है। जब वो तैयार हो जाएगी मैं उनको रुपया देकर ले लूँगा। ख़ातिर जमा रखो।

पिन्सन सरासर सब को शशमाही मिलने का हुक्म हो गया। हर महीने में सूदी लो और खाओ। कश्मीरी कटरा बिगड़ गया। हाय, वो ऊँचे ऊँचे दर और वो बड़ी बड़ी कोठरियाँ दो रूया[3] नज़र नहीं आती के क्या हुईं। आहनी सड़क का आना और उसके रहगुज़र का साफ़ होना हनोज़ मुल्तवी है। चार दिन से पुरवा हवा चलती है। अब्र आते हैं मगर सिर्फ़ छिड़काव होता है। मेंह नहीं बरसता। गेहूँ, चना, बाजरा तीनों अनाज एक भाव हैं--नौ सेर साढ़े-नौ सेर।

---

१. प्राण नाशी वेदना। २. ऐसी बहुत सी लालसाएँ थी जो मिट्टी में मिल गईं। ३. दोनों पंक्तियों की।

मीर सरफ़राज़ हुसेन और मीरन साहब को मैं अच्छी तरह नहीं समझा के जींद में है या यहाँ हैं। मीर नसीरुद्दीन दो बार मेरे पास आए, अब मुझको नहीं मालूम के वो कहां हैं। क़ासिम अलीख़ां "क़ुतुबुल[1] अक़ताब" एक दिन कहते थे के मीर अहमद साहब के क़बायल यहाँ आए हुए हैं। आख़िर को शादी भी कब होने वाली है और कहाँ होने वाली है। इस ख़त का जो जवाब लिखो तो सब हालत मुफ़स्सिल लिखो।

सुबह चहार शम्बा, नहुम जनवरी सन् १८६१ ई०।

—ग़ालिब

३०

(११ जनवरी १८६१)

लो साहब, ये तमाशा देखो। मैं तो तुमसे पूछता हूँ के मीर सरफ़राज़-हुसेन और मीर नसीरुद्दीन कहां हैं, हालाँ के मीर नसीरुद्दीन शहर में हैं और मुझसे नहीं मिलते। मीर सरफ़राज़ हुसेन आए हैं और मेरे हां नहीं उतरे। लाहौला वला क़ुव्वता! उतरना कैसा, मिलने को भी तो नहीं आए। अफ़सोस। जिनको मैं अपना समझता हूँ वो मुझको बेगाना जानते हैं। अब तुम ये पूछो के नसीरुद्दीन का दिल्ली में होना और 'मुज्तहिदुल अस्र' का यहां आना तूने क्यों कर जाना।

भाई, आज जुमे का दिन, २८ जमादिउस्सानी की, और ११ जनवरी की, सुबह के वक़्त मुँह अँधेरे, उसी वक़्त मेरी आँख खुली थी, लिहाफ़ में लिपटा हुआ पड़ा था के नागाह मीर नसीरुद्दीन साहब तशरीफ़ लाए और फ़रमाया के मैं अब जाता हूँ और मीर हसन साहब भी जाते हैं। मैं समझा मीर सरफ़-राज़ हुसेन। जब बाद तकरार मालूम हुआ, तो मीर हसन—जैपूर से आए और

---

१. ऐसा वली जिस पर संसार का प्रबन्ध निर्भर हो, उनमें शिरोमणि।

ख़ुदा जाने कहाँ उतरे और अब कहाँ जाते हैं। है, है! मुझे ग़ैर समझा या मरा हुआ समझा के मेरे हां न आए और मुझसे न मिले। अपनी ससराल में रहे और मैके को छोड़ा। वल्लाह, मेरा जी उनके देखने को बहुत चाहता था। अब उठा हूँ। सर्दी रफ़ा हो ले, धूप निकल ले, आग़ाजान के हां आदमी को भेजता हूँ। मैं कम्बख़्त ये भी तो नहीं जानता के आगाजान कहां रहते हैं। अब मीर अहमदअली की बीबी पास, हब्शख़ां के फाटक आदमी भेजूँगा। जब आग़ाजान के घर का पता मालूम हो जाएगा और आदमी देख आएगा और ये भी मालूम कर आएगा के मीर हसन साहब हैं तो मैं सवार होकर जाऊँगा और उनसे मिलूँगा। तुम इस ख़त का जवाब जल्द लिखो और अपने चचा के यहां आने का मंशा और उनका अहवाल मुफ़स्सिल लिखो।

तस्वीर का हाल आगे लिख चुका हूँ। ख़ातिर जमा रखो और मुज्तहिदुल अस्र और मीरन साहब का हाल लिखो।

सुबह जुमा ११ जनवरी सन् १८६१ ई०।

नजात का तालिब—

—ग़ालिब

३१

(१८६१ ई०)

जाने ग़ालिब,

तुम्हारा ख़त पहुंचा। ग़ज़ल इस्लाह के बाद पहुँचती है—

'हरेक से पूछता हूँ—वो कहाँ है?'

मिसरा बदल देने से ये शेर किस रुतबे का हो गया!

अै मीर मेहदी तुझे शर्म नहीं आती—

'मियाँ, ये अहले देहली की ज़बाँ है।'

अरे! अब अहले देहली या हिन्दू है या अहले हुर्फ़ा है या खाकी हैं या पंजाबी हैं या गोरे हैं। इनमें से तू किसकी ज़बान की तारीफ़ करता है। लखनऊ की आबादी में कुछ फ़र्क़ नहीं आया। रियासत तो जाती रही बाक़ी हर फ़न के कामिल लोग मौजूद हैं।

ख़स की टट्टी, पुरवा हवा, अब कहाँ? लुत्फ़, वो तो उसी मकान में था। अब मीर ख़ैराती की हवेली में वो जहत[1] और सिम्त बदली हुई है। बहरहाल मी[2] गुज़रद। मुसीबते अज़ीम ये है के क़ारी का कुआँ बन्द हो गया। लाल-डिग्गी के कुएँ यकक़लम खारी हो गये। ख़ैर, खारी ही पानी पीते। गर्म पानी निकलता है। परसों मैं सवार होकर कुओं का हाल दरियाफ़्त करने गया था। मस्जिदे जामा होता हुआ राजघाट दरवाज़े को चला। मस्जिदे जामा से राजघाट दरवाज़े तक बेमुबालग़ा एक सहरा[3] लक़ व दक़ है। ईंटों के ढेर जो पड़े हैं वो अगर उठ जाएँ तो हू का[4] मकान हो जाए। याद करो, मिर्ज़ा गौहर के बाग़ीचे के इस जानिब को कई बाँस नशेब[5] था, अब वो बाग़ीचे के सेहन के बराबर हो गया, यहाँ तक के राजघाट का दरवाज़ा बन्द हो गया। फ़सील के कँगूरे खुल रहे हैं, बाक़ी सब अट गया। कश्मीरी दरवाज़े का हाल तुम देख गये हो। अब आहनी सड़क के वास्ते कलकत्ता दरवाजे से काबली दरवाज़े तक मैदान हो गया। पंजाबी कटरा, धोबी वाडा, रामजी गंज, सआदतख़ाँ का कटरा, जरनेल की बीबी की हवेली, रामजीदास गोदाम वाले के मकानात, साहबराम का बाग़–हवेली इनमें से किसी का पता नहीं मिलता। क़िस्सा मुख़्तसर, शहर सहरा हो गया था, अब जो कुएँ जाते रहे और पानी गौहरे[6] नायाब हो गया, तो यह सहरा[7] सहरा[8] ए कर्बला हो जाएगा।

अल्लाह अल्लाह! दिल्ली न रही और दिल्ली वाले अब तक यहाँ की ज़बान को अच्छा कहे जाते हैं। वाह रे हुस्ने अतक़ाद! अरे, बन्दए ख़ुदा उर्दू

---

१. दिशा। २. किसी तरह गुज़रती है। ३. उजाड़ बियाबान। ४. सन्नाटा। ५. ढाल। ६. अलभ्य मोती। ७. रेगिस्ताम। ८. कर्बला की मरुभूमि।

बाज़ार न रहा उर्दू कहाँ? दिल्ली, वल्लाह, अब शहर नहीं है, कैंप है, छावनी है, न क़िला न शहर, न बाज़ार न नहर।

अलवर का हाल कुछ और है। मुझे और इन्क़लाब[1] से क्या काम। अलेक्ज़ेंडर हैडरले का कोई ख़त नहीं आया। ज़ाहिरा उनकी मुसाहिबत नहीं, वर्ना मुझको ज़रूर ख़त लिखता रहता।

मीर सरफ़राज़ हुसेन और मीरन साहब और नसीरुद्दीन को दुआ।

३२

(२३ मई १८६१)

आओ मियां सैयदज़ादए आज़ादा, दिल्ली के आशिक़ दिल-दादा, ढाए हुए 'उर्दू बाज़ार' के रहने वाले, हसद से लखनऊ के बुरा कहने वाले, न दिल में मेहर[2] व आज़र्म, न आँख में हया व शर्म! निज़ामुद्दीन 'ममनून' कहाँ। 'ज़ौक़' कहाँ, मोमिनख़ाँ कहाँ! एक 'आज़ुर्दा' सो ख़ामोश; दूसरा ग़ालिब, वो बेख़ुद व मदहोश। न सुख़नवरी रही, न सुख़न्दानी, किस बिरते पर तत्ता पानी! हाय दिल्ली, वाय दिल्ली, भाड़ में जाय दिल्ली।

सुनो साहब पानीपत के रईसों में एक शख़्स हैं—अहमद हुसेनख़ाँ वल्द सरदार ख़ाँ वल्द दिलावर ख़ाँ और नाना उस अहमद हुसेन ख़ाँ के ग़ुलाम हुसेन ख़ाँ वल्द मुसाहिब ख़ाँ। इस शख़्स का हाल अज़ रूए तहक़ीक़ मुशर्रह[3] और मुफ़स्सिल[4] लिखो। क़ौम क्या है, माश[5] क्या है, तरीक़ क्या है, अहमद हुसेन की उम्र क्या है? लियाक़ते ज़ाती का क्या रंग है, तबीयत का क्या ढंग है! भाई, ख़ूब छान कर लिख और जल्द लिख।

पंज शम्बा २३ मई सन् १८६१ ई०।

---

१. क्रान्ति। २. मेल मिलाप। ३. व्याख्या सहित। ४. विस्तृत। ५. आय।

३३

(मई १८६१)

'ऐ जनाब मीरन साहब, अस्सलामालेकम।'

'हज़रत, आदाब।'

'कहो साहब, आज इजाज़त है, मीर मेहदी के ख़त का जवाब लिखने को?'

'हुज़ूर, मैं क्या मना किया करता हूँ? मैंने तो ये अर्ज़ किया के अब वो तन्दुरस्त हो गए हैं, बुख़ार जाता रहा है, सिर्फ़ पेचिश बाक़ी है। वो भी रफ़ा हो जाएगी। मैं अपने हर ख़त में आपकी तरफ़ से लिख देता हूं। आप फिर क्यों तकलीफ़ करें?'

'नहीं, मीरन साहब, उसके खत को आए हुए बहुत दिन हुए हैं। वो ख़फ़ा हुआ होगा, जवाब लिखना ज़रूर है।'

'हज़रत, वो आपके फ़र्ज़न्द हैं। आपसे ख़फ़ा क्या होंगे?'

'भाई, आख़िर कोई वजह तो बताओ के तुम मुझे ख़त लिखने से क्यों बाज़ रखते हो!'

'सुभान अल्लाह! ऐ लो हज़रत, आप तो ख़त नहीं लिखते और मुझे फ़रमाते हैं के तू बाज़ रखता है।'

'अच्छा, तुम बाज़ नहीं रखते, मगर ये तो कहो के तुम क्यों नहीं चाहते के मीर मेहदी को ख़त लिखूँ?'

'क्या अर्ज़ करूँ? सच तो ये है के जब आपका ख़त जाता और वो पढ़ा जाता तो मैं सुनता और हज़ उठाता, अब जो मैं वहाँ नहीं हूँ तो नहीं चाहता के तुम्हारा ख़त जावे। मैं अब पंजशंबे को रवाना होता हूँ। मेरी रवानगी के तीन दिन बाद आप शौक़ से लिखिएगा।'

'मियाँ, बैठो, होश की ख़बर लो। तुम्हारे जाने न जाने से मुझे क्या इलाक़ा ? मैं बूढ़ा आदमी, भोला आदमी, तुम्हारी बातों में आ गया और आज तक उसे ख़त नहीं लिखा। लाहौला वला क़ूवता।'

सुनो मीर मेहदी साहब, मेरा कुछ गुनाह नहीं, मेरे ख़त का जवाब लिखो। तप तो रफ़ा हो गई, पेचिश के रफ़ा होने की ख़बर शिताब लिखो, परहेज़ का भी ख़याल रखा करो। ये बुरी बात है के वहाँ कुछ खाने को मिलता ही नहीं। तुम्हारा परहेज अगर होगा भी तो 'अस्मते बीबी[1] अज़ बेचादरी' होगा। हालात यहाँ के मुफ़स्सिल मीरन साहब की ज़बानी मालूम होंगे। देखो की बैठे हैं। क्या जानूँ हकीम मीर अशरफ़ अली में और उनमें कुछ कौन्सल[2] हो तो रही है। पंजशंबा रवानगी का दिन ठहरा तो है। अगर चल निकलें और पहुँच जाएँ तो उनसे ये पूछो के जनाब मलिकए इंग्लिस्तान की साल-गिरह की रोशनी की महफ़िल में तुम्हारी क्या गत हुई थी, और ये भी मालूम कर लीजिए के जो फ़ारसी मसल मशहूर है के 'दफ़्तर रा गाव ख़ुर्द' इसके माने क्या हैं, पूछिए और न छोड़िए जब तक न बतायें।

इस वक़्त पहले तो आँधी चली, फिर मेह आया। अब मेह बरस रहा है। मैं ख़त लिख चुका हूँ, सरनामा लिख कर रख छोड़ूँगा। जब तरश्शो मौक़ूफ़ हो जाएगा तो कल्यान डाक को ले जाएगा। मीर सरफ़राज़ हुसेन को दुआ पहुँचे। अल्लाह, अल्लाह! तुम पानीपत के 'सुलतानुलउलमा' और 'मुज्तहिदुल अस्र' बन गये। कहो वहाँ के लोग तुम्हें क़िब्ला व काबा कहने लगे या नहीं ? मीर नसीरुद्दीन को दुआ कहना।

३४

(मई १८६१)

मियाँ,

किस हाल में हो, किस ख़याल में हो ? कल शाम को मीरन साहब

१. लज्जादेवी निर्वसना। २. परामर्श।

रवाना हुए। यहाँ उनकी ससराल में क़िस्से क्या क्या न हुए। सास और सालियों ने और बीबी ने आँसुओं के दरिया बहा दिये। ख़ुशदामन[1] साहब बलाएँ लेती हैं। सालियाँ खड़ी हुईं दुआएँ देती हैं। बीबी मानिंद सूरते दीवार चुप, जी चाहता है, चीख़ने को, मगर नाचार चुप। वो तो ग़नीमत था के शहर वीरान, न कोई जान न पहचान; वर्ना हमसाये में क़यामत बरपा हो जाती। हरेक नेकबख़्त अपने घर से दौड़ी आती। इमामे[2] ज़ामिन अले सलाम का रुपया बाज़ू पर बाँधा। ग्यारह रुपए ख़र्चे राह दिये। मगर ऐसा जानता हूँ के मीरन साहब अपने जद की[3] नियाज़ का रुपया राह ही में अपने बाज़ू पर से खोल लेंगे और तुमसे सिर्फ़ पांच रुपए ज़ाहिर करेंगे। अब सच झूट तुम पर खुल जाएगा। देखना यही होगा के मीरन साहब तुमसे बात छिपाएँगे। इससे बढ़कर एक बात और है और वो महले ग़ौर है—सास ग़रीब ने बहुत सी जलेबियाँ और तोदए[4] क़लाक़न्द साथ कर दिया है, और मीरन साहब ने अपने जी में ये इरादा कर लिया है के जलेबियाँ राह में चट करें और क़लाक़न्द तुम्हारे नज़र कर कर तुम पर अेहसान धरेंगे। भाई, मैं दिल्ली से आया हूँ, क़लाक़न्द तुम्हारे वास्ते लाया हूँ। जिन्हार न बावर कीजियो। माले मुफ़्त समझकर ले लीजियो। कौन गया है? कौन लाया है? कल्लू, अयाज़ के सर पर क़ुरान रखो। कल्यान के हात गंगाजली दो। बल्के मैं भी क़स्म खाता हूँ के इन तीनों में से कोई नहीं लाया। वल्लाह मीरन साहब ने किसी से नहीं मँगाया। और सुनो, मौलवी मज़हर अली साहब लाहौरी दरवाज़े के बाहर सदर बाज़ार तक उनके पहुँचाने को गये। रस्मे मुशाइअत[5] अमल में आई। अब कहो भाई, कौन बुरा और कौन अच्छा है? मीरन साहब की

---

१. सास। २. यात्रा पर जाते समय भुजा पर बांधने का एक मांगलिक वस्त्र। ३. दादा। ४. ढेर भर क़लाक़न्द। ५. बिदाई।

नाज़ुक मिज़ाजियों ने खेल बिगाड़ रखा है। ये लोग तो उन पर अपनी जान निसार करते हैं, औरतें सदक़े जाती हैं, मर्द प्यार करते हैं।

'मुज्तहिदुल असर—सुलतान उल उलेमा' मौलाना सरफ़राज़ हुसेन को मेरी दुआ कहना और कहना के हज़रत हम तुमको दुआ कहें और तुम हमको दुआ दो। मियां, किस क़िस्से में फँसा है? फ़िक़ा[1] पढ़कर क्या करेगा? तिब व[2] नुजूम वहैत[3] व मन्तिक़ व फ़लसफ़ा पढ़ जो आदमी बना चाहे। ख़ुदा के बाद नबी और नबी के बाद इमाम, यही है मज़हबे हक़। वस्सलाम व अकराम। 'अली, अली' किया करो, और फ़ारिग़ुल[4] बाल रहा करो।

३५

(२६ जुलाई १८६१ ई०)

जुमा १७ मुहर्रम २६ जुलाई।
सैयद साहब,

कल पहर दिन रहे तुम्हारा ख़त पहुँचा। यक़ीन है के उस वक़्त या शाम को मीर सरफ़राज़ हुसेन तुम्हारे पास पहुंच गए हों। हाल सफ़र का जो कुछ है, उनकी ज़बानी सुन लोगे, मैं क्या लिखूं? मैंने भी जो कुछ सुना है, उन्हीं से सुना है। इनका इस तरह नाकाम फिर आना, मेरी तमन्ना और मेरे मक़सूद के ख़िलाफ़ है, लेकिन मेरे अक़ीदे और तसव्वुर के मुताबिक़ है। मैं जानता था के वहां कुछ न होगा, सौ रुपए की ज़ेरबारी नाहक़ हुई, चूं के ये ज़ेरबारी[5] मेरे भरोसे पर हुई तो मुझे भी शर्मसारी है। मैंने इस छयासठ बरस में इस तरह की शर्मसारियां और रू सियाहियां बहुत उठाई हैं। जहां

---

१. इस्लामी धर्म शास्त्र। २. चिकित्सा शास्त्र और ज्योतिष। ३. तर्कशास्त्र। ४. निश्चिन्त। ५. परेशानी।

हज़ार दाग़ हैं, एक हज़ार एक सही, मीर सरफ़राज़ हुसेन की ज़ेरबारी से दिल कुढ़ता है।

वबा[1] को क्या पूछते हो ? क़द्र अंदाज़ क़ज़ा[2] के तरकश में यही एक तीर बाक़ी था। क़त्ल ऐसा आम! लूट ऐसी सख्त! काल ऐसा बड़ा। वबा क्यों न हो ? 'लस्सानउल[3] गैब' ने दस बरस पहले फ़रमाया है—

हो चुकीं ग़ालिब बलाएँ सब तमाम
एक मर्गे नागहानी और है

मियाँ, सन् १२७७ की बात ग़लत न थी, मगर मैंने वबा ए आम में मरना अपने लायक़ न समझा। वाक़ई इसमें मेरी क़सरे शान थी। बाद रफ़े फ़साद हुआ समझ लिया जाएगा। 'कुल्लियाते उर्दू' का छापा तमाम हुआ। अग़लब के इसी हफ़्ते हैं, ग़ायत[4] इसी महीने में एक नुस्ख़ा बसबीले डाक तुमको पहुँच जाएगा। 'कुल्लियात नज़्मे फ़ारसी' के छापने की भी तदबीर हो रही है। अगर डौल बन गया, तो वो भी छापा जाएगा। 'क़ातै बुरहान' के ख़ात्मे में कुछ फ़वायद बढ़ाए गए हैं। अगर मक़दूर[5] मुसाअदत[6] करेगा तो मैं बशिरकते[7] गैब उसको छपवाऊंगा; मगर ये ख़याल मुहाल है। मेरे मक़दूर की तैयारी का हाल 'मुज्तहिदुल अस्र' को मालूम है। 'वल्लाहअलाकुल्ले[8] शईन क़दीर' ख़ुदा का बन्दा हूँ, अली का ग़ुलाम। मेरा ख़ुदा करीम, मेरा ख़ाविन्द सख़ी।

अली[9] दारम चे ग़म दारम ?

वबा की आँच मद्धम हो गई है। पान-सात दिन बड़ा ज़ोर-शोर रहा। परसों ख़ाजा मिर्ज़ा वल्द ख़ाजा अमान मय अपनी बीबी बच्चों के दिल्ली में आया।

---

१. दैवीविपत्ति। २. काल। ३. अदृश्य की भाषा। ४. तात्पर्य। ५. सामर्थ्य। ६. अनुकूल। ७. स्वयं। ८. ईश्वर सब पर प्रभुत्व रखता है। ६, मैं अली का हूँ, मझे क्या दुःख है ?

कल रात को उसका नौ बरस का बेटा हैज़ा करके मर गया । इन्ना लिल्लाह्, व इन्ना इलहे राजऊन ।

अलवर में भी वबा है । अलेक्ज़ेण्डर हैडरले मुश्तहिर[1] ब "अलक साहब" मर गया । वाक़ई बेतकल्लुफ़ वो मेरा अज़ीज़ और तरक़्क़ी ख़ा और राज में और मुझ में मुतवस्सित था, इस जुर्म में माख़ूज़[2] होकर मरा । ख़ैर, ये आलमे असबाब है । इसके हालात से हमको क्या ।

३६

(८ अगस्त १८६१)

भाई,

तुम सच कहते हो—

बरसरे[3] फ़र्ज़न्द आदम हर चे आयद बगुज़रद ।

लेकिन मुझे अफ़सोस इस बात का है के ये ज़ेरबारी मेरी तहरीर के भरोसे पर हुई और खिलाफ़ मेरी मर्ज़ी के हुई । जिस तरह से ये आए हैं, अगर चे मेरी तबीयत और मेरी ख़ाइश के मुनाफ़ी[4] है; लेकिन वल्लाह मेरे अक़ीदे और तसव्वुर और क़यास के मुताबिक़ है । याने मैं यही समझता था के अलबत्ता यों ही होगा ।

"दीवाने उर्दू" छप चुका । हाय, लखनऊ के छापेख़ाने ने जिसका दीवान छापा उसको आसमान पर चढ़ा दिया, हुस्ने[5] ख़त से अल्फ़ाज़ को चमका दिया । दिल्ली पर और उसके पानी पर और उसके छापे पर लानत ! साहबे दीवान को इस तरह याद करना जैसे कोई कुत्ते को आवाज़ दे । हर कापी देखता

१. अलक के नाम से प्रसिद्ध । २. बन्दी होकर । ३. मनुष्य पर जो कुछ पड़े वह गुज़र जाती है । ४. प्रतिकूल । ५. सुलेखन ।

रहा हूँ। कापी निगार और था, मुतवस्सित जो कापी मेरे पास लाया करता था वो और था। अब जो दीवान छप चुके, हक़उल[1] तस्नीफ़ एक मुझको मिला। ग़ौर करता हूँ तो वो अल्फ़ाज़े ग़लत जों के तों हैं; याने कापी निगार ने न बनाए। नाचार ग़लतनामा लिखा, वो छपा। बहरहाल ख़ुश व नाख़ुश कई जिल्दें मोल लूँगा। अगर ख़ुदा चाहे तो इसी हफ़्ते में तीन मुजल्लद असहाबे[2] सलसा के पास पहुँच जाएँ। न मैं ख़ुश हुआ हूँ न तुम ख़ुश होगे। और ये जो लिखते हो के यहाँ ख़रीदार है, क़ीमत लिख भेजो। मैं दलाल नहीं, सौदागर नहीं, मोहतमिमे मतबा नहीं। मतबे अहमदी के मालिक मुहम्मद हुसेनख़ाँ, मोहतमिम मिर्ज़ा अम्मूजान। मतबा शाहदरे में, मुहम्मद हुसेनख़ाँ दिल्ली शहर और राय मान के कूचे में, मुसव्विरों की हवेली के पास, क़ीमते किताब छ आने, महसूल डाक ख़रीदार के ज़िम्मे, तालिबाने किताब को इत्तिला दो, दो-चार-दस-पाँच जिल्दें जिसको मंगानी हों मुहम्मद हुसेनख़ाँ के नाम पर देहली राय मान के कूँचे, मुसव्विरों की हवेली का पता लिखकर ख़त डाक में भिजवादो। किताब डाक में पहुँच जाएगी। क़ीमत चाहो नक़्द चाहो टिकट इरसाल करो। मुझको क्या और तुमको क्या ? जो कहे उसको ये जबाब दे दो।

वबा थी कहाँ, जो मैं लिखूँ के अब कम है या ज़्यादा। एक छयासठ बरस का मर्द, एक चौंसठ बरस की औरत, इन दोनों में से एक भी मरता तो हम जानते के हाँ वबा आई थी। तुफ़[3] बरीं वबा!

पंजशंबा ८ माह अगस्त की, (क़मरी) महीने का हाल कुछ मालूम नहीं। कल शाम को दो मूँढे रखकर, कई आदमी देखा किए, हिलाल नज़र नहीं आया।

नजात का तालिब--ग़ालिब।

---

१. लेखन का प्रतिफल। २. तीन प्रतिष्ठित व्यक्ति। ३. ऐसी महामारी को धिक्कार।

३७

(२२ सितम्बर १८६१ ई०)

हाँ साहब, तुम क्या चाहते हो ? 'मुज्तहिदुल अस्र' के मसविदे को इस्लाह देकर भेज दिया। अब और क्या लिखूँ ? तुम मेरे हम उम्र नहीं जो सलाम लिखूँ। मैं फ़क़ीर नहीं जो दुआ लिखूँ। तुम्हारा दिमाग़ चल गया है; लिफ़ाफ़े को कुरेदा करो। मसविदे के काग़ज़ को बार बार देखा करो, पाग्राग क्या ? याने तुमको वो मुहम्मदशाही रविश पसंद है—'यहाँ खैरियत है, वहाँ की आफ़ियत मतलूब[1] है। खत तुम्हारा बहुत दिन के बाद पहुँचा। जी खुश हुआ। मसविदा बाद इस्लाह के भेजा जाता है। बरखुरदार मीर सरफ़राज़ हुसेन को देना और दुआ कहना। और हाँ हकीम मीर अशरफ़अली और मीर अफ़ज़ल अली को भी दुआ कहना। लाज़िमए सआदतमन्दी ये है के हमेशा इसी तरह खत भेजते रहो।' क्यों ? सच कहियो, अगले के खुतूत की तहरीर की यही तर्ज़ थी या और ? हाय, क्या अच्छा शेवा है ! जब तक यों न लिखो वो खत ही नहीं है, चाह बेआब है, अब्र बेबाराँ है। नख्ल बेमेवा है, खानए बे-चिराग़ है चिराग़ बेनूर है। हम जानते हैं के तुम ज़िन्दा हो; तुम जानते हो के हम ज़िन्दा हैं। अम्र ज़रूरी को लिख लिया। ज़वायद को और वक़्त पर मौक़ूफ़ रखा, और अगर तुम्हारी खुशनूदी उसी तरह की निगारिश पर मुनहसिर है, तो भाई साढे तीन सतरें वैसी भी मैंने लिख दीं। क्या नमाज़े[2] क़ज़ा नहीं पढ़ते और वो मक़बूल नहीं होती। खैर, हमने भी वो इबारत जो मसविदे के साथ लिखी थी, अब लिख भेजी। क़ुसूर माफ़ करो, खफ़ा न हो।

मीर नसीरुद्दीन एक बार आए थे, फिर न आए। नस्रे फ़ारसी, नई मैंने कहाँ लिखी के तुम्हारे चचा को या तुमको भेज दूँ ? नवाब फ़ैज़ मुहम्मदखाँ

---

१. अभीष्ट। २. कारण वश समय बीतने पर पढ़ी गई नमाज़।

के भाई हुसनअलीखां मर गए। हामिदअलीखाँ की एक लाख तीस हज़ार कई सौ रुपए की डिक्री पादशाह पर हो गई। कल्लू दारोग़ा बीमार हो गया था, आज उसने ग़ुस्ले सेहत किया। बाक़रअलीखाँ को महीने भर से तप आती है। हुसेनअलीखाँ के गले में दो ग़ुदूद हो गए हैं। शहर चुपचाप, न कहीं फावड़ा बजता है, न सुरंग लगा कर कोई मकान उड़ाया जाता है। न आहनी सड़क आती है, न कहीं दमदमा बनता है। दिल्ली शहर ख़मोशाँ[1] है।

काग़ज़ निबड़ गया, वर्ना तुम्हारे दिल की ख़ुशी के वास्ते अभी और लिखता।

यकशंबा २२ सितम्बर।

३८

(१५ मई १८६२)

पंजशंबा १५ ज़ीक़ादा व मई।

साहब,

आज तुम्हारा ख़त दोपहर को आया। उसमें मैंने मसविदा तारीख़ का पाया, क़लमदान में रख लिया। ख़त पढ़कर मीर सरफ़राज़ हुसेन को भेज दिया। कल वो कहते थे के उनतीस रुपए को तीन गाड़ियाँ मुक़र्रर हो गई हैं, मैं कल याने आज शाम को सवार हो जाऊंगा। अब इस वक़्त जो मैं ये ख़त लिख रहा हूँ, पहर दिन बाक़ी है। लिखकर खुला रख छोड़ूँगा। शाम को 'मुज्तहिदुल अस्र' मेरे घर ज़रूर आएँगे। अगर आज जाएँगे तो वास्ते तौदी[2] के, और न जाएँगे तो माफ़िक़ मामूल के आएँगे। उनके जान न जाने का हाल, सुबह को इस वरक़ पर लिखकर ख़त बन्द करके भेज दूँगा। ख़ुदा करे उर्दू की नस्र का लिफ़ाफ़ा उन्होंने डाक में भेज दिया हो। शाम को मुझे दे जाएँ तो मैं कल इस ख़त के साथ उसको भी भिजवा दूँ। महाराज अगर दौरे को गए तो क्या

---

१. कबरिस्तान। २. बिदाई के लिए।

अँदेशा है? गर्मी का मौसम है, लंबा-चौड़ा सफ़र क्यों करेंगे? आठ-सात दिन में फिर आएँगे। यहाँ की तलाश का नतीजा देखो, तब कहीं जाइयो। मीरन साहब की तुम्हारी चूमाचाटी के लिखने का मुझ में दम नहीं, तुम जानो, वो जानें।

'कुल्लियात' के छापे की हक़ीक़त सुनो—६० सफ़े छापे गए थे के मौलवी हादीअली मुसह्‌ह्[1] बीमार हो गए। कापी निगार रुख़्सती अपने घर गया। अब देखिए कब छापा शुरू हो। 'क़ाते बुरहान' का छापा ख़त्म हुआ। एक जिल्द बतरीक़े नमूना आ गई। मैंने ५० जिल्दों की दरख़ास्त पहले से दे रखी है। अब पचास रुपए भेजूँ तो उनंचास जिल्दें मंगऊँ। देखिए नौ मन तेल कब मयस्सर हो, और राधा कब नाचे।

मियाँ, कल शाम को मीर सरफ़राज़ हुसेन मेरे घर नहीं आए। या तो अलवर को मुझसे वग़ैर रुख़्सत हुए गए या नहीं गए। मैं तो आज जुमा १६ मई सुबह वक़्त ये ख़त डाक में भेजता हूँ।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

३९

(२९ जुलाई १८६२)

सैयद साहब,

अच्छा ढकोसला निकाला है। बाद अलक़ाब के शिकवा शुरू कर देना और मीरन साहब को अपना हम ज़बान कर लेना। मैं मीर मेहदी नहीं के मीरन साहब पर मरता हूं, मीर सरफ़राज़ हुसेन नहीं के उनको प्यार करता

1. प्रूफरीडर।

हूँ। अली का ग़ुलाम और सादात[1] का मौतक़द हूं, उसमें तुम भी आ गए। कमाल ये के मीरन साहब से मुहब्बत क़दीम है। दोस्त हूं, आशिक़े[2] ज़ार नहीं; बन्द[3] ए महरो वफ़ा हूं, गिरफ़्तार नहीं। तुम्हारे भाई ने सख्त मुशविश[4], बल्के नाल[5] दरे आतिश कर रखा है। एक 'सलाम[6]' इस्लाह के वास्ते भेजा और लिखा के बाद मुहर्रम के मैं भी आऊंगा। मैंने 'सलाम' रहने दिया और मुन्तज़िर रहा के डाक में क्यों भेजूं, वो आएंगे तो यहीं उनको दे दूंगा। मुहर्रम तमाम हुआ। आज से शंबा ग़ुर्रएसफ़र[7] है, हज़रत का पता नहीं, ज़ाहिरा बरसात ने आने न दिया।

बरसात का नाम आ गया, लो पहले तो 'मुजमिलन'[8] सुनो—एक ग़दर कालों का, एक हंगामा गोरों का, एक फ़ितना इनहदामे[9] मकानात का, एक आफ़त वबा की, एक मुसीबत काल की, अब ये बरसात जमी[10] हालात की जामा[11] है। आज इक्कीसवाँ दिन है, आफ़ताब इस तरह गाह गाह नज़र आ जाता है, जिस तरह बिजली चमक जाती है; रात को कभी कभी तारे अगर दिखाई देते हैं तो लोग उनको जुगनू समझ लेते हैं। अंधेरी रातों में चोरों की बन आई है। कोई दिन नहीं के दो चार जगह की चोरी का हाल न सुना जाए। मुबालिग़ा न समझना। हज़ारहा मकान गिर गए, सैकड़ों आदमी जा बजा[12] दबकर मर गए। गली गली नदी बह रही है। क़िस्सा मुख्तसर वो अनकाल था के मेह न बरसा, अनाज न पैदा हुआ, ये पनकाल है के पानी ऐसा बरसा के बोए हुए दाने बह गए। जिन्होंने अभी नही बोया था, वो बोने से रह

---

१. हज़रत मुहम्मद की सन्तति। २. मरने वाला प्रेमी। ३. प्रेम का दास। ४. परेशान। ५. उद्विग्न। ६. कविता का एक प्रकार। ७. सफ़र (मुस्लिम वर्ष का दूसरा मास) की पहली तिथि। ८. संक्षेप में। ९. मकानों की तोड़ फोड़। १०. बीती अवस्था। ११. समष्टि। १२. यत्र तत्र।

गए। सुन लिया दिल्ली का हाल ? इसके सिवा कोई नई बात नहीं है। जनाब मीरन साहब को दुआ। ज़्यादा क्या लिखूं।

सेशम्बा एकुम सफ़र ब २९ जुलाई।

४०

बरखुरदार नूरे चश्म मीर मेह्दी को बाद दुआ ए हयातो सेहत के मालूम हो—

भाई, तुमने बुख़ार को क्यों आने दिया, तप को क्यों चढ़ने दिया, क्या बुख़ार मीरन साहब की सूरत में आया था, जो तुम माने न आए ? क्या तप अब्बन बनकर आई थी जो उसको रोकते हुए शर्म आए ? हकीम अशरफ़ अली अभी गए हैं। कहते थे के मैंने नुस्ख़ा लिखकर आज डाक में भेज दिया है। चूं-के ये ख़त भी आज रवाना होता है, क्या अजब है के दोनों ख़त एक दिन बल्के एक वक़्त पहुँचे। दिल तुम्हारे वास्ते बहुत कुढ़ता है। हक़ ताला तुमको जल्द शफ़ा दे और तुम्हारी तन्दुरुस्ती की ख़बर मुझको सुनाए।

सुनो मियाँ सरफ़राज़ हुसेन, हज़ार बरस में तुमने मुझको एक ख़त लिखा, वो भी इस तरह् का के जैसा 'जलाले असीर' कहता है—

ब[1] ग़ैर दर शकर आबस्त व रू बमा दारद

पढ़ता हूँ उस ख़त को और ढूँढता हूँ के मेरे वास्ते कौन सी बात है, मुझको कौन पयाम है; कुछ नहीं। शायद दूसरे सफ़े में कुछ हो, उधर ख़ातमा[2] बिल ख़ैर है। या रब, सरनामा मेरे नाम का, आग़ाज़े तहरीर में अलक़ाब मेरा; फिर सारे ख़त में मीरन साहब का झगड़ा। ये क्या सैर है ? मैं ऐसे

---

१. दूसरे के साथ तुम पानी और शक्कर की तरह् रहते हो लेकिन हमारी तरफ़ केवल मुंह् देखी का बर्ताव करते हो। २. समाप्ति, इति श्री।

ख़त का जवाब क्यों लिखूँ? मेरी बला लिख। अब जो तुम ख़त लिखोगे और उसमें अपने भाई की ख़ैरो आफ़ियत रक़म करोगे और मीरन साहब का नाम और उनके लिए सलाम तक भी उसमें न होगा तो मैं उसका जवाब आँखों से लिखूँगा।

और हाँ मियाँ, फिर तुमने मीर अशरफ़ अली को क्या लिखा के हमने सुना है चचा ने उसका मरना सुना होगा? उस ग़रीब का क़ौल ये है के मेरी दोनों बहनें और पाँच भानजियाँ पानीपत में हैं। क्या चचा को न मालूम होगा के कौन सी लड़की मरी? काश, उसके बाप का नाम लिखते, ताके मैं जानता के कौन-सी भानजी मरी है। अब मैं किसका नाम लेकर रोऊँ और किसकी फ़ातिहा दिलवाऊँ?

इस अमर में हक़ बजानिब उस मज़लूम के है। तौज़ी[1] बक़ैदे नाम लिखो।

४१

(२६ सितम्बर १८६२)

वाह हज़रत,

क्या ख़त लिखा! इस ख़ुराफ़ात के लिखने का फ़ायदा? बात इतनी ही है के मेरा पलंग मुझको मिला, मेरा बिछौना मुझको मिला, मेरा हमाम मुझको मिला, मेरा बैतुलखला मुझको मिला। रात का वो शोर "कोई आइयो, कोई आइयो," फ़रो हो गया। मेरी जान बची, मेरे आदमियों की जान बची—

१. विस्तृत और व्याख्या सहित। २. समाप्त हो गया।

अकनूँ[1] शबे मन शबस्त व रोज़म रोज़स्त

भई, तुमने ये न लिखा के मीरन साहब को मेरा ख़त पहुँचा या न पहुँचा। मैं गुमान करता हूँ के नहीं पहुँचा। अगर पहुँचता तो बेशक वो तुम्हारी नज़र से गुज़रता और मीरन साहब उसकी असल हक़ीक़त तुमसे पूछते और इस सूरत में ये भी ज़रूर था के तुम इस वाहियात के बदले मुझको वो रूदाद[2] लिखते जो मीरन साहब में और तुममें पेश आई। पस अगर, जैसा के मेरा गुमान है, ख़त नहीं पहुँचा तो ख़ैर जाने दो। अगर ख़त पहुँचा है तो मीरन साहब के ख़त के जवाब लिखवाने मे तुमने मेरा दम नाक मे कर दिया था। अब उनसे मेरे ख़त के जवाब का तक़ाज़ा क्यों नहीं करते ? हुस्न भी क्या चीज़ है ? नादिर का इतना ख़ौफ़ नहीं, जितना हसीन आदमी का डर होता है ! तुम उनसे ख़्वाहिशे[3] विसाल करते हुए डरो। मेरे ख़त के जवाब के बाब में क्यों नहीं कहते ! न साहब, ये कुछ बात नहीं। मेरे ख़त का जवाब उनसे लिखवाकर भिजवाओ। यहां का हाल वो है जो देख गये हो, पानी गर्म, हवा गर्म, तपें मस्तूली, अनाज मंहगा। बेचारा मुंशी मीर अहमद हुसेन का भतीजा, मीर इमदाद अली 'आशोब' का बेटा मुहम्मद मीर शबे गुज़िश्ता को गुज़र गया। आज सुबह को उसको दफ़न कर आये। जवाने सालेह,[4] परहेज़गार, मोमनीन का पेशे नमाज़[5] था। इन्नालिल्लाह व इन्नाइलेहे राजेऊन।

'मुज्तहिदुल असर' का हुक्म बजा लाऊँगा, और न रईस को बल्के मदारुल[6] महामे रियासत को लिखूंगा। रईस मेरे सवाल का जवाब क़लमन्दाज़ कर

---

१. अब मेरी रात रात है और मेरा दिन दिन है। २. विवरण। ३. मिलन की इच्छा। ४. सदाचारी। ५. धार्मिक लोगों को नमाज़ पढ़ाने वाला। ६. प्रधान मंत्री।

जाएगा और मदारुल माहम अम्रे[1] वाक़ई लिख भेजेगा। मुज्तहिदुल अस्र को दुआ कहना और ये खत पढ़ा देना। मीरन साहब को दुआ और कहना के भला साहब, तुमने हमारे खत का जवाब नही लिखा, हम भी तुम्हारी तर्ज़ काततब्बो[2] करेंगे। हकीम मीर अशरफ़ अली को दुआ कहना और कहना के अगर तुममें उनमें राहो रस्म, ताज़ियतो[3] तहनियत हो तो मीर अहमद हुसेन को खत लिखो और ये भी उनको मालूम हो के हफ़ीज़ यहाँ आया हुआ है, क़बायल तुम्हारे यहीं हैं। अगर वहाँ कुछ रसाई हासिल हो तो खैर वर्ना यहाँ क्यों न चले आओ!

मैं भूला नहीं तुझको ऐ मेरी जान
करूँ क्या के याँ गिर रहे हैं मकान

बरसात का हाल न पूछो। खुदा का क़हर है। क़ासिमजान की गली सआदत खाँ की नहर है। मैं जिस मकान मे रहता हूं, आलमबेगखाँ के कटरे की तरफ़ का दरवाज़ा गिर गया। मस्जिद की तरफ़ के दालान को जाते हुए जो दरवाज़ा था वो गिर गया, सीढ़ियाँ गिरा चाहती हैं, सुबह के बैठने का हुजरा झुक रहा है। छतें छलनियाँ हो गई हैं। मेंह घड़ी भर बरसे तो छत घंटा भर बरसे। किताबें, क़लमदान सब तोशाखाने में। फ़र्श पर कही लगन रखा हुआ, कही चिलमची धरी हुई है। खत लिखूं कहाँ बैठकर? पाँच-चार दिन से फ़ुरसत है। मालिके मकान को फ़िक्रे मरम्मत है। आज एक अम्न की सूरत नज़र आई, कहा के आओ, मेंह्दी के खत का जवाब लिखूं। अलवर की नाखुशी, राह की मेहनतकशी, तप की हरारत, गर्मी की शरारत, यास[4] का आलम, कसरते अन्दोहो[5] ग़म, हाल की फ़िक्र, मुस्तक़बिल का खयाल, तबाही का रंज, आवारगी का मलाल, जो कुछ कहो वो कम है। बिल-

---

१. सच्ची घटना। २. अनुकरण। ३. शोक और हर्ष का संबंध। ४. निराशा। ५. दुःख, वेदना।

फ़ैल तमाम आलम का एक-सा आलम है। सुनते हैं, के नवम्बर में महाराजा को अख़्तियार मिलेगा। हाँ, मिलेगा, मगर वो अख़्तियार ऐसा होगा जैसा ख़ुदा ने ख़ल्क़ को दिया है–सब कुछ अपने क़ब्ज़ए[1] क़ुदरत में रखा, आदमी को बदनाम किया है। बादे रफ़ा मर्ज़ का हाल लिखो। ख़ुदा करे, तप जाती रही हो। तन्दुरुस्ती हासिल हो गई हो ? मीर साहब कहते हैं—

तुन्दुरुस्ती हज़ार नेमत है

हाय, पेश[2] मिसरा मिर्ज़ा क़ुर्बान अली बेग 'सालिक' ने क्या ख़ूब बहम पहुंचाया है ! मुझको बहुत पसन्द आया है--

तंगदस्ती अगर न हो 'सालिक'
तन्दुरुस्ती हज़ार नेमत है

मुज्तहिदुल अस्र जनाब मीर सरफ़राज़ हुसेन को दुआ। अहा हा हा ! मीर अफ़ज़ल अली साहब कहाँ हैं ? हज़रत, यहाँ तो इस नाम का कोई आदमी नहीं है। लखनऊ के मुज्तहिदुल अस्र के भाई का नाम मीरन साहब था, जैपूर के मुज्तहिदुल अस्र के भाई मीरन साहब क्यों न कहलायें। हाँ भाई, मीरन साहब, भला उनको हमारी दुआ कहना।

४२

(२० नवम्बर १८६२)

मेरी जान,

ख़त न भेजो और मेरे ख़त का इंतज़ार करो, इसकी वजह मैं नहीं समझा। तुम्हारा ख़त आए और मैं जवाब न लिखूं तो गुनहगार। नवाब यूसुफ़ अली ख़ाँ 'नाज़िम' का दीवान मेरे पास कहाँ ? नवाब

---

१. अधिकार। २. प्रतिचरण (कविता)।

साहब ने बसबीले अर्मुग़ाँ[1] मुझे एक वरक़ भी नहीं भेजा। यहाँ कुछ बिकते आ गए थे। मैंने एक मोल लेकर नवाब मुस्तफ़ाखां को जहाँगीराबाद भेजा था। अब मुहम्मद बख़्श और पीरजी से कह दूंगा। अगर किसी ने ला दिया तो एक जिल्द मीर सरफ़राज़ हुसेन को भेज दूंगा। तवक्क़ो नौकरी का हाल मुझको मुफ़स्सिल मालूम है। ये भी बादशाही तनख़ा हुई के रुपया देकर मोल लें और कहें के हमने नज़राना दिया है।

बशर्त्ते नौकरी हो जाने के, बरस-छ महीने तक अपना दिया हुआ रुपया मुस्तर्द[2] करना होगा। नौकरी मुफ़्त में।

'मुक़द्दर' मुज़क्कर और 'तक़दीर' मुअन्नस है। कौन कहेगा—'फ़लाने की मुक़द्दर अच्छी है'? कौन कहेगा—'ढमके का तक़दीर बुरा है'! ये मसला साफ़ है। मुज़बज़ब नहीं। कोई भी मुक़द्दर को मुअन्नस न कहता होगा। तुमको तरद्दुद क्यों हुआ?

जवाँ मर्द, जवाँ बख़्त, जवाँ दौलत, जवाँ उम्र, जवाँ[3] साल, जवाँ[4] ख़िरद, जवाँ[5] मर्ग ये अल्फ़ाज़ मुक़र्रराए अहले ज़बान हैं; कभी मक़लूब[6] व माकूस[7] नहीं आते।

'अवद अख़बार' में बादशाह के मरने की ख़बर लिखी देखी, मगर फिर कहीं से तसदीक़[8] नहीं हुई। नरिन्दरसिंघ राज ए पटियाला बेतकल्लुफ़ मर गया। मस्जिदे जामा की वागुज़ाश्त की खबर मशहूर है। अगर सच हो जाए तो क्या दूर है? शाहे अवद की अमलाक की भी वागुज़ाश्त की ख़बर है।

लो कहो, अब और क्या लिखूँ? सरेराह की मुँड़ेर के पास जो तख़्त बिछा है उस पर बैठा हुआ धूप खा रहा हूँ और ख़त लिख रहा हूँ। बस,

---

१. भेंट। २. वापिस। ३. नवयुवक। ४. बुद्धिमान। ५. युवावस्था में मरने वाला। ६. ७. एक दूसरे के विपरीत। ८. पुष्टि।

अब ये लिखना बाक़ी है के मुज्तहिदुल अस्र को दुआ और मीर अफ़ज़लअली साहब को दुआएँ।

सुबह पंज शंबा २७ जमादिल अव्वल, २० नवम्बर साले हाल।

४३

(१९ दिसम्बर १८६२)

जोया ए[1] हाल देहली व अलवर सलाम लो।

मस्जिदे जामा वागुज़ाश्त हो गई, चितली क़ब्र की तरफ़ की सीढ़ियों पर कबाबियों ने दूकानें बना लीं। अंडा, मुर्ग़ी, कबूतर बिकने लगा। अशरए[2] मुबश्शिरा याने दस आदमी मुहतमिम[3] ठहरे। मिर्ज़ा इलाही बख़्श, मौलवी सदरुद्दीन, तफ़ज्ज़ुल हुसेन ख़ाँ इब्न फ़ज़लुल्लाख़ाँ तीन ये और सात और। ७ नवम्बर १४ जमादिल अव्वल साले हाल जुमे के दिन अबू ज़फ़र सिराजुद्दीन बहादुरशाह क़ैदे[4] फ़रंग व क़ैदे[5] जिस्म से रिहा हुए। इन्नालिल्लाह व इन्ना ईलहे राजऊन।

जाड़ा पड़ रहा है। हमारे पास शराब आज की और है। कल से रात को निरी अंगीठी पर गुज़ारा है। बोतल-गिलास मौक़ूफ़।

राजा पटियाला मर गया। महिन्दरसिंघ उसके ख़ल्फ़[6] पर खिताबे फ़र्ज़न्दी और अल्क़ाबबहाल व बरक़रार रहा। बिलफ़ैल दीवान निहालचन्द काम कर रहा है। ज़ाहिरा जो रंग इस रियासत का होने वाला है वो नवाब

---

१. दिल्ली और अलवर के मेरे शुभेच्छु। २. हज़रत मुहम्मद ने दस अनुयायियों के अलौकिकत्व का सन्देश दिया था, अतः वे दस अशरए मुबश्शिरा कहाने लगे। ३. प्रबन्धक। ४. अंगरेज़ों का कारावास। ५. शरीर का बन्धन। ६. पुत्र।

गवर्नर जनरल बहादुर के आने पर खुलेगा, और फ़रवरी महीने में यहाँ आएँगे। अलवर की रियासत का हाल बदस्तूर है। गवर्नर साहब ही इन्हें अख़्तियार देंगे। याने पटियाले और अलवर के राज का इन्तज़ाम उसी वक़्त पर होगा। बिलफ़ैल इम्पे साहब, एजेण्ट अलवर दिल्ली होते हुए मेरठ गए हैं। राजा साहब तिजारा तक उनकी मशायत[1] कर गए। यहाँ इम्पे साहब से, क़ोई साहबसिंघ ठेकेदार अलवर की सड़क का है, उसने कुछ कहा था। जवाब दिया के अलवर के मुक़दमात में पंचों को अख़्तियार है। हम कुछ हुक्म न देंगे। इस्फ़न्दरयार बेग मुतवफ़्फ़ा का कोई मुतबन्ना[2] मुस्तदई[3] परवरिश हुआ। उसको भी यही जवाब मिला। अब और बोलो क्या लिखूँ?

धूप में बैठा हूँ। यूसुफ़ अली खाँ और लाला हीरासिंघ बैठे हैं, खाना तैयार है। ख़त लिख कर, बन्द कर कर, आदमी को दूँगा और घर जाऊँगा। और वहाँ एक दालान में धूप होती है, उसमें बैठूँगा, हात-मुँह धोऊँगा। एक रोटी का छिलका सालन में भिगोकर खाऊँगा। बेसन से हात धोऊँगा, बाहर आऊँगा, फिर उसके बाद ख़ुदा जाने कौन आएगा। क्या सोहबत होगी?

मुज्तहिदुल अस्र मीर सरफ़राज़ हुसेन साहब और 'ज़ाकिरुल हुसेन' मीर अफ़ज़ल अली उर्फ़ मीरन साहब को दुआ।

मंगल का दिन २३ जमादिउस्सानी १६ दिसम्बर पहर दिन चढ़े।

—ग़ालिब

४४

(दिसम्बर १८६२)

बरखु़रदार,

तुम्हारा ख़त आया। हाल मालूम हुआ। मैं इस ख़याल में था के अलवर

---

१. बिदा। २. दत्तक। ३. पालन-पोषण का प्रार्थी।

का कुछ हाल मालूम कर लूँ और कप्तान अलेक्ज़ेण्डर का ख़त आये और मैं उसको मीर सरफ़राज़ हुसेन के मुक़दमे में लिख लूँ तो उस वक़्त तुम्हारे ख़त का जवाब लिखूँ। चूँके आज तक उनका ख़त न आया, मैं सोचा के अगर इसी इन्तज़ार में रहूँगा और ख़त का जवाब न भेजूँगा तो मेरा प्यारा मीर मेहदी ख़फ़ा होगा। नाचार जो कुछ अलवर का हाल सुना है, वो, और कुछ अपना हाल लिखता हूँ। हरचन्द मैंने दरियाफ़्त करना चाहा; मगर हकीम महमूद अली का वहाँ पहुँचना और ये के वहाँ पहुँचने के बाद क्या तौर क़रार पाया, कुछ मालूम नहीं हुआ। सिर्फ़ ख़बर वाहिद है के उनको रावराजा ने साहब एजेण्ट से इजाज़त लेकर बुला लिया है। कहते हैं के साहब एजेण्ट अलवर ने राजा के बालिग़ और आक़िल होने की रिपोट सदर को भेजी है। क्या अजब है के इनका राज इनको मिल जाए। कहते हैं के रावराजा ने अहलेखित्ता[1] के फ़िराक़[2] की शिकायत हाकिम से की थी। जवाब पाया के वो लोग मुफ़सिद[3] और बदमाश हैं और तुम्हारी बिरादरी के लोग उनसे नाख़ुश हैं। उनके आने में फ़साद का अेहतमाल है। वो न आने पाएँगे।

मौलाना ग़ालिब अलइर्रहमान इन दिनों में बहुत ख़ुश हैं। पचास-साठ जुज़्व की किताब अमीर हम्ज़ा की दास्तान की, और इसी क़द्र हजम[4] की एक जिल्द 'बोस्ताने ख़याल' की आ गई है; सत्रह बोतलें बादएनाब[5] की तोशक-ख़ाने में मौजूद हैं। दिन भर किताब देखा करते हैं। रात भर शराब पिया करते हैं।

कसे[6] कीं मुरादिश मयस्सर बुवद
अगर जम न बाशद सिकन्दरबुवद

१. आसपास रहने वाले। २. वियोग, जुदाई। २. फसाद करने वाले। ४. मोटी। ५. निरी शराब। ६. यदि किसी को इच्छा पूर्ण हो जाय तो वह जमशेद न भी बन सके तो सिकन्दर अवश्य बनता है।

मीर मेंहदी हुसेन 'मजरूह' के नाम

मीर सरफ़राज़ हुसेन को और मीरन साहब को और मीर नसीरुद्दीन साहब को दुआएँ और दीदार की आरज़ुएँ।

४५

(१८६३ ई०)

बरख़ुरदार,

तुम्हारा ख़त पहुँचा। मगर ये गज़ब है के मैं उसका जवाब नहीं लिख सकता और वो जवाबतलब है। जवाब क्या लिखूँ? क़वायद अमलदारी के बरहम[1] हो गए। नए-नए दस्तूर हैं। शोहरत हुई के लार्ड साहब आते हैं। फ़रवरी को अम्बाले पहुँचेंगे। अहले देहली की मुलाज़िमत वहाँ होगी। अब यह आवाज़ बुलन्द है के फ़रवरी में कलकत्ते से चलेंगे। बनारस, इलाहाबाद, अकबराबाद होते हुए मार्च को अम्बाले पहुँचेंगे। अलवर, जैपूर, कोटा ये तीन राजा आगरे पहुँच गए। वहाँ मीरे[2] फ़र्श की तरह बेकार धरे हुए हैं। अलवर के राजा गोया यूसुफ़[3] हैं। उनके ख़रीदार दौड़ते फिरते हैं। कोई शिकरम, कोई केरांची ढूँढ रहा है। कोई प्यादा चल निकला किसी ने माँगे का टट्टू बहम पहुँचाया। ये सब क़िस्से एक तरफ़, अब सुनता हूँ के राजस्तान के एजेण्ट ने सब रईसों को लिखा है के लार्ड साहब तुम्हें बुलाते नहीं, जिसका जी चाहे आओ, जिसका जी न चाहे न आओ। इस तहरीर को देखकर जो बादशाह पर जा पहुँचे वो पशेमान[4] हैं। जो राह में हैं वो वहीं ठिठक रहे हैं। न आगे बढ़ते हैं, न पीछे हट सकते हैं। जो अपने मुक़ाम से न हिले थे, वो अच्छे रहे।

यहाँ दो-तीन महावटें बरस गई हैं। गेंहूँ-चना अच्छा होगा। रबी की उम्मीद पड़ी।

---

१. नष्ट भ्रष्ट। २. निरर्थक वस्तु। ३. सुन्दर। ४. परेशान, अपमानित।

उफ़क़हा[1] पुर अज़ अब्रे बहमन मिही
सिफ़ालीना जामे मन अज़ मय तिही

सीधे हात पर एक ज़ख़्म, बाएँ बाज़ू पर एक घाव। सीधी रान पर एक फोड़ा, ये हाल मेरा है। बाक़ी ख़ैरो आफ़ियत !

मीर सरफ़राज़ हुसेन और मीरन साहब को दुआ पहुँचे।

ग़ालिब

४६

(२२ अगस्त १८६३)

नूरे चश्म मीर मेंहदी को बाद दुआ के मालूम हो के 'कुल्लियाते फ़ारसी' का पहुँचना मुझको मालूम हुआ। मियाँ, इसमें अग़लात बहुत हैं। मुबारक हो तुम्हें और मीर सरफ़राज़ हुसेन को और मीरन साहब को और भाई ख़ुदा करे मुझको भी। लो साहब एजेंट बहादुर राजस्तान का हुक्म अलवर के एजेंट को आया के तुम पहली सितम्बर को राज के काग़ज़ जो तुम्हारे पास हैं और राज का असबाब जो तुम्हारे तहत में है वो सब राजा को दो और तुम अलग हो जाओ। सितम्बर की बीसवीं को हम अलवर आएँगे, राजा साहब को मसनद पर बैठाएँगे। ख़लते शाही उन्हें पहनाएँगे।

सितम्बर[2] सितम्बुर्दों आउर्द दाद।

शम्बा २२ अगस्त सन् १८६३ ई०।

अज़—ग़ालिब

---

१. बहमन मास के बादल आकाश पर छाये हैं, मेरा सुरापात्र रिक्त है।

२. सितम्बर के मास में अत्याचार समाप्त हुआ और न्याय का युग प्रारंभ हुआ।

४७

(८ दिसम्बर १८६३)

आइये जनाब मीर मेहदी साहब देहलवी,

बहुत दिनों में आए। कहाँ थे? बारे, आपका मिज़ाज ख़ुश है? मीर सरफ़राज़ हुसेन साहब अच्छी तरह हैं? मीरन साहब ख़ुश हैं?

हस्ती हमारी अपनी फ़ना पर दलील है
याँ तक मिटे के आप हम अपनी क़सम हुए

पहले ये समझो के क़सम क्या चीज़ है? क़द उसका कितना लम्बा है। हात-पाँव कैसे हैं, रंग कैसा है। जब ये न बता सकोगे तो जानोगे के क़सम जिस्मो जिस्मानियात में से नहीं। एक ऐतबारे[१] महज़ है। वजूद उसका सिर्फ़ ताक़ुल[२] में है। सीमुर्ग़ का सा उसका वजूद है। याने कहने को है, देखने को नहीं। पस शायर कहता है के जब हम आप अपनी क़सम हो गए तो गोया इस सूरत में हमारा होना हमारे न होने की दलील है।

मी[३] ख़ाहम अज़ ख़ुदा व न मी ख़ाहम अज़ ख़ुदा
दीदन हबीब रा व न दीदन रक़ीब रा

लफ़्फ़ो[४] नश्र मुरत्तब है। मी ख़ाहम अज़ ख़ुदा दीदन हबीब रा। न मी ख़ाहम अज़ ख़ुदा न दीदन रक़ीब रा। ख़ारो[५] ज़ार व ख़स्ता[६] व सोगवार[७] मावी तो इसमें मौजूद हैं मगर बोलचाल टकसाल बाहर है। एक जुमले का

---

१. विश्वास। २. बुद्धि। ३. ईश्वर से मैं चाहता हूँ और नहीं भी चाहता। मित्र की आकृति देखना चाहता हूँ, शत्रु का मुँह नहीं देखना चाहता। ४. लिखने का एक ढंग, पहले कुछ चीज़ों का उल्लेख करना और फिर उसके सम्बन्ध में क्रमशः कहा जाए। अन्वय। ५. अपमानित। ६. दरिद्र। ७. दुःखी।

जुमला मुक़द्दर छोड़ दिया है और फिर इस भौंडी तरह से, के जिसको अलमाना[1] फ़ीबतनु शायर कहते हैं। ये शेर असातिज़ए मुसल्लमुल[2] सबूत में से किसी का नहीं है। कोई साहब होंगे के उन्होंने लोगों के हैरान करने के वास्ते ये शेर कह दिया, और किसी उस्ताद का नाम दिया के उनका है।

तज़कीर व तानीस का कोई क़ायदा मिनज़ब्त नहीं के जिस पर हुक्म किया जाए। जो जिसके कानों को लगे, जिसको जिसका दिल क़ुबूल करे, उस तरह कहे। 'रथ' मेरे नज़दीक मुज़क्कर है याने 'रथ आया'। लेकिन जमा में क्या करूँगा? नाचार मुअन्नस बोलना पड़ेगा, याने 'रथें आईं।' 'ख़बर' मुअन्नस है बइत्तफ़ाक़, मगर 'काग़ज़े अख़बार', इसको ख़ुद समझ लो के तुम्हारा दिल क्या क़ुबूल करता है। मैं तो मुज़क्कर कहूँगा याने 'अख़बार आया।' 'पीर हुई' या 'हुआ'; ये मन्तिक़[3] अवाम का है। हमें इससे कुछ काम नहीं। हम कहेंगे के 'दोशम्बा' हुआ। 'पीर का दिन हुआ।' निरी 'पीर हुई' या 'पीर हुआ' हम क्यों बोलेंगे? 'बुलबुल' मेरे नज़दीक मुअन्नस है, जमा उसकी बुलबुलें, 'तूती बोलता है', 'बुलबुल बोलती हैं'। भाई, इस अम्र में मैं मुफ़्ती[4] व मुज्तहिद[5] बन नहीं सकता; अपना अन्दिया[6] लिखता हूँ। जो चाहे माने, जो चाहे न माने।

सेशम्बा, ८ दिसम्बर सन् १८६३ ई०।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

४८

बरख़ुरदार कामगार मीर मेहदी देहलवी, उर्दू बाज़ार के मौलवी, साहब[7] लिवाये विलाए मुर्तज़वी पर अलमे[8] अब्बास इब्ने अली का साया।

---

१. कविता का अर्थ कवि के मस्तिष्क में। २. प्रामाणिक आचार्य। ३. बोलना। ४. निर्णायक। ५. आविष्कार करने वाला। ६. मनोभाव। ७. हज़रत अली की ध्वजा। ८. अली के पुत्र की ध्वजा की छाया।

राजा साहब के सुलूक का हाल हम पहले ही सुन चुके थे। अलहम्दुलिल्लाह्[1] अला कल्ले हाल। देखिए, अब माविदत[2] कब करते हैं। माफ़िक़ अपने वादे के हमको क्योंकर तलब करते हैं ? कलकत्ते जाते वक़्त फ़रमा गए हैं के मैं आकर असद को बुलाऊंगा। अलबत्ता अगर वो बुलाएँगे तो मैं क्यों कर न जाऊँगा ? ज़ाहिरा हमारे-तुम्हारे वास्ते ज़मानए इन्तहा[3] ए मुसीबत और वक़्त पेश आमदे दौलत है। अब मुझको मीरन साहब की ख़ुशामद करनी पड़ेगी। वो मुक़र्रिब[4] बनेंगे, अगर मेरी क़िस्मत लड़ेगी। तुम मेरी कामयाबी का सामान कर रखना। मीरन साहब को मुझ पर मेहरबान कर रखना। भाई, ये जो मीरन साहब या अमीरन साहब हैं, हुज़ूर के बड़े मुसाहिब हैं। जिस गिरोह में से जिसको चाहें हुज़ूर से मलवा दें। फ़िर्क़ए शोअरा में से जिसको जो कुछ चाहें दिलवा दें। उनको और मुज्तहिदुल अस्र को मेरी दुआ कहना।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

४९

मेरी जान,

वो पारसी-ए क़दीम जो होशंगो जमशीदो कै ख़ुसरो के अहद में मुरव्विज थी, उसमें ख़ुर, ब ख़ाए[5] मज़मूम, 'नूरे[6] क़ाहिर' को कहते हैं और चूंके पारसियों की दीदो[7] दानिस्त में बाद ख़ुदा के आफ़ताब से ज़्यादा कोई बुज़ुर्ग नहीं है इस वास्ते 'आफ़ताब' को 'ख़ुर' लिखा, और शीद का लफ़्ज़ बढ़ा दिया। 'शीद' ब 'शीन'[8] मकसूर व याए मारूफ़ बरवज़ने ईद, 'रोशनी' को कहते

---

१. प्रत्येक स्थिति में ईश्वर की कृपा। २. वापिसी। ३. अत्यधिक विपत्ति। ४. निकटस्थ। ५. 'ख़' पेश के साथ। ६. सूर्य। ७. देखना और समझना, बुद्धि, समझ। ८. सूर्य में जो प्रकाश है वह ईश्वर का प्रकाश है।

हैं। याने ये उस 'नूरे क़ाहिरे ईज़दी' की रोशनी है। 'ख़ुर' और "ख़ुरशीद," ये दोनों इस्म आफ़ताब के ठहरे। जब अरब व अजम मिल गए तो अकाबिरे अरब ने, के वो, मम्बए[1] उलूम हुए, वास्ते दफ़ा इल्तबास[2] के 'ख़ुर' में वाव[3] मादूला बढ़ाकर 'ख़ूर' लिखना शुरू किया। हर[4] आइना मुताख़िरीन ने इस क़ायदे को पसंद किया और मंज़ूर किया। और फ़िलहक़ीक़त ये क़ायदा बहुत मस्तहसन है। फ़क़ीर ख़ुर जहाँ बे इज़ाफ़ए लफ़्ज़े 'शीद' लिखता है, माफ़िक़े क़ानूने उज़मा[5] ए अरब ब वावे मादूला लिखता है, याने ख़ूर, और जहाँ ब इज़ाफ़ए लफ़्ज़े शीद लिखता है, वहाँ ब पैरवी बुज़ुर्गाने पारसी सरबसर लफ़्ज़ 'ख़ूर' को बे वाव लिखता है। याने ख़ुरशीद, ख़ुर का काफ़िया 'दुर' और 'बुर' के साथ जायज़ और रवा है। ख़ुद मैंने दो-चार जगह बाँधा होगा। वहाँ मैं 'बे वाव' क्यों लिखूँ? रहा ख़ूरशीद, चाहो बे वाव लिखो चाहे माउल[6] वाव लिखो। मैं बे वाव लिखता हूँ, मगर माउल वाव को ग़लत नहीं जानता। और ख़ुर को कभी बे वाव न लिखूँगा। क़ाफ़िया हो या न हो। याने नज़्म में वस्ते शेर[7] में आ पड़े या नस्र की इबारत में वाक़े हो, 'ख़ूर' लिखूँगा। ये बात भी तुमको मालूम रहे के जिस तरह 'ख़ुर' तर्जुमा 'क़ाहिर'[8] का है उसी तरह 'जम' तर्जुमा 'क़ादिर[9]' का है के ब इज़ाफ़ए लफ़्ज़ 'शीद' इस्मे शहंशाहे वक़्त क़रार पाया है।

मुज्तहिदुल अस्र मीर सरफ़राज़ हुसेन को दुआ पहुँचे।

सच कहिए, तुम्हें वहाँ कोई मुज्तहिदुल अस्र न कहता होगा। न कहो, तुमको क्या? मैंने तुमको मान लिया, अब कोई कहे या न कहे। मियाँ बदरुद्दीन से एक मुहर खुदवा दूँगा।

---

१. ज्ञान के उद्भवस्थल। २. अनुकृति। ३. लुप्त वकार। ४. हर प्रकार से। ५. अरब के बड़े लोग। ६. वाव सहित। ७. शेर के मध्य में। ८. क़हर करने वाला। ९. प्रभुत्व सम्पन्न।

"जनाब मुज्तहिदुल ग्रस्र सरफ़राज हुसेन"

बस, तुम ये मुहर ख़तों पर, महजरों पर, तमस्सुकों पर, करनी शुरू करना, सबके सब तुमको मुज्तहिदुल ग्रस्र कहने लगेंगे।

हकीम मीर ग्रशरफ़ ग्रली को ग्रौर उनके फ़र्ज़न्द को दुग्रा पहुँचे।

मीरन साहब को दुग्रा पहुंचे। भाई मीरन ग्रब वो ख़स का पर्दा खोल डाला। साफ़ियाँ झज्जर पर लपेटता हूँ। दम बदम भिगोता हूँ, वह लू कहाँ जो पर्दे से लिपट कर साफ़ी को लगे ग्राकर, ग्रौर पानी को ठंडा करे। वो पानी जो मीर मेहदी ग्रौर तुम ग्रौर हकीम जी पिया किए हो, ग्रब कहाँ ? बरफ़[1] पन्द्रह दिन की ग्रौर बाक़ी है। ग्राइंदा ख़ुदा रज़्ज़ाक[2] है।

५०

१७ जनवरी १८६५

क़ुर्रतुल[3] ग्रैनेन मीर मेहदी व मीर सरफ़राज़ हुसेन मुझसे नाख़ुश ग्रौर गिलामन्द होंगे, ग्रौर कहते होंगे के देखो हमें ख़त नहीं लिखता।

हम भी मुँह में ज़बान रखते हैं।
काश पूछो के माजरा क्या है !

माजरा ये है के तुम्हारा भी तो कोई ख़त नहीं ग्राया, मैं जिसका जवाब लिखता। मीरन साहब से तुम्हारी ख़ैरो ग्राफ़ियत पूछनी, ग्रौर कह देना के मेरी दुग्रा लिख भेजना। बस ग्रब इतना ही दम बाक़ी है। कल मीरन साहब ग्राए, पूछा के ग्रलवर से कोई ख़त ग्राया। फ़रमाया के इस हफ़्ते में कोई ख़त मैंने नही पाया। क्या कहूँ के क्या हाल है ! पेश[4] ग्रज़ीं ग्रपना ये

---

१. पेय पदार्थ (शराब)। २. दानी। ३. नेत्रों का प्रकाश। ४. इसके पहले।

शेर पढ़ा करता था—

बस हुजूमे ना उमीदी ख़ाक में मिल जाएगी
ये जो एक लज्ज़त हमारी सई[1] बेहासिल में है।

अब इस ज़मज़मे[2] का भी महल न रहा। याने सई बेहासिल की लज्ज़त ख़ाक में उड़ गई। इन्नालिल्लाह व इन्नाइलिहे राजऊन।

सेशम्बा १८ शाबान, सन् १२८१ हिज़री। मर्गे नाग़ाह का तालिब—

—ग़ालिब

---

१. व्यर्थ प्रयत्न। २. अच्छी आवाज़।

मिर्ज़ा शहाबुद्दीन अहमदख़ां 'साक़िब' के नाम

१

(८ फरवरी १८५८)

भाई,

तुम्हारा ख़त हकीम महमूदख़ाँ साहब के आदमी के हात पहुँचा। ख़ैरो आफ़ियत मालूम हुई। इन्साफ़ करो। किताब कोई-सी हो उसका पता क्यों कर लग। लूट का माल चोरी चोरी कोने खुतरों में बिक गया। और अगर सड़क पर भी बिका तो मैं कहाँ जो देखूँ? सब्र करो और चुप हो रहो।

बर दिले नफ़्से अन्दहे गेती बसर आरेद
गीरेद के गेती हमा यक सर बसर आमद

आदमी तो आते जाते रहते हैं। ख़ुदा करे यहाँ का हाल सुन लिया करते हो। अगर जीते रहे और मिलना नसीब हुआ तो कहा जाएगा, वर्ना, क़िस्सा मुख़्तसर, क़िस्सा तमाम हुआ। लिखते हुए डरता हूँ और वो भी कौन सी ख़ुशी की बात है जो लिखूँ? अपने घर में और अपने बच्चों को मेरी और मेरे घर की तरफ़ से दुआ कह देना, और तुमको भी तुम्हारी उस्तानी दुआ कहती हैं। ज्यादा ज्यादा।

दो शंबा ८ फ़रवरी सन् १८५८ ई०।

अज़—ग़ालिब

२

(मार्च १८५८)

भाई शहाबुद्दीनख़ाँ,

वास्ते ख़ुदा के। ये तुमने और हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ाँ ने मेरे दीवान का क्या हाल कर दिया है? ये अशार जो तुमने भेजे हैं, ख़ुदा जाने किस वल्दुज्जिना[1] ने दाख़िल कर दिए हैं। दीवान तो छापे का है। मतन में अगर ये शेर हों तो मेरे हैं, और अगर हाशिये पर हों तो मेरे नहीं हैं। बिल फ़र्ज़ अगर ये शेर मतन में पाए भी जाएँ तो यों समझना के किसी मलऊन[2] ज़न जलब ने असल कलाम को छील कर ये ख़ुराफ़ात लिख दिए हैं। ख़ुलासा ये के जिस मुफ़सिद[3] के ये शेर हैं, उसके बाप पर और दादा पर और परदादा पर लानत और वो हफ़्ताद[4] पुश्त तक वल्दुलहराम[5]। इसके सिवा और क्या लिखूँ। एक तो लड़के, मियाँ ग़ुलाम नजफ़, दूसरे तुम; मेरी कमबख़्ती बुढ़ापे में आई के मेरा कलाम तुम्हारे हात पड़ा। बाद इन सतरों के लिखने के तुम्हारा ख़त पहुँचा। ये दूसरा हादसा मुझको पहले ही मालूम हो गया था। क़ज़ा व क़द्र के उमूर में दम मारने की गुंजाइश नहीं है। कहीं जागीर पर जल्द जाने की इजाज़त हो जाए ताके सब यकजा बाहम आराम से रहो। अपने कातिब को कह देना के ये ख़ुराफ़ात मतन में न लिखे। अगर लिख दिए हों तो वो वरक़ निकलवा डालना और वरक़ उसके बदले लिखवा कर लगा देना। मुनासिब तो यों हैं के तुम किसी आदमी के हात वो दीवान जो तुम्हारे कातिब ने नक़ल किया है, मेरे पास भेज दो; ताके मैं उसको एक नज़र देखकर फिर तुमको भेज दूँ। ज़्यादा ज़्यादा।

आज न मेरे पास टिकट है न दाम। माफ़ रखना। वस्सलाम।

---

१. एक गाली। २. एक गाली। ३. उत्पाती। ४. सात पीढ़ियाँ। ५. एक गाली।

३

(११ अप्रैल १८५८)

भाई,

तुम्हारा ख़त पहुँचा। कोई मतलब जवाब तलब नहीं था के मैं उसका जवाब लिखता। फिर सोचा के मबादा तुम आज़ुर्दा हो। इस वास्ते आज ये रुक्क़ा तुमको लिखता हूँ। मेरा जी तो ये चाहता था के अब जो ख़त तुम्हें लिखूँ उसके आग़ाज़ में ये लिखूँ के मुबारक हो। तुम्हारे अबो[1] अम माउल[2] ख़ैर अपनी जागीर को रवाना हो गए। इंशा अल्लाह् ताला अब के जो ख़त तुमको लिखूँगा उसका मज़मून यही होगा। ख़ातिर जमा रखना, और अगर मेरा खत दो-चार दिन न पहुँचे तो मुझे उसी मज़मून के ज़हूर का मुन्तज़िर समझना और गिला न करना।

और हाँ साहब, तुम जो ख़त लिखते हो तो उसमें अहमद सईदख़ाँ का कुछ ज़िक्र नहीं लिखते। लाज़िम है के उसकी ख़ैरो आफ़ियत और उसकी बहन की ख़ैरो आफ़ियत लिखत रहा करो, यहाँ तुम्हारी फूफी और तुम्हारे दोनों भतीजे अच्छी तरह हैं। वद्दुआ।

यकशंबा २१ अप्रेल सन् १८५८ ई०।

अज़--ग़ालिब

४

(अगस्त १८६१)

तुम्हारे भाई का ख़त तुम्हारे पास भेजता हूँ। 'कुल्लियाते उर्दू' जो तुमने ख़रीदे ह, एक उसमें से चाहो अपने चचा के नज़्र करो, चाहो भाई को तोहफ़ा

---

१. पिता और चाचा। २. सकुशल।

भेजो। मैंने इस वक़्त उनके नाम का ख़त लोहारू को रवाना किया है। बाद इरसाले ख़त मौलवी सदीदुद्दीनख़ाँ साहब मेरे हाँ आए। अस्नाए[1] हर्फ़ व हिकायत में मैंने 'शाहीन' की हक़ीक़त पूछी। जवाब दिया के हाँ, अरबी में एक बाजे का नाम शाहीन है। सूरत उसकी पूछी गई, कहा, मुझे मालूम नहीं, 'सुराह[2]' में मैंने देखा है। फ़क़त।

तुम जो मौलाना अलाई को ख़त लिखो ये रुक़्क़ा मलफ़ूफ़ करो।

—ग़ालिब

५

(२४ दिसम्बर १८६१)

नूरे चश्म शहाबुद्दीनख़ाँ को दुआ के बाद मालूम हो—ये जो रुक़्क़ा लेकर पहुँचते हैं, इनका नाम हसनअली है, और ये सैयद हैं। दवासाज़ी में यगाना,[3] रकाबदारी[4] में यकता। जान मुहम्मद इनका बाप मुलाज़िम सरकारे शाही था। अब इनका चचा मीर फ़तहअली पन्द्रह रुपए महीने का अलवर में नौकर है। बहरहाल इनसे कहा गया के पाँच रुपए महीना मिलेगा और लोहारू जाना होगा। इन्कार किया के पाँच रुपए में मैं क्या खाऊँगा! यहाँ ज़न[5] व फ़र्ज़न्द को क्या भिजवाऊँगा! जवाब दिया गया के सरकार बड़ी है। अगर काम तुम्हारा पसन्द आएगा तो इज़ाफ़ा[6] हो जाएगा। अब वो कहता है के ख़ैर तवक़्क़ो पर ये क़लील[7] मुशाहिरा क़ुबूल करता हूँ। मगर दोनों वक़्त रोटी सरकार से पाऊं। बग़ैर इसके किसी तरह नहीं जा सकता। सुनो मियाँ, हक़[8] बजानिब[9] इस ग़रीब के है। रोटी मुक़र्रर हुए बग़ैर बात नहीं बनती।

१. उलहना और पूछताछ। २. निरुक्त। ३. कुशल। ४. मिठाई बनाने का काम। ५. पत्नी और पुत्र। ६. वृद्धि। ७. कम वेतन। ८. सचाई। ९. तरफ।

यक़ीन है तुम रिपोट करोगे तो इस अम्र की मंजूरी का हुक्म आ जाएगा। ये क़िस्सा फ़ैसल हुआ। अब ये कहता है के दोमाहा मुझे पेशगी दो, ता के कुछ कपड़ा-लत्ता बनाऊं और कुछ घर में दे जाऊं—राह में रोटी और सवारी सरकार से पाऊं; मैं तो यहाँ भी हक़ बजानिब सायल[1] के जानता हूं, मगर कुछ कह नहीं सकता। अपनी राय इस बाब में लिख नहीं सकता। ख़ैर तुम यही मेरा रुक़्क़ा अपने नाम का अलाईमौलाई को भेज दो।

से शम्बा २४ दिसम्बर १८६१ ई०।

—ग़ालिब

६

(१८६२ ई०)

मियाँ,

वो क़ाज़ी तो मस्ख़रा, चूतिया है, उनका ख़त देख लिया, ख़ैर। हाँ, अला-उद्दीनख़ाँ का ख़त घंटा भर भाँड के तायफ़े का तमाशा है। अब तुम कहो उस्ताद मीर जान को क्यों कर भेजोगे ? उनको कहाँ पाओगे ? और अलाउद्दीनख़ाँ ने हस्बुल[2] हुक्म तुम्हारे चचा को लिखा है। लोहारू की सवारियाँ आई हुई शायद कल या परसों जाएं। इसकी फ़िक्र आज करो। अमीनुउद्दीनख़ाँ बेचारा अकेला घबराता होगा।

'चकीदन दहेम', 'रमीदन दहेम'–ये ग़ज़ल अलाउद्दीन को भेज चुका हूँ। तुम अलाउद्दीनख़ाँ को लिखो के बड़ी शर्म की बात है के—

हरदम[3] आज़ुर्दगी ग़ैर सबब रा चे इलाज

---

१. प्रार्थी। २. आदेशानुसार। ३. बार बार क्रुद्ध होने का क्या इलाज है।

इस ग़ज़ल को हाफ़िज़ की ग़ज़ल समझते हो ! वाह-वाह ! "ग़ैर सबब" कहाँ की बोली है ?

अज़[1] खान्दन क़ुराने तो क़ारी चे फ़ायदा

अयाज़न बिल्लाह् । अमीर खुसरो 'क़ुरान' को के बसुकूने[2] राय क़ुरेशत व अलिफ़े ममदूदा है, 'क़ुरान' बरवज़न 'पुरान' लिखेंगे ? ये दोनों ग़ज़लें दो गधों की हैं। शायद एक ने मक़ते में हाफ़िज़ और एक ने मक़ते में खुसरो लिख दिया हो।

—ग़ालिब

७

रुबाई

रुक़्क़े का जवाब क्यों न भेजा तुमने ?
साक़िब हरकत ये की है बेजा तुमने
हाजी कल्लू को दे के बे वजह जवाब,
'ग़ालिब' का पका दिया कलेजा तुमने

८

रुबाई

अै रोशनी दीदा शहाबुद्दीनख़ाँ
कटता है बताओ किस तरह से रमज़ाँ
होती है तरावीह से फ़ुर्सत कब तक ?
सुनते हो तरावीह में कितना क़ुरआँ !

---

१. क़ुरान के केवल पाठ करने से क्या लाभ। २. 'क़' और दीर्घ आकार के साथ।

६

(८ अक्टूबर १८६५)

मियाँ मिर्ज़ा शहाबुद्दीनख़ाँ,

अच्छी तरह रहो। ग़ाज़ियाबाद का हाल शम्शादअली से सुना होगा। हफ़्ते के दिन, दो-तीन दिन घड़ी दिन चढ़े, अहबाब को रुख़्सत करके राही हुआ। क़स्द ये था के पिलख़वे रहूँ। वहाँ क़ाफ़िले की गुंजाइश न पाई। हापुड़ को रवाना हुआ। दोनों बरख़ुरदार घोड़ों पर सवार पहले चल दिए। चार घड़ी दिन रहे मैं हापुड़ की सराय में पहुँचा। दोनों भाइयों को बैठे हुए और घोड़ों को टहलते हुए पाया। घड़ी भर दिन रहे क़ाफ़िला आया। मैंने छटाँक भर घी दाग़ किया। दो शामी कबाब उसमें डाल दिए, रात हो गई थी। शराब पी ली, कबाब खाए, लड़कों ने अरहर की खिचड़ी पकवाई। ख़ूब घी डालकर आप भी खाई और सब आदमियों को भी खिलाई। दिन के वास्ते सादा सालन पकवाया, तरकारी न डलवाई। बारे, आज तक दोनों भाइयों में मुआफ़िक़त[1] है। आपस की सलाह व मशविरत से काम करते हैं। इतनी बात ज़ायद है के हुसेनअली मंजिल पर उतर कर पापड़ और मिठाई के खिलौने ख़रीद लाता है। दोनों भाई मिलकर खा लेते हैं। आज मैंने तुम्हारे वालिद की नसीहत पर अमल किया। चार बजे, पाँच के अमल में हापुड़ से चल दिया। सूरज निकले बाबूगढ़ की सराय में आ पहुँचा। चारपाई बिछाई, उस पर बिछोना बिछाकर हुक़्क़ा पी रहा हूँ और ये ख़त लिख रहा हूँ। दोनों घोड़े कोतल आ गए। दोनों लड़के रत में सवार होकर आते हैं। अब वो आए और खाना खा लिया और चले। तुम अपनी उस्तानी के पास जाकर ये रुक़्क़ा सरासर पढ़ कर सुना देना। शम्शाद को किताब के मुक़ाबिले और तसही की ताकीद कर देना।

---

१. सौहार्द।

मिर्ज़ा हातिमअली 'मेहर' के नाम

१

बहुत सही, ग़मे गेती[1] शराब कम क्या है!
ग़ुलाम[2] साक़ी ए कौसर हूँ, मुझको ग़म क्या है!
सुख़न में ख़ाम ए 'ग़ालिब' की आतिश[3] अफ़सानी
यक़ीन है हमको भी लेकिन अब उसमें दम क्या है!

इलाक़ए मुहब्बत[4] अज़ली को बरहक़ मान कर और पैवंदे ग़ुलामी जनाब मुर्तज़ा अली को सच जानकर एक बात और कहता हूँ के—बीनाई[5] अगर चे सब को अज़ीज़ है, मगर शुनवाई भी तो आख़िर एक चीज़ है। माना के रू शनासी उसके इज़ारे में आई है, ये भी दलीले आशनाई है। क्या फ़र्ज़ है के जब तक दीद वादीद[6] न हो ले अपने को बेगानए यक दिगर समझें। अलबत्ता हम-तुम दोस्ते देरीना हैं, अगर समझें। सलाम के जवाब में ख़त बहुत बड़ा अहसान है। ख़ुदा करे, ख़त जिसमें मैंने आपको सलाम लिखा था, आपकी नज़र से गुज़र गया हो। अहयानन अगर न देखा हो तो अब मिर्ज़ा तफ़्ता से लेकर पढ़ लीजिएगा, और ख़त के लिखने के अहसान को उस ख़त के पढ़ लेने से दोबाला[7] कीजिएगा।

हाय मेजर जान जाकोब, क्या जवान मारा गया है! सच, उसका ये शेवा था के उर्दू की फ़िक्र को माना आता और फ़ारसी ज़बान में शेर कहने की रग़बत दिलवाता। बन्दा····ये भी उन्हींमें है के जिनका मैं मातमी हूँ।

---

१. सांसारिक दुःख। २. हज़रत अली का दास। ३. अग्नि वर्षी। ४. स्थायी प्रेम। ५. दृष्टि। ६. साक्षात्कार। ७. अधिक।

हज़ारहा दोस्त मर गए। किसको याद करूँ और किससे फ़रियाद करूँ ? जीऊँ तो कोई ग़मख़ार नहीं, मरूँ तो कोई अज़ादार[1] नहीं।

ग़ज़लें आपकी देखीं। सुभान अल्लाह, चश्मे बद्दूर, उर्दू की राह के तो सालिक हो, गोया इस ज़बान के मालिक हो। फ़ारसी भी खूबी में कम नहीं, मश्क शर्त है। अगर कहे जाओगे, लुत्फ़ पाओगे। मेरा तो गोया बक़ौले "तालिब" आमुली अब ये हाल है—

लब[2] अज़ गुफ़्तन चुनाँ बस्तम के गोई
दहन बर चहरा ज़ख्मे बूद ब शुद

जब आपने बग़ैर ख़त के भेजे ख़त मुझको लिखा हो, तो क्योंकर मुझको अपने ख़त के जवाब की तमन्ना न हो। पहले तो अपना हाल लिखिए के मैंने सुना था, के आप कहीं के सदर अमीन हैं। फिर आप अकबराबाद में क्यों ख़ानानशीन हैं ? इस हंगामे में आपकी सोहबत हुक्काम से कैसी रही ?

राजा बलवानसिंघ का भी हाल लिखना ज़रूर है के कहाँ हैं और वो दो हज़ार महीना जो उनको सरकार अंगरेज़ी से मिलता था, अब भी मिलता है या नहीं ?

हाय, लखनऊ ! कुछ नहीं खुलता के उस बहारिस्तान पर क्या गुज़री अमवाल क्या हुए ? अशख़ास कहाँ गए ? ख़ानदाने शुजाउद्दौला के ज़न व मर्द का अंजाम क्या हुआ ? क़िब्ला व काबा हज़रत मुज्तहिदुल अस्र की सर गुज़िश्त क्या है ? गुमान करता हूँ के बनिस्बत मेरे तुमको कुछ ज्यादा आगही होगी। उम्मीदवार हूँ के जो आप पर मालूम है, वो मुझ पर मभूल न रहे। पता मस्कन मुबारक का कश्मीरी बाज़ार से ज्यादा नहीं मालूम हुआ। ज़ाहिरा

---

१. शोक करने वाला। २. मैंने अपना मुँह बन्द कर लिया है। आकृति पर जो घाव लगे थे वे अच्छे हो गए।

इसी क़द्र काफ़ी होगा, वर्ना आप ज़्यादा लिखते। मिर्ज़ा तफ़्ता को दुआ कहिएगा और उनके उस ख़त के पहुँचने की इत्तिला दीजिएगा, जिसमें आपके ख़त की उन्होंने नवीद लिखी थी। वस्सलाम।

२

(५ मार्च १८५८)

ख़ुद[1] शिकवा दलीले रफ़ए आज़ाद बसस्त
आयद ब ज़बान हर आँचे अज़ दिल बनवद

बन्दापरवर, फ़क़ीर शिकवे से बुरा नहीं मानता, मगर शिकवे के फ़न को सिवाय मेरे कोई नहीं जानता। शिकवे की ख़ूबी ये है के राहे रास्त से मुँह न मोड़े और माहज़ा दूसरे के वास्ते जवाब की गुंजाइश न छोड़े। क्या मैं ये नहीं कह सकता के मुझको आपका फ़र्रुख़ाबाद जाना मालूम हो गया था, इस वास्ते आपको ख़त नहीं लिखा था?

क्या मैं ये कह नहीं सकता के मैंने इस अर्से में कई ख़त भिजवाए और वो उल्टे फिर आए? आप शिकवा काहे को करते हैं? अपना गुनाह मेरे जिम्मे धरते हैं। न जाते वक़्त लिखा के मैं कहाँ जाता हूँ, न वहाँ जाकर लिखा के मैं कहाँ रहता हूँ। कल आपका मेहरबानी नामा आया। आज मैंने उसका जवाब भिजवाया। कहिए अपने दावे में सादिक़ हूँ या नहीं? बस दर्दमन्दों को ज़्यादा सताना अच्छा नहीं। मिर्ज़ा तफ़्ता से आप फ़क़्त उनके ख़त न लिखने के सबब सरगिराँ[2] हैं। मैं ये भी नहीं जानता के वो इन दिनों में कहाँ हैं। आज, तवक़्क़ुलतोअल[3] अल्लाह्, सिकन्दराबाद ख़त भेजता हूँ। देखूँ, क्या देखता हूँ।

---

१. स्वयं पछतावा करना दुःख को दूर करने का प्रमाण है। जो कुछ जिह्वा से निकलता है वह मेरे हृदय की वाणी है। २. अप्रसन्न। ३. ईश्वर के विश्वास पर।

३

(१८५८ ई०)

साहब मेरे, औहद ए वकालत मुबारक हो। मौक्किलों[1] से काम लिया कीजिए। परियों को तस्ख़ीर[2] किया कीजिए। मसनवी पहुँची। झूट बोलना मेरा शियार नहीं, क्या ख़ूब बोलचाल है! अन्दाज़ अच्छा, बयान अच्छा, रोजमर्रा साफ़। हब्शियों का इस्तग़ासा, क्या कहूँ, क्या मज़ा दे रहा है—

बिगम साहब फसौड़े में फँसाया
छुटा बेगम ने बेहुरमत कराया

इस मसनवी ने अगली मसनवियों को तक़वीमे[3] पारीना कर दिया।

'बयाने बख़्शायश' हम गुनहगारों तक क्यों पहुँचेगा? मगर हाँ इस राह से—

के मुस्तहक़्क़े[4] करामत गुनहगारानन्द।

बख़्शिश का मुतवक़्क़े हूँ। मैं अभी तक ये भी नहीं समझा के वो नुस्ख़ा नज़्म है या नस्र है, और मज़मून उसका क्या है। मिर्ज़ा यूसुफ़ अली ख़ाँ आठ-आठ, दस-दस महीने से मय अयालो अतफ़ाल इसी शहर में मुक़ीम हैं। एक हिन्दू अमीर के घर पर मकतब का सा तौर कर लिया है, मेरे मस्कन के पास एक मकान किराए को ले लिया है। उसमें रहते हैं। अगर उनको ख़त भेजो तो मेरे मकान का पता लिख देना और ये भी आपको मालूम रहे के मेरे ख़त के सरनामे पर मुहल्ले का नाम लिखना ज़रूर नहीं। शहर का नाम और मेरा नाम, क़िस्सा तमाम। हाँ यार 'अज़ीज़' के ख़त पर मेरे

---

१. लाक्षणिक रूप में जिन्द। २. वश में लाना। ३. पुराना पंचांग। ४. चमत्कार अथवा कृपा के अधिकारी गुनहगार हैं।

'मकान के क़रीब' का पता ज़रूर है। दो रोज़ से 'शोआए मेहर' को देख रहे हैं। अक्सर तुम्हारा ज़िक्रे ख़ैर रहता है। वो तो अब हर वक़्त यहीं तशरीफ़ रखते हैं। रात को तो पहर—छ घड़ी की निशिस्त[1] रोज़ रहती है। अभी यहीं से उठकर मकतब[2] को गए हैं। तुमको सलाम कहते हैं और 'शो आए मेहर' के मद्दाह[3] और 'बयाने बख़्शायश' के मुश्ताक़ हैं।

४

भाई साहब,

तुम्हारा ख़त और क़सीदा पहुँचा। असल ख़त तुम्हारा लिफ़ाफ़े में लपेट कर मिर्ज़ा तफ़्ता को भेज दिया, ताके हाल उनको मुफ़स्सिल मालूम हो जाए। बाद इस रिपोट के तुमको तहनियत देता हूँ। परवर दिगार व तसद्दुक़[4] अईमए[5] अतहार ये पेश आमद इक़बाल तुमको मुबारक करे और मन्सब हाए ख़तीर[6] और मदारिज अज़ीम को पहुँचावे। वाक़ई ये के तुमने बड़ी जुरत की। फ़िल हक़ीक़त अपनी जान पर खेले थे। बात पैदा की, मगर अपनी मर्दी व मर्दानगी से। दौलत का हात आना मय नेकनामी, इससे बेहतर दुनिया में कोई बात नहीं। अब यक़ीन है के ख़िदमते मुन्सफ़ी मिले और जल्द तरक़्क़ी करो, ऐसा के साले आइन्दा तक चश्मेबद्दूर सदरुस्सुदूर[7] हो जाओ।

अल्लाह्, अल्लाह्, एक वो ज़माना था के 'मुग़ल' ने तुम्हारा ज़िक्र मुझसे किया था और वोअशार जो तुमने उसके हुस्न के वस्फ़ में लिखे थे, तुम्हारे हात के लिखे हुए मुझको दिखाए थे। अब एक ये ज़माना है के तरफ़ैन[8] से नामा[9] व पयाम आते जाते हैं। इंशा अल्लाहो ताला वो दिन भी आ जाएगा

१. बैठक। २. पाठशाला। ३. प्रशंसक। ४. उनके कारण। ५. पवित्र इमाम। ६. अगणित। ७. धर्माध्यक्ष, सदर का सदर। ८. दोनों ओर से। ९. पत्र और संदेश।

के हम-तुम बाहम बैठें और बातें करें। क़लम बेकार हो जाए। ज़बान बर-सरे गुफ़्तार आए। इंशा अल्ला ख़ाँ का भी क़सीदा मैंने देखा है। तुमने बहुत बढ़ कर लिखा है और अच्छा समाँ बाँधा है। ज़बान पाकीज़ा, मज़ामीन अछूते, मानी नाज़ुक, मतालिब[1] का बयान दिलनशीन, ज़्यादा क्या लिखूँ?

५

(सितंबर १८५८)

बन्दा परवर,

आपका मेहरबानी नामा आया। आपकी मेहर अंगेज़ और मुहब्बतख़ेज़ बातों ने गमे बेकसी[2] भुलाया। कहाँ ध्यान लड़ा है, कहाँ से 'दस्तम्बू' की मुनासिबत के वास्ते 'यदे बैज़ा[3]' ढूँढ निकाला है! आफ़रीं सद हज़ार आफ़रीं! तीसरा मिसरा अगर यों हो तो फ़क़ीर के नज़दीक बहुत मुनासिब है—

नाम ख़ुद साले ख़ीश दाद नशाँ

मिर्ज़ा तफ़्ता का ख़त हातरस से आया, उनके लड़के-वाले अच्छे हैं। आप घबराएँ नहीं। वो आए के आए हैं। अगर तुम्हें बग़ैर उनके आराम नहीं, तो उनको बग़ैर तुम्हारे चैन कहाँ? साहबे बन्दा इस्ना अशरी[4] हूँ। हर मतलब के ख़ात्मे पर बारह का हिन्सा करता हूँ। ख़ुदा करे मेरा भी ख़ात्मा इसी अक़ीदे पर हो। हम तुम एक आक़ा के ग़ुलाम हैं, तुम जो मुझसे मुहब्बत करोगे, या मेरी ग़म-गुसारी में मेहनत करोगे, क्या तुमको ग़ैर जानूँ, जो तुम्हारा इहसान मानूँ? तुम सरापा[5] मेहरो वफ़ा हो; वल्लाह, इस्मे मुसम्मा[6] हो।

१. अर्थ। २. विवशता। ३. हज़रत मूसा का एक चमत्कार यह था कि जब वे हाथ खोलते थे तो हाथ से प्रकाश निकलता था। इसी चमत्कार को 'यदे बैज़ा' कहते हैं। 'दस्तम्बू' के 'दस्त' की समता के लिए पुस्तक का नाम रखा गया 'यदे बैज़ा'। ४. शिया। ५. नख से शिख तक प्रेम मय। ६. जैसा नाम वैसा गुण।

मुबालिग़ा इस किताब की तसही में इस वास्ते करता हूँ के इबारत का ढंग नया है, सही का दुरुस्त पढ़ना बड़ी बात है, अगर ग़लत हो जाए तो फिर वो इबारत निरी ख़ुराफ़ात है। बारे, बसबबे इल्तफ़ात भाई मुंशी नबी बख़्श साहब के सेहते अल्फ़ाज़ से ख़ातिर जमा है। मुतवक़्क़े हूँ के वो तकलीफ़ सहें, और ख़त्मे किताब तक मुतवज्जह रहें। मुन्शी शीवनरायन साहब ने कापी मेरे देखने को भेजी थी, सब तरह मेरे पसन्द आई, चुनाचे उनको लिख भेजा है—अगर हो सके तो स्याही ज़रा और भी रंगत की अच्छी हो।

हज़रत, चार जिल्दें यहाँ के हुक्काम को दूँगा और दो जिल्दें विलायत को भेजूँगा। अल्लाह् अल्लाह्। क्या ग़फ़लत है, और क्या ऐतमाद है जिन्दगी पर। बहरहाल ये हवस थी और शायद अब भी हो के इन छ जिल्दों की कुछ तज़्ज़ीं[1] और आरायश की जावे। आप और भाई साहब और उनका फ़र्जन्दे रशीद मुन्शी अब्दुल लतीफ़ और मुन्शी शीवनरायन ये चारों साहब फ़राहम हों, और ब इजलासे कौन्सिल ये अम्र तजवीज़ किया जावे के क्या किया जावे। माहज़ा दो-दो रुपए किताब से ज़्यादा का मक़दूर भी नहीं। हाँ, ये मुमकिन है के चार जिल्दें छ रुपयों में और दो जिल्दें छ रुपयों में तैयार हों। फिर सोचता हूँ या रब, आरायश की गुंजाइश कहाँ? लाचार, चार किताबों की जिल्द डेढ़-डेढ़ रुपए और दो किताबों की जिल्द तीन-तीन रुपए की बनाई जाए। क़िस्सा मुख़्तसर, कुछ किया जाए या यही कह दिया जाए के तेरी राय कौन्सिल में मक़बूल और सिर्फ़ जिल्दों की तैयारी मंज़ूर हुई। बारह रुपए भेज दे।

मतालिब व मक़ासिद तमाम हुए, और हम तुम व ज़बाने क़लम बाहम दिगर हम कलाम हुए।

---

१. सजावट।

६

(२० सितम्बर १८५८)

भाई साहब,

अज़ रूए तहरीर मिर्ज़ा तफ़्ता आपका छ किताबों की तज्ज़ीं की तरफ़ मुतवज्जह होना मालूम हुआ। फिर भाई मुंशी नबी बख़्श साहब ने दो बार लिखा के मैं ब इजमाल लिखता हूँ, मुफ़स्सिल मिर्ज़ा हातिमअली साहब ने लिखा होगा। या रब, उनके दो ख़त आ गए; मिर्ज़ा साहब ने अगर लिखा होता तो उनका ख़त क्यों न आता ? अपने हुस्ने ऐतक़ाद से यों समझा के न लिखना बमुक़्तज़ाए[1] यकदिली है। जब अपना काम समझ ले, तो, मुझको लिखना क्या ज़रूर है ? मगर इसको क्या करूँ के जवाब तलब बातों का जवाब नहीं। मतबए अख़बारे 'आफ़ताबे आलम ताब' में यकुम सितम्बर सन् १८५८ हाल से हकीम अहसनुल्लाख़ाँ का नाम लिखवा देना और दो नम्बरों का एक बार भिजवा देना और आइन्दा हर हफ़्ते उसके इरसाल का तौर ठहरा देना। क्यों साहब, ये अम्र ऐसा क्या दुश्वार था के आपने न किया ? और अगर दुश्वार था तो उसकी इत्तिला देनी क्या दुश्वार थी ?अभी शिकायत नहीं करता, पूछता हूँ के आया ये उमूर मुक़्तज़ी शिकायत हैं या नहीं ! मिर्ज़ा तफ़्ता के एक खत में ये क़िस्सा लिख चुका हूँ। क्या उन्होंने भी वो ख़त तुमको नहीं पढ़ाया ! हरचन्द अक़्ल दौडाई, कोई दिरंग की वजह ख़याल में नहीं आई। अब हुसूले मुद्दआ से क़ते नज़र मैं ये सोच रहा हूँ के देखूँ छ महीने बाद, बरस दिन बाद, अगर मिर्ज़ा साहब ख़त लिखते हैं तो इस अम्रे ख़ास का जवाब क्या लिखते हैं !

---

१. बन्धुता के कारण।

मैं भी शायर हूँ। अगर कोई मज़मून होता, तो मेरे भी ख़याल में आ जाता। कोई उज़्र ऐसा मेरे ज़हन में नहीं आता के क़ाबिल समात के हो। मैं भी तो देखूँ तुम क्या लिखते हो !

७

(२१ सितम्बर १८५८)

मरा ब[1] सादा दिले हाए मन तुआँ बख़्शीद
ख़ता नमूदा अमो चश्मे आफ़रीं दारम

कल दोशम्बे का दिन, २० सितम्बर की थी। सुबह को मैंने आपको शिकायत नामा लिखा और बैरंग डाक में भेज दिया। दोपहर को डाक का हरकारा आया। तुम्हारा ख़त और एक मिर्ज़ा तफ़्ता का ख़त लाया। मालूम हुआ के जिस ख़त का जवाब मैं आप से माँगता हूँ वो नहीं पहुँचा। कुछ शिकवे से शर्मिंदा और कुछ ख़त के न पहुँचने से हैरत हुई। दोपहर ढले मिर्ज़ा तफ़्ता के ख़त का जवाब लिखकर टिकट निकालने लगा, बक्स में से वो तुम्हारे नाम का ख़त निकल आया। अब मैं समझा के ख़त लिख कर भूल गया हूँ, और डाक में नहीं भेजा। अपने निसयान[2] को लानत की और चुप हो रहा। मुतवक़्क़े हूँ के मेरा क़ुसूर माफ़ हो। बाद चाहने अफ़्ए जुर्म के आपके कल के ख़त का जवाब लिखता हूँ। सुभान अल्लाह, जिल्दों की आराइश के बाब में क्या अच्छी फ़िक्र की है। मेरे दिल में भी ऐसी ही ऐसी बातें थीं। यक़ीन है के मता[3] ए शाहवार हो जाएँगी। अहार[4] मुहरा अगर हो जाएगा तो हर्फ़ ख़ूब चमक जाएँगे। इसका ख़याल उन चार जिल्दों में भी रहे; बारह रुपए

---

१. मेरी मूर्खताओं को क्षमा कर, मैं अपराधी हूँ, किन्तु प्रशंसा चाहता हूँ।
२. विस्मरण। ३. प्रशंसनीय। ४. बड़ी कौड़ी से काग़ज़ को घोटने की क्रिया।

की हुण्डवी पहुँचती है। रुपया वसूल कर मुझको इत्तिला दीजिएगा। वर्ना मैं मशविश रहूंगा।

हज़रत, यहां दो ख़बरें मशहूर हैं। इनके बाब में आप से तस्दीक़ चाहता हूँ। एक तो ये के लोग कहते हैं आगरे में इश्तेहार जारी हो गया है और ढँढोरा पिट गया है के कम्पनी का ठेका टूट गया और बादशाही अमल हिन्दुस्तान में हो गया। दूसरी खबर ये है के जनाब अडमिन्स्टन साहब बहादुर, गवर्मेन्ट कलकत्ता के चीफ़ सेक्रेतर, अकबराबाद के लेफ्टिनेंट गवर्नर हो गए। ख़बरें दोनों अच्छी हैं, ख़ुदा करे सच हों और सच होना इनका आपके लिखने पर मुन्हसिर है।

हाँ साहब, एक बात और है और वो महले ग़ौर है। मैंने हज़रत मलिकए मुअज़्ज़मए इंग्लिस्तान की मदह में एक क़सीदा इन दिनों में लिखा है— "तहनियते फ़तहे हिन्द और अमलदारि ए शाही।" साठ बैत हैं। मंज़ूर ये था के किताब के साथ क़सीदा एक और काग़ज़े मजह्ब पर लिखकर भेजूँ। फिर ये ख़याल में आया के दस सतर के मिस्तर पर किताब लिखी गई है, याने छापा हुआ है। अगर ये छ सफ़े याने तीन वरक़ और छपकर उस किताब के आग़ाज़ में शामिले जिल्द हो जाएँ तो बात अच्छी है। आप और मुंशी नबीबख़्श साहब और मिर्ज़ा तफ़्ता मुंशी शोवनरायन साहब से कहकर इसका तौर दुरुस्त करें और फिर मुझको इत्तिला दे तो मैं मसविदा आपके पास भेज दूँ। जब किताब छप चुके तो ये छप जाए। दो बातें हैं—

एक तो ये के छपे बाद किताब के, और लगाया जाए पहले किताब से। दूसरे ये के इसकी स्याह क़लम की लौह अलग हो और पहले सफ़े पर जिस तरह किताब का नाम छापते हैं, इस तरह ये भी छापा जाए के "क़सीदा दर मदहे जनाब मलिकए इंग्लिस्तान ख़ल्दुल्लाहु[1] मुल्क हा।" मेरा नाम कुछ ज़रूर नहीं; किताब के पहले सफ़े पर तो होगा।

---

१. ईश्वर उनके देश को सकुशल रखे।

हुण्डवी की रसीद और इस मतलबे ख़ास का जवाब बा सवाब यानें नवीदे क़ुबूल जल्द लिखिए।

८

(२६ सितम्बर १८५८)

भाई साहब, ख़ुदा तुमको दौलत व इक़बाल रोज़ अफ़ज़ूँ अता करे और हम तुम एक जगह रहा करें। ख़ुदा करे क़सीदे के छापे की मंज़ूरी और हुण्डवी की रसीद आए। गोया सफ़र[1] के महीने में ईद आए। हुण्डवी का रुपया जब चाहो तब मँगवाओ और किताबों की लौहें और जिल्दें माफ़िक़ अपनी राय के बनवा लो।

अब आप दो वरक़े का डाक में भेजना मौक़ूफ़ रखें और किताबों की दुरुस्ती पर हिम्मत मसरूफ़ रखें। क़सीदे के मसविदे का वरक़ मिर्ज़ा तफ़्ता के ख़त में पहुँच गया होगा। आपने और मिर्ज़ा तफ़्ता ने और भाई मुंशी नबी बख़्श साहब ने क़सीदे को देखा होगा। क़सीदे का शामिले किताब होना बहुत ज़रूर है, पर देखा चाहिए साहबे मतब को क्या मंज़ूर है। अगर वो काग़ज़ की क़ीमत का उज़्र करेंगे, तो हम पान सात रुपए से और भी उनका भरना भरेंगे।

जनाब ऐडमिन्स्टन साहब बहादुर से मैं सूरत आशना नहीं। कभी मैंने उनको देखा नहीं। ख़तों की मेरी उनकी मुलाक़ात है और नामा व पयाम की यों बात है के जब कोई नवाब गवर्नर जनरल बहादुर नए आते हैं तो मेरी तरफ़ से एक क़सीदा बतरीक़े नज़्र जाता है। बे[2]—ज़रियए जनाब साहब बहादुर एजेन्ट देहली और नवाब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर आगरा भिजवाता हूँ और साहब सेक्रेतर बहादुर गवर्मेन्ट का ख़त

१. सफ़र के महीने को अशुभ माना जाता है। २. सीधा।

उसकी रसीद में बसबीले डाक पाता हूँ। जब जनाब लार्ड केनिंग बहादुर ने कुर्सी गवर्नरी पर इजलास फ़र्माया तो मैंने माफ़िक़ दस्तूर के क़सीदा डाक में भिजवाया। अडमिन्स्टन साहब बहादुर चीफ़ सेक्रेतर का जो मुझको खत आया तो उन्होंने बावजूद अदम साबिक़ा मारिफ़त मेरा अलक़ाब बढ़ाया। क़ब्ल अज़ीं 'खान साहब बिसियार, मेहरबान दोस्तान' मेरा अलकाब बढ़ाया। क़ब्ल अज़ीं 'खान साहब विसियार,[1] मेहरबान, दोस्तान' मेरा अलक़ाब था। इस क़द्रशनास ने अज़राहे क़द्र अफ़ज़ाई 'खान साहब मुशफ़िक़ बिसियार मेहरबाने मुख़लिसान, लिखा। अब फ़रामाइए उनको क्यों कर अपना मोहसिन और मुरब्बी[2] न जानूँ! क्या काफ़िर हूँ जो अहसान न मानूँ?

बरख़ुरदार मिर्ज़ा तफ़्ता को दुआ कहता हूँ। भाई अब मैं इसका मुन्तज़िर रहता हूँ के तुम और मिर्ज़ा साहब मुझको लिखो के लो साहब, 'दस्तम्बू-का छापा तमाम किया गया और क़सीदा छाप कर इब्तदा में लगा दिया गया। माद्दए तारीख़ में क्या बुराई है, जो तुम्हारे जी में ये बात आई है के मुझसे बारबार पूछते हो? माद्दा अच्छा है। क़ता लिख लो और ख़ातमए किताब पर लगा दो। एक क़ता मिर्ज़ा साहब का, एक क़ता तुम्हारा ये दोनों क़ते रहें। और अगर वहाँ कोई और साहब शायर हों, तो वो भी कहें। इस इबारत से ये न समझना के रूए सुख़न सारी ख़ुदाई की तरफ़ है, बल्के ख़ास ये इशारा भाई की तरफ़ है। मौलाना हक़ीर को तवज्जह इस बात में चाहिए और उनका नाम भी इस किताब में चाहिए।

इस ख़त को लिख कर बन्द कर चुका था के डाक का हरकारा मेरे मुशफ़िक़ मुंशी शीवनरायन साहब का ख़त लाया। बारे, क़सीदे का मसविदा

---

१. अधिक।

पहुँच गया और मुंशी साहब ने उसका छापना क़ुबूल किया। ये तशवीश भी रफ़ा हो गई। आप उनसे मेरा सलाम कहिएगा और ये कहिएगा—

शुक्र[1] राफ़त हाए तू चन्दाँ के राफ़त हाए तू

और ये उनको इत्तिला दीजिएगा के अख़बार का लिफ़ाफ़ा हर्गिज़ मुझको नहीं पहुँचा, वर्ना क्या इमकान था के मैं उसकी रसीद न लिखता ?

९

भाई साहब,

आपके ख़ाम ए मिश्कबार की सरीर[2] ने किताबों की लौहे तिलाई का आवाज़ा[3] यहाँ तक पहुंचाया, बल्के मुझको उनकी लौहों का हर ख़ते तिलाई मानिन्दे शोआए[4] आफ़ताब नजर आया। क्या पूछना है, और क्या कहना ? मुझको तो बमूजिब इस मिसरे के—

ख़ामोशी[5] अज़ सनाए तस्त हद्दे सनाए तस्त

दिल में ख़ुश होकर चुप रहना है। हज़रत, मदह को एक मौक़ा ज़रूर है। मुझको आपके हुक्म का बजा लाना मंज़ूर है। इस नज़्म के पहुँचने के बाद जब कोई उनका इनायत नामा आएगा तो बंदा दरगाहे मदह गुस्तरी का जौहर दिखाएगा। उस नज़्म में आपका ज़िक्रे ख़ैर भी आ जाएगा। अब ये तो फ़रमाइए के मुद्दते इन्तज़ार कब अंजाम पाएगी और किताबों की रवानगी की ख़बर मुझको कब आएगी ? आप की फ़र्त्ते[6] तवज्जह का सब तरह यक़ीन है। सियाह क़लम की पाँचों लौहें भी अगर बन गई हों तो कुछ अजब नहीं है। जिल्दों का बनाना अलबत्ता छापे के अख़्तेताम पर मौक़ूफ़ है। मालूम तो होता

---

१. कस्तूरी वर्षा। २. ध्वनि। ३. प्रसिद्धि। ४. सूर्य-किरण। ५. आपकी विशेषताओं की प्रशंसा करने में असमर्थ हूँ। ६. अधिक ध्यान।

है भाई नबीबख़्श साहब और हमारे शफ़ीक़ मुंशी शीवनरायन साहब की हिम्मत उसके जल्द अन्जाम होने पर मसरूफ़[1] है।

या रब इसी अक्तूबर के महीने मे ये काम अन्जाम पा जाए और चालीस जिल्दों का पुश्तारा[2] मेरे पास आ जाए।

मिर्ज़ा तफ़्ता को क्या दूँ और क्या लिखूँ ? मगर दुआ दूँ और दुआ लिखूँ। साहब अब ढील न करो। काम में ताजील[3] करो।

अै ज़[4] फ़ुर्सत बेख़बर दर हर चे बशी ज़ूद बाश।

ख़ुदा करे नस्र की तहरीर अंजाम पा गई हो और क़सीदे छापने की नौबत आ गई हो। क़सीदे का नस्र से पहले लगाना अज़ राहे इकराम[5] व इजाज़ है, वर्ना नस्र में और सनत,[6] और नज़्म का और अन्दाज़ है। ये उसका दीबाचा क्यों हो ? बल्के सूरत इन दोनों के इजमा की यों हो के सरिश्तए[7] आमेजिश तोड़ दिया जाए और क़सीदे के और दस्तम्बू के बीच में एक वरक़ सादा छोड़ दिया जाए। राय उमीदसिंघ का कोई ख़त अगर इन्दौर से आया हो तो मुझको भी आगही दो। चाहो तुम्हीं इब्तिदा करो और एक ख़त उनको लिखो और उसका परदाज़[8] इस बात पर रखो के अब वो किताबें तैयार होने को आई हैं। आपकी ख़िदमत में कहाँ भेजी जाएँ और क्या पता लिखा जाए। ये ख़त जवाब तलब हो जाएगा और उनको लिखना पड़ेगा।

१०

मिर्ज़ा साहब,

मैंने वो अन्दाज़े तहरीर ईजाद किया है के मुरासिले को मुकालिमा बना दिया है। हज़ार कोस से ब ज़बाने क़लम बातें किया करो। हिज्र[9] में

---

१. व्यस्त। २. बंडल। ३. शीघ्रता। ४. कब तक असावधान रहेगा, जो कुछ करना है शीघ्र कर। ५. प्रतिष्ठा। ६. अलंकरण। ७. सम्बन्ध। ८. विचार। ९. वियोग।

विसाल के मज़े लिया करो। क्या तुमने मुझसे बात करने की क़सम खाई है? इतना तो कहो के ये क्या बात तुम्हारे जी में आई है? बरसों हो गए के तुम्हारा ख़त नहीं आया; न अपनी ख़ैरो आफ़ियत लिखी, न किताबों का ब्यौरा भिजवाया। हाँ, मिर्ज़ा तफ़्ता ने हातरस से ये ख़बर दी है के पाँच वरक़ पाँच किताबों के आग़ाज़ के उनको दे आया हूँ और उन्होंने सियाह क़लम की लौहों की तैयारी की है। ये तो बहुत दिन हुए जो तुमने ख़बर दी है के दो किताबों की तिलाई लौह मुरत्तब हो गई है। फिर अब उन दो किताबों की जिल्दें बन जाने की क्या ख़बर है? और इन पाँच किताबों के तैयार होने में दिरंग किस क़दर है? मुहतमिमे मतबा का ख़त परसों आया था, वो लिखते हैं के तुम्हारी चालीस किताबें बाद मिन्हाई लेने सात जिल्दों के, इसी हफ़्ते में तुम्हारे पास पहुँच जाएँगी। अब हज़रत इर्शाद करें के ये सात जिल्दें कब आएँगी! हरचन्द कारीगरों के देर लगाने से तुम भी मजबूर हो। मगर ऐसा कुछ लिखो के आँखों को निगरानी और दिल की परेशानी दूर हो। ख़ुदा करे, उन तैंतीस जिल्दों के साथ, या दो तीन रोज़ आगे पीछे ये सात जिल्दें आपकी इनायती भी आएं, ता ख़ासो आम को जा-बजा भेजी जाएँ।

मेरा कलाम मेरे पास कभी कुछ नहीं रहा। ज़ियाउद्दीनख़ाँ और हुसेन मिर्ज़ा जमा कर लेते थे। जो मैंने कहा उन्होंने लिख लिया। उन दोनों के घर लुट गए। हज़ारों रुपए के किताबख़ाने बरबाद हुए। अब मैं अपने कलाम को देखने को तरसता हूँ। कई दिन हुए के एक फ़क़ीर, के वो ख़ुश आवाज़[1] भी है और ज़मज़मा परदाज़ भी है, एक ग़ज़ल मेरी कहीं से लिखवा लाया, उसने वो काग़ज़ जो मुझको दिखाया, यक़ीन समझना के मुझको रोना आया। ग़ज़ल तुमको भेजता हूँ और सिले में उसके इस ख़त का जवाब चाहता हूँ।

---

१. मधुर कण्ठ वाला।

मिर्ज़ा हातिमअली 'महर' के नाम

ग़ज़ल

दर्द मिन्नत[1] कश दवा न हुआ
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ
जमा करते हो क्यों रक़ीबों को !
इक तमाशा हुआ गिला न हुआ
रहज़नी[2] है के दिलसितानी[3] है !
लेके दिल दिलसितां[4] रवाना हुआ
है ख़बर गर्म उनके आने की
आज ही घर में बोरिया न हुआ !
ज़ख़्म गर दब गया, लहू न थमा
काम गर रुक गया; रवा न हुआ
कितने शीरीं हैं तेरे लब के रक़ीब
गालियाँ खा के बेमज़ा न हुआ
क्या वो नमरूद[5] की ख़ुदाई थी !
बन्दगी में मेरा भला न हुआ !
जान दी, दी हुई उसी की थी
हक़ तो यों है के हक़ अदा न हुआ
कुछ तो पढ़िए के लोग कहते हैं—
आज 'ग़ालिब' ग़ज़ल सरा न हुआ

---

१. मेरी वेदना में कोई दवा काम न आई। २. चोरी। ३. दिल चुराना। ४. दिल चुराने वाला। ५. नमरूद मिस्र का एक बादशाह, उसने अपने को ईश्वर बताया था।

११

भाई साहब,

मतबे में से सादा किताबें यक़ीन हैं के आजकल भेजी जाएँ और पसो-पेश सात जिल्दें आपकी बनवाई हुई भी आएँ। बिलफ़ैल एक और उक़दा[1] सरिश्तए ख़याल में पड़ा है, याने अज़ रू ए अख़बारे 'मुफ़ीदे ख़लायक़' ज़हन यों लड़ा है, के इस हफ़्ते में जनाब एडमिन्स्टन साहब बहादुर आगरे आएँगे और विसादए[2] लेफ़्टेंट गवर्नरी पर इजलास फ़रमाएँगे। इस सूरत में अग़लब है के विलियम म्योर साहब बहादुर उनकी जगह चीफ़ सेक्रेतर बन जाएँगे। फिर देखिए के ये महक्मए लेफ़्टेंट गवर्नरी में अपना सेक्रेतर किसको बनाएँगे; मीर मुंशी इस महक्मे के तो वही मुंशी ग़ुलाम ग़ौसख़ाँ रहेंगे। देखिए, हमारे मुंशी मौलवी क़मरुद्दीनख़ाँ कहाँ रहेंगे। बहरहाल, आप से ये इस्तदुआ है के पहले किताबों का अहवाल लिखिए और फिर जुदा जुदा जवाब हर सवाल का लिखिए। जब तक ग्रेडमिन्स्टन साहब बहादुर चीफ़ सेक्रेतर थे तो ये ख़याल में था के उनकी नज़र और नवाब गवर्नर जनरल बहादुर की नज़र याने दो किताबें मय अपने ख़त के उनके पास भेजूँगा। अब हैरान हूँ के क्या करूँ? आया उनकी जगह सेक्रेतर कौन हुआ? और ये जो लेफ़्टेंट गवर्नर हुए तो इन्होंने सेक्रेतर किसको किया। मीर मुंशी लेफ़्टेंट गवर्नर का कौन रहा और गवर्नर जनरल का मीर मुंशी कौन है? जो आपको मालूम हो वो, और जो न मालूम हो वो दरियाफ़्त कर कर, लिखिए। क़मरुद्दीनख़ाँ का हाल ज़रूर, मुंशी ग़ुलाम ग़ौसख़ाँ का हाल पर ज़रूर। भाई मेरे सर की क़सम इस ख़त का जवाब ज़रूर लिखना और मुफ़स्सिल लिखना और ऐसा वाज़े लिखना के मुझ-सा कुन्द[3] ज़हन अच्छी तरह उसको समझ ले। ज़्यादा क्या लिखूं?

---

१. ग्रंथि, उलझन। २. तकिया (सिंहासन)। ३. मूर्ख।

१२

(२० नवंबर १८५८)

भाई जान,

कल जो जुमा, रोज़े मुबारक व सईद[1] था; गोया मेरे हक़ में रोज़े ईद था। चार घड़ी दिन रहे, नामए[2] फ़रहत फ़रजाम और चार घड़ी के बाद वक़्ते शाम--

सात जिल्दों का पार्सल पहुँचा
वाह क्या ख़ूब बरमहल पहुँचा

आदमी को माफ़िक़ उसकी तमन्ना के आरज़ू बर आनी बहुत महाल है। मेरी आरज़ू ऐसी बर आई के वो बरतर अज़ वहम व ख़याल है। ये बनाव तो मेरे तसव्वुर में भी नहीं गुज़रता था। मैं तो सिर्फ़ इसी क़द्र ख़याल करता था के जिल्दें बंधी हुई, दो की लौहें ज़री[3] और पाँच की लौहें स्याह क़लम की होंगी। वल्लाह, अगर तसव्वुर में भी गुज़रता हो के किताबें इस रक़म की होंगी। जब तक जहाँ है तुम जहाँ में रहो, अईमए अतहार अलेहुमु स्सलाम[4] की अमान[5] में रहो। मेरा मक़सूद ये था के एक किताब मिस्ल उन चार के बन जाए, न ये के दो किताबों का सा रंग दिखलाए। अब मैं हैरान हूं के आया शुमारे अईमा ने[6] उन बारह रुपये में बरकत दी या कुछ तुम्हारा रुपया सर्फ़ हुआ? दो पार्सलों का महसूल, दो रजिस्ट्रियों का मामूल, तीन किताबों की लौहे तिलाई ये सारी बात इस रुपए में किस तरह बन आई? और क्योंकर मालूम करूं? किससे पूछूं? ख़ुदा करे तुम तकल्लुफ़ न करो और

---

१. शुभ। २. शुभ और सुखद पत्र। ३. सुनहरी। ४. बारह इमामों पर ईश्वर की दया रहे। ५. शरण। ६. बारह इमाम।

इस अम्र के इज़हार में तौक़्क़ुफ़[1] न करो। ख़फ़क़ानी आदमी को बग़ैर हाल मालूम हुए आराम नहीं आता। जहाँ मुहब्बतें दीनी और रूहानी हों वहाँ तकल्लुफ़ काम नहीं आता। ज्यादा इससे के शुक्र गुज़ार हूं और शर्मसार हूं, क्या लिखूं !

चारा[2] ख़ामोशीस्त ची चीज़े रा के अज़ तहसीन गुज़श्त।

१३

(२० दिसबंर १८५८)

बन्दा परवर,

आपका ख़त कल पहुंचा। आज जवाब लिखता हूं। दाद देना, कितना शिताब लिखता हूं। मतालिब मुन्दर्जा के जवाब का भी वक़्त आता है। पहले तुमसे ये पूछा जाता है के बराबर कई ख़तों में तुमको ग़मो अन्दोह का शिकवा-गुज़ार पाया है। पस अगर किसी बेदर्द पर दिल आया है, तो शिकायत की क्या गुंजाइश है ! बल्के ये ग़म तो, नसीबें दोस्ताँ दरख़ोर[3] अफ़ज़ायश है। बक़ौले 'ग़ालिब' अले उर्रहमान--

किसी को दे के दिल, कोई नवा[4] संजें फ़ुग़ां क्यों हो ?
न हो जब दिल ही पहलू में, तो फिर मुंह में ज़बाँ क्यों हो ?

है, है ?

हुस्ने मतला--

ये फ़ितना आदमी की ख़ाना वीरानी को क्या कम है !
हुआ तू दोस्त जिसका दुश्मन उसका आसमाँ क्यों हो !

---

१. विलम्ब। २. मौन रहना ही आप की प्रशंसा है। ३. योग्य। ४. प्रार्थना और शिकायत करना।

मिर्ज़ा हातिमअली 'मेहर' के नाम

अफ़सोस है के इस गज़ल के और अशार याद न आए। और अगर ख़ुदा[1] न ख़ास्ता बाशद, ग़मे दुनिया है, तो भाई, हमारे हमदर्द हो। हम इस बोझ को मर्दाना उठा रहे हैं। तुम भी उठाओ अगर मर्द हो। बक़ौल 'ग़ालिब' मरहूम—

दिला,[2] ये दर्दो अलम है, तो मुग़तनिम[3] है के आख़िर
न[4] गिरय ए सहरी है न[5] आहे नीम शबी है

"सहर होगी" "खबर होगी"; इस ज़मीन में वो शेर याने—

तुम्हारे वास्ते दिल से मकाँ कोई नहीं बेहतर
जो आँखों में तुम्हें रक्खूं तो डरता हूं नज़र होगी

कितना ख़ूब है और उर्दू का क्या अच्छा उस्लूब[6] है! क़सीदे का मुश्ताक़ हूं। ख़ुदा करे, जल्द छापा जाए तो हमारे देखने में भी आए। "क्या कहिए", "भला कहिए"; ये ज़मीन एक बार यहाँ तरह हुई थी। मगर बहर और ही थी।

कहूं जो हाल तो कहते हो मुद्दआ कहिए
तुम्हीं कहो के जो तुम यों कहो, तो क्या कहिए
रहे न जान तो क़ातिल को ख़ूं बहा दीजे
कटे ज़बान तो ख़ंजर को मरहबा कहिए
सफ़ीना[7] जब के किनारे पै आ लगा ग़ालिब
ख़ुदा से क्या सितमो[8] जोरे नाख़ुदा[9] कहिए

और वो जो "फ़लातन फ़लातन फ़लातन फ़ालन" ये बहर है, उसमें एक मेरा क़ता है, वो मैंने कलकत्ते में कहा था। तक़रीब ये के मौलवी करम हुसेन साहब एक मेरे दोस्त थे, उन्होंने एक मजलिस में

---

१. ईश्वर ऐसा न करे। २. अरे दिल। ३. ग़नीमत है। ४. न प्रातःकाल का रोना है। ५. न आधी रात की आह है। ६. वर्णन। ७. नाव। ८. अत्याचार। ९. नाविक।

'चिकनी डली' बहुत पाकीज़ा और बेरेशा अपने कफ़ेदस्त[1] पर रखकर मुझसे कहा के इसकी कुछ तशबीहात[2] नज़्म कीजिए। मने वहाँ बैठे बैठे नौ-दस शर का क़ता कह कर उनको दिया और सिले में वो 'डली' उनसे ली। अब सोच रहा हूं, जो शेर याद आते जाते हैं लिखता जाता हूं—

है जो साहब के कफ़ेदस्त में ये चिकनी डली
ज़ेब देता है इसे जिस क़दर अच्छा कहिए
ख़ामा[3] अंगुश्त बदन्दाँ, के इसे क्या लिखिए
नातिक़े[4] सर बगिरेबाँ के इसे क्या कहिए
अख़्तरे[5] सोख़्त ए क़ैस से निस्बत दीजे
खाले[6] मिश्कीने रुख़े दिलकशे लैला कहिये
हजरुल[7] अस्वदे दीवारे हरम कीजिये फ़र्ज़
नाफ़[8] आहू ए बियाबाने ख़ुतन का कहिये
सोमये[9] में इसे ठहराइए गर मुहरे नमाज़
मयकदे[10] में इसे ख़िश्ते ख़ुमे सहबा कहिए
मिसी[11] आलूदा सर अंगुश्ते हसीनाँ लिखिए
सरे[12] पिस्ताने परीज़ाद से माना कहिए

ग़र्ज़ के २०-२२ फब्तियाँ हैं। अशार सब कब याद आते हैं? अख़ीर की बत ये है—

---

१. हथेली। २. उपमाएँ। ३. आश्चर्य चकित हूं। ४. चिन्ता में डूबा हुआ हूँ। ५. दग्ध मजनूं। ६. लैला के गाल का तिल। ७. काबा की दीवार में जड़ा हुआ संगे अस्वत। ८. ख़ुतन के कस्तूरी मृग की नाभि। ९. मन्दिर में यदि इसे पूज्य का स्थान मिला हुआ है। १०. तो मधुशाला में सुरापात्र के नीचे रखी हुई ईंट का पद। ११. सुन्दर स्त्रियों की मिस्सी में डूबी हुई अंगुलियाँ। १२. परियों के स्तनों का ऊपरी भाग।

अपने हज़रत के कफ़ेदस्त को दिल कीजिए फ़र्ज़
और इस चिकनी सुपारी को सवेदा[1] कहिए

लो हज़रत, आपके ख़त के जवाब ने अंजाम पाया। अब मेरा दर्दे दिल सुनो। बरख़ुरदार मुंशी शीवनरायन ने मेरे दो ख़तों का जवाब नहीं लिखा और वो ख़ुतूत जवाब तलब थे। तुम उनको मेरी दुआ कहो और कहो के मियाँ मेरा काम बन्द है; उस मतलबे ख़ास का जवाब जल्द लिखो। याने अगर वो किताब बन चुकी है, तो जल्द भेजो और अगर उसके भेजने में देर ही हो तो ये लिख भेजो के वो सियाह क़लम की लौह की है या तिलाई।

१४

(१८५९ ई०)

ख़ुदा का शुक्र बजा लाता हूँ के आपको अपनी तरफ़ मुतवज्जह पाता हूँ। मिर्ज़ा तफ़्ता का ख़त जो आपने नक़्ल कर कर भेज दिया है, मैंने मुंशी शीवनरायन का भेजा हुआ अस्ल ख़त देख लिया है। अगर तुम मुनासिब जानो तो मेरी एक बात मानो, 'रुक़्क़ाते आलमगीरी' या 'इंशाए ख़लीफ़ा' अपने सामने रख लिया करो, जो इबारत उसमें से पसन्द आया करे वो ख़त में लिख दिया करो। ख़त मुफ़्त में तमाम हो जाया करेगा और तुम्हारे ख़त के आने का नाम हो जाया करेगा। अगर कभी कोई क़सीदा कहा तो उसका देखना मशाहिदए-अख़बार पर मौक़ूफ़ रहा—

बराते[2] आशक़ाँ बर शाख़े आहू

वाक़ई, जो अख़बार आगरे से दिल्ली आते हैं, वो मेरे सामने पढ़े जाते हैं। साहब, होश में आओ और मुझको बताओ के यहाँ जो पारसियों की दूकानों में

---

१. दिल का काला चिह्न। २. प्रेमियों की मुक्ति हिरन के शृंगों पर।

'फ्रेन्च' और 'शाम्पेन' के दर्जन धरे हुए हैं या साहूकारों के और जौहरियों के घर रुपये और जवाहर से भरे हुए हैं, मैं कहाँ वो शराब पीनें जाऊँगा और वो माल क्योंकर उठाऊँगा ? बस अब ज्यादा बातें न बनाइये और वो क़सीदा मुझको भिजवाइये। मैंने किताबें जा बजा बसबीले पार्सल इरसाल की है। अगर चे पहुँचने की खबर पाई है, मगर नवीदे[1] क़ुबूल अभी कहीं से नहीं आई है।—

रात दिन गर्दिश में हैं सात आसमाँ
हो रहेगा कुछ न कुछ घबराएँ क्या ?

देखना भाई, इस ग़ज़ल का मतला क्या है ?

ग़ज़ल

जौर[2] से बाज़ आयें पर बाज़ आएँ क्या ?
कहते हैं हम तुझको मुँह दिखलाएँ क्या !

मौजे[3] ख़ूँ सर से गुज़र ही क्यों न जाए
आस्ताने[4] यार से उठ जाएं क्या ?
लाग हो तो उसको हम समझें लगाव
जब न हो कुछ भी तो धोका खाएं क्या
पूछते हैं वो के 'ग़ालिब' कौन है
कोई बतलाओ के हम बतलाएँ क्या

ग़ज़ल ना तमाम है।

है बस के हर इक उनके इशारे में निशां और
करते हैं मुहब्बत तो गुज़रता है गुमां और
तुम शहर में हो तो हमें क्या ग़म ? जब उठेंगे
ले आएंगे बाज़ार से, जाकर, दिलो जाँ और,

---

१. शुभ समाचार। २. अत्याचार। ३. खून की लहर। ४. प्रिय की देहली।

लोगों को है ख़ुरशीदे[1] जहांताब का धोका
हर रोज़ दिखाता हूँ मैं इक दाग़े नेहां[2] और
अब्रू से है क्या उस निगहेनाज़ को पैवन्द[3]
है तीर मुक़र्रर मगर उसकी है कमां और
या रब वो न समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको, जो न दे, मुझको ज़बां और
हर चन्द[4] सुबुक दस्त हुए बुत शिकनी में
हम हैं तो अभी राह में है संगे[5] गिरां और
पाते नहीं जब राह तो चढ़ जाते हैं नाले[6]
रुकती है मेरी तबा तो होती है रवाँ और
मरता हूँ इस आवाज़ पे हर चन्द सर उड़ जाय
जल्लाद को लेकिन वो कहे जाएं के 'हां और'
हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे
कहते हैं के 'ग़ालिब' का है अंदाज़े बयां और

दोशंबे का दिन, २० दिसम्बर की, सुबह का वक़्त है। अँगीठी रखी हुई है। आग ताप रहा हूँ और ख़त लिख रहा हूँ। ये अशार याद आगए, तुमको लिख भेजे। वस्सलाम।]

१५

(१८५९ ई०)

शर्त्ते इस्लाम बुवद वर्ज़िशे ईमान बिल ग़ैब
ऐ तू ग़ायब ज़ नजर मेहर तू ईमाँ मनस्त

---

१. संसार का प्रकाशमान सूर्य। २. गुप्त। ३. जोड़। ४. प्रतिमाओं के भंग करने में बहुत कुछ हाथ हल्के हुए। ५. भारी पत्थर। ६. शोर गुल।

हुलिय ए मुबारक नज़र अफ़रोज़ हुआ। जानते हो के मिर्ज़ा यूसुफ़ अलीखां 'अज़ीज़, ने जो कुछ तुमसे कहा उसका मन्शा क्या है ? कभी मैंने बज़्मे अहबाब[1] में कहा होगा के मिर्ज़ा हातिम अली के देखने को जी चाहता है। सुनता हूँ के वो तरहदार आदमी हैं और भाई तुम्हारी तरहदारी का ज़िक्र मैंने मुग़ल-जान से सुना था। जिस ज़माने में के वो नवाब हामिदअलीखाँ की नौकर थी और उनमें मुझमें बेतकल्लुफ़ाना रब्त था, तो अक्सर 'मुग़ल' से पहरों अख्तलात[2] हुआ करते थे। उसनें तुम्हारे शेर अपनी तारीफ़ के भी मुझको दिखाए हैं। बहरहाल, तुम्हारा हुलिया देख कर तुम्हारे कशीदा[3] क़ामत होने पर मुझको रश्क न आया, किस वास्ते. मेरा क़द भी दराज़ी[4] में अंगुश्त-[5] नुमा है। तुम्हारे गंदुमी रंग पर रश्क न आया, किस वास्ते के, जब मैं जीता था तो मेरा रंग चम्पई था और दीदावर लोग उसकी सतायश किया करते थे। अब जो कभी मुझको वो अपना रंग याद आता है, तो छाती पर साँप सा फिर जाता है। हाँ, मुझको रश्क आया और मैंने ख़ूने जिगर खाया तो इस बात पर के डाढ़ी खूब घुटी हुई है। वो मज़े याद आ गए। क्या करूँ, जी पर क्या गुज़री, बक़ौले शेख़ अली हज़ीं—

ता दृदस्त[6] रस्म बूद ज़दम चाके गरीबाँ
शर्मिन्दगी अज़ ख़िर्क़ ए पश्मीना नदारम

जब डाढ़ी मूँछ में सफ़ेद बाल आ गए, तीसरे दिन चिवँटी के अंडे गालों पर नज़र आने लगे; इससे बढ़कर ये हुआ के आगे के दो दाँत टूट गये, नाचार मिस्सी भी छोड़ दी और डाढ़ी भी। मगर ये याद रखिए इस भौंडे शहर में एक वर्दी है आम—मुल्ला, हाफ़िज़, बिसाती, नेचाबन्द, धोबी, सक़्क़ा, भटियारा, जुलाहा, कुँजड़ा, मुँह पर डाढ़ी, सर पर बाल। फ़क़ीर ने जिस दिन डाढ़ी

---

१. मित्र मंडली। २. मिलना जुलना। ३. लम्बा क़द। ४. लम्बाई। ५. जिसकी ओर लोग संकेत करते हैं, उल्लेखनीय। ६. जब तक मुझमें शक्ति थी मैंने गरीबाँ फाड़ा। अब गुदड़ी से लज्जित होने का कारण क्या है।

रखी, उसी दिन सर मुँडवाया। लाहौलावलाक़ूव्वता इल्लाह बिल्लाहिल अली उल अज़ीम। क्या बक रहा हूँ !

साहब, बन्दे ने दस्तम्बू जनाबे अशरफ़ुल उमरा जार्ज फ्रेडरिक अेडमिन्स्टन साहब लेफ्टेंट गवर्नर बहादुर ग़र्बो शुमाल की नज्र भेजी थी। सो उनका फ़ारसी खत मुहर्रिर एदहुम मार्च मुश्तमिल[1] बर तहसीनो आफ़रीं व इज़हारे ख़ुशनूदी बतरीक़े डाक आ गया। फिर मैंने तहनियत में लेफ्टेंट गवर्नरी की क़सीदए-फ़ारसी भेजा, उसकी रसीद में नज़्म की तारीफ़ और अपनी रज़ामन्दी पर मुतज़िम्मिन[2] खते फ़ारसी बसबीले डाक मरक़ूम ए चहार दहुम आ गया। फिर एक क़सीदए फ़ारसी मदह और तहनियत में जनाब राबर्ट मिण्टगुमरी साहब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर पंजाब की खिदमत में बवास्त ए साहब कमिश्नर बहादुरे-देहली भेजा था। कल, उनका मुहरी खत बज़रियए साहब कमिश्नर बहादुर देहली आ गया। पिन्सन के बाब में अभी कुछ हुक्म नहीं। असबाब तवक़्क़ो के फ़राहम होते जाते हैं। देर आयद दुरुस्त आयद। अनाज खाता ही नहीं हूँ, आध सेर गोश्त दिन को और पाव भर शराब रात को मिल जाती है—

हरेक बात पे कहते हो तुम के तू क्या है
तुम्हीं कहो के ये अन्दाज़े गुफ़्तगू क्या है

अगर हम फ़क़ीर सच्चे हैं और इस ग़ज़ल के तालिब का ज़ौक़ पक्का है तो ये ग़ज़ल इस खत से पहले पहुँच गई होगी। रहा सलाम, वो आप पहुँचा देंगे।

१६

(१८५९ ई०)

जनाब मिर्ज़ा साहब,

दिल्ली का हाल तो ये है--

घर में था क्या जो तेरा ग़म उसे ग़ारत करता ?
वो जो रखते थे हम इक हसरते तामीर, सो है

१. प्रशंसा और साधुवाद से युक्त। २. उसके सिलसिले में।

यहाँ धरा क्या है, जो कोई लूटेगा ? वो खबर महज़ ग़लत है। अगर कुछ है तो बदीं[1] नमत है, के चन्द रोज़ गोरों ने अहले बाज़ार को सताया था। अहले क़लम और अहले फ़ौज ने बइत्तेफ़ाक़ राय हमदिगर[2] ऐसा बन्दोबस्त किया के वो फ़साद मिट गया। अब अम्नो अमान है। नासिख़ मरहूम, जो तुम्हारे उस्ताद थे, मेरे भी दोस्ते सादिक़ुल[3] विदाद थे। मगर यक[4] फ़न्नी थे, सिर्फ़ ग़ज़ल कहते थे, क़सीदे और मसनवी से उनको कुछ इलाक़ा न था, सुभान अल्लाह् ! तुमने क़सीदे में वो रंग दिखाया के इंशा को रश्क आया। मसनवी के अशार जो मैंने देखे, क्या कहूँ, क्या हज़ उठाया।

ख़ुदा से मैं भी चाहूँ अज़रहे मेहर[5]
फ़रोग़[6] मीरज़ा[7] हातिम अली 'मेहर'

अगर इसी अन्दाज़ पर अंजाम पाएगी, तो ये मसनवी कारनाम ए उर्दू कहलाएगी। ख़ुदा तुमको जीता रखे, तुम्हारा दम ग़नीमत है। साहब, तुमसे पूछता हूँ के 'मेयारुल शोअरा' में तुमने अपना ख़त क्यों छपवाया ? तुम्हारे हात क्या आया ? सुनो तो सही, अगर सब का कलाम अच्छा हो, तो इम्तेयाज़ क्या रहे ?

१७

जनाब मिर्ज़ा साहब,

आपका ग़म[8] अफ़ज़ा नामा पहुँचा, मैंने पढ़ा, यूसुफ़अलीख़ाँ 'अज़ीज़' को पढ़वा दिया। उन्होंने जो मेरे सामने उस मरहूमा और आपका मामला बयान किया, याने उसकी इताअत और तुम्हारी उससे मुहब्बत, सख़्त मलाल हुआ और रंजे कमाल हुआ। सुनो साहब, शोअरा में फ़िरदोसी और फ़ुक़रा में हसन बसरी और उश्शाक़ में मजनूँ ये तीन आदमी तीन फ़न में सरे[9] दफ़्तर और पेशवा

---

१. उसी भांति। २. परस्पर। ३. सच्चे मित्र। ४. समव्यवसायी। ५. प्रेम-मार्ग। ६. उन्नति। ७. मिर्ज़ा। ८. दुःखद। ९. सूची में सर्वोपरि।

हैं। शायर का कमाल ये है के फ़िरदौसी हो जाये। फ़क़ीर की इन्तहा ये है के हसन बसरी से टक्कर खाए। आशिक़ की नमूद ये है के मजनूँ की हम तरही नसीब होवे। लैला उसके सामने मरी थी, तुम्हारी महबूबा तुम्हारे सामने मरी, बल्के तुम उससे बढ़कर हुए के लैला अपने घर में और तुम्हारी माशूक़ा तुम्हारे घर में मरी। भई, मुग़लचे भी ग़ज़ब होते हैं, जिस पर मरते हैं, उसको मार रखते हैं। मैं भी मुग़लचा हूँ, उम्र भर में एक बड़ी सितमपेशा डोमनी को मैंने भी मार रखा है। ख़ुदा उन दोनों को बख्शे और हम तुम दोनों को भी के ज़ख़्मे मर्गे दोस्त[1] खाए हुए हैं, मग़फ़रत[2] करे। चालीस-बयालीस बरस का ये वाक़या है। बा आँके ये कूचा छुट गया, इस फ़न से मैं बेगानए महज़ हो गया, लेकिन अब भी कभी कभी वो अदाएँ याद आती हैं। उसका मरना ज़िन्दगी भर न भूलूँगा, जानता हूँ के तुम्हारे दिल पर क्या गुज़रती होगी। सब्र करो और अब हंगाम ए इश्क़े मजाज़ी छोड़ो।

'सादी[3]' अगर आशक़ी कुनी व जवानी
इश्क़े मुहम्मद बसस्त व आले मुहम्मद

अल्लाह[4] बस, मा सिवा हवस।

१८

(१८६० ई०)

मिर्ज़ा साहब,

हमको ये बातें पसन्द नहीं। पैंसठ बरस की उम्र है, पचास बरस आलमे रंगो बू की सैर की है। इब्तदा ए[५] शबाब में एक मुर्शदे कामिल ने ये नसीहत की है के हमको ज़हदो[६] वरा मंज़ूर नहीं। हम माना फ़िस्क़ो[७] फ़ुजूर नहीं।

---

१. मित्र की मृत्यु का घाव। २. ईश्वर क्षमा करे। ३. यदि तुम प्रेम चाहते हो और जवानी चाहते हो तो हज़रत मुहम्मद और उनकी सन्तति से प्रेम करो। ४. ईश्वर के अतिरिक्त सब चीज़ें व्यर्थ। ५. यौवन के प्रारम्भ में। ६. परहेज़गारी। ७. बुराई।

पीओ, खाओ, मज़े उड़ाओ; मगर ये याद रहे के मिसरी की मक्खी बनो, शहद की मक्खी न बनो। सो मेरा इस नसीहत पर अमल रहा है। किसीके मरने का वो ग़म करे, जो आप न मरे। कैसी अश्कफ़शानी,[1] कहाँ की मर्सिया खानी ? आज़ादी का शुक्र बजा लाओ। ग़म न खाओ और अगर ऐसे ही अपनी गिरफ़्तारी से खुश हो, तो चुन्नाजान न सही, मुन्नाजान सही। मैं जब बहिश्त का तसव्वुर करता हूँ, और सोचता हूँ के अगर मग़फ़रत[2] हो गई, और एक क़स्र[3] और एक हूर मिली, इक़ामत[4] जावेदानी है और उसी एक नेकबख्त के साथ ज़िन्दगानी है। इस तसव्वुर से जी घबराता है और कलेजा मुँह को आता है। है, है! वो हूर अजीरन हो जाएगी, तबीयत क्यों न घबराएगी। वही ज़मर्रुदी[5] काख और वही तूबा[6] की एक शाख। चश्मे बद्दूर, वही एक हूर! भाई होश में आओ, कहीं और दिल लगाओ।

ज़ने[7] नौकुन अै दोस्त दर हर बहार
के तक़वीमे पारीना नायद बकार

मिर्ज़ा मज़हर के अशार की तज़मीन[8] का मुसद्दस[9] देखा। फ़िक्र सरापा पसन्द। ज़िक्र बहमा[10] जेहत नापसन्द। अपने नाम का ख़त मय उन अशार के मिर्ज़ा यूसुफ़अलीखां 'अज़ीज़' के हवाले किया।

मुकर्रमी नवाब मुहम्मदअलीखाँ साहब की ख़िदमत में सलाम अर्ज़ करता हूँ। परवर दिगार उनको सलामत रखे। मौलवी अब्दुलवहाब साहब को मेरा सलाम। दम दे के मुझसे फ़ारसी इबारत में ख़त लिखवाया, मैं मुन्तज़िर रहा के आप लखनऊ जाएँगे। वो इबारत जनाब क़िब्ला व काबा को दिखाएँगे।

---

१. अश्रुवर्षा २. क्षमा। ३. महल, प्रासाद। ४. शाश्वत निवास। ५. पन्ने का महल। ६. कल्प वृक्ष। ७. हे मित्र प्रत्येक वसंत में नई स्त्री से विवाह कर, पुराना पंचांग किसी काम का नहीं रहता। ८. किसी दूसरे कवि के शेर पर अपने शेर लिखना। ९. छः पंक्तियों की कविता। १०. हर प्रकार से।

मिर्ज़ा हातिमअली 'मेहर' के नाम

उनके मिज़ाजे[1] अक़दस की ख़ैरो आफ़ियत मुझको रक़म फ़रमाएंगे। मैं क्या जानूं के हज़रत मेरे वतन में जलवा[2] अफ़रोज़ हैं।

यार[3] दर ख़ाना वो मा गिर्दे जहां मी गरदेम

अब मुझे उनसे ये इस्तदुआ है के दस्तख़ते ख़ास से मुझको ख़त लिखें और लखनऊ न जाने का सबब और जनाब क़िब्ला व काबा का जो कुछ हाल मालूम हो, वो उस ख़त में दर्ज करें।

---

१. शुभ स्वास्थ्य। २. प्रकाशमान। ३. प्रिय घर में है और हम उसे संसार में ढूँढ़ रहे हैं।

साहबज़ादा ज़ैनुल आबदीनख़ां उर्फ़ कल्लन मियां रामपूर के नाम

१

(२५ मार्च १८५८)

बन्दा परवर,

मेहरबानी नामा पहुँचा। मैं तो समझा था आप मुझको भूल गए, बारे, याद किया। जनाब नवाब साहब मेरे मुहसिन और मेरे क़द्रदान और मेरी उम्मीदगाह हैं। मैं अगर रामपूर न आऊँगा तो कहाँ जाऊँगा। ये जो आप कहते हैं के तुझको आने में तरद्दद क्या है। तरद्दद कुछ नहीं, तवक़्क़ुफ़[१] है। वजह तवक़्क़ुफ़ की ये के मैंने अपनी पिन्सन के बाब में चीफ़ कमिश्नर बहादुर को दरख़ास्त दी थी। वहाँ से साहब कमिश्नर शहर के वो दरख़ास्त हवाले हुई। साहब कमिश्नर देहली ने साहब कलक्टर शहर से कैफ़ियत तलब की है। पस, अगर वो कैफ़ियत पिन्सन की है, तो यहाँ की कलक्टरी का दफ़्तर अगर नहीं रहा, न रहे। रेनू बोर्ड के दफ़्तर और लेफ़्टेंट गवर्नरी आगरा और नवाब गवर्नर जनरल कलकत्ता के दफ़्तर इस पिन्सन की कैफ़ियत से ख़ाली नहीं हैं और अगर मेरी कैफ़ियत मतलूब है तो मेरा बेजुर्म और बरी और अलग होना फ़साद से अज़ रूए दफ़्तरे क़िला ब इज़हारे मुख़बरीन ज़ाहिर है। बहरहाल साहब कमिश्नर शहर, कैफ़ियत साहब कलक्टर से तलब कर कर चीफ़ कमिश्नर के साथ पंजाब को गए हैं। देखिए कब आवें, और बाद मुलाहिज़ ए कैफ़ियत क्या हुक्म

---

१. विलम्ब।

दें। मगर ता सुदूरे हुक्म मैं यहाँ से कहीं जा नहीं सकता। हाँ, बाद मिलने हुक्म के, ख़ाही दिल ख़ाह हो, ख़ाही मुख़ालिफ़े मुद्दआ दोनों सूरत में रामपूर आऊँगा। मगर हैरान हूँ के जब तक यहाँ रहूँ, खाऊँ क्या? और जब चलने का क़स्द हो तो रामपूर किस तरह पहुँचूँ? क्या ख़ूब हो के तुम ये रुक्क़ा अपने नाम का हुज़ूर को याने हज़रत नवाब साहब को पढ़वाकर इस मुद्दआ ए ख़ास का जवाब, जो वो फ़र्माएँ, मुझको लिख भेजो, लेकिन तुमसे ये तवक़्क़ो क्यों कर पड़े! किस वास्ते के तुमने उर्दू दीवान के पहुँचने न पहुँचने का हाल जनाबेआली से दरियाफ़्त कर कर कब लिखा है, जो इस बात का जवाब लिखोगे! ज़्यादा इससे क्या लिखूँ?

निगाश्ता व रवाँदाश्त ए पंजशंबा, २५ मार्च सन् १८५८ ई०।

ज़रूरी जवाब तलब।

अज़—ग़ालिब

२

(१४ मार्च १८६५ ई०)

नवाब साहब वाला क़द्र अज़ीमुश्शान सलेमकमल्लाहो ताला।

बाद सलाम[1] मसनून मशहूद ख़ातिर हो। साबिक़ आपका ख़त, मुतज़िम्मिन उर्दू के इस्तिफ़ता[2] ए रोज़मर्रा का आया था। उसका जवाब जो मुझे मालूम था, लिख भेजा। अब जो दूसरा ख़त आया उसमें अपने अशार बतवक़्क़ो इस्लाह भेजे हैं। आपको मालूम रहे के मैं ख़ास ख़िदमते इस्लाह अशार पर

---

१. अभिवादन की प्रक्रिया के पश्चात्। २. सम्मति।

नवाब साहब जनाब क़िब्ला का नौकर हूँ, और आप हुज़ूर के अज़ीज़ों में और फ़र्ज़न्दों में हैं। पस, मैं बेहुक्म हुज़ूर के आपकी ख़िदमत बजा नहीं ला सकता। नाचार काग़ज़े अशार मुस्तर्द[1] भेजता हूँ। ये अमर यक़ीन है के, मूजिबे मलाल ख़ातिरे अक़दस न होगा। बन्दगी, बेचारगी। ज़्यादा इससे क्या लिखूँ के मुद्दा ए ज़रूरी अल इज़हार इसी क़द्र था। वस्सलाम।

राक़िम--असदुल्लाख़ां 'ग़ालिब'

---

१. ज्यों के त्यों।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन अहमदख़ां 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

१

(१८५८)

आज बुध के दिन २७ रमज़ान को पहर दिन चढ़े जिस वक़्त के मैं खाना खाकर बाहर आया था, डाक का हरकार तुम्हारा ख़त और शहाबुद्दीनख़ां का ख़त (लाया)। मज़मून दोनों का एक। वाह, क्या मज़मून इन दिनों में, के सब तरह के रंजो अज़ाब फ़राहम हैं; एक दाग़े जिगर सोज़[1] ये भी ज़रूर था। सुभान अल्लाह, मैंने उसकी सूरत भी नहीं देखी या विलादत की तारीख़ सुनी या अब रेहलत की तारीख़ लिखनी पड़ी। परवरदिगार तुमको जीता रखे और नेमुलबदल[2] अता करे। मियाँ, इसको सब जानते हैं के मैं माद्दए तारीख़ निकालने में आजिज़ हूं। लोगों के माद्दे दिए हुए नज़्म कर देता हूं, और जो माद्दा अपनी तबीयत से पैदा करता हूं वो बेश्तर लचर हुआ करता है। चुनाचे अपने भाई की रेहलत का माद्दा 'दरेग़[3] दीवाना' निकाला; फिर उसमें से 'आहे' के अदद घटाए। तमाम दोपहर इसी फ़िक्र में रहा। ये न समझना के माद्दा ढूंढा, तुम्हारे निकाले हुए दो लफ़्ज़ों को ताका किया के किसी तरह सात इस पर बढ़ाऊं। बारे, एकक़्ता दुरुस्त हुआ, मगर तुम्हारी ज़बान से, याने गोया तुमने कहा है। पाँच शेर में तीन शेर ज़ायद! दो मौज़ह[4] मुद्दआ, लेकिन मैं नहीं जानता के तामिया अच्छा है, या बुरा है। हां, अिग़लाक़[5] तो अलबत्ता है,

---

१. जिगर को जलाने वाला। २. तत्स्थानीय। ३. दरेग़ दीवाना-(१२६८ हि०)। ४. इच्छानुसार। ५. कठिन।

ताम्मुल से समझ में आता है और शायद लौहे[1] मज़ार पर खुदवाने के क़ाबिल न हो।

क़ता—

दर[2] गिरिया अगर दावए हम चश्मीए मा कर्द
बीनी के शवद अब्रे बहारी ख़जिल अज़ मा
नाचार बिगिरियेम शबो रोज़ के ईं सैल
बाशद के बरद कालबुदे आबो गिल अज़ मा
गुफ़्ती के निगहदार दिल अज़ कश्मकशे ग़म
ख़ुद कर्द बरावुर्द ग़मे जाँ गुसिल अज़ मा
याहिया शुदो अज़ शोल ए सोज़े ग़मे हिजरश
चूं शमा दवद दूद बसर मुत्तेसिल अज़ मा
ग़म दीदा 'नसीमी' प ए तारीख़े वफ़ातश
बेनविश्त के दर दाग़े पिसर सोख़्त दिल अज़ मा

'मा' के अदद ४१, 'दिल' के अदद ३४, 'मा' में से 'दिल' गया, गोया ४१ में से ३४ गये; बाक़ी रहे सात, वो 'दागे पिसर' पर बढ़ाये, १२७४ हात आये।

---

१. क़ब्र का पत्थर।

२. यदि रोने में वर्षा ऋतु का मेघ भी हमारी समता करेगा तो उसे भी लज्जित होना पड़ेगा। हम विवश रात-दिन रोते रहते हैं और उसकी लहर हमारे शरीरों को ही बहा ले जाए। तुमने कहा है कि मैं शोक से हृदय की रक्षा करूं, इस प्राणलेवा शोक ने हमें पहले ही बर्बाद कर दिया है। याहिया का निधन हुआ। उसके शोक से शमा की तरह लगातार हमारे सिर से धुआँ निकल रहा है। दुखी 'नसीमी' ने स्वर्गीय की तारीख़ कही, लड़के के वियोग से हमारा हृदय जल गया।

२

१८५८ ई०

मिर्ज़ा नसीमी को दुआ पहुँचे,

आँख की गुहाजनी[१] जब ख़ुद पक कर फूट गई थी, और पीप निकल गई थी, तो नश्तर क्यों खाया ? मगर ये के बतरीक़े ख़ुशामद तबीब से रुजू की। जब उसने नश्तर तजवीज़ किया तो ख़ाही न ख़ाही इम्तेसाल[२] अम्र करना पड़ा और शायद यों न हो, कुछ माद्दा बाक़ी हो। बहरहाल, हक़ ताला अपने फ़ज़्लो करम से शफ़ा बख़्शे।

क़ता—

बस[३] के फ़आल मायूरीद है आज
हर[४] सलह शोर इंग्लिस्ताँ का
घर से बाज़ार में निकलते हुए
ज़हरा[५] होता है आब इन्साँ का
चौक जिसको कहें वो मक़तूल[६] है
घर बना है नमूना ज़िन्दाँ[७] का
शहर देहली का ज़र्रा जर्रए ख़ाक
तिश्नए[८] ख़ूँ है हर मुसलमाँ का
कोई वाँ से न आ सके याँ तक
आदमी वाँ न जा सके याँ का

---

१. पलकों में होने वाली फुन्सियाँ। २. आदेश पालन। ३. वह जो चाहता है कर सकता है। ४. इंग्लेण्ड का दक्ष सैनिक। ५. पित्ता पानी हो जाता है। ६. वध्य भूमि। ७. कारावास। ८. रक्त का प्यासा।

मैंने माना के मिल गये फिर क्या ?
वही रोना तनो दिल व जाँ का
गाह जल कर क्या किये शिकवा
सोज़िशे दाग़ हाय पिनहाँ का
गाह रोकर कहा किये बाहम
माजरा[1] दीदा हाय गिरियाँ का
इस तरह के विसाल से या रब
क्या मिटे दिल से दाग़ हिजराँ का ?

३

(२३ अगस्त १८५८)

ख़ाके[2] नमना कम न तू बादे बहार
नातवानी मरा ज़जा बुरदन
हाँ 'नसीमी' ज़मन चे मी ख़ाही
ज़हमते ख़ीशतन चे मी ख़ाही

ख़ुशी मुझमें तुममें मुश्तरिक है। तुमने मुझे तहनियत दी तो मुबारक, और मैंने तुम्हें तहनियत दी तो मुनासिब। लिल्लाहिल हम्द, लिल्लाहिल शुक्र। भाई, सच तो ये है के इन दिनों में मेरे पास टिकट नहीं। अगर बैरंग भेजूँ, तो कहार माँदा, उठ नहीं सकता, डाकघर तक जाए कौन ? अपना मक़सूद तुम्हारे वालिद माजिद से और तुम्हारी जद्दए[3] माजिदा और तुम्हारे अम्मे आली[4] मिक़दार से कह चुका हूँ। खुलासा ये के मेरी बीबी और बच्चों

१. आँखों से रोने का हाल। २. मैं जल-सिक्त मिट्टी हूँ और तुम वसंत की वायु। तुम मुझे मेरे स्थान से नहीं हटा सकते, 'नसीमी' तुम मुझसे क्या चाहते हो ? मैं संकट ग्रस्त हूँ, तुम विपत्तियों में क्यों पड़ते हो। ३. पूज्य दादी। ४. प्रतिष्ठित चाचा।

को के ये तुम्हारी क़ौम के हैं, मुझसे ले लो, के मैं अब इस बोझ का मुतहमिल[1] हो नहीं सकता। उन्होंने भी बशर्त्त इन लोगों के लोहारू जाने के इस ख़ाहिश को क़ुबूल किया। मेरा क़स्द सयाहत[2] का है। पिन्सन अगर खुल जाएगा तो वो अपने सर्फ़ में लाया करूँगा। जहाँ जी लगा वहाँ रह गया, जहाँ से दिल उखड़ा चल दिया।

ता[3] दरम्याना ख़ास्त ए किर्दगार चीस्त

दो शम्बा, १३ मुहर्रम सन् १२७५ हि०, मुताबिक़ २३ अगस्त सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिब

४

(२ जुलाई १८६०)

सुभान अल्लाह्, हज़ार बरस तक न पयाम भेजना न ख़त लिखना और फिर लिखना तो सरासर ग़लत लिखना। मुझसे किताब मुस्तार मांगते हो। याद करो के तुमको लिख चुका हूँ के 'दसातीर' और 'बुरहान क़ाते' के सिवाय कोई किताब मेरे पास नहीं। अज़ आँ जुमला 'बुरहान क़ाते' तुमको दे चुका हूँ। 'दसातीर' मेरा ईमान व हर्ज़े[4] जान है। अशार ताज़ा माँगते हो, कहाँ से लाऊँ? आशिक़ाना[5] अशार से मुझको वो बोद है जो ईमान से कुफ़्र को। गवर्मेण्ट का भाट था, भटई करता था, खलत पाता था। खलत मौक़ूफ़ भटई मतरूक, न ग़ज़ल न मदह। हज़ल[6] व हजू मेरा आईन[7] नहीं। फिर कहो क्या लिखूँ? बूढ़े पहलवान के से पेच बताने को रह गया हूँ। अक्सर अतराफ़ व जवानिब से अशार आ जाते हैं, इस्लाह पा जाते हैं। बावर

---

१. वाहन। २. यात्रा। ३. देखें इस बारे में ईश्वर क्या चाहता है। ४. तावीज। ५. शृंगारिक कविता। ६. अपमान-व्यंग। ७. नियम।

करना और मुताबिक़ वाक़े समझना। तुम्हारे देखने को दिल बहुत चाहता ए और देखना तुम्हारा मौक़ूफ़ इस पर है के तुम यहाँ आओ। काश, अपने वालिद माजिद के साथ चले आते और मुझको देख जाते। उर्दू का दीवान रामपूर से लाया हूँ और वो आगरे गया है। वहाँ मुन्तबा होगा। एक नुस्ख़ा तुम्हारे पास भी पहुँच जाएगा।

तुम जानो, तुमको ग़ैर से जो रस्मो राह हो
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो?

मरक़ूमए रोज़ दो शम्बा २ जुलाई सन् १८६० ई०।

—ग़ालिब

५

(१८६० ई०)

साहब,

मेरी दास्तान सुनिए। पिन्सन बेकमो[१] कास्त जारी हुआ। ज़रें मुज्तिमए[२] स साला यक मुश्त मिल गया। बाद अदाए हुक़ूक़ चार सौ रुपये देने बाक़ी रहे और सात सै रुपये ग्यारह आने मुझे बचे। मई का महीना बदस्तूर मिला। आख़िर जून में हुक्म हुआ के पिन्सनदार अललउमूम[३] शशमाही[४] पाया करें। माह ब माह पिन्सन तक़सीम न हुआ करें।

मैं दस बारह बरस से हकीम मुहम्मद हसनख़ाँ की हवेली में रहता हूँ। अब वो हवेली ग़ुलामुल्लाख़ाँ ने मोल ले ली। आख़िर जून में मुझसे कहा के हवेली ख़ाली कर दो। अब मुझे फ़िक्र पड़ी के कहीं दो हवेलियाँ क़रीब हमदिगर

---

१. बिना काट छांट। २. तीन वर्ष का एकत्रित धन। ३. सामान्यतया। ४. छमाही।

ऐसी मिलें के एक महलसरा[1] और एक दीवानख़ाना हो, न मिलीं। नाचार य चाहा के 'बल्लीमारों' में एक मकान ऐसा मिले के जिसमें जा रहूँ; न मिला। तुम्हारी छोटी फूपी ने बेकस नवाज़ी की। करोड़ा वाली हवेली मुझको रहने को दी। हरचन्द वो रिआयत[2] मरई न रही के महलसरा से क़रीब हो। मगर ख़ैर, बहुत दूर भी नहीं। कल या परसों वहाँ जा रहूँगा। एक पांव ज़मीन पर है, एक पांव रकाब में, तोशे का वो हाल, गोशे की ये सूरत !

कल शंबा १७ ज़िलहज्जा की और ७ जुलाई की, पहर दिन चढ़े तुम्हारा ख़त पहुँचा। दो घड़ी के बाद सुना गया के अमीनुद्दीनख़ां साहब ने अपनी कोठी में नुज़ूल[3] इजलाल किया। पहर दिन रहे अज़ राहे महरबानी नागाह मेरे हाँ तशरीफ़ लाए। मैंने उनको दुबला व अफ़सुर्दा[4] पाया। दिल कुढ़ा। अली हुसेन ख़ाँ भी आया। उससे भी मैं मिला। मैंने पूछा के वो क्यों नहीं आए। भाई साहब बोले के जब मैं यहाँ आया तो कोई वहाँ भी तो रहे और इससे अलावा वो अपने बेटे को बहुत चाहते हैं। मैंने कहा—उतना ही, जितना तुम उसको चाहते थे। हँसने लगे। ग़र्ज़ के मैंने बज़ाहिर उनको तुमसे अच्छा पाया। आगे तुम लोगों के दिलों का मालिक अल्लाह है।

निगाश्ता व रवां दाश्त ए यक शंबा, बैनुज़्ज़ुहर[5] व अल अस्र।

राक़िम—ग़ालिब

६

(४ अप्रेल १८६१)

मौलाना नसीमी,

क्यों ख़फ़ा होते हो ? हमेशा से असलाफ़ व[6] अख़लाफ़ होते चले आये हैं। अगर नैयर ख़लीफ़ ए अव्वल है, तुम ख़लीफ़ ए सानी हो। उसको उम्र में तुम

---

१. अन्तः पुर। २. पिछली सुविधा। ३. ठहरना। ४. मुरझाया हुआ। ५. अपराह्न। ६. पूर्वज और उनकी सन्तति।

पर तक़दमे[1] ज़मानी है। जानशीन दोनों, मगर एक अव्वल है और एक सानी है। शेर अपने बच्चों को शिकार का गोश्त खिलाता है, तरीक़े सैद[2] अफ़गनी सिखाता है। जब वो जवान हो जाते हैं, आप शिकार कर खाते हैं। तुम सुख़नवर हो गये। हुस्ने तबा ख़ुदादाद रखते हो, विलादत[3] फ़र्ज़न्द की तारीख़ क्यों न कहो ? इस्मे तारीख़ी[4] क्यों न निकाल लो के मुझ पीरे ग़मज़दा[5] दिले मुर्दा को तकलीफ़ दो ? अलाउद्दीनख़ां तेरी जान की क़स्म, मैंने पहले लड़के का इस्मे तारीख़ी नज़्म कर दिया था, और वो लड़का न जिया। मुझको इस वहम ने घेरा है के मेरी नहूसते[6] ताला की तासीर थी। मेरा ममदूह जीता नहीं। नसीरुद्दीन हैदर और अमजद अली शाह एक एक क़सीदे में चल दिए। वाजिदअली शाह तीन क़सीदों के मुतहमिल हुए, फिर न सँभल सके। जिसकी मदह में दस-बीस क़सीदे कहे गए, वो अदम से भी परे पहुँचा। न साहब, दुहाई ख़ुदा की; मैं न तारीख़े विलादत कहूँगा, न नामे तारीख़ी ढूँढूगा। हक़ ताला तुमको और तुम्हारी औलाद को सलामत रखे और उम्रो दौलत व इक़बाल अता करे।

सुनो साहब, हुस्न परस्तों का एक क़ायदा है। वो अमरद[7] को दो चार बरस घटा कर देखते हैं। जानते हैं के जवान है लेकिन बच्चा समझते हैं। ये हाल तुम्हारी क़ौम का है। क़स्मे[8] शरई खाकर कहता हूँ के एक शख़्श है के उसकी इज्ज़त और नामावरी जम्हूर[9] के नज़दीक साबित और मुतहक़्क़िक़[10] है और तुम साहब भी जानते हो मगर जब तक उससे क़ते नज़र न करो और मस्ख़रे को गुमनाम व ज़लील न समझ लो तुमको चैन न आएगा। पचास बरस से दिल्ली में रहता हूँ। हज़ारहा ख़त अतराफ़ व जवानिब से आते हैं।

---

१. आयु वृद्धता। २. शिकार करना। ३. जन्म। ४. तारीख़ युक्त नाम। ५. वेदनाग्रस्त वृद्ध। ६. दुर्भाग्य। ७. कुमार। ८. धर्मशास्त्र की शपथ। ९. जन-सामान्य। १०. प्रामाणिक।

बहुत लोग ऐसे हैं के मुहल्ला नहीं लिखते, बहुत लोग ऐसे हैं के मुहल्ल ए साबिक़ का नाम लिख देते हैं। हुक्काम के ख़ुतूत फ़ारसी व अंगरेज़ी, यहाँ तक के, विलायत के आए हुए, सिर्फ़ शहर का नाम और मेरा नाम। ये सब मरातिब तुम जानते हो और उन ख़ुतूत को तुम देख चुके हो और फिर मुझसे पूछते हो के अपना मस्कन बता। अगर मैं तुम्हारे नज़दीक अमीर नहीं, न सही। अहले[1] हुर्फ़ा में से भी नहीं हूँ के जब तक मुहल्ला और थाना न लिखा जाए, हरकारा मेरा पता न पाए। आप सिर्फ़ देहली लिख कर मेरा नाम लिख दिया कीजिए। ख़त के पहुँचने का मैं ज़ामिन।

पंजशंबा ४ माहे अप्रेल।

७

(१२ मई १८६१)

मेरी जान,

तख़ल्लुस तुम्हारा बहुत पाकीज़ा और मेरे पसन्द है। 'पश्मी' को बतक़ल्लुफ़ उसका मुसह्हफ़[2] क्यों ठहराओ? ये मैदान तो बहुत फ़राख़[3] है। ख़ुदा की[4] 'खे' को जीमे फ़ारसी से बदल दो, नबी को बतक़दीमे मौहेदा अली अल नून[5] लिखो। ये वसाविस[6] दिल से दूर करो। 'रहरो' एक अच्छा तख़ल्लुस है। 'रहड़ो' उसकी तजनीस[7] मौजूद है। शुयून एक अच्छा तख़ल्लुस्स है, 'सुतून' उसकी तसहीफ़ है। तुम्हारे वास्ते बमुनासिबते इस्म 'आली' तख़ल्लुस ख़ूब था। मगर इस तख़ल्लुस का एक शायर बहुत बड़ा नामी गुज़र चुका है। हाँ, 'नामी', 'सामी' ये दो तख़ल्लुस भी अच्छे हैं। मौलाना फ़ायक़ की पैरवी करो। मौलाना 'लायक़' कहलाओ। अगर कहोगे के इस तरकीब से लफ़्ज़ 'नालायक़' पैदा होता है,

---

१. कारीगर, दस्तकार आदि। २. व्यापक। ३. परिवर्त्तन। ४. ख़ुदा को जुदा। ५. नबी को बनी। ६. भ्रम। ७. उसी तरह का।

मौलाना 'शायक़' बन जाओ। हंसी की बातें हो चुकीं। अब हक़ीक़ते वाजिबी सुनो। 'नसीमी' तख़ल्लुस, खमासी, बरवज़ने 'ज़हूरी' व 'नज़ीरी' अच्छा है। अगर बदलना ही मंज़ूर है तो 'नामी', 'सामी', 'रहरो', 'शुयून' ये चार तख़ल्लुस रुबाई, बरवज़ने 'उर्फ़ी' व 'ग़ालिब' अच्छे हैं। इनमें से एक तख़ल्लुस क़रार दो। मेरे नज़दीक सबसे बेहतर तुम्हारे वास्ते ख़ास 'फ़रूरी' तख़ल्लुस है। कहोगे के आज़ादपूर के बाग़ में एक आम का नाम फ़रूरी है। हासिल कलाम, दो दिन की फ़िक्र में जो तख़ल्लुस मेरे ख़याल में आए, वो लिख भेजता हूँ। भाई, 'मौबद' तख़ल्लुस नया है। अगर ये पसन्द आए तो ये रखो। बद्दुआ।

सुबह यकशम्बा, १२ मई सन् १८६१ ई०।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

८

(१ जून १८६१)

मेरी जान, अलाई हमादान[१]।

इस दफ़े दख़ले[२] मुक़द्दर का क्या कहना है! 'फ़रहंगे लुग़ते दसातीर' तुम्हारे पास है। मैं चाहता था के उसकी नक़ल तुमसे मँगाऊँ। तुमने 'दसातीर' मुझसे माँगी, उसी सहीफ़ए[३] मुक़द्दस की क़स्म के वो मेरे पास नहीं है। जी में कहोगे के अगर 'दसातीर' नहीं तो फ़रहंग की ख़ाहिश क्यों है। हक़ यों है के बाज़[४] लुग़ात के ऐराब[५] याद नहीं। इस वास्ते 'फ़रहंग' की ख़ाहिश

१. सर्वज्ञ। २. भाग्य में अंकित। ३. पवित्र पुस्तक क़ुरान। ४. शब्द। ५. मात्राओं का उच्चारण।

है ! अगर उस फ़रहुंग की नक़ल भेज दोगे तो मुझ पर अहसान करोगे।'दसातीर' मेरे पास होती तो आज इस ख़त के साथ उसका भी पार्सल भेज देता। हाँ साहब, अगर 'दसातीर' होती और मैं भेज देता तो अलबत्ता भाई साहब का मशकूर होता, दीनो दुनिया में क्यों माजूर होता ? इरसाले[1] इहिदा पर हुसूले[2] अज्र क्यों मुतरत्तिब हो गया ? भाई वो मज़हब अख्तियार किया चाहते हैं और तुम उस मज़हब को हक़ जानते हो के मैं जो वास्ता उसके ऐलानो शीव[3] का होता, तो इन्दिल्लाह्[4] मुझको इस्तहक़ाक़[5] अज्र पाने का पैदा होता। अपने बाप को समझाओ, और एक शेर मेरा और एक शेर हाफ़िज़ का और एक शेर मौलवी रूम का सुनाओ--

ग़ालिब--

दौलत[6] बग़लत न बुवद अज़ सई पशेमाँ शौ
काफ़िर न तुवानी शुद नाचार मुसल्माँ शौ

हाफ़िज़

जंगे[7] हफ़्तादो दो मिल्लत हमा रा उज़्र बिने
चूँ न दीदन्द हक़ीक़त रहे अफ़साना ज़दन्द

---

१. उपदेश देने पर। २. फल प्राप्ति। ३. प्रकाशन। ४. ईश्वर के लिए। ५. पुण्य प्राप्त करने का अधिकार। ६. यदि तुम्हारी गलतियों से ऐश्वर्य प्राप्त न हो तो यह तुम्हारी ग़लती है। यदि काफ़िर नहीं बना है तो विवशता से मुसलमान बन जा। ७. यह बहत्तर फ़िर्कों का झगड़ा किसी न किसी कारण से होगा। इन लोगों ने वास्तविकता को नहीं समझा और किस्से-कहानियों के आधार पर चल रहे हैं।

मौलना—

मज़हबे[1] आशिक़ ज़ मज़हबहा जुदास्त
आशिक़ाँ रा मज़हबो मिल्लत खुदास्त

रात को खूब मेंह बरसा है। सुबह को थम गया है। हवा सर्द चल रही। अब्रे तुनक[2] छा रहा है। यक़ीन है के तुम्हारी जद्द ए माजिदा मय अपनी बहू और पोते के रवान-ए लोहारू हों। कल आज की रवानगी की खबर थी। ये लड़का सईदे[3] अज़ली है। अब्र का मुहीत[4] होना और हवा का सर्द हो जाना खास उसकी आसायश के वास्ते है। मेरा मंज़र सरे राह है। वहाँ बैठा हुआ ये खत लिख रहा हूँ। मुहम्मदअली बेग उधर से निकला।

'भई मुहम्मदअली बेग, लोहारू की सवारियाँ रवाना हो गईं ?'

'हज़रत अभी नहीं।'

'क्या आज न जाएँगी ?'

'आज ज़रूर जाएँगी, तैयारी हो रही है।'

मरक़ूम ए शम्बा यकुम जून वक़्त सुबह छ बजे, सात के अमल में।

९

(जून १८६१)

जाने गालिब,

याद आया है के तुम्हारे अम्मे[5] नामदार से सुना है के लुग़ात 'दसातीर' की फ़रहंग वहाँ है। अगर होती तो क्यों न भेज देते ? खैर,

आँचे मा[6] दरकार दारेम अक्सरे दरकारे नीस्त

तुम समरे[7] नौरस हो उस निहाल के जिसने मेरी आँखों के सामने नश्वो[8] नुमा पाई है, और मैं हवाखाह[9] व सायानशीन उस निहाल[10]

---

१. प्रेमी का धर्म सब धर्मों से भिन्न है। आशिकों का धर्म केवल ईश्वर है। २. झीना। ३. जन्म से शुभ। ४. छाना, घेरना। ५. समादृत चाचा। ६. मनुष्य की इच्छाएं पूर्ण नहीं होतीं, वैसे हमारे पास जो कुछ है वही पर्याप्त है। ७. सरस फल। ८. पालन पोषण। ९. शुभेच्छु। १०. पेड़।

का रहा हूँ। क्यों कर तुम मुझको अज़ीज़ न होगे? रही दीद[1] वादीद, उसकी दो सूरतें--तुम दिल्ली में आओ या मैं लोहारू आऊँ? तुम मजबूर, मैं माज़ूर। खुद कहता हूँ के मेरा उज़्र ज़िन्हार मसमू न[2] हो, जब तक न समझ लो के मैं कौन हूँ और माजरा क्या है।

सुनो, आलम दो हैं--एक आलमे अरवाह[3] और एक आलमे[4] आबो गिल। हाकिम इन दोनों आलमों का वो एक है जो ख़ुद फ़रमाता है--लेमनिल[5] मुल्कुल योम, और फिर आप जवाब देता है--लिल्लाहुल[6] वाहदुल क़हहार, हरचन्द क़ायद ए आम ये है के आलमे आबो गिल के मुजरिम आलमे अरवाह में सज़ा पाते हैं। लेकिन यों भी हुआ है के आलमे अरवाह के गुनहगार को दुनिया में भेज कर सज़ा देते हैं। चुनाँ चेमैं आठवीं रज्जब सन् १२१२ हि० में रूबकारी के वास्ते यहाँ भेजा गया। तेरह बरस हवालात में रहा। ७ रज्जब सन् १२२५ हि० को मेरे वास्ते हुक्म दवामे हब्स सादिर हुआ। एक बेड़ी मेरे पाँव में डाल दी और दिल्ली शहर को ज़िन्दाँ मुक़र्रर किया और मुझे उस ज़िन्दाँ में डाल दिया। फ़िक्रे नज़्मो नस्र को मशक़्क़त ठहराया। बरसों के बाद मैं जेलख़ाने में से भागा। तीन बरस बिलादे[7] शर्क़िया में फिरता रहा। पायानेकार[8] मुझे कलकत्ते से पकड़ लाए और फिर उसी महबस[9] में बिठा दिया। जब देखा के ये क़ैदी गुरेज़पा[10] है, दो हतकड़ियाँ और बढा दीं। पाँव बेड़ी से फ़िग़ार,[11] हात हतकड़ियों से ज़ख़्मदार; मशक़्क़त मुक़र्ररी और मुश्किल हो गई। ताक़त यक[12] क़लम ज़ायल हो गई। बेहया हूँ। साले गुज़िश्ता बेड़ी को ज़ाविय ए ज़िन्दाँ में छोड़ मय दोनों हतकड़ियों के भागा।

---

१. मेल मिलाप। २. सुना न जाए। ३. आध्यात्मिक जगत। ४. भौतिक जगत। ५. सब प्रभुत्व उसी का है, किस का प्रभुत्व है। ६. ईश्वर एक है और वह रुद्र है। ७. पूर्वी नगर। ८. अन्ततो गत्वा। ९. कारागृह। १०. भागने वाला। ११. घायल। १२. एक दम।

मेरठ, मुरादाबाद होता हुआ रामपूर पहुँचा। कुछ कम दो महीने वहाँ रहा था के फिर पकड़ा आया। अब अहद किया के फिर न भागूंगा। भागूं क्या? भागने की ताक़त भी तो न रही। हुक्मे रिहाई देखिए कब सादिर हो। एक ज़ईफ़[1] सा अहतमाल है के इसी माह ज़ीहज्जा सन् १२७७ हि० में छूट जाऊं। बहर तक़दीर, बाद रिहाई के तो आदमी सिवाय अपने घर के और कहीं नहीं जाता, मैं भी बाद नजात सीधा आलमे अरवाह को चला जाऊंगा।

फ़र्रुखाँ[2] रोज़ के अज़ ख़ान ए ज़िन्दाँ बरवम
सू[3] ए शहरे ख़ुद अज़ीं वादी ए वीराँ बरवम

गाने में ग़ज़ल के सात शेर काफ़ी होते हैं। दो फ़ारसी ग़ज़लें, दो उर्दू ग़ज़लें अपने हाफ़िज़े की तहवील में भेजता हूँ, भाई साहब की नज़र।

अज़[4] जिस्म बजान निक़ाब ता कै
ईं गंज दरीं ख़राब ता कै
ईं गौहरे पुर फ़रोग़ या रब
आलूद ए ख़ाको आब ता कै

१. निर्बल विचार। २. वह दिन शुभ होगा जिस दिन मैं इस कारावास से छूटूँगा, सुनसान कबरिस्तान में शयन करूंगा। ३. वह दिन शुभ होगा जिस दिन हम इस कारावास से मुक्त होंगे। इस सुनसान जंगल से निकल अपने नगर की ओर जाएंगे। ४. आत्मा पर शरीर का आवरण कब तक पड़ा रहेगा? यह कोष इस जगल में कब तक रहेगा? हे ईश्वर, यह छवि युक्त मोती कीचड़ में कब तक पड़ा रहेगा? यह पवित्र मार्ग का पथिक भोग-विलास में कब तक विवश बना रहेगा। विद्युत की उद्विग्नता क्षणिक होती है। हम और हमारी उद्विग्नता कब तक? आत्मा मुक्ति के लिए कब तक प्रयत्नशील रहेगी? हृदय अप्रसन्नता में कब तक बेचैन रहेगा? तुमसे अगणित जिज्ञासाएं हैं। मेरी वेदनाओं का लेखा कब तक चलेगा? 'ग़ालिब' पूछता है—हे अली, मेरा मन इस दुविधा में कब तक डूबा रहेगा!

मिर्ज़ा अलाउद्दीन अहमदख़ां 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

ईं राहरवे मसालिके क़ुद्स
वा मांद ए ख़ुर्दो ख़ाब ता कै
बेताबिए बर्क़ जुज़ दमे नीस्त
मा, वीं हमा इज़्तराब ता कै
जां दर तलबे नजात ता चन्द
दिल दर तावे इताब ता कै
पुरसिश ज़ तो बे हिसाब बायद
ग़म हाए मरा हिसाब ता कै
'ग़ालिब' ब चुनीं कशाकश अन्दर
या हज़रते बूतुराब ता कै

दोश[१] कज़ गर्दिशे बख़्तम गिलह बर रूए तो बूद
चश्म सू ए फ़लको रू ए सुख़न सू ए तो बूद

१· अपने दुर्भाग्य की शिकायत मैंने कल आपके सम्मुख की। दृष्टि आकाश की ओर थी और बातचीत आप से कर रहा था। जिस वस्तु को आपने रात में शमा समझा और क्रोध में आकर आप चले गए, वह क्या थी? मेरी साँस आपके स्वभाव के आवरण को हटाने वाली थी। यदि बनाने वाले ने तुम्हारी आकृति अत्यन्त सूक्ष्म बना दी तो इसमें आश्चर्य क्या है? वह स्वयं तुम्हारी आकृति को देखकर आश्चर्य करने वालों में सम्मिलित था। मेरे हृदय की बद-नामी हवा की गति की पहुँच में न रहे। अन्ततः मेरा हृदय भी तुम्हारी अलकों में बन्दी था। मरना और बलिदान देने की भावना केवल तुम्हारी भुजाओं को कष्ट देने के लिए थी। कार्य में आने वाली कठिनाइयों को मैं पसन्द करता हूँ। यह वही कठिनता है जो सदैव तुम्हारी भौंहों में रहती थी। उसके मरने के पश्चात् उसकी क़ब्र के आस पास लाला और गुलाब खिलेंगे। 'ग़ालिब' के दिल में आप के दर्शन की कैसी लालसाएँ थीं।

उंचे शबे शमा गुमाँ करदी व रफ़्ती ब इताब
नफ़सम पर्दा कुशा ए असरे खूए तो बूद
चे अजब साने अगर नक़्शे दहानत गुम कर्द
के खुदज़ हैरत याने रुखे नेकू ए तो बूद
बकफ़े बाद म बाद ई हमा रुसवाइ ए दिल
काखिर अज़ पर्दगियाने शिकने मू ए तू बूद
मुर्दनो जाँ ब तमन्ना ए शहादत दादन
हम ज़े अंदेश ए आज़ुर्दने बाज़ू ए तो बूद
दोस्त दारम गिरहे रा के बकारम ज़दा अन्द
कीं हमानस्त के पैवस्ता दर अब्रू ए तो बूद
लाला वो गुल दमद अज़ तरफ़ मज़ारश पसे मर्ग
ताचे हादर दिले 'ग़ालिब' हवसे रू ए तो बूद

—:०:—

है बस के हरेक उनके इशारे में निशाँ और
करते हैं मुहब्बत तो गुज़रता है गुमां और
लोगों को है खुरशीदे जहाँ ताब का धोका
हर रोज़ दिखाता हूँ मैं इक दाग़े निहां और
है खूने जिगर जोश में दिल खोल के रोता
होते जो कई दीद ए[1] खूँ नाबा फ़िशां और
या रब न वो समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको, जोन दे, मुझको ज़बा और
तुम शहर में हो तो हमें क्या ग़म ? जब उठेंगे
ले आएँगे बाज़ार से जाकर दिलो जां और
मरता हूँ इस आवाज़ पे हर चन्द सर उड़ जाए

१. जो आँखें के बल रक्त बरसाती है।

जल्लाद को लेकिन वो कहे जाएँ के 'हां और'
हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे
कहते हैं के 'ग़ालिब' का है अन्दाज़े बयां और

—:o:—

उस बज़्म में, मुझे नहीं बनती हया किये
बैठा रहा अगरचे इशारे हुआ किये
ज़िद की है और बात मगर खो बुरी नहीं
भूले से उसने सैंकड़ों वादे वफ़ा किये
सोहबत में ग़ैर की न पड़ी हो कहीं ये खो
देने लगा है बोसा बग़ैर इल्तजा किये
रखता फिरूं हूँ ख़िरका[1] व सज्जादा[2] रहने मय[3]
मुद्दत हुई है दावते आबोहवा किये
किस रोज़ तोहमतें न तराशा किए अदू
किस दिन हमारे सर पे न आरे चला किये ?
'ग़ालिब' तुम्हीं कहो के मिलेगा जवाब क्या ?
माना के तुम कहा किए और वो सुना किये।

१०

(२५ सितम्बर १८६१)

चहारशंबा, २५ सितम्बर सन् १८६१ ई० हंगामे नीमरोज़।

अलाई मौलाई,

इस वक़्त तुम्हारा, ख़त पहुँचा। उधर पढ़ा, इधर जवाब लिखा। वाह, क्या कहना है ! रामपूर के इलाक़े को गावशंक[4] और मुझको बैल या उस पैवन्द

---

१. झुब्बा। २. नमाज पढ़ने का आसन। ३. शराब के लिए रहन। ४. आर=गाड़ीवान जिससे गाड़ी हाँकता है।

के ताने को ताज़ियाना[1] और मुझको घोड़ा बनाया। वो इलाक़ा और वो पैवन्द लोहारू के सफ़र का माना[2] व मुज़ाहम क्यों हो ? रईस की तरफ़ से बतरीक़े वकील महकम ए कमिश्नरी में मुअय्यन नहीं हूँ। जिस तरह उमरा वास्ते फ़ुक़रा के वजह माश मुक़र्रर कर देते हैं, उसी तरह इस सरकार से मेरे वास्ते मुक़र्रर है। हाँ, फ़क़ीर से दुआ ए ख़ैर और मुझसे इस्लाह नज़्म मतलूब है। चाहूँ दिल्ली रहूँ, चाहे अकबराबाद, चाहूँ लाहौर, चाहे लोहारू। एक गाड़ी कपड़ों के वास्ते किराया करूँ, कपड़ों के सन्दूक़ में आधी दर्जन शराब धरूँ। आठ कहार ठेके के लूँ। चार आदमी रखता हूँ, दो यहाँ छोड़ूँ, दो साथ लूँ; चल दूँ। रामपूर से जो लिफ़ाफ़ा आया करेगा, लड़कों का हाफ़िज़ लोहारू भिजवाया करेगा। गाड़ी हो सकती है, शराब मिल सकती है, कहार बहम पहुँच सकते हैं। ताक़त कहाँ से लाऊँ ? रोटी खाने को बाहर के मकान में से महलसरा में, के वो बहुत क़रीब है, जब जाता हूँ, तो हिन्दुस्तानी घड़ी भर में दम ठहरता है और यही हाल दीवानखाने में आकर होता है। वाली ए रामपूर ने भी तो मुर्शदज़ादे की शादी में बुलाया था; यही लिखा गया के मैं अब मादूमे महज़ हूँ। तुम्हारा इक़बाल तुम्हारे कलाम को इस्लाह देता है। इससे बढ़कर मुझसे ख़िदमत न चाहो।

भाई के और तुम्हारे देखने को जी बहुत चाहता है, पर क्या करूँ ? अक़रब[3] व क़ौस[4] के आफ़ताब याने नवम्बर-दिसम्बर में क़स्द तो करूँगा; काश, लोहारू की जगह गुडगाँवा होता या बादशाहपूर होता। कहोगे के रामपूर क्या नज़दीक है ? वहाँ गए को दो बरस हो गए। यहाँ इनहतात[5] व इज़्मे-हलाल[6] रोज़[7] अफ़ज़ूँ, न तुम यहाँ आ सकते हो और न मुझमें वहाँ आने का दम। बस, अगर नवम्बर-दिसम्बर में मेरा अख़ीर हमला चल गया, बेहतर; वर्ना—

---

१. कोड़ा। २. रुकावट और बाधा। ३. वृश्चिक ४. धन। ५, बुढ़ापा। ६. निर्बलता। ७. नित्य वृद्धिशील।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन अहमदख़ां 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

अै[1] वाए ज़ महरूमी दीदार दिगर हेच ?

—ग़ालिब

११

(१५ अक्टूबर १८६१)

मेरी जान,

क्या कहते हो ? क्या चाहते हो ? हवा ठंडी हो गई। पानी ठंडा हो गया। फ़सल अच्छी हो गई। अनाज बहुत पैदा हो गया। तौक़ी ए जानशीनी मुझसे तुमको पहुँचा। ख़िरक़ा पाया, सबह[2] व सज्जादा का यहाँ पता नहीं, वर्ना वो भी अज़ीज़ न रखता। इससे बढ़कर ये के भाई ने शफ़ा पाई, उस्ताद मीर जान पहुँच गए। आख़िर अक्तूबर में या आग़ाज़ नवम्बर में 'नैयरे रख़्शाँ' को भी वहीं लो। फिर अक़रबो क़ौस के आफ़ताब का क्या ज़िक्र ? आबान माह व आज़ुर माह से क्या ग़र्ज़ !

बसे[3] तीर व दैमाह व उर्दीबहिश्त
बर आयद के मा ख़ाक बाशीमो ख़िश्त

उस्ताद मीर जान को, इस राह से के मेरी फूपी उनकी चची थी और ये मुझसे उम्र में छोटे हैं, दुआ; और इस रू से के दोस्त हैं, और दोस्ती में कमी व बेशी सिन[4] व साल की रिआयत नहीं करते, सलाम, और इस सबब से के उस्ताद कहलाते हैं बन्दगी; और इस नज़र से के ये सैयद ह, दरूद;[5] और माफ़िक़े मज़मून इस मिसरे के "सिवा अल्लाह् वल्लाह् माफ़िल वुजूद"

---

१. दुःख इस बात का है कि तुम्हारे दर्शनों से वञ्चित हो गया हूँ। २. माला और नमाज़ का आसन। ३. बहुत से तीर, दै और उर्दी बहिस्त महीने आए लेकिन हम मिट्टी के मिट्टी रहे, जिससे ईंट बनती है। ४. आयु। ५. अभिवादन।

हज़रत, वो 'शर्फ़नामा' नहीं है। किसी अहमक़ ने "शर्फ़नामा" में से कुछ लुग़ात अक्सर ग़लत, कमतर सही, चुनकर जमा किए है। न दीबाचा[1] है के उससे जामा का हाल मालूम हो, व ख़ात्मा है के अहदो[2] अस्र का हाल खुले। बाई हमा मियां ज़ियाउद्दीन के पास है। अगर वो आजाएँगे तो उनसे कह दूँगा। अगर वो लावेंगे तो उनको क़ीमत देकर 'अलाई मौलाई' को भेज दूँगा।

ख़स्सी बकरों के गोश्त के क़लिए, दो प्याज़े, पुलाव, कबाब, जो कुछ तुम खा रहे हो, मुझको ख़ुदा की क़सम, अगर उसका कुछ ख़याल भी आता हो। ख़ुदा करे बीकानेर की मिस्री का कोई टुकड़ा तुमको मयस्सर न आया हो। कभी ये तसव्वुर करता हूँ के मीर जान साहब उस मिस्री के टुकड़े चबा रहे होंगे तो यहाँ मैं रश्क से अपना कलेजा चाबने लगता हूँ।

सेशम्बा, १५ माहे अक्तूबर सन् १८६१ ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

१२

मिर्ज़ा अलाई,

पहले उस्ताद मीर जान साहब के क़हरो ग़ज़ब से मुझको बचाओ, ताके मेरे हवास जो मुन्तशिर हो गए हैं, जमा हो जाएँ। मैं अपने को किसी तरह के क़ुसूर[3] का मौरद नहीं जानता। झगड़ा उनकी तरफ़ से है। तुम उसको यों चुकाओ याने अगर उनको सिर्फ़ आशनाई व मुलाक़ात मंजूर है तो वो मेरे दोस्त हैं, शफ़ीक़ हैं, मेरा सलाम क़ुबूल फ़रमायें। और अगर क़राबत व रिश्तेदारी

---

१. भूमिका। २. युग। ३. अपराध का कारण।

मलहूज़[1] है तो वो मेरे भाई हैं, मगर उम्र में छोटे, मेरी दुआ क़ुबूल फ़रमायें। साहबीन की राय का इख़्तलाफ़ मशहूर है। मुझसे कुछ नहीं हो सकता। मगर हर एक कौल जुदा-जुदा लिखूँ। आज न लिखा, न सही, दो-चार दिन के बाद लिखूँगा। तुम समझ तो गए होगे, के, 'साहबीन' मिर्ज़ा क़ुर्बान अली बेग और मिर्ज़ा शमशाद अली बेग हैं। भाई साहब की रज़ा जोई मुझको मंजूर, और ये ग़ज़ल मारूज़ है। मेरी तरफ़ से सलाम कहो—

अज़[2] मन ग़ज़ले गीरो ब फ़रमाए के मुतरिब
दर नै दमद अज़ रूए नवाज़िश दो से दम रा
ज़ुज़[3] दफ़े ग़म ज़ियादा न बूदस्त कामे मा

---

१. लिहाज़। २. मेरी यह ग़ज़ल लीजिए और गायक को आदेश दीजिए। वह थोड़ी देर के लिए कृपा करके वंशी में गाए।

३. वेदना को दूर करने के अतिरिक्त हमारा कोई उद्देश्य नहीं था, जैसे दिन में जलने वाला दीपक निरर्थक है उसी तरह दुर्दिन में हमारा जाम व्यर्थ हो गया। उसके एकान्त कक्ष में वायु भी नहीं पहुँचती। संभवतः वायु मार्ग के अणुओं तक हमारा सन्देश पहुँचा दे। हे प्रातः समीर उसकी पोशाक की गंध ले आ। हमारा मस्तिष्क पुष्प की सुगन्ध से सन्तुष्ट नहीं होता। हम सदैव हमा के लिए दाने फेंकते हैं किन्तु हमारे जाल में चींटियाँ आती हैं और सारे दाने ले जाती हैं। तुमने कहा है कि जब वह हृदय की भावना से परिचित होगा तो उसका हृदय पसीज जाएगा। प्रिय के सामने अपनी स्थिति का वर्णन तो दूर रहा, हम अपना नाम भी नहीं ले सकते। हमारा सन्देश हम तक और हमारा अभिवादन भी हम तक। हमारा अभिवादन और सन्देश किसको व्यथित कर सकता है? संसार में हमारा उद्देश्य विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं। हमारी जैसी विपत्ति, हे ईश्वर किसी पर न आए। हज़रत हाफ़िज़ के कथनानुसार, ग़ालिब, प्रेम करने के कारण हमारा नाम रहती दुनिया तक रहेगा।

ग़ज़ल

गोई चराग़े रोज़े सिया हस्त जामे मा
दर ख़िलवतश गुज़र न बुवद बाद रा मगर
सर सर ब ख़ाक रसानद पयामे मा
अँ बादे सुबह इतरे अज़ाँ पैरहन बियार
तस्कीं ज़ बू ए गुल न पिज़ीरद मशामे मा
हर बार दाना बहर हमा अफ़गनेम व मोर
आयद बदाम व दाना रुबायद ज़ दामे मा
गुफ़्ती चूँ हाले दिल शुनवद मेहरबाँ शवद
मुश्किल के पेशे दोस्त तुवाँ बरद नामे मा
अज़ मा ब मा पयाम व हम अज़ मा ब मा सलाम
रंजे दिले मा बाद पयामो सलामे मा
मक़्सूदे मा ज़ दहर हर आईना नेस्तीस्त
या रब के हेच दोस्त मबादा बकामे मा
'ग़ालिब' बक़ौले हज़रते हाफ़िज़ ज़ फ़ैज़े इश्क़
सिप्तस्त बर जरीद ए आलम दवामे मा

१३

(१२ नवम्बर १८६१)

चाश्त गाहे से शम्बा, द्वाज दहुम नवम्बर सन् १८६१ ई० ।

आज जिस वक्त के रोटी खाने घर जाता था, शहाबुद्दीनख़ां तुम्हारा ख़त और मिश्री की ठिलिया लेकर आए । मैं उसको लिवा कर घर गया । अपने सामने मिश्री तुलवाई । आध पाव ऊपर दो सेर निकली । ख़ानए दौलत आबाद

यही काफ़ी व बाफ़ी है; और अब हाजत नहीं। रोटी खाकर बाहर आया। तुम्हारे इब्ने अम[1] का आदमी, जवाब ख़त का मुतक़ाज़ी[2] हुआ के शुतर सवार जाने वाला है। मैं खाना खाकर लेटने का आदी हूँ; लेटे लेटे मिसरी की रसीद लिख दी। मतालिबे मुन्दर्जा ख़य का जवाब बशर्त्ते हयात कल भेजूँगा।

१४

(२९ फरवरी १८६२ ई०)

यक शम्बा ९ फ़रवरी १८६२ ई०।

साहब,

सुबह जुमे को मैंने तुमको ख़त लिखा। उसी वक़्त भेज दिया। पहर दिन चढ़े सुना के शब को फिर दौरा हुआ। गया, ख़ुद उनसे हाल पूछा। अली मुहम्मद बेग की ज़बानी ये मालूम हुआ के बनिस्बत दौरा[3] हाय साबिक़ ख़फ़ीफ़ था और इफ़ाक़ा[4] जल्द हो गया। कल मिर्ज़ा शम्शादअली बेग नाक़िल[5] थे के मुझसे अली हुसेन कहते थे, के नवाब साहब फ़रमाते हैं के लोहारू चलोगे और हमारी दाल रोटी क़ुबूल करोगे? मैंने कहा के मैं दाल-रोटी चाहता हूँ; मगर पेट भर कर। ग़ालिब कहता है के इस बयान से ये मालूम हुआ के सालिक[6] से सुलूक[7] मंज़ूर नहीं। तन्हा[8] हवा ए शमशाद दर सरे अस्त।

रमूज़े[9] मुमलिकते ख़ीश ख़ुसरवाँ दानन्द
गदा ए गोशा नशीनी तू हाफ़िज़ा मख़रोश

—ग़ालिब

---

१. भतीजा। २. तक़ाज़ा करने वाला। ३. पहले के सभी दौरों की अपेक्षा। ४. आराम। ५. वर्णनकर्त्ता। ६. उपकर्त्ता। ७. उपकार। ८. शमशाद से भेंट करने की इच्छा बनी हुई है। ९. अपने साम्राज्य के रहस्य बादशाह ही जानते हैं। हाफ़िज़, तुम एकान्त में बसते हो, फिर शोर क्यों मचाते हो?

१५

(१५ फरवरी १८६२)

शम्बा १५ शाबान व फ़रवरी वक़्त नमाज़े ज़ुहर[१]।

'नैयरे[२] असग़र' सिपहर सुख़न सराई मौलाना अलाई के ख़ातिर निशान व दिल नशीन हो के आज सुबह को ५ या ६ घड़ी दिन चढ़े दोनों भाई साहब तशरीफ़ लाए। मैं गया और मिला! अलीहुसेनखां को भी देखा। थोड़ी देर के बाद भाई साहब वालिदा साहबा के पास गए। मैं घर आया, खाना खाया। दोपहर को तुम्हारा ख़त पाया। दो घड़ी लोट-पोट कर जवाब लिखा और डाक में भिजवाया।

ये मर्ज़ जो भाई को है, इस राह से के जिदे[३] सेहत है, मकरूहे[४] तबा है; वर्ना हरगिज़ मूजिबे ख़ौफ़ो ख़तर नहीं। मैं तो भूल गया था, अब भाई के बयान से याद आ गया के बारह-तेरह बरस पहले एक दिन नागाह ये हालत तारी[५] हो गई थी। वो मौसम जवानी का था और हज़रत आदी ब अफ़्यून न थे। तन्क़िया[६] बक़ै फौरन और ब इसहाल बाद चन्द रोज़ अमल में आया। अब सिने[७] कहोलत, इस्तमाले अफ़्यून मज़ीद अले, दौरा जल्द-जल्द मुतवातिर हुआ। इज़्तराब अजराहे मुहब्बत है। आज रू ए हिकमत इज़्तराब की कोई वजह नहीं। नज़री[८] में यकता हकीम इमामुद्दीनख़ां वो टौंक, अमली[९] में चालाक हकीम अहसनुल्लाख़ां, वो करोली रहे। हकीम महमूदख़ां वो हमसायए दीवार ब दीवार, हकीम ग़ुलाम नजफ़ख़ां, वो दोस्ते क़दीम सादिक़ुलविला[१०] हकीम 'बक़ा' के ख़ानदान में दो साहब मौजूद, तीसरे हकीम 'मंझले', वो भी शरीक हो जाएँगे। अब आप फ़रमाइए हकीम

---

१. मध्याह्नोपरान्त। २. कवित्व के आकाश के लघु सूर्य। ३. स्वास्थ्य-विरुद्ध। ४. अरुचिकर। ५. छा गई थी। ६. शौच और उल्टी से कुछ दिनों में दोषों का पचन हुआ। ७. वृद्धावस्था। ८. सैद्धान्तिक ज्ञान। ९. व्यावहारिक ज्ञान। १०. सच्ची मित्रता रखने वाले।

कौन है ? हाँ दो-एक डाक्टर ब ऐतबार हमक़ौमी हुक्काम नामवर या कोई एकाध वैद, सो मन्ज़वी[1] और गुमनाम। बहरहाल, ख़ातिर जमा रखो; खुदा के फ़ज़्ल पर नज़र रखो। सुभान अल्लाह्, तुम मुझसे सिपारिश करो अमीनुद्दीनख़ाँ की। क्या मेरे पहलू में दिल या मेरे दिल में ईमान, जिसको मुहब्बत भी कहते हैं, बक़द्रे परे पश्शा[2] व सरे मोर[3] भी नहीं ? मालिजा हुक्मा की राह पर रहेगा। नदीमी[4] और ग़मख़ारी में अगर क़ुसूर करूँ तो गुनाहगार। मियाँ, ऐसे मौक़े में राए अतिब्बा में ख़िलाफ़ कम वाक़े होता है। मरज़ मुशख़्ख़स[5] दवा मुअय्यन,[6] सूए[7] मिज़ाजे साज़िज़ नहीं, माद्दी है; और माद्दा बारिद[8] है। कोई तबीब सिवाय तनक़िए के कुछ तदबीर न सोचेगा। तनक़िए में सिवाय मुख़्रिजाते बलग़म और कुछ तजवीज़ न करेगा। तजवीज़ है के दो दिन के बाद तनक़ियए ख़ास हो और अयारिज का मुस्हिल दिया जाए। अस्मा[9] व आयात[10] शफ़ाबख़्श मुक़र्रर हैं, रद्दे सेहर व दफ़े बला उनके ज़रिए से मुतसव्विर है; लेकिन इन मुल्लाओं और अज़ायमख़ानों[11] ने तह तोड़ दी है। कुछ नहीं जानते और बातें बखानते हैं। तुम्हारे बाप पर कोई सेहर क्यों करेगा ? बेचारा अलग एक ऐसे गोशे में रहता है के जब तक ख़ास वहाँ का क़स्द न करे, कभी कोई वहाँ न जाए। ये ख़याल अबस। हाँ, ख़ैरात और मसाकीन से तलबे दुआ और अहलुल्लाह् से इस्तमदाद।[12] शहर में मसाकीन शुमार से बाहर, अहलुल्लाह् में एक हाफ़िज़ अब्दुल अज़ीज़। मा बख़ैर शमा बसलामत। दिन और तारीख़ ऊपर लिख आया हूँ।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

---

१. एकान्तवासी। २. मच्छर का पर। ३. चींटी का सिर। ४. मुसाहिबी। ५. निदानित। ६. निश्चित। ७. प्रकृति की विकृति नहीं। विकारों के कारण है। ८. शीत है। ९. नाम जप। १०. आयत का पाठ। ११. दरिद्र। १२. सहायता चाहना।

१६

(१६ फरवरी १८६२)

यकशम्बा, १६ फ़रवरी सन् १८६२ ई० हंगामे नीम रोज़।

साहब,

कल तुम्हारे ख़त का जवाब भेज चुका हूँ। पहुँचा होगा ? आज सुबह को भाई साहब के पास गया। भाई ज़ियाउद्दीनख़ाँ और मियां शहाबुद्दीनख़ां भी वहीं थे। मौलवी सदरुद्दीन मेरे सामने आए। हकीम महमूदख़ां के तौर पर मालिजा क़रार पाया है। याने उन्होंने नुस्खा लिख दिया है, सो उसके माफ़िक़ हुबूब[1] बन गए हैं। नुक़ू[2] की दवाएँ आज आकर भीगेंगी। कल हुबूब के ऊपर वो नुक़ू पिया जाएगा। मगर अन्दाज़ो अदा से ऐसा मालूम होता था के अभी हज़रत मरीज़ की और उनके हवाख़ाहों[3] की राय में क़स्द इस इस्तलाज[4] का मुज़बज़ब[5] है। नुस्ख़े की हक़ीक़त को मीज़ाने[6] नज़र में तोल रहे हैं। उस्ताद मीर जान भी थे। नीम नामाक़ूल मिर्ज़ा असदबेग भी थे। सब तरह ख़ैरियत है।

कल तुम्हारे ख़त में दो बार ये कलमा मरक़ूम देखा के दिल्ली बड़ा शहर है। हर क़िस्म के आदमी वहाँ बहुत होंगे। ऐ मेरी जान, ये वो दिल्ली नहीं है, जिसमें तुम पैदा हुए हो। वो दिल्ली नहीं है जिसमें तुमने इल्म तहसील किया है; वो दिल्ली नहीं है, जिसमें तुम शाबान बेग की हवेली में मुझसे पढ़ने आते थे, वो दिल्ली नहीं है जिसमें मैं सात बरस की उम्र से आता जाता हूँ; वो दिल्ली नहीं है जिसमें इक्यावन बरस से मुक़ीम हूँ। एक कैंप है—मुसलमान, अहले

---

१. गोलियां। २. काढ़ा। ३. शुभेच्छु। ४. चिकित्सा। ५. दुविधा। ६. दृष्टितुला।

हुर्फ़ा या हुक्काम के शागिर्द पेशा, बाक़ी सरासर हुनूद। माज़ूल[1] बादशाह के ज़ुकूर[2], जो बक़ियतुस्सैफ़[3] हैं, वो पांच-पांच रुपया महीना पाते हैं। उनास[4] में से जो पीरज़न[5] हैं, वो कुटनियां और जवानें कसबियां। उमरा ए इस्लाम में से अमवात[6] गिनो, हसनअलीख़ां बहुत बड़े बाप का बेटा, सौ रुपए रोज़ का पिन्सनदार, सौ रुपए महीने का रोज़ीनादार बन कर नामुरादाना मर गया। मीर नसीरुद्दीन, बाप की तरफ़ से पीरज़ादा, नाना और नानी की तरफ़ से अमीरज़ादा, मज़लूम मारा गया। आग़ा सुल्तान, बख़्शी मुहम्मद अलीख़ां का बेटा, जो ख़ुद भी बख़्शी हो चुका है, बीमार पड़ा। न दवा, न ग़िज़ा; अन्जामेकार मर गया। तुम्हारे चचा की सरकार से तज्हीज़[7] व तकफ़ीम हुई। अहया[8] को पूछो, नाज़िर हुसेन मिर्ज़ा जिसका बड़ा भाई मक़्तूलों में आया, उसके पास एक पैसा नहीं। टके की आमद नहीं। मकान अगरचे रहने को मिल गया है, मगर देखिए छुटा रहे या ज़ब्त हो जाए। बुड्ढे साहब, सारी अमलाक वेच कर नौश जां[9] कर कर, ब यकबीनी[10] व दो गोश, भरतपूर चले गए। ज़ियाउद्दौला की पान सौ रुपए किराए की अमलाक वागुज़ाश्त होकर फिर कुर्क हो गई। तबाह, ख़राब लाहौर गया, वहाँ पड़ा हुआ है। देखिए क्या होता है। क़िस्सा कोताह, "क़िला" और झज्जरगढ़, और बहादुरगढ़ और बल्लबगढ़ और फर्रुखनगर कमोबेश तीस लाख रुपए की रियासतें मिट गईं। शहर की इमारतें ख़ाक में मिल गईं। हुनरमन्द आदमी यहाँ क्यों पाया जाए? जो हुकुमा का हाल लिखा है, वो बयान[11] वाक़े है! सुलहा[12] और ज़ुहाद[13] के बाब में जो हर्फ़ मुख़्तसर मैंने लिखा है, उसको भी सच जानो। अपने वालिद माजिद की तरफ़ से ख़ातिर जमा रखो। सेहर-आसेब का गुमान हर्गिज़ न करो। ख़ुदा चाहे

---

१. सिंहासनच्युत। २. पुरुष। ३. मरने से बचे हुए। ४. स्त्रियां। ५. बूढ़ियां। ६. मृत्युएँ। ७. क्रिया कर्म। ८. जीवित। ९. खा-पीकर। १०. बिना माल असबाब के, छड़े। ११. सत्य। १२. सदाचारी। १३. ईश्वर भक्त।

जो तो इस्तेमाल अयारेजात[१] के बाद बिल्कुल अच्छे हो जाएँगे और अब भी ख़ुदा के फ़ज़ल से अच्छे हैं।

आफ़ियत का तालिब

—ग़ालिब

१७

(१ मार्च १८६२)

सुबह यकशम्बा यकुम मार्च १८६२ ई०।

साहब, परसों तुम्हारा ख़त आया। कल जुमे के दिन नवाब का मुस्हिल था। ११ बजे वहाँ से आया। चूँके हुबूब में मुकर्रब[२] दवाएँ थीं, बहुत बेचैन रहे। आठ-दस दस्त आए। आख़िर रोज़ मिज़ाज बहाल हो गया। तनक़िया अच्छा हुआ। अब बफ़ज़्ले इलाही अच्छे हैं और यक़ीन है के मरज़ औद[३] न करे। दिल्ली की इक़ामत[४] की मुद्दत अपने वालिद की राय पर रहने दो। बक़द्रे मुनासिब, वक़्ते अज़्म[५] ख़ैरख़ाहाना कुछ कहूँगा ज़रूर, लेकिन न बइबराम[६]। मैं तुमसे ज़्यादा इनका मिज़ाजदाँ हूँ। ये ख़ुद पसंद और माहज़ा सिपारिश का दुश्मन है। मुग़लचों के मुक़दमे को तबीअते[७] इमकान पर छोड़ दो। मैं दख़ल न करूँगा। हां अगर ख़ुद मुझसे पूछेंगे या मेरे सामने ज़िक्र आ जाएगा तो मैं अच्छी कहूँगा।

बुरीदाबाद[८] ज़बाने के ना सज़ा गोयद

बुरा न मानना अगर ये दोनों भाई या इनमें से एक रफ़ीक़[९] हो गया।

---

१. दोष को पकाने वाली औषधियां। २. उद्विग्न करने वाली। ३. पुनरावर्त्तन। ४. ठहरना। ५. निकलने का संकल्प। ६. अनुरोध पूर्वक। ७. संभावना। ८. जिस जीभ से बुरी बात निकले वह कट जाए। ९. सहमत।

यों तमाम उम्र बख़ुशी गुज़र जाए, लेकिन तुम कै बरस, कै महीने, कै हफ़्ते का ग्रीमेण्ट लिखते हो !

—ग़ालिब

१८

(७ मार्च १८६२ ई०)

साहब,

मेरा बिरादरे आली क़द्र और तुम्हारा वालिद माजिद अब अच्छा है। अज़ रू ए अक़्ल इग्रादए[१] मरज़ का अेहतमाल[२] बाक़ी नहीं है। रहा वहम, उसकी दवा लुक़मान के पास भी नहीं। मिर्ज़ा क़ुर्बान अली बेग और मिर्ज़ा शमशाद-अली बेग के बाब में जो कुछ तुमने लिखा है, और आइन्दा जो कुछ लिखोगे, मेरी तरफ़ से जवाब वही होगा जो आगे लिख चुका हूँ। याने मैं तमाशाई महज़ रहूँगा। अगर भाई साहब मुझसे कुछ ज़िक्र करेंगे तो भली कहूँगा। आपके अम्मे आली मिक़दार जो फ़रमाते हैं के ग़ालिब को बैठे हुए हज़ारहा तस्वी-लातो ख़यालात[३] दिखलाई देते हैं, ये हज़रत ने अपनी ज़ात पर मेरी तबीयत को तरह किया है और वो ये समझते हैं के जिस तरह मैं मुब्तिला ए वसावस व औहाम हूँ, और लोग भी इसी तरह बुख़ाराते[४] मिराक़ी में गिरफ़्तार होंगे। क़यास माउल फ़ारिक़ है, न तख़य्युले सादिक़। यहां 'ला मौजूद इल्लिल्लाह' के बाद ए नाब[५] का रतले गिरां चढ़ाए हुए और कुफ़्रो इस्लाम व नूरो[६] नार को मिटाए हुए बैठे हैं।

कुजा[७] ग़ैरो कू ग़ैरो कू नक़्शे ग़ैर
सिवल्लाही वल्लाही माफ़िल वुजूद

---

१. बीमारी के पलटने का। २. संभावना। ३. बातें और विचार। ४. प्रलाप। ५. एक रतल निरी शराब पिए। ६. प्रकाश और आग। ७. पराया कहां है ? पराया कौन है ? ईश्वर की शपथ, ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नहीं।

"ज़मीरान" बरवज़ने दुर्गरान लुग़ते अरबी[1] है न मारिब। मैं ये नहीं कह सकता के ये फूल हिन्दुस्तान में होता है या नहीं। इसकी तहक़ीक़ात अज़ रू ए 'अल्फ़ाज़ुल अदविया, मुमकिन है।

आज उसने जुल्लाब लिया। दस दस्त आए। मवाद ख़ूब इख़राज हुआ।

फ़ारसी ए ग़ैर फ़सीह—इमरोज़ फ़लानी मुस्हिल गिरफ़्त। दह दस्त आमदन्द। मवाद ख़ूब बरामद।

फ़ारसी ए फ़सीह—इमरोज़ फ़लानी पुगा दारू ए मुस्हिल आशामेद। ता शाम दह बार निशिस्त या दह बार ब मुस्तराह रफ़्त या दह बादर ब बैतुलख़ला रफ़्त। मादए फ़ासिद चुनांके बायद इख़राज याफ़्त।

मालूम रहे के लूतियों[2] के मन्तिक़ में ख़ुसूसन और अहले फ़ारस के रोज़मर्रे में उमूमन 'निशिस्तन' इस्तेआरा[3] है, 'रीदन' का। चुनांचे एक तज्करे में मरक़ूम है के इस्फ़हान में एक अमीर नें शोअरा की दावत अपने बाग़ में की। मिर्ज़ा सायब और उस अस्र[4] के कई शोअरा जमा हुए। एक शायर के तज्किरे में उसका नाम मुन्दर्ज है और मैं भूल गया हूँ। आकोल था, मगर मेदा उसका ज़ईफ़ था। हिर्स व शरह के सबब से बहुत खा जाता था, हज़्म न कर सकता था। खाना खा खाकर, शराब पी पी कर दरवाज़ा बाग़ का मुक़फ़्फ़िल करके सब सो रहे। इस मर्दे आकोले फ़िज़ूल ने रात भर में सारा बाग़ हग भरा; न एक जगह बल्के कभी उस क्यारी में और कभी उस रविश पर, कभी उस दरख़्त के तले, कभी उस दीवार की जड़ में। क़िस्सा मुख़्तसर, ग़ायते शर्मो हया से दो चार घड़ी रात रहे, दीवार से कूद कर चला गया। सुबह को जब सब जागे, उसको इधर उधर ढूँढा, कहीं न पाया। मगर हज़रत का फ़ुज़्ला कई

---

१. अरबी नहीं और न अरब के लोगों ने इसे अपनाया है। २. अनैतिक व्यभिचार करने वालों की बातचीत में। ३. ध्वन्वर्थ। ४. युग।

जगह नज़र आया। मिर्ज़ा सायब ने हँस कर फ़रमाया "यारां[1], शुमा रा चे उफ़्तादा अस्त के मी गोयद फ़लाने दरे बाग़ नेस्त ? मी बीनम के मखदूम हमदरीं बाग़ चन्द जा निशिस्ता अस्त।"

सुबह जुमा, ५ रमज़ान व ७ मार्च साले रस्ताखेज़।

रुबाई खत में लिखना भूल गया। ये मैंने भाई को तहनियत में भेजी थी—

> ऐ कर्दा[2] बमेहर ज़र फ़िशानी तालीम
> पैदा ज़े कुलाह तो शिकोहे देहीम
> बादा ब तो फ़रखुन्दा ज़े यज़दाने करीम
> परवानगी ए जदीदे ओक़्ता ए क़दीम

१९

(१९ जून १८६२ ई०)

यार भतीजे, गोया भाई, मौलाना अलाई,

खुदा की दुहाई, न मैं वैसा हूँगा जैसा 'नैयर' समझा है और तुम मुझको लिख चुके हो याने खफ़क़ानी और खयाल तराश, न वैसा हूँगा जैसा मिर्ज़ा अली हुसेनखां बहादुर समझे होंगे।

> ऐ काश[3] कसे हर आं चे हस्तम दानद

दोजाने में मेरा इन्तज़ार और मेरे आने का तक़रीबे शादी पर मदार ! ये भी शोबा है, उन्हीं जुनून का जिससे तुम्हारे चचा को गुमान है मुझ पर

---

१. यारो तुम क्या सोचते हो कि अमुक व्यक्ति नहीं है। मैं देखता हूँ के मखदूम बाग़ में कुछ स्थानों पर बैठा हुआ है। २. तुमने सूर्य को स्वर्णवर्षण का उपदेश दिया। तुम्हारी टोपी से मुकुट की छवि प्रकट होती है। तुम्हें जो पैतृक अधिकार मिला है वह मंगलकारी हो। ३. प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार के अनुसार मेरे बारे में सोचता है।

जुनून का। जागीरदार मैं न था, के एक जागीरदार मुझको बुलाता। गवया मैं न था के अपना साज़ो सामान लेकर चला जाता। दोजने जाकर शादी कमाऊँ और फिर उस फ़स्ल में के दुनिया कुर्रए नार[1] हो! लोहारू, भाई के देखने को न जाऊँ और फिर उस मौसम में के जाड़े की गर्मीए[2] बाज़ार हो!

कल उस्ताद मीर जान साहब ने तुम्हारा खत मुझको दिखाया है। मैंने उनको जाने न जाने में मुतरद्दुद पाया है। जाएँ न जाएँ, मैं अपनी तरफ़ से तरग़ीब करता रहता हूँ और कहता रहूँगा। ग़ुलाम हसनखां अगर किसी वक़्त आ जाएँगे, तो उनको तुम्हारी तहरीर का ख़ुलासा खातिर निशान करूँगा। हक़ सुभान ताला इन दोनों साहबों को या एक को इनमें से तौफ़ीक़ दे या मुझको ताक़त या तुमको इन्साफ़ के मेरे न आने को दिल्ली की दिल-बस्तगी[3] पर महमूल न करो। मुझको रश्क है, जज़ीरा नशीनों के हाल पर उमूमन और रईसे फ़र्रुखाबाद पर खुसूसन के जहाज़ से उतरकर सर जमीने अरब में छोड़ दिया। अहा, हा, हा!

> पड़िए गर बीमार तो कोई न हो बीमारदार
> और अगर मर जाइए तो नौहाख़ाँ[4] कोई न हो

कुल्लियात के इन्तबा का इख़्तेताम अपनी ज़ीस्त में मुझको नज़र नहीं आता। 'क़ाते बुरहान' का छापा तमाम हो गया। 'हक़ुल तसनीफ़' की एक जिल्द मेरे पास आ गई। वो तुम्हारे अम्मे नामदार के नज़्र हुई। बाक़ी जिल्दें जिनका मैं खरीदार हुआ हूँ और दरखास्त मेरी मतबे में दाखिल है, जब तक क़ीमत न भेज दूँ, क्योंकर आएँ? रुपए की तदबीर में हूँ। अगर बहम पहुँच जाए तो भेज दूँ। तुम्हारे पास जो 'क़ाते बुरहान' पहुँची है, अगर छापे की है तो सही है। जहाँ तरद्दुद हो, ग़लत[5] नामए मुलहक़ा में देखलो। ज़्यादा इन्क-

१. अग्निमंडल। २. शोभा। ३. दिलचस्पी। ४. मातम करने वाला।
५. संलग्न अशुद्धिपत्र।

शाफ़ मंजूर हो, मुझसे पूछ लो। अगर क़लमी है तो दजए[1] ऐतबार से साक़ित[2] है। उसको मेरी तालीफ़[3] न समझो, बल्के मुझको मोल ले लो और उसको फाड़ डालो। आज योमुल[4] ख़मीस, १९ जूनुल मुबारक, बारह पर तीन बजे तुम्हारा ख़त आया। उधर पढ़ा इधर जवाब लिखने बैठा। यहाँ तक लिख चुका था के शेख़ शहाबुद्दीन सुहरवर्दी आए। तुम्हारा ख़त उनको दिया। वो पढ़ रहे हैं, हम लिख रहे हैं। अब्र आया हुआ है। हवा सर्द चल रही है।

२०

जाने ग़ालिब,

दो ख़त मुतवातिर तुम्हारे पहुँचे। 'मग़रबी' उर्फ़ा[5] में से है। बेश्तर उसके कलाम में मज़ामीने हक़ीक़त[6] आगीन हैं। लेकिन 'दामने गिला दारद' व 'गरीबां गिला दारद'; इस ज़मीन में मैंने उसकी ग़ज़ल नहीं देखी। हाजी मुहम्मद जान 'क़ुदसी' की ग़ज़ल इस ज़मीन में है—

दर[7] बज़्मे विसाले तो ब हंगामे तमाशा
नज़्ज़ारा ज़े जुम्बीदने मिज़गां गिला दारद

ये एक शेर उसका मुझे याद है।

भाई, तुम्हारा बाप बद गुमान है। यानी मुझको ज़िन्दा समझता है। मेरा सलाम कहो और ये शेर मेरा पढ़ सुनाओ—

गुमाने ज़ीस्त बुवद बर मनत ज़ बेदर्दी
बदस्तमर्ग, वले बदतर अज़ गुमाने तो नीस्त

---

१. विश्वास। २. रहित, भग्न। ३. सम्पादन। ४. गुरुवार। ५. प्रसिद्ध। ६. वास्तविकता से पूर्ण। ७. जिस समारोह में आपके दर्शन हुये वहाँ नेत्रों ने निमिषों को भी सहन नहीं किया।

मुझे काफ़ूर व कफ़न की फ़िक्र पड़ रही है। वो सितमगर शेरो सुख़न का तालिब है। ज़िन्दा होता, तो वहीं क्यों न चला आता? मुझ पर से ये तकलीफ़ उठवालो और तुम इस ज़मीन में चन्द शेर लिख कर भेज दो। मैं इस्लाह देकर भेज दूँगा। 'असाए[1] पीर ब जाये पीर'। वल्लाह मेरा कलामे-हिन्दी या फ़ारसी कुछ मेरे पास नहीं है। आगे जो कुछ हाफ़िज़े में मौजूद था वो लिख भेजा। अब जो कुछ याद आ गया वो लिखता हूँ—

ग़ज़ल—

> बा[2] मन के आशक़म सुख़न अज़ नंगो नाम चीस्त
> दर अम्रे ख़ास हुज्जते दस्तूरे आम चीस्त
> मस्तम ज़े ख़ूने दिल के दो चश्मम अज़ां पुरस्त
> गोई मख़ोर शराबो न बीनी बजाम चीस्त
> बा दोस्त हर के बादा ब ख़िलवत ख़ुरद मुदाम
> दानद के हूरो कौसरो दारुस्सलाम चीस्त

---

१. बूढ़े की लकड़ी बूढ़े का प्रतिनिधित्व करती है। २. मुझ प्रेमी से बदनामी की बातें करना क्या अर्थ रखता है? इस विशेष कार्य में सामान्य नियमों से क्या लेना देना है? मेरे नेत्र हृदय रक्त से भरे हैं, मैं उन्हीं से मस्त हूँ। तुम मुझसे कहते हो सुरा न पीऊँ, किन्तु यह नहीं देखते के जाम में क्या रखा है? जो व्यक्ति अपने प्रिय के साथ एकान्त में सुरापान करे वह जानता है के अप्सरा क्या है, कौसर (स्वर्गीय स्रोत) और मंगल भवन क्या है? हम वेदना में डूबे हुए हैं और हमारी औषधि शराब है। इससे हलाल और हराम (ग्राह्य और त्याज्य) की बातें क्यों करते हो? जो दयालु लोग होते हैं उनसे प्याले का कुछ हिस्सा मिलता है, देखना है सुरा-पायी के प्यालों को आकाश से क्या मिलता है? 'ग़ालिब' ने यदि गुदड़ी और कुरान न बेच दी होती तो वह शराब का मूल्य क्यों पूछता?

मा ख़स्त ए गमेम व बुवद मय दवा ए मा
बाख़स्तगाँ हदीसे हलालो हराम चीस्त
अज़ कास ए किराम नसीबस्त ख़ाक रा
त अज़ फ़लक नसीब ए कासे किराम चीस्त
'ग़ालिब' अगर न ख़िरका व मुसहिफ़ बहम फ़रोख़्त
पुरसद चराके निरख़े मये लाल फ़ाम चीस्त

२१

(१८ जुलाई १८६२)

लो साहब, परसों तुम्हारा ख़त आया और कल दोपहर को उस्ताद मीर जान आये। जब उनसे कहा गया तो ये जवाब पाया के मैं मुद्दत से आमादए[1] सफ़रे लोहारू बैठा हूँ। हकीम साहब की गाड़ी की रवानगी के वक़्त मैंने अपनी गठरी भेजी थी। वो फिरी आई इस मुराद से के गाडी में जगह गठरी की, न सवारी की। नाचार चुप हो रहा। अब वो गठरी वैसी ही बँधी हुई रखी है। जब मियाँख़ाँ और वज़ीरख़ाँ रवाना होंगे और मुंशी इमदाद हुसेन मुझको इत्तिला देंगे तो मैं फ़ौरन चल दूँगा। पा बरिकाब हूँ, कल ही आख़िरे रोज़ ग़ुलाम हसनख़ाँ आये। कल उन्होंने चौथे दिन ख़ाना खाया था। हैज़ा हो गया था। क़ै मुतवातिर, दस्त पै ब पै, ग़रज़ बच गये। कहते थे के आज जुलाई की १७ तारीख़ है, तेरह दिन यह और पांच दिन अगस्त के और न जा सकता। तनख़ा लेकर बांट बूंट कर एक दिन न ठहरूंगा। लोहारू की राह लूंगा। मिर्ज़ा शम्शादअली बेग से तुम्हारा पयाम कहा गया। क्या बईद[2] है जो ग़ुलाम-हसनख़ाँ के हम सफ़र हो जाएँ। भाई की तरफ़ से मुंशी इमदाद हुसेनख़ाँ को लिखवा भेजो के मियाँख़ाँ वग़ैरा के साथ उस्ताद को ज़रूर भेजना और

---

१. लोहारू की यात्रा के लिये तैयार। २. दूर।

तुम अपनी तरफ़ से अपने इब्ने अम् गुलाम हसनख़ाँ को बहवालए मेरी तहरीर के अयादत[1] और अवायल अगस्त में रवानगी की ताक़ीद लिख भेजो।

दर बज़्मे विसाले तो ब हंगामे तमाशा
नज़्ज़ारा ज़ जुम्बीदने मिज़गा गिला दारद

ये ज़मीन 'क़ुदसी' अले उर्रहमाँ के हिस्से में आ गई है। मैं इसमें क्योंकर तुख्मरेज़ी[2] करूँ? और अगर बेहयाई से कुछ हात-पांव हिलाऊं तो इस शेर का जवाब कहाँ से लाऊँ?

हर्गिज़[3] न तवां गुफ़्त दरीं काफ़िये अशार
बेजास्त बिरादर अगर अज़्मन गिला दारद

इल्तवाए[4] शुर्बे शराब–२२ जून। शुरू शराब १० जुलाई।
अलमिन्नतु[5] लिल्लाह के दरे मयकदा बाज़स्त।

२२

(२७ जुलाई १८६२)

सुबह यकशंबा २७ जुलाई सन् १८६२ ई०।

मेरी जान,

सुन, पंजशंबा पंजशंबा, जुमा नौ, हफ़्ता दस, इतवार ग्यारह; एक मिज़ह[6] बरहम ज़दन मेंह नहीं था। इस वक़्त शिद्दत में बरस रहा है। अंगीठी में

---

१. मिज़ाज पुर्सी। २. बीज वपन। ३. इस काफ़िये में शेर नहीं कहे जा सकते। यदि भाई इसके लिए शिकायत करता है तो व्यर्थ है। ४. सुरापान का स्थगन। ५. ईश्वर की कृपा है, मधु शाला का द्वार खुला हुआ। ६. पल भर के लिए।

कोयले दहका कर पास रख लिये हैं। दो सतरें लिखो और काग़ज़ को आग में सेंक लिया। क्या करूँ ? तुम्हारे ख़त का जवाब ज़रूर, लो सुनने जाओ। मिर्ज़ा शमशाद अली बेग को तुम्हारा ख़त पढ़वा दिया। उन्होंने कहा के ग़ुलाम हुसेनख़ाँ की मैयत पर क्या मौक़ूफ़ है, मुझे आज सवारी मिल जाए, कल चल निकलूँ। अब मैं कहता हूँ के ऊँट-टट्टू का मोसम नहीं। गाड़ी की तदबीर हो जाए, बस।

पचास बरस की बात है के इलाही बख़्शख़ाँ मरहूम ने एक ज़मीन नई निकाली मैंने हस्बुल हुक्म ग़ज़ल लिखी। बैतुल ग़ज़ल ये—

पिला दे ओक से साक़ी जो हमसे नफ़रत है
प्याला गर नहीं देता, न दे; शराब तो दे

मक़ता ये—

असद ख़ुशी से मेरे हात-पाँव फूल गये
कहा जो उसने ज़रा पांव दाब तो दे

अब मैं देखता हूँ के मतला और चार शेर किसी ने लिख कर इस मक़ते और इस बैतुल ग़ज़ल—को शामिल उन अशार के करके ग़ज़ल बना ली है और उसको लोग गाते फिरते हैं। मक़ता और एक शेर मेरा और पांच शेर किसी उल्लू के। जब शायर की ज़िन्दगी में गाने वाले शायर के कलाम को मस्ख़[1] कर दें, तो क्या बईद है के दो शायर मुतवफ़्फ़ा[2] के कलाम में मुतरिबों ने ख़ल्त कर दिया हो। मक़ता बेशक मौलाना मग़रबी का है; और वो शेर जो मैंने तुमको लिखा है और ये शेर जो अब लिखता हूँ—

---

१. विकृत। २. मृत।

दामाने[1] निगह तंग व गुले हुस्न तो बिसियार
गुल चीने बहारे तो ज़े दामाँ गिला दारद

ये दोनों शेर क़ुदसी के हैं। 'मग़रबी' क़ुदमा[2] में और उर्फ़ा[3] में है, जैसा 'अराक़ी'। इनका कलाम दक़ायक़ व हक़ायक़े तसव्वुफ़ से लबरेज़। 'क़ुदसी' शाहजहानी शोअरा में, सायब व कलीम का हम अस्र और हम चश्म, इनका कलाम शोर अंगेज़, इन बुज़ुर्गों की नज़्रो रविश में ज़मीनो आस्मान का फ़र्क़।

भाई को सलाम कहना और कहना के साहब व ज़माना नहीं के इधर मथरादास से क़र्ज़ लिया और उधर दरबारीमल को मारा। उधर ख़ूबचन्द चैनसुख की कोठी जा लूटी। हर एक पास तमस्सुक मुहरी मौजूद, शहद लगाओ चाटो। न मूल न सूद। इससे बढ़कर ये बात के रोटी का ख़र्च बिल्कुल फूपी के सर। बा ईहमा कभी ख़ान ने कुछ दे दिया, कभी अलवर से कुछ दिलवा दिया, कभी माँ ने कुछ आगरे से भेज दिया। अब मैं और बासठ रुपए आठ आने कलक्टरी के, सौ रुपये रामपूर के। क़र्ज़ देने वाला एक मेरा मुख़्तारे कार, वो सूद माह ब माह लिया चाहे, मूल में क़िस्त उसको देनी पड़े, इन्कम टैक्स जुदा, चौकीदार जुदा, सूद जुदा, मूल जुदा, बीबी जुदा, बच्चे जुदा, शागिद-पेशा जुदा; आमद वही एक सौ बासठ, तंग आ गया! गुज़ारा मुश्किल हो गया। रोज़मर्रा का काम बन्द रहने लगा। सोचा के क्या करूँ, कहाँ से गुंजायश निकालूँ? क़हर[4] दरवेश, बर जाने दरवेश। सुबह की तबरीद मतरूक, चाश्त का गोश्त आधा, रात की शराबो गुलाब मौक़ूफ़। बीस-बाईस रुपया महीना बचा, रोज़मर्रा का ख़र्च चला। यारों ने पूछा—तबरीदो शराब

---

१. दृष्टि का आँचल छोटा है, तुम्हारे सौन्दर्य के पुष्प अधिक हैं। तुम्हारे वसन्तपूर्ण उद्यान से फूल चुनते समय मैं अपने संकीर्ण आँचल की शिकायत कर रहा हूँ। २. प्राचीन। ३. प्रसिद्ध। ४. फ़क़ीर का क्रोध फ़क़ीर की झोली पर।

कब तक न पीओगे ? कहा गया जब तक वो न पिलाएँगे। पूछा—न पीओगे, तो किस तरह जीओगे ! जवाब दिया के जिस तरह वो जिलाएँगे। बारे, महीना पूरा नहीं गुज़रा था के रामपूर से अलावा वजह मुक़र्ररी और रुपया आ गया। क़र्ज़े मुक़स्सित अदा हो गया। मुतफ़र्रिक़ रहा, ख़ैर रहे। सुबह की तबरीद, रात की शराब जारी हो गई। गोश्त पूरा आने लगा। चूँके भाई ने वजह मौक़ूफ़ी और बहाली पूछी थी, उनको ये इबारत पढ़ा देना और हमज़ा-खां को बाद सलाम कहना—

ऐ[1] बेख़बर ज़ लज़्ज़ते शर्बे मुदामे मा

देखा, हमको यों पिलाते हैं। दरीबे के बनियों के लौंडों को पढ़ाकर मौलवी मशहूर होना और मसायल अबू[2] हनीफ़ा को देखना और मसायल हैज़ो[3] निफ़ास में ग़ोता मारना और है. और उर्फ़ा के कलाम से हक़ीक़ते हक़्क़ह वहदते वुजूद[4] को अपने दिलनशीं करना और है। मुशरिक[5] वो हैं जो वुजूद को वाजिब व मुमकिन में मुश्तरिक जानते हैं, मुशरिक वो हैं जो मुसलिमा[6] को नुबूअत मे ख़ातिम उल मुरस्सलीन का शरीक गर्दानते हैं; मुशरिक वो हैं, जो नौ मुस्लिमों को अबुलइअम्मा[7] का हम असर मानते हैं। दोज़ख़ उन लोगों के वास्ते है। मैं मवहिदे[8] ख़ालिस और मोमिने[9] कामिल हूँ। ज़बान से 'ला इलाहा इल्लिल्लाह' कहता हूँ और दिल में ला मौजूद इल्लिल्लाह समझे हुआ हूँ। अम्बिया सब वाजिबुल ताज़ीम और अपने-अपने वक़्त में सब मुफ़्तरिज़्ज़ुल[10] इताअत थे; मुहम्मद अलेसलाम पर नुबअत ख़त्म

१. मैं जो सदा शराब पीता हूँ, अरे मूर्ख तुम उसका आनन्द क्या समझोगे। २. एक इमाम, मुस्लिम धर्मशास्त्र के एक आचार्य। ३. रज (स्त्री)। ४. अस्तित्व। ५. बहुदेववादी। ६. मुसलिमा ने अपने को नबी कहा था, कुछ लोगों ने उस पर भरोसा किया था। ७. अबू हनीफ़ा के समकक्ष। ८. एकेश्वरवादी। ९. पक्का मुसलमान। १०. पूज्य।

हुई, ये खातिमुल मुरसलीन और रहमतुल आलमीन हैं, मक़तए नुबूअत का मतला इमामत, और इमामत न इज्माई बल्के मिन अल्लाह है। और इमाम मिन अल्लाह अली अलेसलाम है; सुम्माहसन, सुम्माहुसेन इसी तरह ता मेहदी[1] मऊद अलेसलाम।

[2]बरीं जीस्तम, हम बरीं बगुज़रम

हाँ, इतनी बात और है के इबाहत और ज़िन्दिका को मरदूद और शराब को हराम और अपने को आसी[3] समझता हूँ। अगर मुझको दोज़ख में डालेंगे तो मेरा जलाना मक़सूद न होगा, बल्के मैं दोज़ख का ईंधन हूँगा और दोज़ख की आँच को तेज करूँगा, ताके मुशरिकीन व मुनकिरीन[4] नुबूअत मुस्तफ़वी व इमामत मुर्त्तजवी उसमें जलें। सुनो मौलवी साहब, अगर हटधर्मी न करोगे और कतमाने हक़ को गुनाह जानोगे, तो अलबत्ता तुमको याद होगा और कहोगे के याद है, जिन रोज़ों में तुम अलाउद्दीनख़ाँ को गुलिस्ताँ और बोस्ताँ पढ़ाते हो और तुमने एक दिन ग़रीब को दो-तीन तपाँचे मारे हैं। नवाब अमीनुद्दीनख़ाँ उन दिनों में लोहारू है। अलाउद्दीनख़ाँ की वालिदा ने तुमको डेवढ़ी पर से उठा दिया। तुम बाचश्म पुरआब मेरे पास आए। मैंने तुमसे कहा के भाई शरीफ़-ज़ादों को और सरदारज़ादों को चश्मे[5] नुमाई से पढ़ाते हैं। मारते नहीं। तुमने बेजा किया। आयन्दा ये हरकत न करना। तुम नादिम हुए। अब वो मकतबनशी तिफ़्ल से गुज़र कर पीरे[6] हफ़्ताद साला के वायज़[7] बने। तुमने कई फ़ाक़ों में एक शेर हाफ़िज़ का हिफ़्ज़ किया है—

---

१. मेहदी तक चलेगा। २. इसी विश्वास के साथ जीवित रहूँ और मरूं। ३. गुनहगार। ४. हज़रत मुहम्मद की पैगंबरी और हज़रतअली की इमामत को स्वीकार न करने वाला। ५. घूर कर देखना। ६. सत्तर बरस का बूढ़ा। ७. उपदेशक।

"चूँ पीर[1] शुदी 'हाफ़िज़' इला आख़िर ही" और फिर पढ़ते हो उसके सामने के उसकी नज़्म का दफ़्तर, हाफ़िज़ के दीवन से दो चन्द सै चन्द है, मजमूअए नस्र ज़ुदागाना, और ये भी लिहाज़ नहीं करते के एक शेर हाफ़िज़ का ये है और हज़ार इसके मुख़ालिफ़ हैं—

सूफ़ी[2] बिया के आइना साफ़स्त जाम रा
ता बिंगरी सफ़ाए मये लाल फ़ाम रा
शराबे नाब खुरो रूए महज़बीनाँ बीं
ख़िलाफ़े मज़हबे आनाँ जमाल ईनां बीं
तरसम के सरफ़ ए न बरद रोज़े बाज़ ख़ास्त
नाने हलाले शैख़ ज़े आबे हरामे मा
साक़ी मगर वज़ीफ़ए 'हाफ़िज़' ज़ बादा दाद
का शुफ़्ता गश्त तुर्र ए दस्तारे मौलवी

---

१. पूरा शेर इस प्रकार है—

चूँ पीर शुदी हाफ़िज़ अज़ मयकदा बेरूँ शो
रिन्दी व ख़राबाती अज़ अहवा शबाब औला

"हाफ़िज" वृद्ध होने पर मधुशाला में छोड़ देना चाहिए। युवावस्था में ही सुरायान ठीक है।

२. सूफ़ी आ, जाम का शीशा स्वच्छ है, तू लाल सुरा की स्वच्छता देख सकता है। निरी सुरा पी और सुन्दरियों का मुख देख। उन लोगों के धर्म के विरुद्ध इनका सौन्दर्य देख। मुझे भय है प्रलय के दिन हमारी सुरा से शेख़ की परहेज़गारी बढ़ न जाए। साक़ी ने 'हाफ़िज' के लिए सुरापान ही भक्ति के रूप मे प्रदान किया, इसका परिणाम यह हुआ कि मौलवी साहब की पगड़ी की इज़्ज़त जाती रही।

मियां, मैं बड़ी मुसीबत में हूँ। महल सरा की दीवारें गिर गई हैं। पाख़ाना ढह गया, छतें टपक रही हैं, तुम्हारी फूपी कहती हैं, हाय दबी! हाय मरी! दीवानख़ाने का हाल महलसरा से बदतर है। मैं मरने से नहीं डरता, फ़ुक़दाने[१] राहत से घबरा गया हूँ। छत छलनी है। अब्र दो घंटे बरसे तो छत चार घंटे बरसती है। मालिक अगर चाहे के मरम्मत करे तो क्योंकर करे। मेंह खुले तो सब कुछ हो। और फिर अस्नाए[२] मरम्मत में मैं बैठा किस तरह रहूँ। अगर तुमसे हो सके तो बरसात तक भाई से मुझको वो हवेली जिसमें मीर हसन रहते थे, अपनी फूपी के रहने को और कोठी में से वो बालाख़ाना मय दालाने ज़ेरीं जो इलाही बख़्शख़ां मरहूम का मस्कन था, मेरे रहने को दिलवा दो। बरसात गुज़र जाएगी, मरम्मत हो जाएगी, फिर 'साहब' और 'मेम' और 'बाबा लोग' अपने क़दीम मस्कन में आ रहेंगे। तुम्हारे वालिद के ईसारो[३] अता के जहां मुझपर अिहसान हैं, ये एक मुरव्वत का अिहसान मेरे पायाने[४] उम्र में और भी सही।

—ग़ालिब

२३

(६ अगस्त १८६२)

मौलाना अलाई,

न मुझे ख़ौफ़े मर्ग, न दावए सब्र है। मेरा मज़हब, बख़िलाफ़े[५] अक़ीदए क़दरिया जब्र है। तुमने मियाँजीगिरी की, भाई ने बिरादर परवरी की। तुम

---

१. आराम न रहना। २. मरम्मत के समय। ३. त्याग और बलिदान। ४. अन्तिम आयु। ५. दो प्रकार के विचार-क़दरिया मानव को कर्त्ता मानते हैं, ज़ब्रिया मानव को कर्त्ता न मान कर परमेश्वर को कर्त्ता मानते हैं।

जीते रहो, वो सलामत रहें। हम इसी हवेली में ताक़यामत रहें। इस इब्हाम की तौज़ी और इस इज्माल[1] की तफ़सील ये है के मेंह की शिद्दत से छोटा लड़का डरने लगा। उसकी दादी भी घबराई। मुझको ख़िलवतख़ाने का दरवाज़ा ग़र्बरूया[2] और उसके आगे एक छोटा सेदरह[3] याद था। जब तुम्हारे पाँव में चोट लगी है तो मैं उसी दरवाज़े से तुमको देखने आया था। ये समझ कर ख़िलवतख़ाने को महलसरा बनाया चाहता था के गाड़ी-डोली-लौडी-असील-काछन-तेलन-तंबोलन-कहारी-पिसनहारी, इन फ़िर्क़ों का ममर[4] वो दरवाज़ा रहेगा; मेरी और मेरे बच्चों की आमदोरफ़्त दीवानख़ाने में से रहेगी। अयाज़न बिल्लाह् ! वो लोग दीवानख़ाने में से आएँ जाएँ; अपने-बेगाने को हरवक़्त पिछल पाइयाँ नज़र आएँ। बी वफ़ादार जिनको तुम कुछ और भाई ख़ूब जानते है, अब तुम्हारी फूपी ने उन्हें 'वफ़ादार बेग' बना दिया है। बाहर निकलती हैं, सौदा तो क्या लाएँगी, मगर ख़लीक़[5] और मिलनसार हैं, रस्ता चलतों से बातें करती फिरती हैं। जब वो महल से निकलेंगी, मुमकिन नहीं के अतराफ़े नहर की सैर न करेंगी। मुमकिन नहीं के दरवाज़े के सिपाहियों से बातें न करेंगी, मुमकिन नहीं के फूल न तोड़ें और बीबी को ले जाकर न दिखायें और न कहें के 'ये फूल ताई–चचा के बेटे की काई की एं।' शरह-तुम्हारे चचा के बेटे की क्यारी के हैं। है–है ! ऐसे आलीशान दीवानख़ाने की ये क़िस्मत और मुझसे नाज़ुक मिज़ाज दीवाने की ये शामत ! माहज़ा उस सेदरी को अपने आदमियों के और लड़कों के मकतब के लिए हर्गिज़ काफ़ी न ज़ाना। मोर और कबूतर और दुम्बा और बकरी, बाहर घोड़ों के पास रह सकते थे ! अरफ़्तो[6] रब्बी ब फ़स्केहिल अज़ायम।

पढ़ा और चुप हो रहा। मगर तुम्हारी ख़ातिरे आतिर जमा रहे के असबाबे वहशत व ख़ौफ़ो ख़तर अब न रहे। मेंह खुल गया है। मकान के मालिकों की

---

१. संक्षेप। २. पश्चिम की ओर का। ३. तीन दरवाजे वाला। ४. मार्ग। ५. शिष्ट। ६. जब मैं असफल रहा तो मने भगवान को पहचाना।

तरफ़ से मदद शुरू हो गई है। न लड़का डरता है न बीबी घबराती है, न मैं बेआराम हूँ। खुला हुआ कोठा, चाँदनी रात, हवा सर्द, तमाम रात फ़लक पर मिर्रीख़[1] पेशे-नज़र। दो घड़ी के तड़के ज़ोहरा[2] जल्वागर। इधर चाँद मग़रिब में डूबा उधर मशरिक़ से ज़ोहरा निकली। सुबुही[3] का वो लुत्फ़, रोशनी का वो आलम!

२४

(९ सितम्बर १८६२)

सुबह से शम्बा, नहुम सितम्बर सन् १८६२ ई०।

जाने ग़ालिब, मगर जिस्म से निकली हुई जान,

क़यामत को दोबारा मिलने की तवक़्क़ो है. खुदा का अेहसान। मिर्ज़ा क़ुर्बानअलीबेग तुम्हारी कशिश के मजज़ूब[4] क्यों बनते? वो तो खुद 'सालिक'[5] हैं। मगर हाँ, ये साहबज़ादए सआदतमन्द 'रिज़वान' सो इसके आप मालिक हैं। नवाब साहब का हम मतबख़[6] और आपका हममायदा[7] होना बेहतर हुआ। काश; तुम ये लिखते के मुशाहिरा क्या मुक़र्रर हुआ। इस्ना[8] अशरी एक तुम हो, सो तुम्हें क्या अिख़्तियार है? अलबत्ता अश्र ए मुबश्शिरा की अव्वलियत पर मदार है। बाप तुम्हारा ख़िलाफ़े क़ायदए अहले सुन्नत जमात, अश्रा[9] में से सलासा[10] को कम करता था; 'रिज़वान' ने न माना। क्योंकर मानता? वो तो सलसा का दम भरता था। तहव्वरख़ाँ साहब के बाब में बन्दे[11] जोया इस ख़बर का है के अब लोहारू से उनका इरादा किधर का है?

---

१. मंगल। २. शुक्र। ३. प्रातः का। ४. तल्लीन। ५. मार्गदर्शक। ६, ७. पकाने-खाने में साथ। ८. शिया। ९. दस। १०. तीन। ११. जिज्ञासु।

'रिज्वान' को दुआ पहुँचे। नवाब साहब की इनायत और मौलाना अलाई की सोहबत मुबारक हो। पीर जी से जब पूछता हूँ के 'तुम खूब शख्स हो' और वो कहते हैं—'क्या कहना है !' और मैं पूछता हूँ—'किसका !' तो वो फ़रमाते हैं—'मिर्ज़ा शम्शादअली बेग का।'—ऐं और किसी का नाम तुम क्यों नहीं लेते ! देखो यूसुफ़अलीखां बैठे हैं। हीरासिंघ मौजूद हैं। "वाह साहब, क्या मैं खुशामदी हूँ जो मुँह देखी कहूँ ! मेरा शेवा हिफ़्ज़ुल[1] ग़ैब है; ग़ायब की तारीफ़ करनी क्या ऐब है ?" 'हाँ साहब, आप ऐसे ही वज़ादार हैं; इसमें क्या रैब[2] है !'

२५

मियां,

तुम मेरे साथ वो मामले करते हो, जो अहया[3] से मौसूम व मामूल हैं। खैर तुम्हारा हुक्म बजा लाया। ग़ज़ल बाद इस्लाह के पहुँचती है। जनाब लफ़्टंट गवर्नर बहादुर ने दरबार किया। मेरी ताज़ीम व तौक़ीर और मेरे हाल पर लुत्फ़ व इनायत, मेरी अर्ज़िश व इस्तहक़ाक़ से ज़्यादा, बल्के मेरी ख़ाहिश और तसव्वुर से सिवा, मबज़ूल[4] की। इस हुजूमे अमराज़े[5] जिस्मानी और आलामे[6] रूहानी को इन बातों से क्या होता है ? हरदम दमे[7] नज़ा है, दिल वो ग़म से खूंपिज़ीर हो गया है के किसी बात से खुश नहीं हो सकता। मर्ग को नजात समझे हुए हूँ, और नजात का तालिब हूँ। कई दिन से कोई तहरीर दिल पिज़ीर तुम्हारी नज़र नहीं आई। न मुझे तुमने याद किया, न अपने भाई को कुछ लिखा। अब इस ख़त का जवाब जल्द लिखो। पहले अपने बच्चों

---

१. अनुपस्थित। २. सन्देह। ३. जीवित। ४. ध्यान देना। ५. शारीरिक कष्ट। ६. आत्मिक दुःख। ७. प्राण विसर्जन।

का हाल, फिर वहाँ के औज़ा[1]। जैसा तुम्हारा क़ायदा है, मुनक़्क़ा[2] और मुफ़स्सिल[3] लिखो। फ़क़्त।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

२६

(१८६३ ई०)

इक़बाले निशाना,

बख़ैरो आफ़ियत व फ़तहो[4] नुसरत लोहारू पहुँचना मुबारक हो। मक़सूद इन सुतूर की तहरीर से ये है के मतबा 'अकमल उल मताबे' में चन्द अहबाब मेरे मसविदात उर्दू के जमा करने पर और उसके छपवाने पर आमादा हुए हैं। मुझसे मसविदात माँगे हैं और अतराफ़ व जवानिब से भी फ़राहम किए हैं। मैं मसविदा नहीं रखता। जो लिखा, वो जहाँ भेजना हो वहाँ भेज दिया। यक़ीन है के ख़त मेरे तुम्हारे पास बहुत होंगे। अगर उनका एक पार्सल बनाकर बसबीले डाक भेज दोगे या आजकल में कोई इधर आने वाला हो, उसको दे दोगे तो मूजिब मेरी ख़ुशी का होगा; और मैं ऐसा जानता हूँ के उसके छापे जाने से तुम भी ख़ुश होगे। बच्चों को दुआ।

—ग़ालिब

२७

(१८६३ ई०)

वली अहदी में शाही हो मुबारक
इनायाते इलाही हो मुबारक

---

१. रहन-सहन। २. स्पष्ट। ३. विस्तृत। ४. विजय और सफलता।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन अहमदख़ाँ 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

इस अम्र फर्रुख़ो[1] हुमायूँ[2] की शोहरत में कोशिश, बेहौसलगी है और इसके इख़फ़ा[3] में मुबालिग़ा[4], ख़फ़क़ानियत। तुम अपनी ज़बान पर न लाओ। अगर कोई और कहे, माना न आओ, न इश्तेहार न इस्ततार[5]।

दौरा हुआ, मगर मुद्दते[6] मोअय्यना के बाद और फिर झाग का न आना और तुम्हारे पुकारने से मुतनब्बह्[7] हो जाना मादे की कमी की अलामतें हैं। शिद्दत में जिस क़द्र ख़िफ़्फ़त हो, ग़नीमत है।

मेरे ख़ुतूत उर्दू के इरसाल के बाब में जो कुछ तुमने लिखा, तुम्हारे हुस्ने तबा पर तुमसे बईद था। मैं सख़्त बेमज़ा हुआ, अगर बेमज़गी के वजूह लिखूँ, तो शायद एक तख़्ता काग़ज़ सियाह करना पड़े। अब एक बात मौजिज़ व मुख़्तसर लिखता हूँ। सुनो भाई, अगर उन ख़ुतूत का तुमको इख़फ़ा मंज़ूर हो और शोहरत तुम्हारे मनाफ़ीए तबे हो, तो हर्गिज़ न भेजो। क़िस्सा तमाम हुआ। और अगर उनके तल्फ़ होने का अन्देशा है, तो मेरे दस्तख़ती ख़ुतूत अपने पास रहने दो और किसी मुत्सद्दी[8] से नक़ल उतरवा कर, चाहो किसी के हात, चाहो बसबीले पार्सल इरसाल करो, लेकिन जल्द। ख़ुदा के वास्ते, कहीं गुस्से में आकर 'अताए[9] तोबा लक़ाए तो' कहकर असल ख़ुतूत न भेज देना; के ये अम्र मेरे मुख़ालिफ़े मक़सूद है।

भला साहब, डरता हूँ मैं तुमसे, उधर ख़त पढ़ा, इधर जवाब लिखकर डाक में भेजा। तुम्हारा ख़त रहने दिया है। जब आका[10] शम्शादअली बेग आएँगे, पढ़ लेंगे।

१, २. शुभ। ३. छिपाना। ४. अत्युक्ति। ५. कमी। ६. निश्चित अवधि। ७. सावधान। ८. लिपिक। ९. 'तुम्हारी चीज़ तुम लो'। १०. बड़ा भाई।

२८

(३० मई १८६३ ई०)

सुबह् शम्बा, ३० मई सन् १८६३ ई०।

ला मौजूद इल्लिल्लाह्। उस ख़ुदा की क़सम जिसको मैंने ऐसा माना है और उसके सिवा किसी को मौजूद नहीं जाना है के ख़ुतूत के इरसाल को मुकर्रर न लिखना अज़राहे मलाल न था। तालिब के ज़ौक़ को सुस्त पाकर मैं मुतवक़्क़फ़[1] हो गया। मुतवस्सित एक जलीलुल क़द्र[2] आदमी, और तालिब कुतुब का सौदागर है; अपना नफ़ा-नुक्सान सोचेगा, लागत बचत को जाँचेगा। मै मुतवस्सित को मुहतमिम समझा था और ये ख़याल किया था के ये छपवाएगा। ३० रुक्क़े एक जगह् से लेकर उनको भेजे। उसकी रसीद में तक़रीबन उन्होंने तलबे रुक्क़ात बतकलीफ़े सौदागर लिखी और उस सौदागर को मफ़क्क़ूदुल[3] ख़बर लिखा। ज़ाहिरा किताबें लेकर कहीं गया होगा; किताबें लेने गया होगा। ये २३ लिफ़ाफ़े और ३४ ख़त बदस्तूर मेरे बक्स में मौजूद व महफ़ूज़ रहेंगे। अगर मुतवस्सित बतक़ाज़ा तलब करेगा, इन ख़ुतूत की नक़लें उसको और अस्ल तुमको भेज दूँगा; वर्ना तुम्हारे भेजे हुए काग़ज़ तुमको पहुँच जाएँगे।

मियाँ, इन ख़ुतूत के इरसाल में तुमने मुझसे वो किया जो मैंने तुमसे दोजाने में किया था। भला, मैं तो पीरे[4] ख़रफ़ हूँ, और सिने ख़राफ़त को निसियान[5] लाज़िम है। तुमने क्या समझ कर कपड़ा लपेट कर और मुख़तम[6] करके भेजा? ख़तों पर एक क़लीलुल[7] अर्ज़ काग़ज लपेट कर इरसाल किया होता। अगर मुंशी बिहारीलाल मेरा और शहाबुद्दीन का दोस्त न होता तो पचास रुपए का मुझको धप्पा लगता।

---

१. विलम्ब करने लगा। २. प्रतिष्ठित। ३. ग़ायब। ४. बेकार, बुडढा। ५. भूल चूक। ६. मुद्रांकित। ७. कम चौड़ा।

रसीदा[1] बूद बलाए वले बख़ैर गुज़िश्त।

—ग़ालिब

२९

(११ जून १८६३ ई०)

बदस्तमर्ग, वले बदतर अज़ गुमान तो नीस्त

मुकर्रर लिख चुका हूँ के क़सीदे का मसविदा मैंने नहीं रखा। मुकर्रर लिख चुका हूँ के मुझे याद नहीं के कौन-सी रुबाइयाँ माँगते हो। फिर लिखते हो के रुबाइयाँ भेज, क़सीदा भेज। माने इसके ये के तू झूटा है, अब के तो मुक़र्रर भेजेगा। भाई, क़ुरान की क़सम, इंजील की क़सम, तौरेत[२] की क़सम, व ज़बूर[४] की क़सम, हुनूद के चार बेद की क़सम, दसातीर की क़सम, ज़िन्द[५] की क़सम, पाज़न्द की क़सम, उस्ताद की क़सम, गुरू के ग्रन्थ की क़सम, न मेरे पास वो क़सीदा, न मुझे वो रुबाइयाँ याद। कुल्लियात के बाब में जो अर्ज़ कर चुका हूँ—

बर हमा नेम के हस्तेम व हमाँ ख़ाहेद बूँद। जब मैं दस-पंद्रह जिल्दें मँगा लूँगा, एक भाई को और एक तुमको अरमुग़ां[६] भेजूँगा और अगर भाई को जल्दी है तो लखनऊ में 'अवध अख़बार' का मतबा, मालिक उसका मुंशी नवल किशोर मशहूर। जितनी जिल्दें चाहें लखनऊ से मँगा लें। मैं बहरहाल दो जिल्दें जिस वक़्त मौक़ा होगा भेज दूँगा।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

---

१. विपत्तियाँ आ गई थीं किन्तु वे टल गईं। २. हज़रत मूसा द्वारा अवतरित ग्रंथ। ४. हज़रत दाऊद द्वारा अवतरित ग्रंथ। ५. पारसियों का धर्म ग्रंथ। ६. भेंट स्वरूप।

३०

(२१ जून १८६३ ई०)

यकशंबा, ३ मुहर्रम सन् १२८० हि०, मुताबिक़ २१ जून १८६३ ई०।

मेरी जान, मिर्ज़ा अली हुसेनख़ाँ आये और मुझसे मिले। मैंने ख़ुतूत मुरसिला तुम्हारे एकमुश्त उनको दिये। अब तुम्हारे पास भेजने का उनको अख़्तियार है, रसीद का अलबत्ता मुझे इन्तज़ार है। अली हुसेनख़ाँ से आने की हक़ीक़त और यहाँ इक़ामत की मुद्दत पूछी गई। जवाब पाया के एक महीना दस दिन की रुख़सत लेकर आया हूँ। बीबी बीमार है। उसका इस्तेलाज मंज़ूर है। मेरी जान अली हुसेनख़ाँ के काम आये तो दरेग़ न करूँ। भला, ये मुबालिग़ा सही, बल्के बेशक तबलीग़[1] व ग़ुलो[2] है। लेकिन क़रीब क़रीब इसके याने जो हैज़े[3] इमक़ान से बाहर न हो, उसमें क़ुसूर क्यों कर किया जाएगा बल्के शायद तुम्हारी सिपारिश की भी हाजत न हो। मगर सोंचो के आईने[4] ग़मख़ारी व अन्दोहगुसारी क्या होगी। मिर्ज़ा बद-वज़ा व बदरविश नहीं के पन्दोबन्द[5] का मुहताज हो। कोई उसका मुक़दमा किसी महकमे में दायर नहीं के मसलिहत व मशवरत की अहतियात हो। रहे उमूरे ख़ानगी, यानी बीबी और उसके आबा और इख़्वान[6] के मामले, उसमें न तुमको दख़ल न मुझको मदाख़लत। तुम अली हुसेनख़ाँ को इस पैवन्द पर क्या छेड़ते हो और ये नहीं समझते के उसका दादा कितना बड़ा आदमी था और अब उसके दादा की और उसकी ससराल एक है। ये ज़रियए फ़ख़्र है उसको और उसके तुफ़ैल से तुमको। बल्के थोड़ी सी नाज़िश अगर मुझ नंगे[7] अक़ुर्बा के हिस्से में भी आ जाए तो कुछ बईद नहीं।

---

१. प्रचार। २. अत्युक्ति। ३. संभावना। ४. दु:खित होने और सहानुभूति करने का नियम। ५. उपदेश। ६. भाई-बिरादर। ७. कुलकलंक।

हर चन्द तुम्हारा हरेक कलमा एक वज़ला[१] है, लेकिन इस ख़ुसर[२] व ख़ुसरानी[३] ने मार डाला। क्या कहूँ जो मुझको मज़ा मिला है? कहाँ ख़ुसर व ख़ुसरान, लुग़ाते अरबी उल अस्ल और कहाँ रोज़मर्रए मशहूर के ख़ुसर ससरे को कहते हैं। सनते[४] इश्तेक़ाक़ व तबाक़ को किस सीनाज़ोरी से बरता है। अच्छा मेरा मियाँ, ये 'ख़ुसर' बमाने 'पिदरज़न' क्या लफ़्ज़ है? हुरूफ़ बैनुल फ़ारसी व उल अरबी मुश्तरिक हैं। लेकिन इन मानों में न फ़ारसी है न अरबी है। फ़ारसी में पिदरेज़न बफ़क्के[५] इज़ाफ़त कहते हैं। अरबी जिस तरह बमाने नुक़्सान, लुग़ते मुन्सरिफ़ है, शायद ससरे का इस्मे जामिद भी हो, या फ़िल हक़ीक़त 'ससरे' की तफ़रीस व तारीब हो। ये पुरसिश न बसबीले इस्तेहज़ा[६] है, बल्के बतरीक़े इस्तफ़सार व इस्तेलाम[७] है। जो तुम्हें मालूम हो, बल्के अगर तुम पर मज्हूल हो, तो मालूम करके मुझे लिख भेजो।

यूसुफ़अलीख़ाँ अज़ीज़ मानिन्द उस दहक़ाँ[८] के, जो दाना डाल के मेंह का मन्तज़िर हो, और अब्र आए और न बरसे मुज़्तिर[९] व हैरान है। अली हुसेनख़ाँ आते हैं, अली हुसेनख़ाँ आते हैं। आये। वो आये, तो क्या लाये?

—ग़ालिब

३१

(२ जुलाई १८६३)

साहब,

मैं अज़कार[१०] रफ़्ता व दरमाँदा हूँ। आज तुम्हारे ख़त का जवाब लिखता हूँ। लफ़्ज़ ख़ुसर के बाब में इतनी तौज़ी क्या ज़रूर थी। मेरा इल्म लुग़ाते

---

१. व्यंग। २. ससुर। ३. सास। ४. प्रत्यय आदि लगाकर शब्द बनाना। ५. इज़ाफ़त को छोड़कर। ६. व्यंग स्वरूप। ७. जानकारी। ८. किसान। ९. उद्विग्न। १०. बेकार।

अरबिया का मुहीत नहीं है और ये बतरीक़े हक़[1] उल यकीन जानता हूँ के ख़ुसर लुग़ते फ़ारसी नहीं, मसरे की तफ़रीज़ से ख़ुसर पैदा हो तो क्या अजब है। तुमसे इसकी तहक़ीक चाही थी के ये लुग़ते अरबी उल अस्ल न हो, वो मालूम हुआ के अरबी नहीं, लुग़ते हिन्दी है मुफ़र्रिस है; और यही था मेरा अक़ीदा।

अली हुसेनख़ाँ आये, दो तीन बार मुझसे मिल गये। अब न वो आ सकते हैं, न मैं जा सकता हूँ। नसीबे दुश्मनाँ, वो लँगड़े—मैं लूला। उनके पांव का हाल मुफ़स्सिल तुमको मालूम होगा, जोंकें लगीं, क्या हुआ, कहां तक नौबत पहुँची। मेरी हक़ीक़त सुनो। महीना भर से ज़्यादा का अर्सा हुआ। बाँयें पाँव में वर्म, कफ़ेपा[2] से पुश्तेपा[3] को घेरता हुआ पिंडली तक आमास[4]। खड़ा होता हूँ तो पिंडली की रगें फटने लगती हैं, ख़ैर, न उठा, रोटी खाने महलसरा न गया, खाना यहीं मंगा लिया। पेशाब को क्यों कर न उठूँ? हाजती रख ली। बग़ैर उकड़ू बैठे बात नहीं बनती। पाख़ाने को अगरचे दूसरे तीसरे दिन जाऊँ, मगर जाऊँ तो सही। ये सब मौक़े ख़याल में लाकर सोंच लो के क्या गुज़-र्ती होगी। आग़ाज़े[5] फ़ितक मज़ीद अलै या मुस्तज़ाद।

पीरी[6] व सद ऐब चुनीं गुफ़्ताअन्द।

अपना ये मिसरा बार बार चुपके चुपके पढ़ता हूँ—

ऐ मर्गे नागहां, तुझे क्या इन्तज़ार है

मर्ग अब नागहानी कहाँ रही? असबाबो[7] आसार सब फ़राहम है हाय, इलाहीबख़्शख़ाँ मग़फ़र का क्या मिसरा है!

---

१. विश्वास। २. पांव के तलवे। ३. पांव का ऊपरी हिस्सा। ४. शोथ ५. उसपर हर्निया भी। ६. बुढ़ापे को इसीलिए सौ ऐब कहते है ७. उपकरण।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन अहमदखां 'अलाई' व 'नसीपी' के नाम

आह, जी जाऊँ निकल जाए, अगर जान कहीं !

ज़ायद बेफ़ायदा।

जुमा, ३ जुलाई, सन् १८६३ ई०।

मर्ग का तालिब
—ग़ालिब

३२

(२० सितम्बर १८६३)

सुबह यक शम्बा २० सितम्बर १८६३ ई०।

जाना आलीशाना,

पहले ख़त, और, बतवस्सुत बरख़ुरदार अली हुसेनख़ां मुजल्लिद 'कल्लियाते फारसी' पहुँचे। हैरत है के चार रुपए क़ीमत किताब और '४ आने' महसूले डाक क़ालिबे[१] इन्तबा में आकर पाच रुपए क़ीमत '५ आने' महसूल क़रार पावे। ख़ैर, जहां सौ वहाँ सै। मेरा हाल तुम्हें और तुम्हारा हाल मुझे मालूम है--

ईं[२] हम अन्दर आशक़ी बालाए ग़म हाय दिगर

अब के चिट्ठी शायद मैं न दे सकूँ। नवम्बर सने हाल में पचास तुम्हारे पास पहुँच जाएँगे। इंशा अल्लाहुल अली उल अज़ीम मैं बेहया था, न मरा; अच्छा होने लगा। अवारिज़[३] में तख़फ़ीफ़[४] है। ताक़त चली आती है। मुख़्तसर मुफ़ीद—

---

१. छापना। २. प्रेम में यह भी एक वेदना सही। ३. बीमारी। ४. कमी।

दर[1] नामा जुज़ ईं मिसर ए शायर चे नवीसम
अ वाये जे महरूमी ए दीदार दिगर हेच

नजात का तालिब
—ग़ालिब

३३

(३ दिसम्बर १८६३)

इक़बाले निशान मिर्ज़ा अलाउद्दीनख़ां बहादुर को ग़ालिब गोशा नशीं की दुआ पहुँचे।

बरख़ुरदार अली हुसेनखां आया। मुझसे मिला। भाई का हाल उसकी ज़बानी मालूम हुआ। हक़ ताला अपना फ़ज़्ल करे। अलवलद[2] ले अबेई तुम इसके मिज़दाक़[3] क्यों बने! ख़फ़क़ान व मिराक़[4] अगरचे तुम्हारा ख़ानाज़ादे मौरूसी[5] है, लेकिन आज तक तुम्हारी ख़िदमत में हाज़िर न हुआ था, अब क्यों आया? अगर आया तो हर्गिज़ उसको ठहरने न दो। हांक दो। खबरदार उसको अपने पास रहने न देना। शफ़ीक़े मुकर्रम व लुत्फ़े[6] मुजस्सिम मुंशी नवलकिशोर साहब बसबीले डाक यहाँ आये, मुझसे और तुम्हारे चचा और तुम्हारे भाई शहाबुद्दीनख़ाँ से मिले। ख़ालिक़ ने उनको ज़ुहरा की सूरत और मुश्तरी की सीरत अता की है। गोया बजाय ख़ुद 'क़िरानुस्सादैन'[7] हैं। तुमसे मैंने कुछ न कहा था और कुल्लियात के दस मुजल्लद की क़ीमत '५०' मान लिये थे। अब उनसे जो ज़िक्र आया तो उन्होंने पहली क़ीमत मुश्तहरए[8]

---

१. पत्र में कवि की इस पंक्ति के अतिरिक्त क्या लिखूँ? दर्शन न होने से बहुत दुःख है। २. पुत्र पिता का भेद होता है। ३. समान। ४. प्रलाप। ५. पैत्रिक। ६. सशरीर दया। ७. जब शुक्र और बृहस्पति एक राशि पर हों। ८. समाचार पत्र में प्रकाशित।

अख़बार लेनी क़ुबूल की। याने ३ रुपए ४ आने फ़ी जिल्द, इस सूरत में दस मुजल्लद के ३२ रुपए ८ आने मैं दूँ और ३२ रुपए ८ आने तुम दो। हमगी[१] '६५' मतबे 'अवध अख़बार' में पहुँचाने चाहिएं। मैं दिसम्बर माहे हाल की १०वीं, ११वीं को तालब[२] हूँगा। कहो ३२ रुपए ८ आने अली हुसेनख़ां को दे दूँ। कहो लखनऊ भेज दूँ। इस निगारिश[३] का जवाब जल्द भेजो। भाई साहब की ख़िदमत में मेरा सलाम कहना, और उस्ताद मीर जान के मेरी तरफ़ से क़दम लेना।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

पंज शंबा, २१ जमादि उस्सानी "साले ग़फ़र," मुताबिक़ ३ दिसम्बर साल—'क्या ग़ज़ब ! है है !'–१८६६ ई०। ये गोया तारीख़े वफ़ात जनाब गवर्नर लार्ड एलिगन साहब बहादुर की है।

३४

(१३ दिसम्बर १८६३ ई०)

मौलाना अलाई,

वल्लाह ! अली हुसेनख़ाँ का बयान बमुक्तज़ाए[४] मुहब्बत था। हर बार कहता था के हक़ बजानिब उनके है—न कोई हम सुख़न न कोई हमनफ़स[५], न सैर न शिकार, न मजलिस न दरबार, तन्हाई व बेशग़ली और बस। जी न क्यों कर घबराए ! ख़फ़क़ान क्यों न हो जाए ?

---

१. कुल, पूर्ण। २. मँगवा लूँगा। ३. लेखन। ४. प्रेम के कारण। ५. सम स्वभावी।

न दिन याद न तारीख़। आज चौथा, या भई शायद भूल गया हूँ पांचवां दिन है के मुंशी नवल किशोर बसवारी डाक रहगराए[1] लखनऊ हुए। कल पहुँच गए हो या आज पहुँच जाएँ। आज, रोज़े यक शंबा, १३ दिसम्बर की है। एक दिन मुंशी साहब मेरे पास बैठे थे और बरख़ुरदार शहाबुद्दीनख़ाँ भी था। मैंने 'साक़िब' को मुख़ातिब करके कहा के अगर मैं दुनियादार होता तो इसको नौकरी कहता। मगर चूँके फ़क़ीरे तकियादार हूँ, तो ये कह सकता हूँ के तीन जगह का रोज़ीनादार हूँ। साढ़े बासठ रुपए याने सात सौ पचास साल सरकारे अंगरेज़ी से पाता हूँ और बारह सौ साल रामपूर से और चौबीस रुपया साल इन महराज से। तौज़ी ये के दो बरस से हर महीने मे चार अख़बार मुझको भेजते हैं, क़ीमत नहीं लेते। मगर हाँ, अडतालीस टिकट मैं मतबे में पहुँचा दिया करता हूँ। बत्तीस रुपए आठ आ ने जो मैंने पूछे थे के अली हुसेनख़ाँ के हवाले करूँ, मक़सद इससे ये था के हर साल बसबीले हुण्डवी दुश्वार है। ख़ैर, अब जिस तरह होगा हिसार पर हुण्डवी लिखवा कर तुमको भेज दूँगा। तुम हिसार पहुँच कर रुपया मंगवा लीजो। ख़ुदा चाहे तो दिसम्बर में रुपया तुम्हारे पास पहुँच जाए। उस्ताद मीर जान साहब को क़दम बोस कह कर मुझको फ़रऊन[2] बनना पडा। दोहाई ख़ुदा की अब ऐसा न करूँगा। मेरा सलाम बल्के दुआ उनको कह देना। परसों मौलवी सदरुद्दीन साहब को फ़ालिज हो गया। सीधा हात रह गया है। ज़बान मोटी हो गई है। बात मुश्किल से करते हैं और कम समझ में आती है। मैं अपाहिज हूँ; जा नहीं सका। जो उनको देख आता है उससे उनका हाल पूछा जाता है। दिन तारीख़ सदर[3] में लिख आया हूँ। कातिब का नाम, ग़ालिब है के दस्तख़त मे पहचान जाओ।

---

१. रास्ता पकड़ना। २. अवज्ञाकारी। ३. ऊपर।

३५

(१ जनवरी १८६४)

यकुम जनवरी सन् १८६४ ई०।

अलाई मौलाई को ग़ालिबे तालिब की दुआ। बेचारे मिर्ज़ा का मामला अली हुसेनख़ाँ की मार्फ़त तय होगा। यहाँ पन्द्रह का सवाल. वहाँ दस में तीन कम करने का खयाल! मुतवस्सित दूसरा, जो अली हुसेनख़ाँ बहादुर के बाद दरमियान आये, वो क्या करे और क्या कहे? मिर्ज़ा क़ानहर[1] व मुतवक्किल हैं, न पन्द्रह मांगते हैं न दस। अल्लाह बस; मा सिवा हवस।

जनाब त्रिवेलियन साहब, भाई के दोस्ते दिली, दिल्ली आये। लार्ड साहब कहलाते हैं। सुनता हूँ के कल अकबराबाद जाते हैं।

भाई अली बख़्शख़ाँ मुद्दत से बीमार थे। रात को बारह पर दो बजे मर गये। इन्नालिल्लाह व इन्नाइलहे राजऊन। तुम्हारे अम्मे नामदार आज दिन के बारह बजे 'सुलतान जी' गए हैं। मैं न जा सका? तजहीज़[२] व तकफ़ीन उनकी तरफ़ से अमल में आएगी। बारह पर ३ बजे ये खत मैंने तुम्हें लिखा है। कल शबा, २ जनवरी, सुबह को डाक घर भेज दूँगा। मुशफ़क़ी[३] शफ़ीक़ी[४] मीर जान साहब को सलाम माउल अकराम।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

३६

(१८ मई १८६४)

चहार शबा, १८ मई सन् १८६४ ई०, बक़ोले अवाम, बासी ईद का दिन, सुबह का वक़्त।

---

१. सन्तोषी और निराकांक्षी। २. क्रिया कर्म। ३. ४. स्नेही।

मेरी जान,

ग़ालिबे कसीरुल[1] मतालिब की कहानी सुन। मैं अगले ज़माने का आदमी हूँ। जहाँ एक अम्र की इब्तिदा देखी ये जान लिया के अब ये अम्र मुताबिक़ इस बिदायत[2] के निहायत[3] पिज़ीर होगा। यहाँ अख़्तेलाफ़े तबा[4] का वो हाल के आग़ाज़[5] मग़शूश, अन्जाम[6] मख़दूश। मुब्तिदा[7] ख़बर से बेगाना, शर्ते[8] जज़ा से महरूम। सुना, और मुतवातिर सुना के क़िस्सा तय हो गया। अब अलाउद्दीनख़ाँ मय क़बायल आएँगे। दिल ख़ुश हुआ के अपने महबूब की शक्ल मय उसके नतायज के देखूँगा। परसों आख़िरे रोज़ भाई पास गया। अस्नाए[9] इख़्तलात व इन्बसात में मैंने पूछा के कहो भई, अलाउद्दीनख़ाँ कब आएंगे? जवाब कुछ नहीं। 'अजी' वो क़िस्सा तो तय हो गया? 'हाँ वो तो रुपया मैंने दे भी दिया।' मैंने कहा--"तो अब चाहिये के वो आएँ।" फ़रमाया के "शायद अभी न आएं।"

मालूम हुआ के ख़ैर ठेंगा बाजा। नाचार इरादा किया के जो कुछ कहना था, अब वो लिख कर भेजूँ। परसों तो शाम हो गई थी। कल बग़लगीर होने-वालों ने दम न लेने दिया; उस पर तुर्रा ये के 'साक़िब' ने कहा के भाई तुमसे शाकी[10] हैं। अब ज़रूर आ पड़ा के गुज़ारिशे मुद्दुआ से पहले तुम्हारे रफ़े-मलाल में कलाम करूँ। भाई, तुम मेरे फ़र्ज़न्द बल्के बेह्अज़ फ़र्ज़न्द हो। अगर मेरा सुलबी[11] बेटा इस दीदो[12]दानिस्त व तहरीर व तक़रीर का होता तो मैं उसको अपना यारे वफ़ादार और ज़रियए[13] इफ़्तख़ार जानता। मेरे ख़ुतूत के न पहुँचने का गिला ग़लत। तुम्हारा कौन सा ख़त आया के उसका जवाब यहाँ से न

---

१. अधिक लालसा रखने वाला। २. प्रारंभ। ३. अन्तहीन। ४. स्वभाव। ५. आरंभ दोषपूर्ण। ६. अन्त सन्दिग्ध। ७. आदि-अन्त। ८. कार्य-कारण। ९. बातचीत के समय। १०. उससे भी अधिक शिकायत करने वाला। ११. औरस पुत्र। १२. समझ बूझ। १३. प्रतिष्ठा का कारण।

लिखा गया ! मेरे पास जो मक़ासिद ज़रूरी फ़राहम थे, वो मैंने इस नज़र से न लिखे के अब तुम आते हो। ज़बानी गुफ़्तो शुनीद हो जाएगी। साक़िब ने चलती गाड़ी में रोड़ा अटका दिया। तब मुझे तोतहो[1] तम्हीद में एक वरक़ लिखना पड़ा। वर्ना आग़ाज़े निगारिश यहाँ से होता—

या असदुल्लाह् अल ग़ालिब !

बा[2] मन अज़ जेह्ल मुआरिश शुदा ना मुन्फ़अेली
के गरश हज वो कुनम ईं बुवदश मदहे अज़ीम

ये रिसाला मौसूम ब 'मुहरिक़े क़ाते बुरहान' जो 'साकि़ब' ने तुमको भेजा है, मेरे कहने से भेजा है और इस इरसाल से मेरा मुद्दआ ये है के इसके मुआयने के वक़्त इस किताब की वेरव्ती[3] ए इबारत पर और मेरी अपनी कराबत[4] और निस्बत[5] हाय अदीदा पर नज़र न करो। बेगाना वार[6] देखो और अज़ रू ए इन्साफ़ हकम[7] बनो; बेहैफो[8] मेल। उसने जो मुझे गालियाँ दी हैं, उस पर ग़ुस्सा न करो। ग़लतियाँ इबारत की, शिद्दते इतनाबे ममल[9] की सूरत, सवाल दीगर जवाब दीगर, इन बातों को मतमह्[10] नज़र करो। बल्के अगर फ़ुरसत मसादत[11] करे, तो उन मरातिब को अलग एक काग़ज़ पर लिखो और बाद[12] अितमाम मेरे पास भेज दो। मेरा एक दोस्ते रूहानी के वो मिन्जुम्लए रिजालुल[13] ग़ैब है। इन हफ़वात[14] का ख़ाका[15] उड़ा रहा है। नैयरो रख़्शाँ ने उसकी मदद दी है। तुम भी भाई मदद दो।

---

१. भूमिका। २. अज्ञानता के कारण तुमने लड़ना शुरू किया और लज्जित नहीं हो। यदि मै उसकी बुराई करूँ तो तुम्हारी बड़ी प्रशंसा होगी। ३. विश्रृंखलित वाक्यावली। ४. आत्मीयता। ५. अगणित सम्बन्ध। ६. पराया। ७. निर्णायक, पंच। ८. निष्पक्ष। ९. जटिल, उलझी हुई। १०. दृष्टिगोचर। ११. साथ दे। १२. समाप्त होने पर। १३. अदृश्य (शुभ योनियों में से)। १४. बेहूदगी। १५. मज़ाक उड़ा रहा है।

और वो अम्र मुबहम के जो तुम्हारे वालिद की तक़रीर से दिलनशीं नहीं हुआ। याने क़िस्मा चूक जाना और दिल्ली आना, उसका माजरा मुफ़स्सिल व मुशर्रह लिख।

दिन, तारीख़, अपना नाम, आग़ाज़े किताबत में लिख आया हूँ। अब इरसाले जवाब की ताकीद के सिवा और क्या लिखूँ? फ़क़त।

३७

(३० मई १८६४ ई०)

दोशम्बा, २३ ज़िलहज्जा सन् १२८० हि०।

ऐ मेरी जान,

"मसनवी अब्रे गोहरबार" कौन सी फ़िक्र ताज़ा थी के मैं तुझको भेजता। 'कुल्लियात' में मौजूद है। माहजा शहाबुद्दीनख़ाँ ने भेज दी। मैं मुकर्रर क्या भेजता?

"तबे मुहर्रिक़" के देखने से इन्कार क्यों करते हो? अगर मुनाफ़िए[१] तबा तहरीर को बसबबे इन्ज़ेजार[२] न देखा करते तो फ़रीक़ैन[३] की कुतुब मबसूता[४] कहां से मौजूद होतीं? 'अफ़्सोस' को मैंने अरबी जाना, अरबी नहीं है। अब माना, ये एक सहवे[५] तबीयत था। मेरा ऐतराज़ तो ख़त्ते[६] मबहस पर है— 'अफ़्सोस' व 'फ़सोस' एक क्यों हो जाए?

यहाँ के अतवार[६] मुझसे बवजूदे[७] क़ुर्ब मख़फ़ी[८] और तुम पर बाईं[९] हमा बोद आशकार[१०]! 'दूराने[११] बाख़बर दर हुज़ूर, व नज़दीकान बेबसर दूर।'

---

१. स्वभाव विरुद्ध। २. झिड़कना। ३. वादी प्रतिवादी। ४. मोटी। ५. भ्रम। ६. रीति रिवाज़। ७. निकटता के रहते हुए भी। ८. छिपी हुई। ९. यद्यपि आप दूर हैं। १० प्रकट। ११. दूर रहकर भी उपस्थित हैं और निकट रहते हुए भी अन्धा दूर रहता है।

रुपया आ गया। दिल से निकला, मख़ज़न[1] से निकला, हात से नहीं निकला। जब हात से निकल जाएगा और जिन्स मोल ली जाएगी और ये गन्द कट जाएगा, तब तरसाँ[2] तरसाँ पेशगाहे[3] नादरी में तुम्हारे यहाँ आने के बाब में कुछ अर्ज़ किया जाएगा। मैं इन दिनों मरदूद[4] भी हूँ। वस्सलाम।

सुबह[5] दम बा अबुलबशर गुफ़्तम
पार ए ज़र बिदे के जर दारी
हैफ़ बाशद के अज़ चू मन पिसरे
ख़ाके रंगीं अज़ीज़ तर दारी
गुफ़्त-हैफ़स्त अज़ तो ख़ाहिशे ज़र
केह तू गंजीन ए गोहरदारी
गज दाने सुख़न हवाल ए तुस्त
ख़ुद बेबीं ता चे अँ पिसरदारी

---

१. उद्भव स्थल। २. डरते डरते। ३. नादिर के दरबार में। ४. अपमानित। ५. "मैंने प्रातःकाल हज़रत आदम से कहा—आप ऐश्वर्यशाली हैं, मुझे कुछ (थैली) द्रव्य दीजिए। बहुत दुःख है, मेरे जैसे पुत्र की अपेक्षा आप मिट्टी को अधिक प्यार करते हैं। हज़रत आदम ने कहा--तुम्हारा स्वर्ण के प्रति लालसा प्रकट करना उचित नहीं। तुम्हारे पास तो स्वय मोतियों (काव्य) का कोष है। तुम स्वयं विचार करो, तुम्हे कितनी गौरवास्पद वस्तु मिली है। प्रिय पुत्र, मेरे पास फिर द्रव्य कहाँ है? मेरे पास जो कुछ है ले जा। मैंने कहा—आप मुझे यह वचन दीजिए, कि यदि आपके पास द्रव्य हो तो आप दे देंगे। हज़रत आदम ने कहा--"यदि तुम उसकी धूर्तता से परिचित हो तो उस थैली को खोल दो और उसे उलट दो। और कह दो कि मेरा उद्देश्य इतना ही है, यही है। यह बात कहानी बन गई है। अब पृथ्वी पर क्या डालूँ और तुम उठाकर क्या ले जाओगे?"

पेशे मन ज़र कुजास्त जान पिदर?
बे बरी हर चे दर नज़रदारी
गुफ़्तम्—ईनक बे बन्द पैमाने
ज़र ब मनमी देही, अगर दारी
सबे ज़ंबीले आँ उमर अय्यार
गर ज़ अैयारियश खबरदारी
बे क़ुशा ज़ूद व ज़र बे रीज़ो बगोये
के हमीं मुद्दग्रा मगर दारी
गुफ़्त--बाबा फ़सान ए वूदस्त
चे फ़ेरो रीज़मो चे बरदारी

३८

(९ जुलाई १८६४)

शम्बा, ९ जुलाई सन् १८६४ ई० ।

अलाई मौलाई, ग़ालिब को अपना दुआगो और ख़ैरख़ाह तसव्वुर करें। माद्दा हाय तारीख़ को न आप क़ालिबे[1] नज़्म में लाएं और न और को इस अम्रे[2] मुनकर की तकलीफ़ दें। भाई समझो, यज़ीद[3] पर लान[4] मिनजुम्लए[5] इबादत सही, लेकिन तक़रीबन कह देते हैं के "बर[6] यज़ीद लानत।" किसी

---

१. कविताबद्ध करना। २. कुकर्म। ३. खलीफ़ाओं के स्थान पर माविया अरब के शासक बने। उनके पुत्र यज़ीद भी एक प्रकार से राजा की तरह शासन करते रहे। उनके समय में कर्बला की लड़ाई हुई और हज़रत हुसेन का बलिदान हुआ। शिया लोग इसीलिए यज़ीद को गाली देना बुरा नहीं मानते। ४. लानत। ५. सब प्रार्थनाओं में। ६. यज़ीद पर लानत।

मोमिन ने उसकी हजो में क़सीदा नहीं लिखा। इब्दा[1] ए माद्दा हाय तारीख़ तुम्हारे हसनात[2] में लिखा गया। मुसाब[3] तुम हो चुके। अज्र पाओगे इंशा अल्लाह्। अब अपने को बदनाम और किसी को मलूल[4] और अदावत को ज़ाहिर और अगर ज़ाहिर हो, तो मुहकम[5] न करो। अलीबख़्शख़ाँ मरहूम मुझसे चार बरस छोटा था। मैं सन् १२१२ हि० में पैदा हुआ हूँ। अब के रज्जब के महीने से उनहत्तरवाँ बसर शुरू हुआ है। उसने ६६ बरस की उम्र पाई। नई तक़रीर व तहरीर का आदमी था। अकबराबाद में म्योर साहब से मिले। अस्नाए[6] मुकालिमत में कहने लगे के मैं चचा जान के साथ जरनैल लार्ड लेक साहब के लश्कर में मौजूद था और होल्कर से जो महारबात[7] हुए हैं, उसमें शामिल रहा हूँ। बेअदबी होती है, वर्ना अगर क़बा[8] व पैरहन[9] उतार कर दिखलाऊं तो सारा बदन टुकड़े टुकड़े है। जाबजा तलवार और बरछी के ज़ख़्म हैं। वो एक बेदार[10] मग़ज़ और दीदावर[11] आदमी, उनको देख देखकर कहने लगा के नवाबसाहब हम ऐसा जानते हैं के तुम जरनैल साहब के वक़्त में चार-पाँच बरस के होगे। ये सुनकर आपने कहा के दुरुस्त, जाबजा इरशाद होता है। खुदायश[12] बयामुर्ज़ाद व बदीं दरोग़ हाय बेनमक मीगीराद।

—ग़ालिब

३९

(१७ सितम्बर १८६४)

अजी मौलाना अलाई,

नवाब साहब दो महीने तक इजाज़त दे चुके और ये मैं ख़बरतराशी नहीं

---

१. तारीख़ कहने का नया ढंग। २. गुण। ३. पुण्यकृत, योग्य। ४. दुखी। ५. दृढ़। ६. बातचीत के समय। ७. युद्ध। ८. एक प्रकार की अचकन। ९. पोशाक। १०. बुद्धिमान। ११. समझदार। १२. ईश्वर उसे क्षमा करे और दण्ड न दे।

करता। मौलाना अली मुहम्मद बेग की ज़बानी है के नवाब, अलाउद्दीनख़ाँ से कह चुके हैं के क़िस्सा मिट गया है, अब तुम शौक़ से दिल्ली जाओ। दो हफ़्ते से लेकर दो महीने तक की तुमको रुख़सत है। फिर तुम क्यों न आए? ख़ुदा ने दुआ, ख़ुदावन्द[१] ने इस्तेदुआ क़ुबूल की। तुम्हारी तरफ़ से सुस्तक़दमी और दिलसर्दी की क्या वजह? अगर हाकी की हिकायत झूट है, तो तुम सच लिखो के माजरा क्या है। मिर्ज़ा यूसुफ़ अलीख़ाँ 'अज़ीज़' तुम्हारे बुलाए हुए और मेहदी हुसेन भाई साहब के मतलूब; मिर्ज़ा अब्दुल क़ादर बेग के क़वायल के साथ कल रवाना लोहारू हुए हैं।

शंबा, १५ सितम्बर १८६४।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

४०

(२ नवम्बर १८६४)

मिर्ज़ा अलाई मलाई,

न लाहौर से ख़त लिखा, न लोहारू से। बक़द्र[२] माद्द ए हुमुक़ महवे इन्तज़ार[३] बल्के उम्मीदवार रहा। अब जो किसी तरह की तवक़्क़ो न रही तो शिकवा तराज़ी का मौक़ा हात आया। अगरचे जानता हूँ के एक शिकवे के दफ़ा[४] में 'तूती नामा' बराबर एक रिसाला लिखोगे और हज़ार वजहें मवज्जह[५] बयान करोगे। मैं इस तसव्वुर का मज़ा उठा रहा हूँ के देखूँ क्या लिखते हो? दादी साहिबा से लिखवाना। फूपी साहिबा से लिखवाना। ग़ालिब से लिखवाना। बादे हुसूले इजाज़त न आना। इसके भी कुछ माने हैं या

१. स्वामी। २. मूर्खों की तरह। ३. प्रतीक्षा में तल्लीन। ४. दूर करने में। ५. कारण।

नहीं ? अच्छा मेरा मियाँ, कुछ इस बाब मे लिख। चुपड़ी और दो दो, एक मन्दील[1] और एक सीला,[2] या कोई और चीज़ मुबारक।

बच्चों को मेरी दुआ कहना और उनकी ख़ैरो आफ़ियत लिखना। उस्ताद मीर जान साहब को सलाम। मज़ा तो जब मिलेगा के तुम दिल्ली आओ और अपनी ज़बान से लाहौर के हंगाम ए अंजुमन का हाल बयान करो।

चहार शंबा, ३ नवम्बर सन् १८६४ ई०।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

४१

(९ दिसंबर १८६४ ई०)

जुमा, नहुम रज्जब व दिसबर।

मेरी जान,

तुम्हारा ख़त भी आया और अली हुसेनख़ाँ नज्मुद्दीन भी तशरीफ़ लाया। अगर सरनविश्ते[3] आसमानी मे भी अवाख़िरे[4] रज्जब या अवायले[5] शाबान मे हमारा तुम्हारा मिल बैठना मुन्दर्ज है, तो ज़बानी कह सुन लेंगे। क़लम को इन असरार की महरमियत[6] नही है। जो शख़्स अपने मुल्को माल व जानो तन व नंगो नाम के उमर में आशिफ़्ता व सरगर्दा बल्के आजिज़ व हैरान हो, दूसरे को उससे क्या गिला ? हाय नज़ीरी—

बामा[7] जफ़ा वो ना ख़ुशी बाख़ुद ग़ुरूरो सरकशी
अज़ मा नई अज़ ख़ुद नई आख़िर अज़ाने कीस्ती

---

१. पगड़ी। २. दुपट्टा। ३. भाग्य। ४. अन्तिम। ५. प्रथम। ६. रहस्य ज्ञान। ७. हमारे साथ तो अप्रसन्नता और अत्याचार और अपने साथ गर्व तथा धृष्टता। तुम हमारे भी नहीं और अपने भी नहीं। फिर तुम किसके हो ?

महले अक़्ल व होश, दिमाग़, सो तबा; अफ़्यून का मुख़मर[1] हो जाना अलावा। अल्लाह जो चाहे सो करे। ऐसा प्यारा बाग़ो बहार भाई, यों बिगड़ जाए ?

नजात का तालिब

—ग़ालिब

४२

(६ जनवरी १८६५)

लो साहब, वो मिर्ज़ा रज्जबबेग मरे, उनकी ताज़ियत आपने न की। शाबानबेग पैदा हो गए। कल उनकी छट्टी हो गई, आप शरीक न हुए ?

ऐ वा ए ज़ महरूमी ए दीदार दिगर हेच

मियाँ, ख़ुदा जाने किस तरह ये चार सतरें तुझको लिखी हैं ! शहाबुद्दीन-ख़ाँ की बीमारी ने मेरी ज़ीस्त का मज़ा खो दिया। मैं कहता हूँ के इसके ऐवज़, मै मर जाऊँ। अल्लाह इसको जीता रखे, इसका दाग़ मुझको न दिखाए। या रब, इसको सेहत; या रब इसकी उम्र बढ़ा दे। तीन बच्चे; एक अब पैदा होने वाला है। या रब, इसको इसकी औलाद के सर पर सलामत रख।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

४३

(जनवरी १८६५ ई०)

मेरी जान,

नासाज़ी[2] ए रोज़गार व बेरब्ती[3] अतवार व बतरीक़े[4] दाग़ बालाए दाग़, आरज़ू ए दीदार वो दो[5] आतिशे शरारा बार और ये एक दरिया ए

१. नशे में मस्त। २. समय की प्रतिकूलता। ३. चाल-चलन में परिवर्त्तन। ४. घाव पर घाव। ५. अग्निवर्षी सुरा।

नापैदा किनार। व[1] क़ना रब्बना अज़ाबुन्नार। ख़ुदा ने भाई ज़ियाउद्दीनख़ाँ के बुढ़ापे पे और मेरी बकसी पर रहम फ़रमाया। मेरा शहाबुद्दीनख़ाँ बच गया। अमराज़े मुख़्तलिफ़ा में घिर गया था—बवासीर ख़ूनी, ज़हीर,[2] तप,[3] सुदा; बारे, अब मिन[4] कुल्लुल वुजूह, सेहत हासिल है। ज़ौफ़ जाते ही जाएगा। आगे कौन से क़वी[5] थे के अब उनको ज़ईफ़ कहा जाए? एक बुड्ढा किसी गली में जाते जाते ठोकर खाकर गिर पड़ा। कहने लगा—हाय बुढ़ापा! इधर-उधर देखा। जब जाना के कोई नहीं है, कहता हुआ बढ़ा के—'जवानी में क्या पत्थर पड़ते थे।' वस्सलाम।

ग़ालिबे मुस्तहाम[6]

४४

(१३ फरवरी १८६५)

सुबहे दो शम्बा, शाज़ दहुम[7] अज़ महे[8] सयाम।

मेरी जान,

नए मेहमान का क़दम तुम पर मुबारक हो। अल्लाह ताला तुम्हारी और उसकी और उसके भाइयों की उम्रो दौलत बरकत दे। तुम्हारी बतर्ज़े तहरीर से साफ़ नहीं मालूम होता के सईद है या सईदा है। 'साक़िब' उसको अज़ीज़ और 'ग़ालिब' अज़ीज़ा जानता है। वाज़े लिखो, ता एहतमाल रफ़ा हो। ख़त साक़िब के नाम का तोबा-तोबा, ख़त काहे को, एक तख़्ता काग़ज़ का। मैंने सरासर पढ़ा, लतीफ़ा व बज़्ला[9] व शूख़ी व शूख़ चश्मी का बयान जब

---

१. ईश्वर, मुझे नरक की अग्नि से बचा। २. पेचिश। ३. मस्तक की पीड़ा। ४. पूरी तरह से। ५. हृष्ट पुष्ट। ६. विषण्ण। ७. सोलह। ८. रमजान का महीना। ९. मजाक।

करता के फ़हवाए[1] इबारत से जिगर ख़ून न हो जाता। भाई का ग़म जुदा, ऐसा सुखन गुज़ार, ऐसा ज़बानावर, ऐसा अैयारे[2] तर्रार; यों आजिज़ व दरमाँदा व अज़ कार रफ़्ता हो जाए ! तुम्हारा ग़म जुदा, साग़र[3] अव्वल व दुर्द ! क्या दिल लेकर आये, क्या ज़बान लेकर आये, क्या इल्म लेकर आए ! क्या अक़्ल लेकर आए ! और फिर किसी रविश को बरत न सके। किसी शेवे की दाद न पाई। गोया 'नज़ीरी' तुम्हारी ज़बान से कहता है—

जौहरे[4] बीनिशे मन दर तहे ज़ंगार बेमुंद
आँके आइन ए मन साख़्त न परदाख़्त दिरेग़

भाई, इस मुआरिज़[5] में मैं भी तेरा हमताला और हमदर्द हूँ। अगर चे एक[6] फ़ना हूँ, मगर मुझे अपने ईमान की क़स्म, मैंने अपनी नज़्मो नस्र की दाद ब[7] अन्दाज़ ए बायस्त पाई नहीं। आप ही कहा, आप ही समझा। क़लन्दरी व आज़ादगी व ईसारो[8] करम के जो दराई मेरे ख़ालिक़ ने मुझमें भर दिए हैं, बक़द्रे हज़ार एक, ज़हूर में न आए; न वो ताक़ते जिस्मानी के एक लाठी हात में लूँ और उसमें शतरंजी और एक टीन का लोटा मय सूत की रस्सी के लटका लूँ और प्यादापा चल दूँ—कभी शीराज़ जा निकला, कभी मिश्र में जा ठहरा, कभी नजफ़[9] जा पहुँचा, न वो दस्तगाह[10] के एक आलम का मेज़बात बन जाऊँ। अगर तमाम आलम में न हो सके, न सही। जिस शहर में रहूँ, उस शहर में तो भूका नंगा नज़र न आऊँ—

---

१. तात्पर्य। २. अच्छा वक्ता। ३. सुरा पात्र पहला और उसमें ही तलछट। ४. मेरी दृष्टि को जंग लग गया। जिसने मेरा दर्पण बनाया उसने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया, बहुत दुःख है। ५. अपराध। ६. एक कला। ७. यथेष्ट। ८. त्याग-दान। ९. जहाँ हज़रत अली की मज़ार है। १०. सामर्थ्य।

न[1] बुस्ताँ सराए न मयख़ान इ
न दस्ताँ सराए न जानान इ
न रक़्से परी पैकराँ बर बिसात
न ग़ौग़ाए रामिश गिराँ दर रिबात

ख़ुदा का मक़्हूर,[2] ख़ल्क़ का मरदूद, बूढ़ा, ना तवाँ, बीमार, फ़क़ीर, नकबत[3] में गिरफ़्तार। तुम्हारे हाल में ग़ौर की और चाहा के इसका नज़ीर बहम पहुँचाऊँ। वाक़ए कर्बला से निस्बत नहीं दे सकता—लेकिन वल्लाह तुम्हारा हाल उस रेगिस्तान में बेऐनही ऐसा है, जैसा मुस्लिम[4] इब्न अक़ील का हाल कूफ़े में था। तुम्हारा ख़ालिक़ तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की जानो आबरू का निगहबान। मेरे और मामलात के कलामो कमाल से क़तै नज़र करो, वो जिस किसी को भीक माँगते न देख सके और खुद दर बदर भीक माँगे, वो मैं हूँ।

४५

(२३ फरवरी १८६५)

पंजशम्बा २६ रमज़ान।

साहब,

कल तुम्हारा ख़त पहुँचा। आज उसका जवाब लिखकर रवाना करता हूँ। रज्जब बेग, शाबान बेग, रमज़ान बेग; ये नामवर महीने हैं। सो ख़ाली गए। शव्वाल बेग आदमी का नाम नहीं सुना। हाँ, ईदी बेग हो सकता है। पस, जब

---

१. न उद्यान न मधुशाला, न कोई कहानी सुनाने वाला फ़र्श पर न सुन्दरियों का नृत्य, न भोजनालय में क़व्वाली, गाने वालों का शोर। २. ईश्वर का क्रोध भाजन। ३. दरिद्रता। ४. कूफ़े के लोगों ने हज़रत हुसेन को यज़ीद के विरोध में बुलाया था। हज़रत हुसेन ने अक़ील के बेटे मुस्लिम को स्थिति जानने के लिए भेजा। वह कूफ़े में मारा गया।

ईद है और रोज़े सईद है तो क्या बईद है के बख़िलाफ़े शुहूरे[1] सलास ऐ माजिया इस महीने में तुम आ सको ? हूँ है ! मैं तो कहता हूँ न आ सको। इस माहे मुबारक में इम्ज़ाए[2] हुक्म सरकार का वो हंगामा गर्म हो के पारसियों की ईद 'कोसह्[3] बरनशीं' का गुमान गुज़रे। दूर क्यों जाओ, होली की धुलैंडी का समा लोहारू मे बँध जाए। एक ख़र सवार की सवारी बडी धूम से निकले। हुस्ने इत्तेफ़ाक़ ये के ये वही मौसम है, होली और ईदे 'कौसह् बर नशीं' का ज़माना बाहम है। हूत[4] के आफ़ताब में ये दोनों तेंवहार होते हैं। कल आफ़ताब हूत में आया है। 'कौसह् बरनशीं' और होली का मुज़दा[5] लाया है। ख़ैर मैं चन्द रोज़ और सितम कशे फ़िराक़ और तेरे दीदार मुश्ताक़ रहूँ। तू क़ौसह् बर नशीं और होली की रंगरलियाँ मना ले और ख़र सवार को बज़र्बे ताज़ियाना दौडा ले। अलाउद्दीनख़ाँ, वल्लाह् तू मेरा फ़र्ज़न्दे रूहानी ए मानवी है। फ़र्क़ इसी क़द्र है के मैं जाहिल हूँ और तू मौलवी है। अरे ज़ालिम ! इस कौसे बरनशीं की दाद दे। अक़्ल करामत है, इलहाम है, लुत्फ़े तबा है, क्या है, ? ये इस्म किस क़दर मुनासिबे मुक़ाम है ! सबीहा[6] का मुक़द्दम[7] तुम पर मुबारक हो, 'साक़िब' मुझसे लड़ता था के भतीजा है। मैं कहता था के पोती है। बारे, मैं जीता और साक़िब हारा। अरीज़ए[8] जुदागाना, उस्ताद मीर जान साहब के नाम पहुँचता है।

४६

(१ अक्टूबर १८६५)

यकशंबा यकुम अक्तूबर सन् १८६५।

---

१. गुज़रे तीन मासों के बीतने के बाद ईद आती है। २. आदेश जारी होना। ३. एक त्यौंहार का नाम। ४. मीन राशि। ५. शुभ समाचार। ६. पुत्री। ७. प्रथम। ८. पत्र।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन ख़ाँ 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

शुक्रे[1] ईज़द के तुरा बापिदरत सुलह् फ़िताद
हूरियाँ रक़्स कुनाँ साग़रे शुकराना ज़दन्द
क़ुदसियाँ बहरे दुआए तो वो वाला पिदरत
क़ुर्र ए फ़ाल बनामे मने दीवाना ज़दन्द

मियाँ, तुम जानते हो के मैं आज़िमे[2] रामपूर था। असबाव मुसाअद[3] हो गए, बशर्त्ते हयात जुमे को रवाना हूँगा। लड़के बालों की ख़ैरो अफ़ियतअली हुसेनख़ाँ की तहरीर मालूम होती रहती है। मेरा लिखना ज़ायद है। एक बार मैं साहब कमिश्नर की अयादत[4] को गया था। फ़रुख़ मिर्ज़ा भी मेरे साथ गया था। मिज़ाज की ख़बर पूछ आया। भाई साहब को मेरा सलाम कहना।

राक़िम

ग़ालिब अली शाह

४७

(६ दिसम्बर १८६५)

जाना आलीशाना,

ख़त पहुँचा। हज़ उठा। तुम्हारी आशिफ़्ता[5] हाली में हर्गिज़ शक नहीं। तुम कहीं, क़बायल कहीं, वाली ए शहर नासाज़गार, अंजामेकार[6] नापिदीदार, एक दिल और सौ आज़ार। अल्लाह तुम्हारा यावर,[7] अली तुम्हारा मददगार। मैं पा दर रिकाब, बल्के नाल दर[8] आतिश। कब जाऊँ और 'फ़रुख़सियर' को

---

१. ईश्वर का धन्यवाद है, तुम में और तुम्हारे पिता में समझौता हो गया। अप्सराएँ धन्यवाद देने लगीं। देवदूतों ने तुम्हारे और तुम्हारे पिता की प्रशंसा करने का काम मुझ जैसे दीवाने को सौंप दिया। २. रामपुर जाने का इच्छुक। ३. एकत्रित। ४. मिज़ाज पुरसी। ५. परेशानी। ६. परिणाम शून्य। ७. सहायक। ८. उद्विग्न।

देखूँ ! एक ख़त मैंने अली हुसेनख़ाँ को लि ा। वहाँ से उसका जवाब आ गया। रोहेल्ला फोडे फुन्सी में मुब्तिला है। ख़ुदा उसको सेहत दे। शमशाद अली बेग कहाँ अलवर पहुँचा और इस तरह गया के शहाबुद्दीनख़ाँ से भी मिल कर न गया। ख़ैर,

रमूज़े मसलिहते ख़ीश ख़ुसरवाँ दानन्द

यहाँ जश्न के वो सामान हो रहे हैं के जमशीद अगर देखता तो हैरान रह जाता। शहर से दो कोस पर आग़ापूर नामी एक बस्ती है। आठ-दस दिन से वहाँ ख़याम बरपा थे, परसों साहब कमिश्नर बहादुर बरेली मय चन्द साहबों और मेमों के आए और ख़ेमों में उतरे, कुछ कम सौ साहब और मेम जमा हुए, सब सरकारे रामपूर के मेहमान। कल सेशंबा, ५ दिसम्बर हुज़ूरे पुरनूर बड़े तजम्मुल[1] से आग़ापूर तशरीफ़ ले गए। बारह पर दो बजे गए और शाम को पाँच बजे ख़लत पहन कर आए। वज़ीरअलीख़ां ख़ानसामाँ ख़ज़ाने में से रुपए फेंकता हुआ आता था। दो कोस के अर्से में दो हज़ार रुपए से कम न निसार हुआ होगा। आज साहेबान आलीशान की दावत है। टिपन, शाम का खाना—यहीं खाएँगे। रोशनी, आतिशबाज़ी की वो इफ़रात के रात-दिन का सामना करेगी ! तवायफ़ का वो हुजूम, हुक्काम का वो मजमा के इस मजलिस को तवायफ़ुल[2] मुलूक कहा चाहिए। कोई कहता हैं साहब कमिश्नर बहादुर मय साहबाने आलीशान के कल जाएँगे, कोई कहता है परसों। रईस की तसवीर खींचता हूँ—क़द, रंग, शक्ल, शमायल,[3] बे ऐनही भाई ज़ियाउद्दीनख़ाँ उम्र का फ़र्क़ और कुछ कुछ चेहरा और लहिग़ा[4] मुतफ़ावत[5]। हलीम[6] व ख़लीक़[7] बाज़ल,[8]

---

१. ऐश्वर्य। २. अ[illegible]लोक। ३. नखशिख। ४. हृष्ट पुष्टता। ५. अन्तर। ६. दयालु। ७. शिष्ट। ८. उदार।

करीम, मुतवाज़े,[1] मुतशरअ,[2] मुतवर्रे, शेर फ़ह्म, सैकड़ों शेर याद। नज़्म की तरफ़ तवज्जे नहीं। नस्र लिखते हैं और खूब लिखते हैं।

जलाला ए तबातबाई की तर्ज़ बरतते हैं। शिगुफ़्ता[3] जबीं ऐसे के उनके देखने से ग़म कोसों भाग जाए। फ़सीह बयाँ ऐसे के उनकी तक़रीर सुनकर एक और नई रूह क़ालिब[4] में आए। अल्लाहु[5] मादामे इक़बालहू व ज़ादे इजलालहू। बादे इख़्तेताम महाफ़िल तालिब रूख़सत हूँगा। बादे हुसूले रुख़सत दिल्ली जाऊँगा।

भाई साहब की खिदमत में बशर्त्ते रसाई व ताबे गोयाई सलाम कहना और बच्चों की ख़ैरो आफ़ियत, जो तुमको मालूम हुई है, वो मझको लिखना।

६ दिसम्बर सन् १८६५ ई० की, बुध का दिन, सुबह के ८ बजा चाहते हैं।

कातिब का नाम ग़ालिब है के तुम जानते होगे।

४८

(२२ दिसम्बर १८६५)

जुमा, २२ दिसम्बर सन् १८६५ ई०, १२ पर २ बजे, तीन का अमल।
मिर्ज़ा,

रूबरू बे अज़[6] पहलू, आओ मेरे सामने बैठो। आज सुबह के सात बजे बाक़रअलीख़ाँ और हुसेनअलीखाँ १४ मुर्ग़–६ बड़े और ८ छोटे (ले) के दिल्ली को रवाना हुए। दो आदमी मेरे उनके साथ गए। कल्लू और लड़का, नियाज़ अली, याने डेढ़ आदमी मेरे पास हैं। नवाब साहब ने वक़्ते रुख़सत एक एक

---

१. नम्र। २. धार्मिक नियमों पर चलने वाला। ३. प्रकाशमान भाल। ४. शरीर। ५. ईश्वर उनका प्रताप स्थायी कर और उनके ऐश्वर्य में वृद्धि कर। ६. अत्यन्त निकट।

दुशाला मरहमत[1] किया। मिर्ज़ा नईम बेग इब्न मिर्ज़ा करीम बेग दो हफ़्ते से यहाँ वारिद और अपनी बहन के यहाँ साकिन हैं। कहते हैं के तेरे साथ दिल्ली चलूँगा और वहाँ से लोहारू जाऊँगा। मेरे चलने का हाल ये है के इंशा अल्लाह् ताला इसी हफ़्ते में चलूँगा।

आप चल चूके, उर्दू लिखते लिखते जो ख़त के मुश्तमिल एक मतलब पर था उसको तुमने फ़ारसी में लिखा, और फ़ारसी भी मुत्सद्दियाना नहीं के अमीर को और अपने बुज़ुर्ग को कभी बसीग़ए मुफ़रद न लिखें। ये वही छोटी 'हे' बड़ी 'हे' का क़िस्सा है। ख़ैर, ख़त न दिखाऊँगा, मा[2] कुतेबा फ़ीहे कहकर काम निकाल लूँगा। मैंने जो चलते वक़्त फ़रुख़ सियर के अतालीक़[3] की ज़बानी भाई को कहला भेजा था के तुम अगर कोई अपना मुद्दआ कहो तो मैं उसकी दुरुस्ती करता लाऊँ। जवाब आया के और कुछ मुद्दआ नहीं, सिर्फ़ मकान का मुक़दमा है, सो उस मुक़दमे में मेरा और मेरे शुरका[4] का वकील वहाँ मौजूद है। अगर वो इस अम्र का ज़िक्र करते तो मैं उनसे उनके ख़ालू अली असग़रख़ाँ के नाम अर्ज़ी या ख़त लिखवाता लाता। बहरहाल अब भी क़ासिर[5] न रहूँगा। तारीख़ ऊपर लिख आया। नाम अपना बदल कर 'मग़लूब' रख लिया है।

४६

साहब,

तुम्हारा ख़त पहुँचा। मतालिब दिलनशीं हुए। ग़ोग़ा[6] ए ख़ल्क़ से मुझको ग़र्ज़ नहीं। क्या अच्छी रुबाई है किसी की—

---

१. प्रदान। २. जो कुछ उसमें लिखा गया। ३. अध्यापक। ४. भागीदार। ५. असावधान। ६. संसार का कोलाहल।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन ख़ाँ 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

मोमिन[1] ब ख़याले ख़ीश मस्तम दानद
काफ़िर बगुमाँ ख़ुदा परस्तम दानद
मर्दम ज़ ग़लत फ़हमिए मर्दुम मुर्दम
अँ काश कसे हरुँचे हस्तम दानद

भाइयों से फिर नहीं मिला। बाज़ार में निकलते हुए डर लगता है। जवाहर ख़बरदार, मेरा सलाम अख़वीन[2] को और उनका सलाम मुझको पहुँचा देता है। इसी को ग़नीमत जानता हूँ;

ताब लाए ही बनेगी 'ग़ालिब'
वाक़आ सख़्त है और जान अज़ीज़

हज़ारों ख़ाहिशें ऐसी के हर ख़ाहिश पे दम निकले
बहुत निकले मेरे अरमान, लेकिन फिर भी कम निकले

ये मक्ता और मतला मुन्दर्जए 'दीवान' है। मगर इस वक़्त ये दोनों शेर हस्बे हाल नज़र आए। इस वास्ते लिख दिए गए। तुमने अशार जदीद माँगे। ख़ातिर तुम्हारी अज़ीज़; एक मतला, सिर्फ़ दो मिसरे आगे के कहे हुए, याद आ गए के वो दाख़िले 'दीवान' भी नहीं। उन पर फ़िक्र करके, एक मतला और पाँच शेर लिखकर सात बैत की एक ग़ज़ल तुमको भेजता हूँ। भाई, क्या कहूँ के किस मुसीबत से ये छः बैतें हात आई है और वो भी बलन्द रुतबा नहीं—

बहुत सही ग़म गेती, शराब कम क्या है?
ग़ुलामे साक़ी ए कौसर हूँ मुझको ग़म क्या है?

---

१. मोमिन अपने ध्यान में मुझे उन्मत्त मानता है, काफ़िर मुझे ईश्वर भक्त समझता है। लोगों की भ्रान्तियों के कारण मैं मर गया, मैं मर गया। काश, जैसा मैं हूँ, वैसा कोई मुझे जानता। २. बन्धु।

मतला सानी—

रक़ीब पर है अगर लुत्फ़ तो सितम क्या है ?
तुम्हारी तर्ज़ो रविश जानते हैं हम क्या है ?
कटे तो शब कहें, काटे तो सांप कहलाए,
कोई बताओ के वो ज़ुल्फ़े ख़म बख़म क्या है ?
लिखा करे कोई अहकामे तालए मौलूद,
किसे ख़बर के वहाँ जुम्बिशे क़लम क्या है ?
न हश्रो[1] नश्र का क़ायल न केशो मिल्लत[2] का
ख़ुदा के वास्ते ऐसे की फिर क़सम क्या है ?
वो दादो[3] दीदे गिराँ माया शर्त्त है हमदम
वगर ना मोहरे सुलेमान व जामे जम क्या है ?
सुख़न में ख़ामए 'ग़ालिब' की आतिश अफ़शानी
यक़ीन है हमको भी लेकिन अब उसमें दम क्या है?

लो साहब, तुम्हारा फ़रमाने क़ज़ा[4] तवामान बजा लाया। मगर इस ग़ज़ल का मसविदा मेरे पास नहीं है, अगर ब एहतियात रखोगे और उर्दू के दीवान के हाशिए पर चढ़ा दोगे तो अच्छा करोगे। उम्र फ़रावान[5] व दौलत फ़ज़ूँबाद[6] फ़क़्त।

५०

(२६ दिसंबर १८६५)

जाना जाना,

एक ख़त मेरा, तुम्हारे दो ख़तों के जवाब में तुमको पहुँचा होगा। आज मैं अली असग़र ख़ाँ बहादुर के घर गया। उनसे मैंने तज़करा किया। फ़रमाया

---

१. प्रलय के पश्चात् ईश्वर के सम्मुख उपस्थित होने और दण्ड प्राप्त करने का दिन। २. सम्प्रदाय, धर्म। ३. दान और दर्शन दो मूल्यवान चीजें चाहिए। ४. प्राणघाती। ५. अधिक। ६. धन बढ़े।

के फ़रुख़ सियर की मां को लिख भेजो के साल भर की तनखा की रसीद भेज दें; यहाँ से रुपया भेज दिया जाएगा। आज मंगल है, ७ शाबान की और २६ दिसम्बर की। दोनों भतीजे तुम्हारे जुमे के दिन, २२ दिसम्बर को रवाना देहली हुए। मैं परसों योमुलस ख़मी[1] को मरहले[2] पैमाँ हूँगा।

अव्वले[3] मा आख़िरे हर मुन्तही, दर इकरामो इज़्ज़त
आख़िरे मा जेबे तमन्ना तिही; अज़ मालो दौलत

तू 'कमाने करोहा' कहा कर, फ़ारसी भगारा कर। मुझसे हिन्दी की चिन्दी सुन—एक ग़ुलेल हुज़ूर ने देनी की है, एक अली असग़रख़ां से उमेठी दोनों कल आएँगी। मिर्ज़ा नईम बेग इब्ने मिर्ज़ा करीम बेग दो तीन हफ़्ते से यहाँ वारिद और अपनी बहन के हाँ साकिन[4] हैं। ज़ाद की ख़ुदा ने चिट्ठी फ़क़ीर पर की। राहला वो जानें। फ़क़त।

—ग़ालिब

५१

(१३ जनवरी १८६५)

मियाँ, चलते वक़्त तुम्हारे चचा ने ग़ुलेल की फ़रमाइश की थी। रामपूर पहुँच कर वो बे सई[5] व बे तलाश हात आ गई। बनवा रखी। लड़कों ने मुलाज़िमों ने, सब ने मुझसे सुन लिया के ये नवाब ज़ियाउद्दीनख़ाँ के वास्ते है अब चलने से एक हफ़्ता पहले तुमने ग़ुलेल माँगी। भाई, क्या बताऊँ के कितनी जुस्तजू की, कहीं बहम न पहुँची। दस रुपए तक मोल को न मिली। नवाब

---

१. गुरुवार। २. रास्ते पर चलूँगा। ३. हमें आरंभिक स्थिति में ही जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई वह प्रत्येक ऐसे व्यक्ति का अन्तिम काल है जिसने सफलता प्राप्त की हो। और हमारी अन्तिम स्थिति वह है जब कि हमें धन-सम्पत्ति की इच्छा नहीं रहती। ४. ठहरे हुए। ५. अनायास।

साहब से माँगी। तोशाखा़ने में भी न थी, एक अमीर के हाँ पता लगा। दौड़ा हुआ गया। खपची मौजूद पाई, लेकिन क्या खपची ? जैसे नजफ़ख़ाँ के अहद के तूरानियों में हमारी तुम्हारी हड्डी, बनवाने की फ़ुर्सत कहाँ। आज ली, कल चल दिया। इस बाँस की क़द्र करना और इसको अच्छी तरह बनवा लेना।

बादशाह फ़रुखसियर और उसके इख़वान[1] खुशो खुर्रम हैं। फ़रुखसियर की माँ ने बाजरे का हलवा सोहन खिलाया।

२५ शाबान, १३ जनवरी।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

५२

सआदत व इक़बाले निशां, मिर्ज़ा अलाउद्दीनख़ाँ बहादुर को फ़क़ीर असदुल्लाह् की दुआ पहुँचे।

कल शाम को मख़दूम मुकर्रम जनाब आग़ा मुहम्मद हुसेन साहब शीराज़ी ब सवारी रेल मानिन्द दौलते दिलखाह, के नागाह आवे, फ़क़ीर के तकिए में तशरीफ़ लाए। शब को जनाब डिप्टी विलायत हुसेनखाँ के मकान में आराम फ़रमाया। अब वहाँ आते हैं। क़रीबे[2] तुलूए आफ़ताब ब चश्मे नीमबाज़[3] ये रुक़्क़ा तुम्हारे नाम लिखा है। जो कुछ जी चाहता है, वो मुफ़स्सिल नहीं लिख सकता। मुख्तसरे मुफ़ीद, आग़ा साहब को देख कर यों समझना के मेरा बूढ़ा चचा 'ग़ालिब' जवान होकर मेले की सैर को हाज़िर हुआ है। पस नूर चश्माँ राहतजाँ मिर्ज़ा बाक़रअलीख़ाँ बहादुर व मिर्ज़ा हुसेनअलीख़ाँ बहादुर जनाब आग़ा साहब का क़दम बोस[4] बजा लायें और उनकी ख़िदमत गुज़ारी को अपनी सआदत और मेरी खुशनूदी समझें। बस।

---

१. भाई बन्धु। २. सूर्योदय के लगभग। ३. अर्द्धोन्मीलित नेत्र। ४. चरण-चुम्बन।

हाँ, मिर्ज़ा अलाई, अगर करनैल अलेक्जेंडर इस्कंदर बहादुर से मुलाक़ात हो तो मेरा सलाम कहना।

५३

मियां,

मुद्दआ असली इन सुतूर की तहरीर से ये है के अगर कल कमेटी में गए हो तो मेरे सवाल के पढ़े जाने का हाल लिखो। ज़िम्नन[1] ज़िक्र एक मुदब्बिर का लिखा जाता है। जो तुमने इस मुद्दब्बिर के सिफ़ात लिखे सब सच हैं। अहमक़, ख़बीसुल नफ़्स, हासिद, तबियत बुरी, समझ बुरी, क़िस्मत बुरी। एक बार मैंने दकनी की दुश्मनी में गालियां खाईं, एक बार बनारसी की दोस्ती म गालियाँ खाऊँगा। मैंने जो तुम्हें इसके बाब में लिखा था वजह उसकी ये थी के मैंने सुना था के तुमने अपने साईसों से कह दिया है, या कहा चाहते हो के इसको बाज़ार में बे हुरमत[2] करें। ये बात ख़िलाफ़े शेव ए[3] मोमनीन है। खुलासा ये के ये क़स्द न करना। ये मोइद[4] उस क़ौल का है के जो मैंने तुमसे पहले कहा था, के तुम यों तसव्वुर करो के इस नाम का आदमी इस मुहल्ले में बल्के इस शहर में कोई नहीं।

—ग़ालिब

५४

साहब,

बहुत दिन से तुम्हारा ख़त नहीं आया। आपका वकील बड़ा चर्ब ज़बान[5] है। मुक़दमा उसने ज़ीत लिया। चुनांचे उसकी तहरीर से तुमको मालूम हुआ होगा।

---

१. प्रसंगवश, गौण रूप से। २. अपमानित। ३. धर्मपरायण व्यक्ति की नीति के विरुद्ध। ४. समर्थक। ५. बहुत बातें बनाने वाला।

सुनता हूँ के हम्ज़ाख़ां को इन दिनों इल्लते मशायख़ का ज़ोर है और 'सादी' की इस बैत पर अमल करते हैं--

कसाने[1] के यज़दां परस्ती कुनन्द
ब आवाज़ दूलाब मस्ती कुनन्द

ख़ुदा मुबारक करे।

५५

मियां,

तुम्हारे बाप का ताबे, तुम्हारा मुती,[2] फ़रुख़ मिर्ज़ा का फ़रमाँ बरदार, मगर अभी उठा हूँ। अपने को भी नहीं समझा के मैं कौन हूँ। आज फ़रुख़-साहब के नाम का रुक़्क़ा पहुँच जाएगा। ६ जुज्व तुम्हारे दिए हुए मीर मेहदी हुसेन साहब को दिए और बाक़ी, दिन चढ़े अैयाने[3] मतबा जमा हो लें तो वो औराक़ भी मँगा दूँ।

—ग़ालिब

५६

(२१ जून १८६८)

इक़बाले निशाब वाला शान, सद रहे अज़ीज़तर अज़ जान, मिर्जा अलाउद्दीनख़ां को दुआ ए दरवेशानए ग़ालिबे दीवाना पहुँचे।

साले निगारिश तुमको याद होगा। मैंने दबिस्तानें[4] फ़ारसी का तुमको जांनशीन व ख़लीफ़ा क़रार देकर एक सिजल[5] लिख दिया है। अब जो

---

१. सन्त लोग केवल गायकों के गाने से ही मस्त नहीं हो उठते अपितु पानी भरे डोल की आवाज़ सुनकर भी उनका हृदय नाचने लगता है। २. भक्त। ३. प्रेस के कर्मचारी। ४. पाठशाला। ५. तहरीर।

चार कम अस्सी बरस की उम्र हुई और जाना के मेरी ज़िन्दगी बरसों क्या महीनों की न रही, शायद बारह महीने, जिसको एक बरस कहते हैं, और जीऊँ; वर्ना दो-चार महीने, पाँच-सात हफ़्ते, दस-बीस दिन की बात रह गई है। अपने सिबाते[1] हवास में, अपने दस्तख़त से ये तौक़ी तुमको लिख देता हूं के फ़न्ने उर्दू में नज़्मन व नस्रन तुम मेरे जाँनशीं हो। चाहिए के मेरे जानने वाले जैसा मुझको जानते थे वैसा तुमको जानें और जिस तरह मुझको मानते थे, तुमको मानें।

कुल्लो[2] शई हाले कुन इल्लाह वजहहुव यब्क़ा वजहो रब्बिक़ा ज़ुल जलालेवल इकराम।

---

१. स्थिर। २. संसार नाशमान है, ईश्वर ही शाश्वत है, वही ऐश्वर्यशाली है, प्रतापी है, दयालु है।

ग़ालिब के पत्र

यक़शंबा, सलख़[1] सफ़र सन् १२८५ हि० २१ जून सन् १८६८ ई० देहली।

(श्री सैयद अहमद अज़ीज़ कैफ़ी सम्पादक तस्वीर 'जज़बात' ने अधोलिखित पत्र को फ़रवरी १९२४ के अंक में प्रकाशित किया। उन्होने इस बात का उल्लेख किया है कि ग़ालिब ने यह पत्र उनके दादा को लिखा था। पत्र में इस बात का उल्लेख नहीं है कि यह वास्तव में किसे लिखा गया था।)

(१८ जुलाई १८५८ ई०)

गुमाने ज़ीस्त बुवद बर मनत ज़ बेदर्दी
बदस्त मर्ग वले बद्तर अज़ गुमाने तो नीस्त

मुझे जिन्दा समझते हो, जो नस्रे फ़ारसी की फ़रमायश करते हो। ग़नीमत नहीं जानते के मुर्दा कुछ लिख कर भेज देता है ? पिन्सन अगरचे मिलेगा, पर देखिए कब मिलेगा ? उसके मिलने तक क्या होगा ? और उसके मिलने से मेरा क्या काम निकलेगा ? क़ते नज़र इन उमूर से इस वजह[2] क़लील को किस बस्ती में बैठकर खाऊँगा ? ये शहर अब शहर नहीं, क़हर है। क़सीदे के अशार अभी क्यों भेजो ? जब ज़ेबे[3] इन्तबा पा चुके तब एक लम्बर मुझको भी भेज देना।

मैंने, बाद तौतए वो तम्हीद, आग़ाज़े मई सन् १८५७ ई० से अपनी सरगुज़िश्त लिखी है और बहैसियत इक़्ते ज़ाए[4] मुक़ाम वक़ाय भी उसमें दर्ज किए हैं। शेवए[5] लुज़ूम मा मालाय लुज़ूम मरई रखा है, याने इबारते फ़ारसी बेआमेज़िश[6] लफ़्ज़े अरबी लिखी है और फ़ारसी भी वो फ़ारसी क़दीम के जिसका

---

१. चन्द्रोदय की तिथि। २. थोड़ा मावज़ा। ३. मुद्रण से अलंकृत। ४. स्थान और घटना के अनुरोध के अनुसार। ५. पूर्णरूप से लिखा है। ६. बिना मिलाए।

अब पारस के बिलाद[1] में भी निशान नहीं । ता[2] बहिन्दुस्तान चे रसद ? चालीस सफ़े लिख चुका हूँ । इतमाम[3] में इन्तज़ार यही है के पिन्सन का मुक़दमा तय हो चुके । मिले या जवाब मिले और मैं बहरहाल किसी जगह इक़ामत[4] गुज़ीं हो लूँ । हाँ, उसके वक़्त तक जो कुछ क़ाबिले तहरीर जवानिब–अजानिब से मालूम होगा वो नाचार लिख दूँगा । यहाँ कोई छापेखाना नहीं है । अगर इजाज़त दोगे तो बाद इख़्तेताम इन औराक़ को तुम्हारे पास भेज दूँगा ताके हज़ार जिल्द मुन्तबा होकर उजड़ी हुई क़लम रू हिन्द में फैल जाएँ ।

मगर[5] साहब दिले रोज़े बरहमत
कुनद दर हक़्के ईं मिस्कीं दुआए

शेर ज़माँ ख़ाँ अपने बाप की रिहाई की फ़िक्र में मेरठ गए हैं, किस वास्ते के वो ग़रीब यहाँ की हवालात में से तहक़ीक़ात के लिए वहाँ भेजा गया।

यकशंबा १८ जुलाई सन् १८५८ ई० ।

—ग़ालिबे बेनवा[6]

---

१. नगर (बल्दा ब० व०)। २. हिन्दुस्तान का क्या ज़िक्र। ३. समाप्ति । ४. निवास । ५. संभवतः कोई पुण्यात्मा इस दरिद्र के लिए कुछ प्रार्थना करे।। ६. दरिद्र ।

मुंशी शीवनरायन 'आराम' के नाम

१

साहब,

खत पहुँचा। अखबार का लिफ़ाफ़ा पहुँचा। लिफ़ाफ़ों की खबर पहुँची। आपने क्यों तकलीफ़ की ? लिफ़ाफ़े बनाना दिल का बहलाना है। बेकार आदमी क्या करे ? बहरहाल, जब लिफ़ाफ़े पहुँच जाएँगे, हम आपका शुक्र बजा लाएँगे।

हरचे[१] अज़ दोस्त मी रसद नीकोस्त

यहाँ आदमी कहाँ है, के अखबार का खरीदार हो ? महाजन लोग जो यहाँ बसते हैं, वो ये ढूँढ़ते-फिरते हैं के, गेहूँ कहाँ सस्ते हैं। बहुत सखी होंगे तो जिन्स पूरी तोल देंगे। काग़ज़ रुपए महीने का क्यों मोल लेंगे ?

कल आपका खत आया। रात भर मैंने फ़िक्रे शेर में खूने जिगर खाया, इक्कीस शेर का क़सीदा कह कर, तुम्हारा हुक्म बजा लाया। मेरे दोस्त खुसूसन मिर्ज़ा तफ़्ता जानते हैं के मैं फ़ने तारीख को नहीं जानता। इस क़सीदे में एक रविशे खास से इज़हार सन् १८५८ का कर दिया है। खुदा करे, तुम्हारे पसन्द आवे। तुम खुद क़द्रदाने सुखन हो और तीन उस्ताद इस फ़न के तुम्हारे यार हैं। मेरी मेहनत की दाद मिल जाएगी।

---

१. मित्र जो कुछ दे वह शुभ और अभीष्ट है।

क़सीदा

मलाज़े[1] कशवरो[2] लश्कर पनाहे शहरो सिपाह
जनाबे आलीए ऐलन ब्रोन वाला जाह;
बलन्द रुतबा वो हाकिम, वो सरफ़राज़ अमीर
के बाज[3] ताज से लेता है जिसका तरफ़े कुलाह
वो मह्‌ज़ रहमतो राफ़त[4], के बहरे अहले जहाँ
नयाबते दमे ईसा करे है जिसकी निगाह
वो ऐने अद्‌ल, के दहशत से जिसकी पुरसिश की
बने है शोल ए आतिश अनीसे परए काह[5]
ज़मीं से सौद ए गौहर उठे बजाय गुबार
जहाँ हो तौसने[6] हश्मत का उसके जौलाँगाह
वो महरबाँ हो तो अन्जुम[7] कहें इलाही शुक्र
वो ख़श्मगीं[8] हो तो गर्दूं कहे—'ख़ुदा की पनाह,
ये, उसके अद्‌ल से अज़्दाद को है आमेज़िश—
के दश्तो कोह के अतराफ़ में ब हर सरे राह
हिज़ब्र[9] पंजे से लेता है काम शाने[10] का
कभी जो होती है उलझी हुई दुमे रूबाह[11]
न आफ़ताब वले आफ़ताब का हम चश्म,
न बादशाह वले मर्तबे में हमसरे शाह

---

१. शरणगृह, सेना का शरण गृह। २. देश और सेना। ३. खिराज। ४. वह संसार के लोगों के लिए केवल दयालुता है। जिस तरह हज़रत ईसा की साँसें मृतकों को जीवित कर देती थी, उसी तरह की सामर्थ्य इनकी सांस में है। ५. घास की पत्ती। ६. ऐश्वर्य का अश्व। ७. नक्षत्र। ८. रुष्ट। ९. शेर। १०. कंघी। ११. लोमड़ी।

खुदा ने उसको दिया एक खूबरू फ़र्जन्द
सितारा जैसे चमकता हुग्रा ब पहलू ए माह
जहे सितारहे रौशन, के जो उसे देखे
शोग्रा ए मेहर दरख्शाँ हो उसका तारे निगाह
खुदा से है ये तवक्क़ो के ग्रहदे तिफ़्ली में
बनेगा शर्क़[1] से ता ग़र्ब इसका बाज़ीगाह
जवान होके करेगा ये वो जहाँ बानी
के ताबे इसके हों रोज़ो शबे सुपेदो स्याह
कहेगी खल्क़ इसे 'दावरे[2] पेहर शिकाह'
लिखेंगे लोग इसे 'खुसरे वे सितारा सिपाह
ग्रता करेगा खुदावन्दे कारसाज़ इसे
खाने रोशनो खू ए खुशो दिले ग्रागाह
मिलेगी इसको वो ग्रक़्ले नेहुफ़्तादाँ[3] के इसे
पड़े न क़ते खुसूमत में ग्रहतयाजे गवाह
ये तुर्कताज़ से बरहम करेगा किशवरे रूस
ये लेगा, बादशहे चीं[4] से छीन तख्तो कुलाह
सने ईस्वी, ग्रठारह सौ ग्रौर ग्रठावन
ये चाहते हैं जहाँ, ग्राफ़रीं से शामो[4] पगाह
ये जितने सैकड़े हैं सब हज़ार हो जाएँ
दराज़ इसकी हो उम्र इस क़दर, सुखन कोताह
उम्मीदवारे इनायात 'शीवनरायन'
के ग्रापका है नमकख्वार ग्रौर दौलत ख्वाह

---

१. पूर्व से पश्चिम तक। २. ग्राकाश पर ग्रधिकार रखने वाला ग्रधिकारी। ३. गुप्त चीजों को जानने वाला। ४. प्रातःसायं।

मुंशी शीवनरायन 'आराम' के नाम

ये चाहता है के दुनिया में इज़्ज़ोजाह के साथ
तुम्हें और इसको सलामत रखे सदा अल्लाह्

२

(३१ अगस्त १८५८)

शफ़ीक़ मेरे, मुकर्रम मेरे, मुंशी शीवनरायन साहब,

तुम हज़ारों बरस सलामत रहो। तुम्हारा मेहरबानी नामा इस वक़्त पहुँचा और मैंने इसी वक़्त जवाब लिखा। बात ये है के मैं नहीं चाहता के दो जुज़्व या चार जुज़्व की किताब हो। छ जुज़्व से कम न हो। मिस्तर दस-ग्यारह सतर का हो; मगर हाशिया तीन तरफ़ बड़ा रहे। शीराज़े की तरफ़ का कम हो, ये बातें सब मिर्ज़ा तफ़्ता को लिख चुका हूँ। उस यारे बेपरवा ने तुमसे शायद कुछ नहीं कहा। इसके सिवा ये है के कापी की तसही हो, ग़लतनामे[१] की हाजत न पड़े। आप ख़ुद मुतवज्जह रहिएगा और मुंशी नबी-बख़्श साहब को अगर कहिएगा तो वो भी आपके शरीक रहेंगे, और मिर्ज़ा तफ़्ता तो मालिक ही हैं। काग़ज़ 'शीवरामपुरी' हो। ख़ैर, मगर सफ़ेद व मुहरा किया हुआ और लआबदार हो। फिर ये हो के हाशिए पर जो लुग़ात के मानी लिखे जाएँ तो उसकी तर्ज़े तहरीर और तक़सीम दिल[२] पसन्द और नज़र-फ़रेब[३] हो। हाशिए की क़लम बनिस्बत मतन की क़लम के ख़फ़ी[४] हो। ख़ुलासा ये है के इन जिल्दों में से दो जिल्दें विलायत को जाएँगी। एक जनाब फ़ैज़माब मलिकए मुअज़्ज़िम एंग्लिस्तान की नज़र और एक मेरे आक़ाए क़दीम लार्ड इलनबरा बहादुर की नज़र, और चार जिल्दें यहाँ के चार हाकिमों के नज़र करूँगा। 'मिर्ज़ा तफ़्ता' को पाँच जिल्दों को लिखा था, लेकिन अब छ

१. अशुद्धिपत्र। २. मनोरम। ३. नेत्राकर्षक। ४. बारीक।

जिल्दें तैयार कर दीजिएगा। यानी शीराज़ा और जिल्द और जदवल। और और इन छ जिल्दों की जो लागत पड़े, रुपया जिल्द से लेकर दो रुपए जिल्द तक, वो मुझसे मँगवा भेजिएगा। मैं बमुजर्रद[1] तलब के फ़ौरन हुण्डवी भेज दूँगा। एक ख़रीदार पचास जिल्द के वहाँ पहुँचे हैं। वास्ते ख़ुदा के मिर्ज़ा तफ़्ता से कहिए के उनसे मिलें। याने राजा उम्मीदसिंघ बहादुर इन्दौर वाले। वो 'छली ईंट' में पोलीस के पिछवाड़े रहते हैं। ताज्जुब है के आप का खत आ गया और 'मिर्ज़ा तफ़्ता' ने मुझे पार्सल की रसीद नहीं लिखी। अब मेरा खत फारसी अपने नाम का और ये ख़त, दोनों ख़त उनको दिखा दीजिएगा और राजा उम्मीदसिंघ से मिलने को कहिएगा। और हाँ साहब ये उनको ताकीद कीजिएगा के वो रूबाई जो मैंने लिख भेजी है उसको सबसे पहले जहाँ उसका निशान दिया है, इसी फ़िक्रे के आगे, ज़रूर ज़रूर लिख दीजिएगा। और वो रूबाई बीसवें सफ़े में इस फ़िक्रे के आगे है—

नै नै अख्तरे बख्ते खुसरो दर बलन्दी बजाए रसीद के रुख़ अज़ खाकियां निहुफ़्त।

तुम उनको याद दिलाकर उनसे लिखवा लेना ज़रूर ज़रूर। ये जो तुमने लिखा के साहब ने सुनकर इसको पसन्द किया, मैं हैरान हूँ के कौन-सा मुक़ाम तुमने पढ़ा होगा। क्योंकर कहूँ के साहब इस इबारत को समझे होंगे? इसकी जो हक़ीक़त हो मुफ़स्सिल लिखो। ज़्यादा, ज़्यादा।

सेशंबा, ३१ माहे अगस्त सन् १८५८ ई०।

ज़रूरी जवाब तलब

राक़िम—असदुल्लाह

---

१. मांगते ही।

३

(३ सितम्बर १८५८)

महाराज,

सख़्त हैरत में हूँ के मुंशी हरगोपाल साहब ने मुझको ख़त लिखना क्यों छोड़ा। अगर मुझसे ख़फ़ा हैं तो क्यों ख़फ़ा हैं और अगर शहर में नहीं तो कहाँ गए और क्यों गए हैं, और कब तक आएँगे? आप मेहरबानी फ़रमाकर ये उमूर मुझको लिखकर भेजिए। इससे अलावा एक रूबाई मिर्ज़ा तफ़्ता को भेजी है और उनको लिखा है के इसको 'दस्तम्बू' में फ़लां जगह दर्ज कर देना और एक दो फ़िक़रे भाई मुंशी नबीबख़्श साहब को लिखे हैं और उनको भी 'दस्तम्बू' में लिख देने का महल बता दिया है। मैं नहीं जानता इन दोनों साहबों ने मेरे कहने पर अमल किया और उन्होंने नज़्म को और उन्होंने नस्र को किताब के हाशिये पर चढ़ा दिया, या नहीं। तुमसे बहज़ार आरज़ू ख़्वाहिश करता हूँ के अगर वो रूबाई और वो फ़िक़रे हाशिए पर चढ़ गए हैं, तो मुझको उनके लिखे जाने की इत्तिला दीजिए के तशवीश रफ़ा हो और अगर उन दोनों साहबों ने बेपरवाई की है तो वास्ते ख़ुदा के आप मिर्ज़ा तफ़्ता से रूबाई और मुंशी नबीबख़्श साहब से दोनों फ़िक़रे ले लीजिए और महले तहरीर मेरे ख़त से मालूम करके उनको जा बजा हाशिए पर रक़म कीजिए और मुझको इत्तिला दीजिए ज़रूर, ज़रूर, ज़रूर। और एक और काम आपको करना चाहिए के शायद तीसरे सफ़े के आख़िर में या चौथे सफ़े के अव्वल में ये फ़िक़रा है—

अगर दर दमे दीगर ब नहेब मबाश बहम ज़नद

'नहेब' का लफ़्ज़ अरबी है, ये 'सहव' से लिखा गया है। इसको छील डालिएगा और इसकी जगह 'नवाए मबाश' बना दीजिएगा। हक़ीक़त लिख कर, अब सवालाते अलग अलग लिखता हूँ—

पहला सवाल—मिर्ज़ा तफ़्ता का हाल और उनके ख़त के न आने की वजह लिखिए।

दूसरा सवाल—मिर्ज़ा तफ़्ता ने अगर रूबाई 'दस्तम्बू' के हाशिए पर लिख दी तो उसकी इत्तिला; वर्ना उनके नाम के खत से रूबाई और तहरीर का महल मालूम करके आप हाशिए पर लिख दें और मुझको इत्तिला दें।

तीसरा सवाल—मुंशी नबीबख़्श साहब ने अगर मेरी भेजी हुई नस्र दर्ज कर दी है तो उसकी इत्तिला वर्ना वो नस्र उनसे लेकर और महल मालूम कर के हाशियए किताब पर लिख दीजिए और मुझको लिख भेजिए।

चौथा सवाल—आप, जिस तरह ऊपर लिख आया हूँ, 'नहेब' की जगह 'नवाय' का लफ़्ज़ बना कर मुझ पर इनायत कीजिए।

पांचवा सवाल—ख़रीदार पचास जिल्दों के पहुँचे, मिर्ज़ा तफ़्ता से मिले, रुपया पचास जिल्द की क़ीमत का दिया या हनोज़ ये उमूर वक़ू में नहीं आए? इसकी इत्तिला ज़रूर दीजिए।

छटा सवाल—छापा शुरू हो गया नहीं। अगर शरू नहीं हुआ तो क्या सबब?

मुतवक़्क़े हूँ के मेरे ये सब काम अज़ राहे इनायत बनाकर इन छ सवाल का जवाब, इसी तरह जुदा जुदा लिखिए और ज़रूर लिखिए और जल्द लिखिए।

रोज़े जुमा, सुअ्रम सितम्बर सन् १८५८ ई०।

राक़िम—असदुल्लाह ख़ाँ

४

(१९ अक्टूबर १८५८)

बरखुरदार नूरे चश्म मुंशी शीवनरायन को मालूम हो के मैं क्या जानता था के तुम कौन हो? जब ये जाना के तुम नाज़िर बंसीधर के पोते हो, तो

मालूम हुआ के मेरे फ़र्ज़न्द दिलबन्द हो। अब तुमको मुशफ़िक़व मुकर्रम लिखूँ तो गुनहगार। तुमको हमारे खानदान और अपने खानदान की आमेजिश का हाल क्या मालूम है ? मुझसे सुनो--तुम्हारे दादा के वालिद, अहदे "नजफ़-खाँ" व "हमदानी" में, मेरे नाना साहब मरहूम खाजा ग़ुलाम हुसेनखां के रफ़ीक़[1] थे। जब मेरे नाना ने नौकरी तर्क की और घर बैठे तो तुम्हारे पर-दादा ने भी कमर खोली, और फिर कहीं नौकरी न की। ये बातें मेरे होश से पहले की हैं, मगर जब जवान हुआ तो मैंने ये देखा के मुंशी बंसीधर, खां साहब के साथ हैं और उन्होंने जो "कैठम गांव" अपनी जागीर का सरकार में दावा किया है तो मुंशी बंसीधर उस अम्र के मुसरिम[2] हैं और वकालत और मुख़्तारी करते हैं। मैं और वो हमउम्र थे, शायद मुंशी बन्सीधर मुझसे एक-दो बरस बड़े हों या छोटे हों। उनीस-बीस बरस की मेरी उम्र और ऐसी ही उम्र उनकी। बाहम शतरंज और इख़्तलात और मुहब्बत, आधी आधी रात गुज़र जाती थी। चूँके घर उनका बहुत दूर न था इस वास्ते जब चाहते थे चले जाते थे। बस, हमारे उनके मकान में मछिया रंडी का घर और हमारे दो कटरे दरमियान थे। हमारी बड़ी हवेली वो है के जो अब लख्मीचन्द सेठ ने मोल ली है। इसी के दरवाज़े की संगीन बारहदरी पर मेरी निशिस्त थी और पास उसके एक 'खटिया वाली हवेली' और सलीमशाह के तकिए के पास दूसरी हवेली और काले महल से लगी हुई एक और हवेली और उससे आगे बढ़ कर एक कटरा के वो 'गडरियों वाला' मशहूर था और कटरा के वो 'कश्मीरन वाला' कहलाता था। उस कटरे के एक कोठे पर मैं पतंग उड़ाता था और राजा बलवानसिंघ से पतंग लड़ा करते थे। 'वासलखां' नामी एक सिपाही तुम्हारे दादा का पेशदस्त रहता था और वो कटरों का किराया उगाह कर उनके पास जमा करवाता था।

---

१. मित्र। २. निगरानकार।

भाई, तुम सुनो तो सही, तुम्हारा दादा बहुत कुछ पैदा कर गया है, इलाक़े मोल लिए थे और ज़मींदारा अपना कर लिया था, दस-बारह हज़ार रुपए की सरकार की मालगुज़ारी करता था। आया वो सब कारख़ाने तुम्हारे हात आए या नहीं ? इसका हाल अज़रूए तफ़सील जल्द मुझको लिखो।

रोज़े सेशंबा, १९ अक्तूबर, वक़्ते वरूदे ख़त।

—असदुल्लाह्

५

(२३ अक्टूबर १८५८)

बरख़ुरदार इक़बाल निशां मुंशी शीवनरायन को बाद दुआ के मालूम हो—

तुम्हारे दो ख़त मुतवातिर पहुँचे। मेरे भी दो ख़त पसोपेश पहुँचे होंगे ? माफ़िक़ उस तहरीर के अमल किया होगा ? दो जिल्दें पुरतकल्लुफ़[1] और पाँच जिल्दें बनिस्बत उसके कम तकल्लुफ़ मिर्ज़ा हातिम अली साहब के औहद ए[2] एहतमाम में हैं। उससे हमको और तुमको कुछ काम नहीं। वो जैसी चाहें बनवाकर भेज दें। तुम एक जिल्द—बस, ज़्यादा सर्फ़ क्यों करो ? अपने तौर पर अपनी तरफ़ से जैसी चाहो, बनवाकर भेज दो, मैं तुमको अपने प्यारे यार बंसीधर की निशानी जानता हूँ, उसको, तुम्हारी निशानी जानकर अपनी जान के बराबर रखूँगा। बाक़ी हाल अपने ख़ानदान और तुम्हारे ख़ानदान (का) और बाहम पलकर अपना और बंसीधर का बड़े होना सब तुमको लिख चुका हूँ। मुकर्रर क्यों लिखूँ ?

बादशाह की तस्वीर की ये सूरत है के उजड़ा हुआ शहर, न आदमी न आदमज़ाद ! मगर हाँ दो-एक मुसव्विरों[3] की आबादी का हुक्म हो गया है। वो रहते हैं, सो वो भी बाद अपने घरों के लुटने के आबाद हुए हैं, तस्वीरें भी उनके घरों म से लुट गईं। कुछ जो रहीं वो साहेबान अँगरेज़ ने बड़ी ख़ाहिश

१. सुन्दर। २. तत्वावधान। ३. चित्रकार।

से ख़रीद कर लीं। एक मुसव्विर के पास एक तस्वीर है, वो तीस रुपए से कम को नहीं देता। कहता है के तीन-तीन अशर्फ़ियों को मैंने साहब लोगों के हात बेची हैं, तुमको दो अशर्फ़ी को दूंगा। हाथी दांत की तख़्ती पर वो तस्वीर है, मैंने चाहा के उसकी नक़्ल काग़ज़ पर उतार दे। उसके भी बीस रुपए मांगता है और फिर ख़ुदा जाने अच्छी हो या न हो। इतना सर्फ़े[1] बेजा[2] क्या जरूर है। मैंने दो-एक आदमियों से कह रखा है, अगर कहीं से हात आ जाएगी तो लेकर तुमको भेज दूंगा। मुसव्विरों से ख़रीद करने का न ख़ुद मुझमें मक़दूर, न तुम्हारा नुक़सान मंजूर।

अब छापा तमाम हो गया होगा, वो पाँच और दो, सात किताबें जो मिर्ज़ा साहब के तहवील हैं, वो; और वो एक जिल्द जो तुमने मुझको देनी की है, वो; ये सब लौह और जिल्द की दुरुस्ती के बाद पहुँच जाएँगी। मगर वो चालीस किताबे सरासरी जो मुझे चाहिए हैं। वो तो आजकल में रवाना कर दो, और हाँ मेरी जान, ये चालीस किताबों का पशतारा[3] क्यों कर पहुँचेगा और महसूल इसका क्या होगा? और ये भी तो बताओ के वो दस जिल्दें राय उमीद-सिंघ के पास कहाँ भेजी जाएंगी? मिर्ज़ा तफ़्ता हातरस को जाते हुए उनका इन्दौर न होना और शायद फिर आगरे और दिल्ली का आना मुझको लिख चुके हैं। इन बातों का जवाब मुझको लिखो। तस्वीर के बाब में जो कुछ लिखो, वो करूँ और इन मुक़दमात से इत्तिला पाऊँ। जवाब जल्द लिखो और मुफ़स्सिल लिखो।

निगाश्ता व रवाँदाश्त ए २३ अक्तूबर सन् १८५८ ई०।

अज़—ग़ालिब

६

नूरे बसर, लख़्ते जिगर मुंशी शीवनरायन को दुआ पहुँचे।

---

१. व्यय। २. अनुचित। ३. बंडल।

ख़त और रिपोट का लिफ़ाफ़ा पहुँचा और सब हाल तुम्हारे ख़ानदान का दरियाफ़्त हुआ। सब मेरे जिगर के टुकड़े हैं और तुम अपने दूदमान[१] के चश्मो[२] चिराग़ हो।

"अलेलमा ताक़ा" शौक़ से लिखो। आख़िर के सफ़े की दो सतरें अज़ रूए मज़मून सरासर किताब के मज़मून के ख़िलाफ़ हैं। मैंने सरकार की फ़तह का हाल नहीं लिखा। सिर्फ़, अपनी पन्द्रह महीने की सरगुज़िश्त लिखी है। तक़रीबन शहरो[3] सिपाह का भी ज़िक्र आ गया है। और वो अपनी सरगुज़िश्त जो मैंने लिखी है, सो इब्तदाए ११ मई सन् १८५७ से ३१ जुलाई सन् १८५८ ई० तक लिखी है। शहर, सितम्बर में फ़तह हुआ। उसका भी बयान ज़िम्नन आ गया। ख़ूब हुआ जो तुमने मुझसे पूछा, वर्ना बड़ी क़बाहत[४] होती। अब मैं जिस तरह से कहूँ, सो करो। पहले सोंचो के तक़सीम यों है के तीन सतरें ऊपर और तीन सतरें नीचे; और बीच में एक सतर; इसमें किताब का नाम। क्यों मियाँ, तक़्सीम यों ही है? अब मैं दूसरे सफ़े पर सातों सतरें लिख देता हूँ। उसको मुलाहिज़ा करो और मेरा कहना मानो; वर्ना किताब की हक़ीक़त ग़लत हो जाएगी और मतबे पर बात आएगी। इस सफ़े में दो-एक बातें और समझा दूँ के वो ज़रूरी हैं। सुनो मेरी जान, 'नवाबी' का मुझको ख़िताब है, नज्मुदौला और अतराफ़ व जवानिब के उमरा सब मुझको नवाब लिखते हैं बल्के बाज़ अंगरेज़ भी। चुँनाचे साहब कमिश्नर बहादुर देहली ने जो अब इन दिनों में एक रूबकारी भेजी है, तो लिफ़ाफ़े पर "नवाब असदुल्लाहख़ाँ" लिखा। लेकिन ये याद रहे, नवाब के लफ़्ज़ के साथ 'मिर्ज़ा' या 'मीर' नहीं लिखते। ये ख़िलाफ़े[५] दस्तूर है। या नवाब असदुल्लाहख़ाँ लिखो, या मिर्ज़ा असदुल्लाहख़ाँ लिखो। और बहादुर का लफ़्ज़ तो दोनों हाल में वाजिब और लाज़िम है।

---

१. वंश। २. नेत्र और दीपक। ३. नगर और सैनिक। ४. बुरा। ५. नियम विरुद्ध।

७

बरखुरदार, कामगार को बाद दुआ के मालूम हो के 'दस्तम्बू' के आग़ाज़ की इबारत अज़ रू ए एहतियात दो बार इरसाल की है। यक़ीन है के पहुँच गई होगी और छापी गई होगी और आपने उसी इबारत से इश्तेहार भी अख़बार में छापा होगा, या अब छापिएगा।

बहरहाल, इस शहर के अख़बार सुनिए—हुक्म हुआ है दोशम्बे के दिन पहली तारीख़ नवम्बर को रात के वक़्त सब ख़ैरख़ाहाने अँगरेज़ अपने अपने घरों में रोशनी करें और बाज़ारों में और साहब कमिश्नर बहादुर की कोठी पर भी रोशनी होगी। फ़क़ीर भी इस तिहीदस्ती में, के अठारह महीने से पिन्सन मुकर्ररी नहीं पाया, अपने मकान पर रोशनी करेगा; और एक क़ता पन्द्रह बैत का लिख कर साहब कमिश्नर शहर को भेजा है। आपके पास उसकी नक़ल भेजता हूँ। अगर तुम्हारा जी चाहे, तो उसको छाप दो और जिस लंबर में ये छापा जाए वो लंबर मेरे देखने को भेज देना।

और अब फ़रमाइये के मैं किताबों के आने का कब तक इंतज़ार करूँ?

क़ता

दरीं[1] रोज़गारे हुमायूनो फ़र्रुख
के गोई बुवद रोज़गारे चराग़ाँ
शुदा गोश पुरनूर चूँ चश्मे बीना
ज़े आवाज़ ए इश्तेहारे चराग़ाँ

---

१. यह दीपमालिका का शुभ समय है। प्रकाशोत्सव के समाचार से आँखों की तरह कान भी प्रकाश से भर गए हैं। यह शहर प्रकाश का सागर है जहां दृष्टि चारों ओर दीपकों को देख रही हैं। आकाश में सूर्य ने पूरा दिन दीपकों की प्रतीक्षा में बिताया।

मगर शहर दरियाए नूरस्त कीं जा
निगाह गश्ता हरसू दो चारे चराग़ाँ
बसर बुर्दा बर चर्ख़ मेहरे मुनव्वर
हमारोज़ दर इन्तेज़ारे चराग़ाँ
गवाहे मन ईनक ख़ुतूते शोआई
के दारद दिलश ख़ार ख़ारे चराग़ाँ
दरीं शब रवा बाशद अज़ चर्ख़े गर्दां
कुनद गंजे अंजुम निसारे चराग़ाँ
नबूदस्त दर दहर ज़ीं पीश हर्गिज़
बदीं रोशनी रूएकारे चिराग़ाँ
शुदज़ फ़ैज़े शाहंशाहे इंग्लिस्ताँ
फ़ुज़ूँ रौनक़े कारोबारे चराग़ाँ
जहांदार विक्टोरिया कज़ फ़रोग़श
ज़े आतिश दमद लाला ज़ारे चराग़ाँ
ज़े अदलश चुनाँ गश्त परवाना ऐमन
के शुद दीदबाने हिसारे चराग़ाँ
बफ़र्माने सर जान लारन्स साहब
शुदीं शहर आईनादारे चराग़ाँ
ब देहली फ़लक रुतबा सांडर्स साहब
बरारास्त नक़्शो निगारे चराग़ाँ
शुदज़ सइए हेनरी इजर्टन बहादुर
रवां हर तरफ़ जोए बारे चराग़ाँ
सुख़न संज ग़ालिब ज़े रू ए अक़ीदत
दुआ मी कुनद दर बहारे चराग़ाँ

के बादा फ़ुज़ूँ साले उम्रे शहंशा
ब रू ए ज़मीं अज़ शमारे चरागां[1]

८

(९ नवम्बर १८५८)

मियाँ,

तुम्हारे कमाल का हाल मालूम करके मैं बहुत खुश हुआ। अगर मुझको कभी अँगरेज़ी लिखना होगा, तो यहाँ से उर्दू लिखकर भेज दूँगा। तुम वहाँ से अँगरज़ी लिखकर भेज दिया करना। "क़िस्सए क़ासिदाने शाही" मैंने देखा। इस्लाह के बाब में सोंचा के अगर सब फ़िक़रों को मुक़फ़ा[2] और इबारत को रंगीन बनाने का क़स्द करूँ तो किताब की सूरत बदल जाएगी। और शायद तुमको भी ये मंज़ूर न हो। नाचार, इस पर क़िनाअत की के जो अलफ़ाज़ टकसाल बाहर थे वो बदल डाले। मसलन्—'वे' के ये गँवारू बोली है; 'वो'—

१. मेरी इस बात की साक्षी सूर्य की किरणें हैं, दीपकों को देख कर सूर्य उद्विग्न हो गया। यह उचित होगा कि इस रात वह आकाश के समस्त तारों को दीपकों पर न्यौछावर कर दे। ससार ने इससे पहले कभी इतने प्रकाशमान दीपक नहीं देखे। इंग्लैण्ड की कृपा से दीपक बहुत प्रकाशमान हैं। विक्टोरिया के प्रताप से आग में भी लाला के फल उग रहे हैं। उसके न्याय के कारण पतंगे के मन में कोई भय नहीं रहा, वह दीपकों का रक्षक बन गया। सर जान लारेन्स की आज्ञा से यह नगर जगमगा उठा है। महिमाशाली साण्डर्स ने दिल्ली में दीपमाला को बहुत सजाया और हेनरी साहब की कृपा से चारों ओर दीपक की नहरें बह रही हैं। अपनी आस्था के अनुसार इस दीपमालिका के अवसर पर ग़ालिब कवि प्रार्थना करता है—जितने दीपक जल रहे हैं, उनसे अधिक वर्षों तक साम्राज्ञी चिरजीवी हों। २. काफ़िएदार।

ये ठेट उर्दू हैं, 'कराना'--ये बेरून जात की बोली है; 'करवाना'--ये फ़सी है। 'राजे' ये ग़लत है, 'राजा' सही है। कहीं कहीं रवाबत[1] व ज़मायर[2] नामरबूत[3] थे, उनको मरबूत कर दिया है और एक जगह 'गहने बसे'---ये लफ़्ज़ मेरी समझ मे न आया, इसको तुम सही समझ लेना। बाक़ी और सब मरबूत[4] और खूब और साफ़ है; हाजत इस्लाह की नही।

साहब, किताबें कब रवाना होंगी? दीवाली भी होली, अगर गंगा जाने का क़स्द हो तो भाई मेरी किताबें भेज कर जाना। और हाँ ये मैं नहीं समझा के मिर्ज़ा मेहर की बनवाई हुई सात किताबें भी इन्हीं किताबों के साथ भेजोगे या वो अपने तौर पर जुदा रवाना करेंगे। वो तुमने अपनी बनवाई हुई किताब का आठ दिन का वादा किया था और उस वादे से ये बात तराविश[5] करती थी के सादा किताबें पहले रवाना होंगी, और वो एक किताब हफ़्ते के बाद सो वो हफ़्ता भी गुज़र गया, यक़ीन है के अब वो सब यकजा पहुँचे और शायद कल-परसों आ जाएँ। वो लम्बर अख़बार का जो तुमने मुझको भेजा था उसमें एडमिन्स्टन साहब के लेफ़टेंट (गवर्नर) होने की और बहुत जल्द आने की ख़बर लिखी थी। यहाँ मुझको कई बातें पूछनी है--

एक तो ये के ये चीफ़ सेक्रेतर नवाब गवर्नर जनरल के थे। जब ये लेफ़्टेंट गवर्नर हुए तो अब वहाँ चीफ़ सेक्रेतर कौन होगा? यक़ीन है के विलियम म्योर साहब इस ओहदे पर ममूर हों। पस, अगर यों ही हैं तो इनके महकमे में सेक्रेतर कौन होगा?

दूसरी बात ये के मीर मुंशी इनके तो वही मुंशी ग़ुलाम ग़ौसखां साहब रहेंगे। यक़ीन है के इनके साथ आवें।

तीसरी ये बात के गवर्नर जनरल के फ़ारसी दफ़्तर के मीर मुशी एक बुज़ुर्ग थे, बिलगिराम के रहने वाले, मुंशी सैयद जान खाँ। आया अब भी वहीं हैं या उनकी जगह कोई और साहब हैं?

---

१. रब्त। २. सर्वनाम। ३. असंबद्ध। ४. सुसम्बद्ध। ५. प्रकट।

इन सब बातों में से जो आपको मालूम हों वो और जो न मालूम हो उसको मालूम करके मुझको लिखिए और जल्द लिखिए और ज़रूर लिखिए। यक़ीन तो है के तुम समझ गए हो के मैं क्यों पूछता हूँ? किताबें जाबजा भेजनी हैं। जब तक नाम और मुक़ाम मालूम न हो तो क्यों कर भेजूँ? जवाब लिखो और शिताब लिखो। किताबें भेजो और जल्द भेजो।

सेशंबा ६ नवम्बर सन् १८५८ ई०।

९

(१३ नवम्बर १८५८)

बरख़ुरदार कामगार मुंशी शीवनरायन ताल उम्रहू व ज़ाद[1] क़द्रहू।

कल जुमे के दिन १२ नवम्बर को, ३२ किताबें आगईं। मैं बहुत खुश हुआ और तुमको दुआएँ दी। ख़त तुम्हारे नाम का अभी मेरा कहार डाक में ले गया है। इस रुक़्क़े की तहरीर से मक़सूद ये है के मियाँ अब्दुल हकीम बहुत नेक बख़्त और अशराफ़ और हुनरमन्द आदमी हैं। 'दिल्ली गज़ट' में हरफ़ों के छापे का काम किया करते थे। चूँके वो छापेखाना अब आगरे में है, ये भी वहीं आते हैं। तुम्हारे पास हाज़िर होंगे। उन पर मेहरबानी रखना, भला। वो शहर बेगाना है, इनको तुम्हारी ख़िदमत में शनासाई रहेगी, तो अच्छी बात है। 'सहाफ़ी' का काम भी बक़द्रे ज़रूरत कर सकते हैं। शायद अगर देहली गज़ट में इनका तौर दुरुस्त न हो, तो उस सूरत में बशर्त्ते गुंजायश अपने मतबे में इनको रख लेना।

निगाश्तए शंबा, १३ नवम्बर १८५८ ई०।

राक़िम—असदुल्लाह्

---

१. ज़्यादा।

१०

(१८ नवम्बर १८५८)

साहब,

तुम्हारा ख़त आया। दिल ख़ुश हुआ। देखिए, मिर्ज़ा 'मेहर' (किताबें) कब रवाना करते हैं। अगर भेज चुके हैं तो यक़ीन है के आज यहाँ आ पहुँचें, आज न आएँ, कल आएँ, कल से मैं शाम तक राह देखता हूँ।

'मेहर नीम माह' नहीं, उसका नाम 'मेहर दीमरोज़' है और वो सलातीने[१] तैमूरिया की तवारीख़[२] है। अब वो बात ही गई गुज़री, बल्के वो किताब अब छुपाने के लायक़ है—न छपवाने के क़ाबिल। उर्दू के ख़ुतूत जो आप छापा चाहते हैं, ये भी ज़ायद बात है। कोई रुक़्क़ा ऐसा होगा जो मैंने क़लम संभाल कर और दिल लगा कर लिखा होगा वर्ना सिर्फ़ तहरीर सरसरी है। उसकी शोहरत मेरी सुख़नवरी के शुकूह[३] के मनाफ़ी[४] है। इससे क़र्ते नज़र क्या ज़रूर है के हमारे आपस के मामलात औरों पर ज़ाहिर हों ?

ख़ुलासा ये के इन रुक़्क़ात का छापा मेरे ख़िलाफ़े तबा है।

मुहर्रिरए पंजशंबा, १८ नवम्बर सन् १८५८ ई०।

११

(२० नवम्बर १८५८)

बरख़ुरदार इक़बाले निशान को दुआ पहुँचे।

कल जुमे के दिन १९ नवम्बर सन् १८५८ को सात किताबों के दो पार्सल पहुँचे। वाक़ई किताबें जैसा के मेरा जी चाहता था, उसी रूप की हैं। हक़ ताला मिर्ज़ा मेहर को सलामत रखे। रुक़्क़ों के छापे के बाब में मुमानियत लिख चुका

---

१. तैमूर वंश के नरेश। २. इतिहास। ३. शान। ४. विरुद्ध।

हूँ, अलबत्ता इस बाब में मेरी राय पर तुमको और मिर्ज़ा तफ़्ता को अमल करना ज़रूर है।

मतलब उम्दा, जो इस ख़त की तहरीर से मंज़ूर है, वो ये है के जो किताब तुमने बनवाई है और मैंने तुमको लिखा था के पहले वर्क़ के दूसरे सफ़े पर अंगरेज़ी इबारत लिखकर भेजना, ख़ुदा करे वो इबारत तुमने न लिखी हो। अगर लिख दी हो नाचार; और अगर न लिखी हो तो अब न लिखना और सफ़ा सादा रहने देना। और इसी तरह मेरे पास भेज देना। ये भी मालूम रहे के अब कुतुब की तक़सीम उस किताब के आने तक मुल्तवी रहेगी। और वो किताब मेरे पास जल्द पहुँच जाए तो बेहतर है।

२० नवम्बर सन् १८५८।

जवाब तलब बल्के किताब तलब

१२

(३० नवम्बर १८५८)

साहब,

तुम कंधोली कब आए! और जब आए, तो वो मेरा ख़त बैरंग के जिसमें सात रुपए की हुण्डवी मलफ़ूफ़ थी, पाया या नहीं पाया? अगर पाया, तो माफ़िक़े उस तहरीर के अमल क्यों न फ़रमाया? और उस ख़त में एक मतलब जवाब तलब था उसका जवाब क्यों न भिजवाया? अच्छा अगर तुम एकाध दिन के वास्ते कंधोली गए थे तो कारपरदाज़ाने मतबा ने ख़त लेकर रख छोड़ा होगा और जब तुम आए होगे तो वो ख़त तुम्हें दिया होगा। फिर क्या सबब जो तुमने जवाब न लिखा? या अभी कंधोली से तुम नहीं आए या वो ख़त मेरा तलफ़ हो गया। तारीख़े तहरीरे ख़त मुझे याद नहीं। अब ये लिखता हूँ के अगर ख़त पहुँचा तो मुझको ख़त

और हुण्डवी की रसीद और मेरे सवाल का जवाब लिखो और अगर खत नहीं पहुँचा तो इसकी तदबीर बताओ के अब मैं साहूकार से क्या कहूँ और हुण्डवी का मुसन्ना किस तरह से मागूँ?

रोज़े सेशम्बा ३० नवम्बर सन् १८५८ ई०।

जवाब तलब, शिताब तलब

अज़—असदे मुजतरिब[1]

१३

(११ दिसम्बर १८५८)

साहब,

तुम ख़त के जवाब न भेजने से घबरा रहे होगे। हाल ये है के क़लम बनाने में मेरा हात अंगूठे के पास से ज़ख़्मी हो गया और वर्म कर आया। चार दिन रोटी भी मुश्किल से खाई गई है। बहरहाल अब अच्छा हूँ। 'पंज आहंग' तुमने मोल ले ली, अच्छा किया। दो छापे हैं, एक बादशाही छापेखाने का और एक मुंशी नूरुद्दीन के छापेखाने का। पहला नाक़िस है, दूसरा सरासर ग़लत है। क्या कहूँ तुमसे? ज़ियाउद्दीनख़ाँ जागीरदार लोहारू मेरे सबबी भाई और मेरे शागिर्दे रशीद है, जो नज़्मो नस्र में मैंने कुछ लिखा वो उन्होंने लिया और जमा किया। चुनांचे 'कुल्लियाते नज़्मे फ़ारसी' चव्वन-पचपन जुज़्व और 'पंज आहंग' और 'मेहर नीमरोज़' और 'दीवाने रेख़्ता' सब मिलकर सौ-सवा सौ जुज़्व मुतल्ले[2] और मुज़हब[3] और अंगरेज़ी अबरी की जिल्दें अलग अलग। कोई डेढ़-सौ दो-सौ रुपए के सर्फ़ में बनवाईं। मेरी ख़ातिर जमा, के कलाम मेरा सब यकजा फ़राहम है। फिर एक शाहज़ादे ने उस मजमूएनज़्मो नस्र की नक़ल ली। अब दो जगह मेरा कलाम इकट्ठा हुआ। कहाँ से ये फ़ितना बरपा हुआ और

१. उद्विग्न। २. स्वर्णिम। ३. स्वर्णिम।

शहर लुटे। वो दोनों जगह का किताबख़ाना ख़ाने[1] यग़मा हो गया। हरचन्द मैंने आदमी दौड़ाए। कहीं से उनमें से कोई किताब हात न आई। वो सब क़लमी हैं। ग़रज़ इस तहरीर से ये है के कलमी "फ़ारसी का कुल्लियात", क़ल्मी "हिन्दी का कुल्लियात", क़लमी पंज आहंग, कलमी मेहर नीम रोज़। अगर कहीं इनमें से कोई नुस्खा बिकता हुआ आवे तो उसको मेरे वास्ते ख़रीद कर लेना और मुझको इत्तिला करना। मैं क़ीमत भेज कर मँगवा लूँगा। जनाब हेनरी स्टुअर्ट रीड साहब को अभी मैं ख़त नहीं लिख सकता। उनकी फ़रमायश है उर्दू की नस्र, वो अंजाम पाए तो उसके साथ उनको खत लिखूँ। मगर भाई ग़ौर करो उर्दू मे मैं अपने क़लम का ज़ोर क्या सर्फ़ करूँगा? और उस इबारत में मानी नाज़ुक क्यों कर भरूँगा? अभी तो यही सोंच रहा हूँ के क्या लिखूँ? कौन सी बात, कौन सी कहानी, कौन-सा मज़मून, तहरीर करूं और क्या तदबीर करूं? तुम्हारी राय में कुछ आए तो मुझको बताओ। एक करीने से मुझको मालूम हुआ है के शायद गवर्मेन्ट सौ-दो सौ 'दस्तम्बू' की ख़रीदारी करेगी और इन नुस्खों को विलायत भेजेगी। क्या बईद है के हफ़्ते दो हफ़्ते में तुम्हारे पास इलाहाबाद से हुक्म पहुंचे।

सुबह रोज़े शम्बा, ११ दिसम्बर सन् १८५८ ई०।

१४

(१५ दिसम्बर १८५८)

भाई,

ये बात तो कुछ नही के तुम ख़त का जवाब नहीं लिखते। ख़ैर, देर से लिखो अगर शिताब नहीं लिखते। तुम्हारा ख़त आया। उसके दूसरे दिन मैंने जवाब भिजवाया। आज तक तुमने उसका जवाब न भेजा। हाँला के उसमें

---

१. लूट।

जवाब तलब बातें थीं। यानी मैंने अपनी नज़्मो नस्र की कुतुब का हाल तुमको लिखकर तुमसे ये इस्तदुआ की थी के क़लमी जो नुस्ख़ा तुम्हारे हात आ जाए वो तुम ख़रीद करके मुझे भेज देना। रीड साहब के बाब में मैंने ये लिखा था के जब कुछ उर्दू की नस्र उनके वास्ते लिख लूंगा तो 'दस्तम्बू' की ख़रीदारी की ख़्वाहिश करूंगा। माहज़ा तुमसे सलाह पूछी थी के किस हिकायत और किस रिवायत को फ़ारसी से उर्दू करूं। तुमने इस बात का भी जवाब न लिखा।

सैयद हफ़ीज़ुद्दीन अहमद की मुहर के खुदवाने को तुमने लिखा था के मुल्तवी रहे। फिर उसका भी कुछ ब्यौरा न लिखा। मैं उसको अभी कुछ नहीं समझा। उसको यकसू करो। हाँ, नाँ, लिख भेजो। तुम्हारी मुहर बदरुद्दीनअलीख़ाँ को दी गई है। यक़ीन तो ये है के इसी दिसम्बर महीने में तुम्हारे पास पहुंच जाए और १८५८ सन् खुदें। शायद कुछ देर हो, तो जनवरी सन् १८५९ में खुदे, इससे ज़्यादा दिरंग न होगी। तुमको रुपए हर्फ़, आठ आने हर्फ़ से क्या इलाक़ा? तुमको अपनी मुहर से काम।

सच तो कहो—क्या फिर कंओलो गए हो? क्या कर रहे हो? किस शग़ल में हो? या मुझसे ख़फ़ा हो? अगर ख़फ़ा हो तो और कुछ न लिखो, ख़फ़गी की वजह लिखो। बहरहाल इस ख़त का जवाब शिताब भेजो और इसी ख़त में बाद इन सब बातों के जवाब के मौलवी क़मरुद्दीनख़ाँ का हाल लिखो के वो कहाँ हैं और किस तरह हैं। बरसरेकार है, या बेकार हैं। अच्छा, मेरा भाई, इस ख़त के जवाब में दिरंग न हो। ज़्यादा क्या लिखूं?

मरस्सिलए चहार शंबा १५ दिसम्बर सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिब

१५

(१८ दिसम्बर १८५८)

बरख़ुरदार,

आज इस वक़्त तुम्हारा ख़त मय लिफ़ाफ़ों के लिफाफ़े के आया, दिल ख़ुश हुआ। भाई, मैं अपने मिज़ाज से नाचार हूं। ये लिफ़ाफ़े अज़ मुक़ाम व दर मुक़ाम व तारीख़ व माह मुझको पसन्द नहीं। आगे जो तुमने मुझे भेजे थे वो भी मैंने दोस्तों को बाँट दिए। अब यें लिफ़ाफ़ों का लिफ़ाफ़ा इस मुराद से भेजता हूं के इनके एवज यें लिफ़ाफ़े, जो दर मुकाम व अज़ मुकाम से ख़ाली हैं, जिनमें तुम अपने ख़त भेजा करते हो, मुझको भेज दो और यें लिफ़ाफ़े उसके एवज़ मुझसे ले लो और अगर उस तरह के लिफ़ाफ़े न हों तो इनकी कुछ ज़रूरत नहीं।

मुहर के वास्ते साहब, ज़मर्रुद[1] का नगीना और फिर चने की दाल के बराबर और हश्त[2] पहलू इस उजड़े शहर में कहाँ मिलेगा। अक़ीक़[3] बहुत ख़ुशरंग स्याह या सुर्ख़ जैसा तुमने आगे लिखा है, हश्त पहलू होगा। ये मुहर मेरी तरफ़ से तुमको पहुँचेगी। तुमको चार आने हर्फ़, छ आने हर्फ़ से कुछ मुद्दआ नहीं। आप अपनी मुहर चाहो ज़मर्रुद पर, चाहो अल्मास[4] पर ख़ुदवाओ। मैं तो अक़ीक़ की मुहर तुमको दूंगा। रही वो दूसरी मुहर, जब तुम्हारी मुहर खुद चुकेगी, जिस तरह तुम कहोगे, खुद जाएगी।

मियां, क्या क़रीना बताऊं गवर्मेण्ट की ख़रीदारी का? एक बात ऐसी है के अभी मैं कुछ नहीं कह सकता, ख़ुदा करे उसका ज़हूर हो जाए। अभी मुझसे कुछ न पूछो। जनाब रीड साहब साहबी करते हैं। मैं उर्दू मे अपना कमाल क्या ज़ाहिर कर सकता हूं? उसमें गुंजाइश इबारत आराई की कहाँ है?

---

१. पन्ना रत्न। २. अठ पहलू। ३. एक लाल रंग का रत्न। ४. हीरा।

बहुत होगा तो ये होगा के मेरा उर्दू बनिस्बत औरों के उर्दू के फ़सीह होगा। ख़ैर, बहरहाल कुछ करूंगा और उर्दू में अपना ज़ोरे क़लम दिखाऊंगा।

क़ै का होना और दस्तों का आना ये चाहता है के तुमने रात को बुरी क़िस्म की शराब मिक़दार में ज्यादा पी होगी। कुछ तबरीद करो और शराब ज्यादा न पिया करो। मेरा रुक़्क़ा तुम्हारे नाम का और तफ़्ता का रुक़्क़ा तुम्हारे नाम का हस्बुल हुक्म तुम्हारे वापिस भेजा जाता है। मैंने तफ़्ता का ख़फ़ा होना इसी तरह लिखा था जैसा तुमको तुम्हारा ख़फ़ा होना लिखा था। भला, वो मेरे फ़र्ज़न्द की जगह हैं। मुझसे ख़फ़ा क्या होंगे ? उस दिन से आज तक दो-तीन ख़त उनके आ चुके हैं। चुनाचे एक ख़त अभी तुम्हारे ख़त के साथ डाक का हरकारा दे गया है।

मुर्हरिर ए शम्बा, १८ दिसम्बर सन् १८५८ ई०।

१६

(४ जनवरी १८५९)

अब एक अम्रे ख़ास को समझो। दो जिल्दें 'दस्तम्बू' की मुझको लखनऊ भेजनी हैं और मेरे पास कोई जिल्द नहीं है। अब जो तुमसे मँगाऊँ और यहाँ से लखनऊ भिजवाऊं तो एक क़िस्सा है। ये साहब लोग अतराफ़ो जवानिब से फ़रमाइशें भेजते हैं, तुमसे बक़ीमत कोई नहीं मंगवाता। चालीस जिल्दें पहली और बारह हाल की सब तक़सीम हो गईं। इन दोनों साहबो की ख़ातिर मुझको बहुत अज़ीज़ है। एक रुपए के ३२ टिकट और दो आने के दो टिकट इस ख़त में मलफ़ूफ़ करके तुमको भेजता हूँ। दो पार्सल अलग अलग लखनऊ को इर-साल करो, आने आने का टिकट उस पर लगा दो। एक पार्सल पर ये लिखो—

ईं पार्सल बसीग़ए पम्फ़लेट पाकिट इस्टाम्प पेड दर लखनऊ ब महलए नख़ास दर इमाम बाड़ा इकरामुल्लाख़ाँ बमकान मिर्ज़ा इनायत अली बख़िदमत मीर

हुसेन अली साहब बरसद। मुरस्सिलए शीवनरायन मुहतमिम मतबा मुफ़ीद खलायक़ अज़ आगरा। दूसरे पार्सल पर यही इबारत मगर मकान का पता, नाम और दर लखनऊ, ब इहातए खानसामाँ मुतसिल तकिए शेर अली शाह, ब मकानात मौलवी अब्दुल करीम मरहूम बखिदमत मौलवी सिराजुद्दीन अहमद साहब बरसद।

समझ लिए ?

यानी दो पार्सल इस्टाम्प पेड, दोनों लखनऊ को, एक बनाम मीर हुसेन अली और एक बनाम मौलवी सिराजुद्दीन अहमद, बसबीले डाक रवाना कर दो और हाँ साहब, इन दोनों पार्सलों की रवानगी की तारीख मुझको लिख भेजो ताके मैं अपने खत में उनको इत्तिला दूँ।

एक अम्र और है। अगर तुम भी इस राय को पसंद करो याने जिस तरह से तुमने एक जिल्द हेनरी इस्टुअर्ट रीड साहब को अपनी तरफ़ से भेजी है, इसी तरह दो जिल्दें इन दोनों साहबों को जिनका नाम कागज़ म लिखा हुआ है, भेज दो; मगर अपनी ही तरफ़ से, मेरा उसमें इशारा न पाया जावें। और ये दोनों साहब बिलफ़ैल दिल्ली में वारिद है। ये बात ऐसी नही है के खाही न खाही इसको किया ही चाहिए; एक सलाह है और नेक सलाह है, मुनासिब जानो करो वर्ना जाने दो। मियाँ, उर्दू क्या लिखूँ, मेरा ये मन्सब है के मुझ पर उर्दू की फ़रमायश हो ? खैर, हुई अब मै कहानियाँ क़िस्से कहाँ ढूँढता फिरूँ। किताब नाम को मेरे पास नहीं। पिन्सन मिल जाए, हवास ठिकाने हो जाएँ, तो कुछ फ़िक्र करूँ। पेट पड़ी रोटियाँ, तो सभी गलाँ मोटियाँ ! ज्यादा ज्यादा।

रोज़े सेशंबा, ४ जनवरी सन् १८६४।

जवाब तलब
—ग़ालिब

१७

(१५ जनवरी १८५९)

परसों और कल, दो मुलाक़ातें जनाब आर्नल्ड साहब बहादुर से हुईं। क्या कहूँ के मुझ पर बेसाबिक़ए[1] मारफ़त क्या इनायत फ़रमाई ? मैं जानता हूँ गोया मुझको मोल ले लिया। आज वो यहाँ और हैं, कल जाएँगे। 'दस्तम्बू' तुम्हारी भेजी हुई उनके पास नहीं पहुँची। लाचार एक 'दस्तम्बू' और एक 'पंज-आहंग' अपने पास से उनके नज़र कर आया हूँ। लखनऊ के दोनों पार्सलों की रसीद मुझको आज तक नहीं आई। आख़िर रसीद तो तुमको पार्सलों की मिली होगी ? डाक में से मालूम करके मुझको लिख भेजो। देर न करो, वर्ना मैं मशविश रहूँगा।

निगाश्त ए सुबह शम्बा, १५ जनवरी १८५९।

अज़—ग़ालिब

१८

(१९ अप्रेल १८५९)

साहब,

मै हिन्दी ग़ज़लें भेजूं कहाँ से ? उर्दू के दीवान छापे के नाक़िस हैं, बहुत ग़ज़लें उसमें नहीं हैं। क़लमी दीवान जो अतम[2] और अकमल[3] थे वो लुट गए। यहाँ सब को कह रखा है के जहाँ बिकता हुआ नज़र आ जाए, ले लो। तुमको भी लिख भेजा। और एक बात तुम्हारे ख़याल में रहे, के मेरी ग़ज़ल पन्द्रह-सोलह बैत की बहुत शाज़ो[4] नादिर है। बारह बैत मे ज़्यादा और नौ

१. पहले परिचय नहीं था। २. अन्तिम। ३. पूर्ण। ४. बहुत कम।

शेर से कम नहीं होती। जिस ग़ज़ल के तुमने पाँच शेर लिखे हैं, ये नौ शेर की है। एक दोस्त के पास उर्दू का दीवान छापे से कुछ ज़्यादा है। उसने कहीं कहीं से मसविदाते मुतफ़र्रिक बहम पहुँचा लिए हैं। चुनाँचे 'पिन्हा हो गईं' ये ग़ज़ल मुझको उसीसे हात आ गई है। अब मैंने उसको लिखा है और तुमको ये ख़त लिख रहा हूँ। ख़त लिख कर रहने दूंगा। जब उसके पास से एक ग़ज़ल या दो ग़ज़ल आ जाएंगी तो इसी ख़त में मलफ़ूफ़ करके भेज दूंगा। ये ख़त आज रवाना हो जाए या कल।

मैंने एक क़सीदा अपने मुहसिन व मुरब्बी ए क़दीम जनाब फ्रेड्रिक एड-मिस्टन साहब, लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर ग़र्बो शुमाल की मदह में और एक क़सीदा जनाब मिन्ट गुमरी लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर मुल्के पंजाब की तारीफ़ में लिखा है। अगर कहो तो भेज दूं। मगर फ़ारसी है और चालीस चालीस-पैंतालीस शेर हैं।

कुतुब दस्तम्बू के बिक जाने से मैं ख़ुश हुआ। ख़ुदा करे जिसको दी हो दो-तीन ग़लतियाँ जो मालूम हैं, वो बना दी हों। ये न मालूम हुआ के साहब लोगों ने ख़रीदीं या हिन्दुस्तानियों ने लीं। तुम ये बात मुझको ज़रूर ज़रूर लिखो। देखो साहब, तुम घबराते थे, आख़िर ये जिन्स पड़ी न रही और बिक गई। भाई, हिन्दुस्तान का क़लमरू बेचिराग़ हो गया, लाखों मर गए। जो ज़िन्दा हैं, उनमें सैंकड़ों गिरफ़्तार बन्दे[१] बला हैं। जो ज़िन्दा है, उसमें मक़दूर नहीं। मैं ऐसा जानता हूं के या तो साहबाने अंगरेज़ की खरीदारी आई होगी या पंजाब के मुल्क को ये किताबें गई होंगी। पूरब में कम बिकी होंगी।

मियाँ, मैं तुमको अपना फ़र्ज़न्द जानता हूँ। खत लिखने न लिखने पर मौक़ूफ़ नहीं है। तुम्हारी जगह मेरे दिल में है। अब मै तबा आज़माई करता हूं और जो ग़ज़ल तुमने भेजी है, उसको लिखता हूँ। ख़ुदा करे नौ के नौ शेर याद आ जाएं--

---

१. कारावद्ध।

हरेक बात पे कहते हो तुम के तू क्या है
तुम्ही कहो के ये अन्दाज़े गुफ़्तगू क्या है?
चिपक रहा है बदन, पर लहू से पैराहन[1]
हमारे जेब को अब हाजते रफ़ू क्या है?
जला है जिस्म जहां दिल भी जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब राख जुस्तजू क्या है?
रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ायल
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है?
वो चीज़ जिसके लिए हो हमें बहिश्त अज़ीज़
सिवाय बाद ए गुलफ़ाम मिश्क बू क्या है?
पिऊँ शराब अगर खुम भी देख लूँ दो–चार
ये शीशए वो क़दहो[2] क़ूज़[3] ए सुबू[4] क्या है?
ये रश्क है के वो होता है हम सुख़न तुझसे
वगरना खौफ़े बद आमोज़िए अदू[5] क्या है?
रही न ताक़ते गुफ़्तार और अगर हो भी
तो किस उम्मीद पे कहिए के आरज़ू क्या है?
हुआ है शह का मुसाहिब फिरे है इतराता
वगरना शहर में ग़ालिब की आबरू क्या है?

ये तुम्हारा इक़बाल है के नौ शेर याद आ गए। एक ग़ज़ल ये और दो ग़ज़लें वो जो आया चाहती हैं; तीन हफ़्ते का गोदाम तुम्हारे पास फ़राहम हो गया। अगर मँगवाओगे तो क़सीदे भी दोनों भेज दूँगा।

मरक़ूम ए सेशम्बा, १९ माहे अप्रेल सन् १८५८ ई०।

---

१. वस्त्र। २. प्याला। ३. सुराही। ४. सुरापात्र। ५. ईर्ष्या से हृदय जलता है अन्यथा शत्रु जो बुराई कर रहा है, उसका डर क्या।

१९

(२७ अप्रेल १८५९)

भाई,

'हाशा सुम्मा हाशा' अगर ये ग़ज़ल मेरी हो—'असद और लेने के देने पड़े'। उस ग़रीब को मैं कुछ क्यों कहूँ? लेकिन अगर ये ग़ज़ल मेरी हो तो मुझ पर हज़ार लानत। इससे आगे एक शख़्स ने ये मतला मेरे सामने पढ़ा और कहा के क़िब्ला आपने क्या ख़ूब मतला कहा है—

'असद' इस जफ़ा पर बुतों से वफ़ा की
मेरे शेर शाबाश रहमत ख़ुदा की !

मैंने यही उनसे कहा के अगर ये मक़ता मेरा हो, तो मुझपर लानत। बात ये है के एक शख़्स मीर अमानी 'असद' हो गुज़रे हैं, ये मतला और ये ग़ज़ल उनके कलामे मौजिज़[1] निज़ाम में से है और तज़करों में मरक़ूम है। मैंने को कोई दो-चार बरस इब्तदा में 'असद' तख़ल्लुस रखा है, वर्ना 'ग़ालिब' ही लिखता रहा हूँ। तुम तर्जे तहरीर और रविशे फ़िक्र पर ही नज़र नहीं करते। मेरा कलाम और ऐसा मुज़ख़र्फ़[2] ! ये क़िस्सा तमाम हुआ।

वो ग़ज़ल तुम्हारे पास पहुँच गई है, छापने से पहले एक नक़ल उसकी मिर्ज़ा हातिमअली 'मेहर' को दे देना। जिस दिन ए मेरा ख़त पहुँचे, उसी दिन वो ग़ज़ल नक़ल करके उनको भेज देना।

'दस्तम्बू' की ख़रीदारी का हाल मालूम हो गया। मेरा भी यही गुमान था के लाहौर के ज़िले में गई होगी। जनाब मेकलोड़ साहब, फ़ैनान्शल कमिश्नर पंजाब ने बज़रयए साहब कमिश्नर देहली मुझसे मँगवाई थी। एक जिल्द उनको

---

१. चमत्कार। २. रद्दी।

भी भेज चुका हूँ। क़सीदे मैंने दो लिखे हैं। एक अपने मुरब्बीए[1] क़दीम जनाब फ्रेड्रिक ऐडमिस्टन साहब बहादुर की तारीफ़ में और एक जनाब मिंट गुमरी साहब बहादुर की मदह में। एक पचपन शेर का, एक चालीस बैत का, और फिर फ़ारसी; उनको रेख़्ता की ग़ज़लों में क्या छापोगे? जाने भी दो। रहीं ग़ज़लें साबिक़ की, वो जो मेरे हात आती जाएँगी, भिजवाता जाऊँगा। मियां, तुम्हारी जान की क़सम, न मेरा अब रेख़्ता लिखने को जी चाहे, न मुझसे कहा जाए। इस दो बरस में सिर्फ़ वो पच्चीस बीस शेर बतरीक़े क़सीदा तुम्हारी ख़ातिर से लिख कर भेजे थे। सिवाय उसके अगर मैंने कोई रेख़्ता कहा होगा तो गुनहगार। बल्के फ़ारसी ग़ज़ल भी, वल्लाह नहीं लिखी। सिर्फ़ ये दो क़सीदे लिखे हैं। क्या कहूं के दिलो दिमाग़ का क्या हाल है! परसों एक ख़त तुम्हें और लिख चुका हूँ। अब उसका जवाब लिखना। वद्दुआ।

चार शम्बा, २७ अप्रेल सन् १८५९ ई०।

२०

(1 जून 1859)

बरख़ुरदार मुंशी शीवनरायन को दुआ पहुँचे।

ख़त तुम्हारा मय इश्तहार के पहुँचा। यहां का हाल ये है के मुसलमान अमीरों में तीन आदमी—नवाब हुसेन अली ख़ां, नवाब हामिद अलीख़ां, हकीम अहसनुल्लाख़ां; सो इनका हाल ये है के रोटी है तो कपड़ा नहीं। माहज़ा यहां की इक़ामत[2] में तज़बज़ुब[3]। ख़ुदा जाने कहां जाएँ, कहां रहें। हकीम अहसनुल्लाख़ां ने 'आफ़ताबे आलमताब' की ख़रीदारी कर ली है। अब वो मुकर्रर 'हालाते दरबारे शाही' क्यों लेंगे? सिवाय साहूकारों के यहां कोई अमीर नहीं है। वो लोग इस तरफ़ क्यों तवज्जह करेंगे? तुम इधर का ख़याल

१. पुराने अभिभावक। २. निवास। ३. दुविधा।

दिल से धो डालो। रहा नाम इस रिसाले का, तारीखी जाने दो। 'रुस्तख़ैर हिन्द,' 'गोगाए सिपाह' 'फ़ितनए महशर' ऐसा कोई नाम रखो। अब तुम ये बताओ के रईसे रामपूर के हां भी तुम्हारा अख़बार या 'मयारुश्शोअरा' जाता है या नहीं। अबके तुम्हारे 'मयरुश्शोअरा' में मैंने ये इबारत देखी थी के 'अमीर' शायर अपनी ग़ज़लें भेजते हैं, हमको जब तक उनका नामोनिशां मालूम न होगा अशार न छापेंगे। सो मैं तुमको लिखता हूँ के ये मेरे दोस्त हैं और अमीर अहमद इनका नाम है और 'अमीर' तखल्लुस करते हैं। लखनऊ के ज़ी इज़्ज़त[1] बाशिन्दों में हैं और वहां के बादशाहों के रूशनास और मुसाहिब रहे हैं और अब रामपूर मे नवाब साहब के पास हैं। उनकी ग़ज़लें तुम्हारे पास भेजता हूँ। मेरा नाम लिख कर इन ग़ज़लों को छाप दो; यानी—ग़ज़लें ग़ालिब ने हमारे पास भेजीं और उसके लिखने से इनका नाम और इनका हाल मालूम हुआ। नाम व हाल को जो मैं ऊपर लिख आया; उसको अब के 'मयारुश्शोअरा' में छाप कर एक दो वरक़ा या चहार वर्क़ा रामपूर उनके पास भेज दो और सरनामे पर ये लिख दो—

दरे रामपूर बर दरे दौलत हुज़ूर रसीदा।

बख़िदमत मौलवी अमीर अहमद साहब 'अमीर' तख़ल्लुस बरसद।

और मुझको इत्तिला दो और उस अम्र की भी इत्तिला दो के रामपूर को तुम्हारा अख़बार जाता है या नहीं?

मुरसिलए यक शम्बा, १२ जून सन् १८५९ ई०।

२१

(१९ जुलाई १८५९)

बरख़ुरदार नूरे चश्म मुंशी शीवनरायन को दुआ पहुँचे।

साहब, मैं तो मुन्तज़िर तुम्हारे आने का था, किस वास्ते के मुंशी

---

१. प्रतिष्ठित।

बिहारीलाल भाइयों में हैं मास्टर रामचन्दर के, उन्होंने परसों मुझसे कहा था के मुंशी शीवनरायन दो-चार दिन में आया चाहते हैं। आज सुबह को नागाह तुम्हारा ख़त आया। अब मुझको इसका पूछना तुमसे ज़रूर हुआ के, आने की तुम्हारे, ख़बर झूट थी या इरादा था और किस सबब से मौक़ूफ़ रहा? बाबू हरगोबिन्द सहाय का मैं बड़ा अहसानमन्द हूँ, हक़-ताला इस कोशिश के अज्र में उनको उम्रो दौलत दे। सआदतमन्द और नेक बख़्त आदमी है।

तुम्हारी ख़ाहिश को मैं अच्छी तरह समझा नहीं। मिसरा तुमने लिखा और वो छापा गया। हज़ार-पान सौ दो वरक़े छप गए। अब जो मिसरा और कहीं से बहम पहुँचेगा वो किस काम आएगा? ख़ुद लिखते हो के पहला जुज़्व तुमको भेजा है। सब्र करो। वो जुज़्व आने दो। मैं उसको देख लूँ। यक़ीन है के क़लमी होगा। उसको देख कर और मज़ामीन को समझ कर मिसरा भी तजवीज़ कर दूँगा। मगर इतना तुम और भी लिखो के आया यों मंज़ूर है के इस मिसरे की जगह और मिसरा लिखो या यही चाहते हो के ये भी रहे और वो भी रहे। ख़त तुम्हारा आज आ गया है, पम्फ़लेट पाकिट या आज शाम को या कल शाम तक आ जाएगा।

सेशम्बा, १९ जुलाई सन् १८५९।

२२

(२३ जुलाई १८५९)

बरखु़रदार को बाद दुआ के मालूम हो, तुम्हारा ख़त पहुँचा और ख़त से कई दिन पहले रिसाल ए 'बग़ावते हिन्द' पहुँचा। तुम्हारी तसमीमे[1] अज़ीमत से मैं ख़ुश हुआ। अल्लाह्, अल्लाह्! अपने यार बंसीधर के पोते को देखूँगा। 'रिसालए बग़ावते हिन्द' माह ब माह और 'मयारुश्शोअरा' हर महीने में दो बार पहुँचता रहे। बाक़ी गुफ़्तगू अिन्दल मुलाक़ात हो रहेगी। अपने

---

१. सुसंकल्प।

शफ़ीक़े दिली मास्टर रामचन्दर साहब को तुम्हारे आने की इत्तला दी। वो बहुत खुश हुए। जो रुक्क़ा उन्होंने मेरे रुक्क़े के जवाब में लिखा है, तुमको भेजता हूँ। पढ़ लेना। अगर दस्तम्बुएँ बाक़ी हों तो दो अपने साथ लेते आना।

शम्बा, २३ जुलाई सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

२३

(१७ अगस्त १८५९)

मियाँ,

ये क्या मामला है ? एक खत अपनी रसीद का भेज कर फिर तुम चपके हो रहे। न 'मियारुल अशार' न 'बग़ावते हिन्द' न मेरे खत का जवाब, न हुण्डवी की रसीद ! बरखुरदार नवाब शहाबुद्दीन खाँ ने अगस्त से दिसम्बर तक पंज माहा 'मियारुल अशार' व 'बग़ावते हिन्द' का भेजा है यानी '३ रुपये १२ आने' मुझको दिए और मैंने हुण्डवी लिखवाकर वो हुण्डवी अपने खत में 'लपेटकर तुमको भेजी, ये भी नहीं मालूम के वो खत पहुँचा या नहीं पहुँचा ? जब इन मतालिब जुज़ई का ये हाल है तो किताब और अंगरेज़ी अर्ज़ी का तो अभी क्या ज़िक्र है? ख़ुदा के वास्ते इन सब मक़ासद का जवाब जुदा जुदा जल्द लिखो। आज अगस्त की १७, बुध का दिन है, पहला लंबर 'मियारुल अशार' का भी नहीं आया। ये है क्या ? मुहर तुम्हारी खुदनी शुरू हो गई है। इसी अगस्त के महीने में तुम्हारे पास पहुँच जाएगी।

अच्छा मेरा भाई, इस खत का जवाब जल्द पाऊँ और किताब और अर्ज़ी का भी अगर तक़ाज़ा करूँ तो बईद नहीं, मगर आज शाम तक इस खत को रहने दूँगा। अगर तुम्हारा खत या मियारुल अशार या बग़ावते हिन्द कोई लिफ़ाफ़ा शाम तक आया तो इस खत को फाड़ डालूँगा वर्ना कल सुबह को डाक में भिजवा दूँगा। अपने वालिद को दुआ और इश्तियाक़े[१] दीदार कह देना।

---

१. दर्शन की इच्छा।

मरक़ूम ए चहार शम्बा, १७ माहे अगस्त सन् १८५९ ई०, वक़्ते दोपहर।

२४

(२२ सितम्बर १८५९)

क्यों मेरी जान, तुमने ख़त लिखने की क़सम खाई है या लिखना ही भूल गये हो? शहर में हो या नहीं हो? तुम्हारे मतब्र का क्या हाल है? तुम्हारा क्या तौर है? तुम्हारे चचा का मुक़दमा क्योंकर फ़ैसल हुआ? मेरा काम तुमने किस तरह दुरुस्त किया? करोगे या नहीं? 'मियारुल अशार' का पार्सल पहुँच गया। 'बग़ावते हिन्द' का पार्सल अभी नहीं आया। इन सब मतालिब का जवाब लिखो और शिताब लिखो।

मुर्हरिरए पंज शंबा, २२ सितम्बर सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

२५

(२० अक्टूबर १८५९)

मेरी जान,

दो जिल्दें 'बग़ावते हिन्द' की परसों मेरे पास पहुँचीं। उस वक़्त बरख़ुरदार मिर्ज़ा शहाबुद्दीनख़ाँ मेरे पास बैठे हुए थे। एक जिल्द उनको दी, एक मैंने रहने दी। कल एक पार्सल और मेरे नाम का आया। मैं खुश हुआ के विलायत की अर्ज़ी और दस्तम्बू का पार्सल होगा, देखा तो वही दो जिल्दें 'बग़ावते हिन्द' की हैं। हैरान रह गया के ये क्या? ज़ाहिरा मुहतमिमाने इरसाल ने अज़राहे सहव[1] दुबारा भेज दी हैं। चाहता था के लिफ़ाफ़ा बदल कर डवल टिकट लगा कर भेज दूँ। फिर सोंचा के पहले तुमको इत्तिला करूँ। शायद यहीं

---

१. गलती से।

किसी और को दिलवा दो। बस अब तुम्हारे कहने का इन्तजार है, जो कहो सो करूँ। कहो तुमको भेज दूँ, कहो कहीं और तुम्हारी तरफ़ से भेज दूँ। मेरे किसी काम की नहीं। वद्दुआ।

मरक़ूम ए २० अक्तूबर सन् १८५९ ई०।

राक़िम—असदुल्लाह

२६

(२ नवंबर १८५९)

बरखुरदार मुंशी शीवनरायन को बाद दुआ के मालूम हो—

क्या मेरे ख़त नहीं पहुँचते के जवाब उधर से नहीं आता? दो मुजल्लद 'बग़ावाते हिन्द' के ज्यादा पहुँचे हैं। उसके वास्ते तुमसे पूछा गया था। उसका भी जवाब न आया। मैंने यूसुफ़अलीखाँ 'अजीज' के खत में कुछ इबारत तुम्हारे नाम लिखी थी। क्या उन्होंने तुमको न पढ़ाई होगी? उसका भी तुमने कुछ जवाब न लिखा। विलायत की अर्जी और किताब के बाब में तो मैं कुछ कहता ही नहीं जो उसका जवाब माँगूँ। कुछ मुझ से खफ़ा हो गए हो तो वैसी कहो। ये खत तुमको बैरंग भेजता हूँ ताके तुमको तक़ाज़ा मालूम हो।

ये लो, एक और बात सुनो। तुम्हारा तो ये हाल के मुझको खत लिखने की गोया तुमने क़सम खाई है और मेरी ये ख़ाहिश के नवाब गवर्नर जनरल बहादुर की खबर, जो वहाँ तुमको मालूम हुआ करे, मुझको लिखा करो। खुसूसन अकबराबाद में आकर जो कुछ वाक़ै हो वो मुफ़स्सिल लिखो। आया जनाब लेफ़्टंट गवर्नर बहादुर भी साथ आएँगे या जुदा-जुदा आकर यहाँ फ़राहम हो जाएँगे। दरबार की सूरत, खैरखाहों के तक़्सीमे इनाम की हक़ीक़त, कोई नया बंदोबस्त जारी हो, उसकी कैफ़ियत, ये सब मरातिब मुझको लिखा करो, देखो, खबरदार! इस अम्र में तसाहुल[1] न करना। अब क्या सुनते

१. आलस्य।

हो ? लखनऊ से कहाँ आए हैं ? कानपूर, फ़र्रुख़ाबाद होते हुए आगरे आएँगे ? कहाँ कहाँ कौन कौन रईस आ मिलेगा ? लखनऊ के दरबार का हाल जो कुछ सुना हो वो लिखो। अगर चे यहाँ लोगों के यहाँ अख़बार आते रहते हैं और मेरी भी नज़र से गुज़र जाते हैं, मगर मैं चाहता हूँ के तुम्हारे ख़त से आगही पाता रहूं। तुम जो लिखोगे मनक़्क़ह और मुफ़स्सिल लिखोगे। यक़ीन है के बिरादरज़ादए अज़ीज़, यानी तुम्हारे वालिद माजिद ने मिर्ज़ा यूसुफ़अलीख़ाँ के काम की दुरुस्ती लाला जोती परशाद की सरकार में कर दी होगी। इसकी भी इत्तिला ज़रूर है।

सुबह चार शम्बा, २ नवम्बर सन् १८५९ ई०।

जवाब का तालिब—
ग़ालिब

२७

(१३ नवम्बर १८५९)

बरख़ुरदार,

दो ख़त आए और आज यकशम्बा १३ नवम्बर को लिफ़ाफ़ए अख़बार आया। ये 'अवध अख़बार' भाई ज़ियाउद्दीनख़ाँ के हाँ आता है और वो मेरे पास भेज दिया करते हैं। इसकी हाजत नहीं। अपने और मेरे टिकट क्यों बरबाद करो ? मेरा मक़सूद इसी क़द्र है के फ़र्रुख़ाबाद के अख़बार ब सब क़ुर्ब[१] के वहाँ मालूम होते होंगे; जो सुनो वो मुझको लिखो। और जब नवाब मुअल्ला अलक़ाब आगरे में आ जाएँ तो अपना मुशाहिदा मुझको लिखते रहो। बस, ग़र्ज़ इतनी ही है। आज का अख़बार लिफ़ाफ़ा बदल कर आज ही भेज देता हूँ और दोनों किताबें—'बग़ावते हिन्द' परसों भेज चुका हूँ। तुम्हारे वालिद की तरफ़ से मुझको बड़ी तशवीश है। दुआ कर रहा हूँ। ख़ुदा मेरी दुआ क़ुबूल करे और उनको शिफ़ाए कामिल दे। मेरी दुआ उनको पहुँचा देना।

---

१. निकट होने के कारण।

मुंशी शीवनरायन 'आराम' के नाम

मिर्ज़ा यूसुफ़अलीखाँ 'अज़ीज़' का हाल मालूम हुआ। ये आली ख़ानदान और नाज़ परवरदा आदमी हैं। इनको जो राहत पहुँचाओगे और जो इनकी खिदमत बजा लाओगे, उसका ख़ुदा से अज़्र पाओगे। ज़्यादा सिवाय दुआ के क्या लिखूँ।

रोज़े यकशम्बा, १३ नवम्बर सन् १८५९ ई०।

अज़-ग़ालिब

२८

(३ मार्च १८६०)

बरखुरदार मुंशी शीवनरायन को दुआ ए दवाम दौलत पहुँचे।

कल तुम्हारा खत पहुँचा। दिल खुश हुआ। वाक़रअलीख़ाँ और हुसेन-अलीखाँ ये दो मेरे पोते हैं और तुम भी मेरे पोते हो। लेकिन चूँके तुम उम्र में बड़े हो तो पहले तुम और बाद तुम्हारे ये।

मैं, हस्बुल तलब नवाब साहब के, दोस्ताना यहाँ आया हूँ और अपनी सफ़ाई गवर्मेण्ट से ब ज़रियए इनके चाहता हूँ। देखूँ, क्या होता है ? किताब और अर्ज़ी अवासते[1] माहे जनवरी में विलायत को रवाना करके यहाँ आया हूँ। छ हफ़्ते में जहाज़ पहुँचाता है। यक़ीन है के पार्सल विलायत पहुँच गया होगा।

बिबीनम् के ता किर्द गारे जहाँ
दरीं आशकारा च दारद निहाँ

अपने वालिद को मेरी दुआ कह देना। मिर्ज़ा यूसुफ़अलीखाँ को मेरी दुआ कहना और कहना के मैं तुम्हारी फ़िक्र से फ़ारिग नहीं हूँ। अगर ख़ुदा चाहे तो कोई राह निकल आए।

सेशम्बा, ३ मार्च सन १८६० ई०।

—ग़ालिब

---

१. मध्य।

२९

(१४ मार्च १८६०)

बरख़ुरदार इक़बाल आसार मुंशी शीवनरायन को बाद दुआ के मालूम हो के एक नुस्ख़ा 'बग़ावते हिन्द' का और एक दो वर्क़ा 'मयारुश्शोअरा' का मार्फ़त बरख़ुरदार मिर्ज़ा शहाबुद्दीनख़ाँ के पहुँचा और आज चार शम्बा, १४ मार्च की है के एक नुस्ख़ा 'बग़ावते हिन्द' भेजा हुआ तुम्हारा रामपूर पहुँचा। ख़ुदा तुमको जीता रखे। अब मैं शम्बे के दिन, १७ मार्च को दिल्ली रवाना हूँगा। तुमको बतरीक़े इत्तिला लिखा है। अब बदस्तूर इरसाले ख़ुतूत दिल्ली को रहे, यहाँ न भेजना।

हाँ भाई, इन दिनों में बरख़ुरदार मिर्ज़ा यूसुफ़अलीख़ाँ वहाँ आए हुए हैं, आज ही उनका ख़त मुझको पहुँचा है। तुम ज़रूर उनसे मिलना। मुंशी अमीरअली साहब के हाँ वो उतरे हुए हैं। उनको बुलाकर मेरी दुआ कहना और कहना के अच्छा है, दिल्ली चले आओ; वहाँ जो मुझसे मिलोगे तो ज़बानी सब कलाम हो रहेगा और अगर वो हातरस गए हों, तो ये रुक़्क़ा जो तुम्हारे नाम का है, एक काग़ज़ में लपेट कर टिकट लगाकर हातरस को शेख करीम बख़्श चौकीदारों के दफ़ेदार, के घर के पते से भेज देना। ज़रूर ज़रूर।

रवाँदाश्त ए चहार शम्बा, १४ मार्च सन् १८६० ई०, वक़्ते दोपहर।

अज़-ग़ालिब

३०

(अप्रेल १८६०)

मियाँ,

दीवान के मेरठ में छापे जाने की हक़ीक़त सुन लो, तब कुछ कलाम करो। मैं रामपूर में था के एक ख़त पहुँचा, सरनामे पर लिखा था—'अर्ज़दाश्त

अज़ीमुद्दीन अह्मद, मिन मुक़ाम मेरठ।' वल्लाह, बिल्लाह अगर ` जानता हूँ के अज़ीमुद्दीन कौन है और क्या पेशा रखता है। बहरहाल पढ़ा। मालूम हुआ के हिन्दी दीवान अपनी सौदागरी और फ़ायदा उठानें के वास्ते छापा चाहते हैं। ख़ैर, चुप हो रहा। जब मैं रामपूर से मेरठ आया। भाई मुस्तफ़ाख़ाँ साहब के हाँ उतरा। वहाँ मुंशी मुमताज़अली साहब मेरे दोस्ते क़दीम मुझको मिले। उन्होंने कहा के अपना उर्दू का दीवान मुझको भेज दीजिएगा। अज़ीमुद्दीन, एक किताब फ़रोश उसको छापा चाहता है। अब तुम सुनो–दीवाने रेख़्ता अतम व अकमल[1] कहाँ था? मगर हाँ मैंने ग़दर से पहले लिखवाकर नवाब यूसुफ़अलीख़ाँ बहादुर को रामपूर भेज दिया था। अब जो मैं दिल्ली से रामपूर जाने लगा तो भाई ज़ियाउद्दीनख़ाँ साहब ने मुझको ताक़ीद कर दी थी के तुम नवाब साहब की सरकार से 'दीवाने उर्दू' लेकर उसको किसी कातिब से लिखवाकर मुझको भेज देना। मैंने रामपूर में कातिब से लिखवाकर वसबीले डाक ज़ियाउद्दीनख़ाँ को दिल्ली भेज दिया था। आमदम[2] बर सरे मुद्दाए साबिक़। अब जो मुंशी मुमताज़अली साहब ने मुझसे कहा तो मुझे यही कहते बन आई के अच्छा दीवान तो मैं ज़ियाउद्दीनख़ाँ से लेकर भेज दूंगा। मगर कापी की तसही का ज़िम्मा कौन करता है? नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ ने कहा के 'मैं'। अब कहो मैं क्या करता? दिल्ली आकर ज़ियाउद्दीनख़ाँ से दीवान लेकर एक आदमी के हात नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ के पास भेज दिया। अगर मैं अपनी ख़ाहिश से छपवाता तो अपने घर का मतबा छोड़कर पराए छापेख़ाने में किताब क्यों भिजवाता? आज इसी वक़्त मैंने तुमको ये ख़त लिखा और इसी वक़्त भाई मुस्तफ़ाख़ाँ साहब को एक ख़त भेजा है और उनको लिखा है–अगर छापा शुरू न हुआ हो, तो न छापा जाए और दीवान जल्द मेरे पास भेजा जाए। अगर दीवान आ गया तो फ़ौरन तुम्हारे पास भेज दूँगा और

---

१. पूर्ण। २. पहले की तरह मैं अपने अभीष्ट पर आता हूँ।

अगर वहाँ कापी शुरू हो गई है तो मैं नाचार हू, मेरा कुछ क़ुसूर नहीं है; और अगर सरगुज़िश्त को भी सुनकर मुझको गुनहगार ठहराओ तो अच्छा। मेरा भाई, मेरी तक़्सीर माफ़ कीजियो। रमज़ान और ईद का क़िस्सा लगा हुआ है। यक़ीन है के कापी शुरू न हुई हो और दीवान मेरा मेरे पास आए और तुमको पहुँच जाए।

१९ या २० जनवरी सन् १८६० ई० को किताब और दोनों अर्ज़ियाँ विलायत को रवाना करके रामपूर गया हूँ। तीन महीने की जहाज़ की आमदो रफ़्त है, सो गुज़र चुकी है। ख़ाही इसी महीने में, ख़ाही आग़ाज़े माहे आयन्दा याने मई में जवाब के आने का मुतरसिद[1] हूँ। देखिए आए या न आए, आए तो ख़ातिरख़ाह आए या ऐसा ही सरसरी आए।

३१

(२५ जून १८६०)

साहब,

मैं तुम्हारा गुनाहगार हूँ। तुम्हारी किताब मैंने दबा रखी है। बड़ी कोशिश और मेहनत से इसको वहाँ न छपने दिया और मंगवा लिया। आज, पीर के दिन २५ जून को पार्सल की डाक में रवाना किया है। लो, अब मेरी तक़्सीर माफ़ करो और मुझसे राज़ी हो जाओ और अपनी रज़ामन्दी की मुझे इत्तिला दो। ये किताब यानी दीवाने रेख़्ता तुमको मैंने दे डाला। अब इसके मालिक तुम हो। मैं नहीं कहता के छापो; मैं नहीं कहता के न छापो। जो तुम्हारी ख़ुशी हो, सो करो। अगर छापो तो बीस जिल्द का ख़रीदार मुझको लिख लो। और अच्छा, मेरा मियाँ, ज़रा तसही का बहुत ख़याल रखियो।

---

१. आकांक्षी।

३२

(३ जुलाई १८६०)

मियाँ,

तुम्हारी बातों पर हँसी आती है। ये दीवान जो मैंने तुमको भेजा है, अतम व अकमल है। वो, और कौन-सी दो चार ग़ज़लें ह जो मिर्जा यूसुफ़अली-खाँ 'अज़ीज़' के पास हैं और इस दीवान में नहीं ? इस तरफ़ से आप अपनी खातिर जमा रखें के कोई मिसरा मेरा इस दीवान से बाहर नहीं। माहज़ा उनसे भी कहूँगा और वो ग़ज़लें उनसे मँगाकर देख लूँगा।

तस्वीर मेरी लेकर क्या करोगे ? बेचारा 'अज़ीज़' क्यों कर खिचवा सकेगा ? अगर ऐसी ही ज़रूरत है तो मुझको लिखो। मैं मुसव्विर से खिचवा कर तुमको भेज दूँ, न नज़र दरकार न नियाज़। मैं तुमको अपने फ़र्ज़न्दों के बराबर चाहता हूँ और शुक्र की जगह है के तुम फ़र्ज़न्द सआदतमन्द हो। ख़ुदा तुमको जीता रखे और मतालिब आलिया को पहुँचाए।

सेशम्बा, ३ जुलाई सन् १८६० ई०।

—ग़ालिब

३३

(१० जनवरी १८६२)

मियाँ,

मैं जानता हूँ के मौलवी मीर नियाज़अली साहब ने वकालत अच्छी नहीं की। मेरा मुद्दआ ये था के वो तुम पर इस अम्र को ज़ाहिर करें के दिल्ली में हिन्दी दीवान का छपना पहले उससे शुरू हुआ है के हकीम अहसनुल्लाखाँ साहब तुम्हारा भेजा हुआ फ़र्मा मुझको दें और वो जो मैंने यहाँ के मतबे में छापने की इजाज़त दी थी, ये समझकर दी थी के अब तुम्हारा इरादा उसके छापने का नहीं। ग़ौर करो, मेरठ के छापेख़ाने वाले मुहम्मद अज़ीम ने किस

इज्ज़ो[1] इलहा से दीवान लिया था और मैंने, नज़र तुम्हारी नाख़ुशी पर, बजब्र उससे फेर लिया। ये क्यों कर हो सकता था के और को छापनें की इजाज़त दूँ। तुमने जो खत लिखना मौक़ूफ़ किया मैं समझा के तुम ख़फ़ा हो। मैंने मौलवी नियाज़अली साहब से कहा के बरख़ुरदार शीवनरायन से मेरी तक़्सीर माफ़ करवा देना। भाई, ख़ुदा की क़सम, मैं तुमको अपना फ़र्ज़न्दे दिलबन्द समझता हूँ। उस दीवान और तस्वीर का ज़िक्र क्या ज़रूर है? रामपूर से वो दीवान सिर्फ़ तुम्हारे वास्ते लिखवाकर लाया। दिल्ली में तस्वीर बहज़ार जुस्तजू बहम पहुँचा कर मोल ली और दोनों चीज़ें तुमको भेज दीं। वो तुम्हारा माल है। चाहो अपने पास रखो, चाहो किसी को दे डालो, चाहो फाड़ कर फेंक दो। तुमनें 'दस्तम्बू' की जदवल और जिल्द बनवाकर हमको सौग़ात भेजी थी; हमने अपनी तस्वीर और उर्दू का दीवान तुमको भेजा। मेरे प्यारे दोस्त, नाज़िर बंसीधर की तुम यादगार हो।

अै गुल[2], बतो ख़ुरसन्दम, तू बू ए कसे दारी

१० जनवरी सन् १८६२ ई०।

ख़ुशनदी का तालिब--

ग़ालिब

३४

(३ मई १८६३)

बरख़ुरदार मुंशी शीवनरायन को दुआ के बाद मालूम हो–तस्वीर पहुँची, तहरीर पहुँची। सुनो – मेरी उम्र सत्तर बरस की है और तुम्हारा दादा मेरा हमउम्र और हमबाज़ था; और मैंने अपने नाना साहब, ख़ाजा ग़ुलाम हुसेन मरहूम से सुना के तुम्हारे परदादा साहब को अपना दोस्त बताते थे और फ़रमाते

---

१. विनम्रता। २. पुष्प मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम में किसकी गन्ध है?

थे के मैं बंसीधर को अपना फ़र्ज़न्द समझता हूँ। ग़रज़ इस बयान से ये है के सौ सवा सौ बरस की हमारी तुम्हारी मुलाक़ात है; फिर आपस में नामा व पयाम की राहो रस्म नहीं! और इस राहो रस्म के मसदूद[1] होने का हासिल ये है के एक (को) दूसरे के हाल की ख़बर नहीं। अगर तुमको मेरे हाल से आगाही होती तो मुझको बसबीले डाक कभी अकबराबाद न बुलाते।

लो, अब मेरी हक़ीक़त सुनो। छटा महीना है के सीधे हात में एक फुन्सी हुई; फुन्सी ने सूरत फोड़े की पैदा की। फोड़ा पक कर, फूटकर, एक ज़ख़्म, ज़ख़्म क्या एक ग़ार बन गया। हिन्दुस्तानी ज़र्राहों क़ा इलाज रहा, बिगड़ता गया। दो महीने से काले डाक्टर का इलाज है। सलाइयाँ दौड़ रही हैं। उस्तरे से गोश्त कट रहा है, बीस दिन से सूरत इफ़ाक़त की नज़र आने लगी है।

अब एक और दास्तान सुनो—ग़दर के रफ़ा होने और दिल्ली के फ़तह होने के बाद मेरा पिन्सन खुला, चढा हुआ रुपया दाम दाम मिला, आयन्दा को बदस्तूर बे कमो कास्त जारी हुआ, मगर लार्ड साहब का दरबार और खलत जो मामूली व मुक़र्ररी था, मसदूद हो गया; यहाँ तक के साहब सेक्रेतर भी मुझसे न मिले और कहला भेजा के अब गवर्मेण्ट को तुमसे मुलाक़ात कभी मंज़ूर नहीं। मैं फ़क़ीर मुतक़ब्बिर,[2] मायूस दायमी होकर अपने घर बैठ रहा और हुक्कामे शहर से भी मिलना मैंने मौक़ूफ़ कर दिया। बड़े लार्ड साहब के वुरूद के ज़माने में नवाब लेफ़्टंट गवर्नर बहादुर पंजाब भी दिल्ली में आए। दरबार किया। ख़ैर, करो, मुझको क्या? नागाह दरबार के तीसरे दिन बारह बजे चपरासी आया और कहा के नवाब लेफ़्टंट गवर्नर ने याद किया है। भाई, ये आख़िरे फ़रवरी है और मेरा हाल ये है के अलावा उस दाँयें हात के ज़ख़्म के सीधी रान में और बाँये हात में एक-एक फोड़ा जुदा है। हाजती में पेशाब करता हूँ, उठना दुश्वार है। बहरहाल सवार हुआ, गया। पहले साहब सेक्रेतर

---

१. टूटना। २. गौरव युक्त।

बहादुर से मिला। फिर नवाब साहब की ख़िदमत में हाज़िर हुआ। तसव्वुर में क्या, बल्के तमन्ना में भी जो बात न थी वो हासिल हुई, यानी इनायत से इनायत, अख़लाक़ से अख़लाक़! वक़्ते रुख़्सत ख़लत दिया और फ़रमाया के 'ये हम तुझको अपनी तरफ़ से अज़राहे मुहब्बत देते हैं और मुज़्दा देते हैं के लार्ड साहब के दरबार में भी तेरा लंबर और ख़लत खुल गया। अम्बाले जा, दरबार में शरीक हो, ख़लत पहन।' हाल अर्ज किया गया। फ़रमाया—'ख़ैर, और कभी के दरबार में शरीक होना।' इस फोड़े का बुरा हो। अम्बाले न जा सका। आगरे क्यों कर जाऊँ?

बाबू हरगोविन्द सहाय साहब को सलाम। मज़मून वाहेद। ३ मई।

शब्दार्थ

अ

अंगुश्त नुमा = उल्लेखनीय
अंगुश्त बदंदाँ = दाँतों तले उँगली
अंजुमन = सभा, गोष्ठी
अक़दस = पवित्र
अक़ब = निकट
अकमल = पूर्ण
अक़रब = वृश्चिक (राशि)
अक़साम = प्रकार ब. व.
अकाबिर = महान् (व्यक्ति) ब. व.
अक़ीदा = विश्वास
अक़ुर्बा = पारिवारिक जन
अख़लाक़ = शालीनता
अख़वी = बन्धु ब. व.
अग़निया = गनी (ऐश्वर्यशाली) ब. व.
अग़लब = संभवतः
अग़लात = गलतियाँ
अजज़ा = अंश, अंग ब. व.
अजदाद पूर्वज ब. व.
अजम = ईरान,
अज़मत = बड़प्पन
अज़रूएक़यास = अनुमान के अनुसार
अजल = मृत्यु
अज़ल = युगादि
अज़ला = जिला ब. व.
अज़ली = शाश्वत
अजसरे नौ = नवीन रूप से, आरंभ से
अज़ादार = शोक मानने वाले
अज़ाब = अत्यधिक वेदना, पाप का फल,
अज़ीज़ = प्रिय
अज़ीज़तर = प्रियतर
अज़ीक = बड़ा, महान्
अजीमत = इच्छा, आकांक्षा
अज़्म = विचार, निश्चय
अज्र = पुण्यफल
अतम = समाप्ति
अतराफ़ = चारों ओर,
अतालीक = अध्यापक
अतिब्बा = चिकित्सक ब. व.
अतिया = दान
अदम = अभाव, मृत्यु

अदू = शत्रु
अदूकश = शत्रुहंता
अद्‌ल = न्याय
अनमली = पहेली
अनवाव = विविध
अन्जाम = परिणाम
अन्जामेकार = परिणाम
अन्जुम = नक्षत्र,
अन्दिया = मनोभाव
अन्दोह् = दुःख
अन्दोहावर = दुःखद
अफ़ज़ाइश = आधिक्य
अफ़ज़ाई = वढ़ावा
अफ़ज़ूँ = विकसित
अफ़रोज़ = अधिक
अफ़सा = अधिक परिमार्जित
अफ़सुर्दा = उदास, मुरझाया हुआ
अफ़ाल = कार्य ब. व.
अफ़ू = क्षमा
अब = पिता
अबस = व्यर्थ
अब्र = बादल
अब्रोबारां = बरसात
अम = चाचा
अमकना = मकान ब. व.
अमराज़ = रोग ब. व.
अमवात = मृत्यु ब, व.
अमवाल = माल ब. व.
अमला = कर्मचारी
अमलाक = स्थावर सम्पत्ति ब. व.
अम्न = शान्ति
अम्नोआमान = शान्ति
अम्र = आज्ञा (व्याकक्रिया)
अम्रेमुनकिर = कुकर्म
अम्रेवाक़ई = वास्तविक घटना
अयादत = मिज़ाजपुर्सी
अयानत = सहायता
अयालो अतफ़ाल = बाल-बच्चे, परिवार
अय्यार = चालाक
अरवाह् = रूह् (आत्मा) ब. व.
अरायज़ = प्रार्थना पत्र ब. व.
अरीज़ा = प्रार्थना
अर्ज़ = चौड़ाई
अर्मुग़ाँ = भेंट
अलक़ाब = अल्ल, आनुवंशिक उपाधि, आदरार्थक उपाधि ब. व.
अलम = दुःख
अलल उमूम = सामान्यतया
अलामत = लक्षण, चिह्न
अल्मास = हीरा

अवाख़िर = अन्तिम
अवाम = जनसाधारण ब. व.
अवायल = प्रारंभ
अवारिज़ = रोग ब. व.
असक़ाम = दोष, त्रुटि ब. व.
असबाबे वहशत = भय का कारण
असमार = फल ब. व.
असलाफ़ व अख़लाफ़ = पूर्वज और वंशज
असवात = ध्वनि ब. व.
असातिज़ा = उस्ताद (आचार्य) ब. व.
असीर = बन्दी
असील = परिचारिका
अस्मा = पदार्थ
अस्र = युग
अशख़ास = शख़्स (व्यक्ति) ब. व.

अशराफ़ = सभ्य ब. व.
अशार = शेर (कविता) ब. व.
अशिया = वस्तु ब. व.
अश्कफ़िशानी = अश्रुवर्षा
अहतयाज = आवश्यकता
अहतियात = सावधानी
अहद = वचन, प्रतिज्ञा, काल, समय, युग
अहदो अस्र = युग
अहबाब = बन्धु ब. व.
अहमक़ = मूर्ख
अहयानन = बेबस
अहले ख़ित्ता = आसपास के लोग, स्थान विशेष के लोग
अहले हिर्फ़ा = शिल्पी, कारीगर
अहाली = परिचारक
अहिब्बा = प्रिय ब. व.

आ

आईन = विधान, नियम
आक़ा = स्वामी, बड़ा भाई
आक़िल = बुद्धिमान्
आग़ाज़ = आरंभ
आग़ाज़े तहरीर = लेख का प्रारंभ
आज़ादगी = स्वतन्त्रता
आज़ार = कष्ट

आजिज़ = दुःखी
आज़िम = इच्छुक
आज़ुर्दगी = दुःख
आज़ुर्दा = दुःखी
आतिश अफ़शानी = अग्निवर्षा
आतिशे सय्याल = शराब
आदाद = संख्या

आफ़ताब = सूर्य
आफ़री = धन्य
आफ़रींनश = अपमानित
आफ़ियत = कुशलता, विश्रान्ति
आब = पानी
आबेहयात = अमृत
आमास = शोथ
आमेज़िश = मिलावट
आराइश = सजावट, अलंकरण
आरिज़ा = रोग
आलम = संसार
आलमे बेरंगी = परोक्ष जगत
आलात = औजार, उपकरण ब. व.
आलाम = दुःख ब. व. विपत्तियाँ
आलिमुलग़ैब = ईश्वर
आलमे ग़ैब = परोक्षजगत

आलमे शहादत = प्रत्यक्ष जगत
आलिम = विद्वान्
आवारगाँ = आवारा ब. व.
आवारगी = आवारापन
आसार = चिह्न
आसी = दोषी
आस्ताँ = देहली
आशकारा = प्रकट
आशना = परिचित, स्नेही
आशिक़ेज़ार = अत्यधिक प्रेमी,
मरमिटने वाला प्रेमी,
आशिफ़्ताहाली = परेशानी
आशुफ़्ता = परेशान
आशोब = क्रान्ति
आहू = हिरन

इ

इंशा = गद्य
इआनत = सहायता, कृपा, लाभ
इक़बालेनिशाँ = शुभलक्षण
इकराम = प्रतिष्ठा
इक़ामत = निवास
इक़ामतगाह = निवास स्थान
इख़फ़ा = लोप

इख़राज = निर्वासन
इख़लास = शिष्टता
इख़वाँ = भाई बिरादरी
इख़्तताम = समाप्ति
इख़्तलात = मेलमिलाप
इजमा = भीड़
इजमाल = संक्षेप

इजलाल = प्रताप ब॰ व.
इज़ाफ़ा = वृद्धि
इज़ाफ़ी = षष्ठीसूचक 'इ' की मात्रा
इज्ज़ो इलहा = विनम्रता
इज्ज़ोजाह = प्रतिष्ठा
इज्ज़ोशान = प्रतिष्ठा
इज़्तराब = व्याकुलता
इज़्मे हलाल = निर्बलता
इताअत = अनुसरण, सेवा
इताब = कोप
इत्तेफ़ाक़ = संयोग
इदराक = इन्द्रियजन्य ज्ञान
इनक़ता = पार्थक्य
इनबसात = प्रसन्नता
इनहतात = बुढापा, घटाव
इनहदाम = तोड़ फोड़
इनायत = कृपा
इनायतनामा = कृपा-पत्र
इन्क़ेबाज़ = अजीर्णता
इन्क़लाब = क्रान्ति
इन्कसाब = दुःख
इन्कशाफ़ = प्रकटीकरण
इन्तक़ाल = मृत्यु
इन्तक़ाम = बदला
इन्तेमाम = समाप्ति
इन्तबा = मुद्रण
इन्तहा = पराकाष्ठा
इन्दराज = उल्लेख, दर्ज करना
इन्हेदा = तोड़ फोड़
इफ़रात = आधिक्य
इफ़लास = दरिद्रता
इफ़ाक़त = स्वास्थ्य
इफ़ाक़ा = आराम
इफ़्तख़ार = गर्व
इबराम = अनुरोध
इबहाम = भ्रम
इब्तिला = संघर्ष
इमलाक = स्थावर सम्पत्ति ब॰ व.
इमामत = इमाम का पद, नेतृत्व
इम्तियाज़ = भेद, अन्तर
इम्तेसाल = जिसकी उपमा दी जाए
इरसाल करना = भेजना
इलाक़ा = सम्बन्ध, प्रदेश
इल्तफ़ात = प्रेम, कृपा
इल्तबास = अनुकृति
इल्तमास = अनुरोध
इल्तेज़ाम = अनिवार्य
इल्लत = कारण, दोष, व्यसन
इसक़ात = पतन
इसहाल = विरेचन

इस्तग़ासा = दावा, निवेदन ,प्रार्थना
इस्ततार – कमी
इस्तफ़सार = पूछताछ
इस्तफ़ादा = लाभ
इस्तमदाद = प्रार्थित
इस्तरार = उद्विग्नता
इस्तलाज़ = उपचार
इस्तलाह = परिभाषा
इस्तहक़ाक़ = अधिकार, पात्रता
इस्तेअजाब = आश्चर्य
इस्तेआरा = रूपक
इस्तेदुआ = प्रार्थना
इस्तेन्बात = पूछताछ, परिणाम निकालना
इस्तेफ़ा = त्यागपत्र
इस्तेबाद = आश्चर्य
इस्तेलाम = जानकारी
इस्तेहज़ा = व्यंग
इस्ना अशरी = शिया
इस्म = संज्ञा, नाम
इस्मेजामिद = ऐसी संज्ञा जिससे कोई दूसरा शब्द नहीं बनता।
इस्मेशरीफ़ = शुभनाम
इस्लाह = संशोधन
इश्तक़ाक़ = निरुक्ति
इश्तियाक़ = शौक
इश्तेहार = विज्ञापन
इहतराज़ = परहेज, बचाव
इहिदा = उपदेश

ई

ईसार = त्याग

उ

उक़दा = उलझन
उज़मा = बड़े लोग
उजरत = मेहनताना
उजूरादार = कर्मचारी
उनास = स्त्री ब. व.
उफ़क़ = क्षितिज
उमरा = धनी, सामन्त ब. व.
उमक़ = गहराई
उमूमन = साधारणतया
उमूर = कार्य ब. व.
उर्फ़ा = ज्ञानी ब. व.
उलफ़त = प्रेम
उलूम = ज्ञान ब. व.
उस्लूब = रीति, शैली

उस्तवार = उचित, दृढ
उस्ताद = आचार्य, गुरु
उश्शाक़ = प्रेमी ब. व.

ए

एख़्तेलात = प्रेम, हेल-मेल
एख़्तेसार = संक्षिप्त
एहतराक़ = जलन
एहतियाज़ = लालसा
एहतियात = सावधानी
एहतेमाल = संभावना
एहदा = मार्गदर्शन
ऐयारे तर्रार = अच्छा वक्ता
ऐराब = मात्रा (अक्षर)
ऐलानोशीव = प्रकाशन

क

कज अन्देश = दुर्बुद्धि
कजफ़हम = मूर्ख
क़ज़ा = काल, मृत्यु, आदेश
क़ज़ारा = संयोगवश
कतमाने हक़ = सचाई का छिपाना
क़ता = कविता के चार चरण, चौका (कविता)
क़ता करना = काटना, (तर्क) खंडित करना
क़द्रदानी = गुण ग्राहकता
क़द्रशनास = गुणज्ञ
क़फ़स = पिंजरा
कफ़ेदस्त = हथेली
कफ़ेपा = पाँव का तलवा
क़बा = एक प्रकार की अचकन
क़बाहत = बुराई
क़बीह = दोषपूर्ण
क़बील = ढंग, गिरोह
कमतर = घटिया
कमाँ = धनुष
क़यामत = प्रलय
क़यास = अनुमान
करम गुस्तरी = दयाशीलता
कराची = लड्ढा, माल ढोने का ठेला।
क़राबत = निकटता, रिश्तेदारी
क़राइन = लक्षण ब. व.
क़रार = धैर्य
क़र्ज़हसना = बिना ब्याज का ऋण
क़लक़ = दुःख
क़लन्दर = संन्यासी

कलाम = वचन
क़लील = किञ्चित्
क़वाफ़ी = काफ़िया ब. व.
क़वी = हृष्ट पुष्ट
कसरा = इकार मुक्त (उच्चारण)
कशवर = देश
कश्फ़ = अन्तर्वाणी
क़हर = क्रोध, विपत्ति
क़ाज़िब = असत्यभाषी
कातिब = लिखने वाला (उर्दू मुद्रण)
क़ातै = खंडन करने वाला (तर्क)
क़ादिर = प्रभुता सम्पन्न, समर्थ
कापीनिगार = कापी लिखने वाला (उर्दू मुद्रण)
क़ाफ़िया = अन्त्यानुप्रास से पहले का अक्षर
क़ाबिज़ = क़ब्ज़ा करने वाला
क़ामत = कद
कारज़ार = रणांगण
कार परदाज़ = कर्मचारी
क़ासिद = पत्रवाहक, डाकिया
क़ासिर = वंचित, असावधान
काशाना = नीड
किताबत = लेखन (उर्दू मुद्रण)
क़िनाअत = सन्तोष
क़िब्ला = पूज्य, अग्रगण्य
क़िसास = कत्ल
क़िस्सत = कंजूसी, ओछापन
कुतुब = किताब ब. व.
क़ुदमा = प्राचीन (लोग) ब. व.
कुन्दज़हन = मूर्ख
क़ुर्ब = निकटता
क़ुव्वते आक़िला = बुद्धिबल
कुल्लियात = काव्य संकलन
कुसूफ़ = ग्रहण
कोर्निश = अभिवादन
क़ैस = मजनू
कोताह = संक्षिप्त, छोटा
कोह = पर्वत
कौकब = नक्षत्र
कौलंज = पेट का दर्द
क़ौल = कथन, वचन

ख

ख़त = पत्र, रेखा
ख़ते तिलाई = सुनहरा लेखन
ख़द्शा = खतरा
ख़फ़क़ान = उन्माद

ख़फ़चाक = खुर के बीच का भाग
ख़बरतराशी = समाचार गढ़ना
ख़म = झुका हुआ
ख़र = गधा
ख़लायक़ = प्राणी ब. व.
ख़लीक़ = शिष्ट
ख़ल्क़ = संसार
ख़लफ़ = पुत्र
ख़ाकरोब = भंगी
ख़ाकिस्तर = भूमिसात
ख़ान ए बेचिराग़ = निर्दीप घर
ख़ाना बाग़ = घर के पीछे का उद्यान
ख़ाब = नींद, स्वप्न
खाम = कच्चा
ख़ामा = कलम
खायफ़ = भयभीत
ख़ालिक़ = ईश्वर
ख़ासोआम = विशेष और सामान्य (जन)
ख़ाहाँ = इच्छुक
ख़ाही = चाहे
ख़ाही न ख़ाही = चाहे न चाहे
ख़िजालत = लज्जा
ख़िजिल = लज्जित
ख़िफ़्फ़त = लज्जा
ख़िरक़ा = गुदड़ी
ख़िरदमन्द = बुद्धिमान्
ख़िलाफ़ेतबा = स्वभाव विरुद्ध
ख़िल्त = मेल मिलाप
ख़िश्त = ईंट
ख़ीश = आत्मीय
ख़ुतूत = पत्र ब. व.
ख़ुदनुमाई = गर्व
ख़ुदादाद = ईश्वरदत्त
ख़ुदा न ख़ास्ता = ईश्वर न चाहे
ख़ुदावन्द = स्वामी
ख़ुदासाज़ = ईश्वर कृत
ख़ुम्स = पंचमांश (शरा के अनुसार जजिया)
ख़ुर्मा = खजूर
ख़ुसर = श्वसुर
ख़ुसरानी = सास
ख़ुसूफ़ – ग्रहण
ख़ुसूमत = शत्रुता
ख़ुसूसन = विशेष रूप से
ख़ुशनूद = प्रसन्न
ख़ुशोख़ुर्रम = प्रसन्न
ख़ैरख़ाह = शुभेच्छु
ख़ैरतलब = शुभेच्छु
ख़ैरो आफ़ियत = कुशल समाचार

ग

गज़न्द = हानि
ग़ज़लख़्वानी = गजलपाठ
ग़म = दुःख़
ग़म अफ़ज़ानामा = दुःखद पत्र
ग़मगीन = दुःख़ी
ग़मज़दा = दुःख़ी
ग़म्ज़ा = हाव-भाव
ग़मेगेती = सांसारिक दुःख
ग़म्माज़ = चुगलखोर
गरदानना = पाठ करना
गर्दाब = भँवर (जाल)
ग़र्ब = पश्चिम
ग़र्बो शुमाल = पश्चिमोत्तर
ग़सब करना = माल हजम करना
गायत = तात्पर्य
गायब = अन्य पुरुष सर्वनाम (व्याकरण)
गावशंक = आर (गाड़ीवान जिससे बैल हाँकता है)
गिल = मिट्टी
गिला = शिकायत
ग़ीरत = लज्जा
गीरोदार = पूछताछ
ग़ुरबा = गरीब ब. व.
ग़ुरूब = अस्त
गुफ़्तगू = वार्तालाप
गुफ़्तोशुनीद = बातचीत
गुरेज़पा = भगोडा
ग़ुलू = अत्युक्ति
गुस्ताख़ी = धृष्टता
ग़ुस्ले सेहत = स्वास्थ्य प्राप्ति के पश्चात् किया जाने वाला स्नान।
ग़ैबदाँ = परोक्षज्ञ
ग़ोग़ा = शोर
गोशबर आवाज़ = ध्यान मग्न
गोशा = एकान्त
गोशीं = एकान्तवासी

ज

ज़ईफ़ = वृद्ध
जज़ा = दण्ड
जदवल = हाशिया (चित्र, पुस्तक)
जदीद = नवीन, आधुनिक
जद्दा = दादा
ज़न = स्त्री
ज़मज़मा = मधुरध्वनि
ज़मज़मा परदाज़ = मधुरभाषी

ज़मर्रुद = पन्ना (रत्न)
जमा = बहुवचन (व्याकरण)
ज़मीमा = अतिरिक्त
ज़मीर = अन्तःकरण, पुरुषवाची सर्व-नाम (व्याकरण)
ज़र = सोना, द्रव्य
जरदश्त = पारसी धर्म के उपदेष्टा
ज़राफ़त = हास्य
जराहत = जर्राही, खंडन (तर्क)
जरीदा = एकाकी
ज़रीफ़ = हास्यकर्ता
ज़लील = नीच
जलीस = साथी
जल्वा = प्रकाश
जल्वागर = प्रकाशमान
जवाज़ = प्रमाण
ज़वायद = अधिक
जश्न = उत्सव
जहत = दिशा
ज़हीर = पेचिश
ज़हूर होना = प्रकट होना
जांगुदाज़ = प्राणलेवा
जाँगुज़ीं = आत्मसात्
जानिबदार = पक्षपाती
जाबजा = यत्र-तत्र
जामा = समष्टि
ज़ायल = नाश
ज़ाया = व्यर्थ
ज़ाविया = कोण
जाहिल = मूर्ख
जाहो जलाल = ऐश्वर्य
ज़िद = विपरीत
ज़िन्दाँ = कारागार
ज़िन्दिक़ा = पारसियों की आस्था, नास्तिकता
जिस्मानियात = शारीरिक
ज़िन्हार = सर्वथा, सम्प्रति
ज़िलहज्जा = एक मास का नाम
ज़िल्लत = अपमान, कलंक
जिस्मानी = शारीरिक
जिस्मोजान = शरीर और प्राण
ज़ीक़ादा = एक मास का नाम
ज़ीस्त = जीवन
ज़ुकूर = पुरुष ब. व.
जुज़ = अंश
जुज़ई = अंशीय
जुज़वी = आंशिक
जुनूद = सेना
ज़ुम्र = पंक्ति
जुम्ला = वाक्य

ज़ुरत = हिम्मत
ज़ुरफ़ा = हास्यकर्त्ता
जुस्तजू = खोज, लगन
ज़ुहाद = ईश भक्ति
ज़ूदगो = तत्काल उत्तर देने वाला
ज़ेब देना = शोभा देना
ज़ेरबारी = परेशानी

ज़ेरीं = नीचे का
ज़ोजा = पत्नी
ज़ोफ़ = बुढ़ापा, निर्बलता
जोया = इच्छुक
जोश करना = उबाल देना
ज़ोहरा = शुक्र (ग्रह)
ज़ौक़ = शौक, रुचि

त

तंगदस्त = द्रव्यहीन
तंज़ = व्यंग
तइमात = भ्रम ब. व.
तकज़ीब = असत्यता
तक़दमे ज़मानी = आयुवृद्धता
तक़दीम = अभिवादन
तकद्दुर = अभाव
तकमील = पूर्ण
तक़रीज़ = आलोचना
तक़रीब = उपलक्ष्य
तक़लीद = अनुसरण
तक़लील = कमी, कटौती
तक़वीम = जंत्री, पंचांग
तक़सीर = अपराध
तखफ़ीफ़ = कमी, कटौती
तखय्युल = कल्पना

तखरज़ा = बाक़ी निकालना
तखल्लुस = काव्यनाम
तग़य्युर = परस्पर विरोधी तथ्य
तगर्गबारी = ओलों की वर्षा
तग़ाफ़ुल = उपेक्षा
तज़ई = अलंकरण
तज़किरा = परिचय, आलोचना
तजनीस = लिंग परिचय (व्या०)
तज़बज़ुब = दुविधा
तजरीद = एक होने की क्रिया
तजहीज़ो तकफ़ीन = अन्त्येष्टि-क्रिया
तज्ज़ीं = सजावट
ततबीख = पुष्टि
ततब्बो = अनुसरण
ततिम्मा = पूरक
तदारुक = दण्ड

तनउम = नींद लेने वाला, विविध प्रकार का
तनक्रिया = शोधन कर्म (चिकित्सा)
तनकीर = छोटा
तनाफ़ुर = निरर्थक
तन्हा = एकाकी
तन्हाई = एकान्तवास
तफ़क्कुद = परोक्ष
तफ़रीस = बुद्धिमत्ता
तफ़र्क़ा = अन्तर
तफ़ह्हुस = खोज
तफ़ाउत = अन्तर
तबरीद = ठंडाई
तबा = स्वभाव
तमन्ना = आकांक्षा
तमल्लुक़ = चापलूसी
तमव्वुज = लहर
तमस्खुर = हास्य
तरक़्क़ीख़्वा = उन्नति चाहने वाला
तरजीबन्द = किसी कवि के शेर के अनुकरण पर बनाया गया (शेर)
तरद्दुद = सन्देह, चिन्ता
तरफ़ैन = दोनों ओर
तरसाँ तरसाँ = डरते-डरते
तरह = उपाय, ढंग
तरह्हुम = दया
तराविश = प्रकट
तर्क करना = त्यागना
तर्ज़ इबारत = लेखन-शैली
तर्ज़ बयाँ = कथन-शैली
तर्ज़ो रविश = शैली
तलक़ीन = उपदेश, दीक्षा
तलफ़ = नष्ट
तलफ़्फ़ुज़ = उच्चारण
तलम्मुज़ = शिष्य
तलाफ़ी = स्थानपूर्ति
तवक़्क़ुफ़ = विलम्ब
तवक़्क़ो = आशा
तवदी = बिदाई
तवाँगर = धनी
तवाजिद = मस्त
तवाना = हृष्टपुष्ट
तवारद = साम्य
तसदीक़ = पुष्टि
तसर्रुफ़ = व्यय
तसलीम = नमस्कार
तसव्वुर = कल्पना
तसही = संशोधन
तसहीफ़ = लेखन
तसाहुल = आलस्य, काहिली

तस्कीन = सन्तोष, ढाढ़स
तस्ख़ीर करना = वश में करना
तशबीब = सौंन्दर्य, प्रेमिका की प्रशंसा
तशवीश = चिन्ता
तह्ज़ीब = सभ्यता
तहनियत = बधाई
तहमीक़ = मूर्खता
तहम्मुल = संतोष
तहरीर = लेख, रचना
तहवील = अधिकार
तहवीलदार = रक्षक
तहसीन = प्रशंसा
तहसील = प्राप्त करने की क्रिया
ता = तक, जिससे
ताज़ियत = शोक प्रकाश
ताज़ियाना = दण्ड स्वरूप, कोडा
ताज़ीम = आदर सत्कार
ताजील = शीघ्रता
तादील = शीतपेय
तानीस = स्त्रीलिंग
ताबोतवां = सामर्थ्य
तामिया = अन्तिम
ताम्मुल = विलम्ब, सोच-विचार
तायर = पक्षी
ताला = भाग्य
तालिब = इच्छुक
तालीफ़ = सम्पादन
तारीक = अन्धकारपूर्ण
तारीख़ = इतिहास
तर्रुफ़ = परिचय
ताले = भाग्य
तासीर = गुप्त
ताह्हुल = पारिवारिक जीवन
तिफ़्ल = बच्चा
तिब = चिकित्साशास्त्र
तिलस्मी = जादूभरा
तिलाई = सुनहरी
तिश्नालब = प्यासा
तुख़्मरेज़ी = बीजवपन
तुर्फ़ा = विशेषता, विचित्रता
तुलूए आफ़ताब = सूर्योदय
तूबा = कल्पवृक्ष
तूल = लम्बाई
तैयुश = ऐश
तोतहोतम्हीद = भूमिका
तोशा = भोजन
तोशाख़ाना = भंडार
तोहमत = आक्षेप, दोषारोपण
तौक़ी = फरमान, आदेश
तौक़ीर = प्रतिष्ठा

तौदी = विदाई

तौफ़ीक़ = सामर्थ्य, उपदेश

तौह्य्यजे इमकान = आशाप्रद

तौहीद = अद्वितीयता, (ईश्वरसम्बन्धी)

द

दक़ीक़ = साधन

दबिस्तान = शिक्षणालय

दबीर = लेखक, विद्वान्

दमबदम = प्रतिक्षण

दमवी = रक्तसम्बन्धी

दमेनज़ा = प्राणविसर्जन का समय

दरमादां = विवश

दराज़ी = लम्बाई

दरियाए शोर = कालापानी, अन्दमान

दलायल = दलील (ब. व.)

दवाम = स्थायी

दस्त = हाथ

दस्तगाह = सामर्थ्य

दस्तगीरी = सहायता की वृत्ति

दस्तोगिरेबां = परस्पर सम्बद्ध

दश्त = जंगल

दहक़ां = किसान

दाम = जाल

दारुस्सुरूर = आनन्दधाम

दारोगीर = पूछताछ

दास्तान = कहानी

दिरङ्ग = देर

दिलरीश = व्यथित हृदय

दिलसितानी = दिल दुखाना

दीदवादीद = साक्षात्कार

दीदावर = समझदार

दीदार = चेहरा, दर्शन

दीदोदानिस्त = बुद्धि, समझ

दीदोदानिश = समझबूझ

दीबाचा = भूमिका

दीवान = अन्त्यानुप्रास के आधार पर तैयार किया गया गजल—संकलन

दीवानगी = पागलपन

दुआ = आशीर्वाद

दुआगो = शुभाकांक्षी

दुरूद = अभिवादन

दूदमान = वंश

देह = गाँव

देहन्दा = ऋणी

दोशम्बा = सोमवार

न

नक़ल = कहानी
नख़ल = खजूर का पेड़, शाद्वल
नज़रफ़रेब = नेत्राकर्षक
नज़री = सैद्धान्तिक ज्ञान
नज़रे सानी = पुर्ननिरीक्षण
नजात = मुक्ति
नज़्म = पद्य
नज़र = भेंट
नतायज = परिणाम ब. व.
नदीम = मित्र, मुसाहिब
नदीमी = मुसाहिबी, मित्रता
नफ़रीं = घृणा
नफ़ूर = घृणा करने वाला
नफ़्स = भावना
नफ़्से नातिक़ा = वाक्शक्ति
नयाबतन = प्रतिनिधिस्वरूप
नवीद = दावत
नवीदे बज़्म आराई = आनन्दोत्सव का समाचार
नस्र = गद्य
नशेब = ढलान
नश्वोनुमा = उन्नति
नहुफ़्तादां = गुप्त बात जाननेवाला
नाक़िल = वर्णन करने वाला
नाक़िस = बुरा
नाख़ांदा = निरक्षर
नाख़ुदा = नाविक
नागाह = असामयिक
नाज़िल = अवतरित
नातमाम = अपूर्ण
नातवां = अशक्त
नातवानी = कमजोरी
नातिक़ = बोलनेवाला
नादिर = अलभ्य
नापिदीदार = परिणाम रहित
नाफ़ = नाभि
नामा = पत्र
नामानिगारी = पत्रलेखन
नामाबर = पत्रवाहक
नार = आग
नाला = शोरगुल
नावक = बाण
नासाज़ी = अस्वस्थता
नासिपासी = अकृतज्ञता
नासूदमन्द = निरर्थक
नाशिनास = अनभिज्ञ
निकोई = नेक
निगाहबान = रक्षक

निगारिश = लेखन
निगाश्ता = लिखित
नियाज़ = परिचय, आस्था
निसयान = विस्मरण
निसार होना = न्यौछावर होना
निस्फ़ = आधा
निशात = हर्ष
निशिस्त = बैठक
निहां = गुप्त
निहानी = गुप्त
निहायत = अन्त
निहाल = पेड़
नीम = आधा
नीममुर्दा = अधमरा

नीमरोज़ = मध्याह्न
नक़ू = काढ़ा
नुजूम = ज्योतिष
नुज़ूल = अवतरण
नुबूअत = नबी का पद
नुसरत = सफलता
नुस्ख़ा = प्रति (पुस्तक)
नूर = प्रकाश
नूरेक़ाहिर = सूर्य
नेमुलबदल = तत्स्थानीय
नौज़दहम = १९ वां
नौअ़ = प्रकार
नौहाख़ां = मातम करने वाला

प

पंजशम्बा = गुरुवार
पन्दोबन्द = उपदेश
पयाम = सन्देश
परदाज़ = प्रयत्न
परेपश्श = मच्छर का पर
पशेमान = अपमानित, परेशान
पहलूतिही = उपेक्षा
पाकीज़ा = पवित्र
पायानेउम्र = अन्तिम आयु
पायानेकार = अन्ततोगत्वा

पायाब होना = सूखना
पाये आली = उच्चस्तर
पालग्ज़ = त्रुटि
पासख़निगार = उत्तरदाता
पासबानी = पहरेदारी
पिन्दार = उपदेश
पीर = वृद्ध
पुरतकल्लुफ़ = सुन्दर
पुरसिश = प्रयत्न, पूछताछ
पुश्तारा = बण्डल

पुश्तेपा = पाँव का ऊपरी हिस्सा
पेचोताब = उलझन
पेशदस्त = अगुवा, हरावल
पेशेअज़ीं = इससे पहले
पैकार = लड़ाई
पै दर पै = लगातार
पै ब पै = लगातार
पैरहन = पोशाक
पैवन्द = जोड़
प्यादापा = पैदल

फ

फ़ख़्र = गर्व
फ़ज़ूबाद = वृद्धिशील
फ़ज़्ल = कृपा
फ़ज़्लोकरम = कृपा और दया
फ़र = सजावट
फ़रऊन = अवज्ञाकारी, घमंडी
फ़रजाम = निवृत्ति
फ़रमाबरदार = आज्ञाकारी
फ़राग़ = अवकाश
फ़राग़त = निवृत्ति
फ़रावान = अधिक
फ़रोग़ = उन्नति
फ़रोगुज़ाश्त = भूलचूक, अन्तर
फ़रोमाया = कमीना
फ़र्ज़न्द = पुत्र
फ़र्त = प्रसन्नता
फ़रुख़ = शुभ
फ़र्द = चरण (कविता)
फ़लक = आकाश
फ़लक रफ़्त = गगनचुम्बी
फ़लसफ़ा = दर्शनशास्त्र
फ़लाह = भलाई
फ़वायद = फ़ायदा ब. व
फ़साहत = परिमार्जन, सरलता, (भाषा)
फ़सीह = परिमार्जित, सरल (भाषा)
फ़सीहबयां = परिमार्जित भाषा बोलने वाला
फ़स्खे अज़ीमत = विचार स्थगन
फ़हम = बुद्धि
फ़हरंग = शब्दकोश
फ़हवाए इबारत = तात्पर्य
फ़ाक़ा = उपवास
फ़ायल = कर्ता (व्याकरण)
फ़ारिग़ुलबाल = निश्चिन्त
फ़ासिख़निगार = व्यंग लेखक
फ़िक़ा = इस्लामी धर्मशास्त्र

फ़ितना = उपद्रव
फ़िगार = घायल
फ़ितक = हार्निया, अन्त्रवृद्धि
फ़ितरत = स्वभाव
फ़िराक़ = वियोग
फ़िरावानी = आधिक्य
फ़िर्क़ए शोअरा = कवि सम्प्रदाय
फ़िस्क़ो फ़ुजूर = बुराई
फ़ुक़राफ = कीर ब. व.
फ़ुग़ाँ = आह
फ़ुज़ला = विद्वान् ब. व.
फ़ुतूह = अतिरिक्त आय
फ़ैज़ = कल्याण
फ़ैज़माब = माननीय
फ़ैज़रसानी = लाभकर

ब

बइत्तफ़ाक़े राय = सहमति से
बईं हमा = तथापि
बाईद = दूर
बक़दरे मिक़दार = यथाशक्ति
बकारसाज़ी = दृढता, दक्षता
बख़ील = कंजूस
बख़्त = भाग्य
बज़्मे अहबाब = मित्रमंडल
बतवस्सुत = माध्यम से, द्वारा
बतीब = दिल से
बद = बुरा
बदस्तूर = यथापूर्व
बदीही = प्रकट, निर्विवाद
बनीआदम = मानव वंश
बन्दगी = अभिवादन
बसबील = द्वारा
बसारत = दृष्टि
बशारत = शुभ समाचार
बरख़ुरदार = सुपुत्र
बरफ़ = पेय पदार्थ (शराब)
बरहक़ = उचित
बरहम = नष्ट भ्रष्ट
बर्क़ी = बिजली
बलादे शर्किया = पूर्व के नगर
बलाग़त = अच्छाई
बलीग़ = परिमार्जित
बसद = सैकड़ों
बहबूद = भलाई
बहमाजेहत = हर प्रकार से
बहर = छन्द

बहल = क्षमा
बहार = वसन्त
बहिश्त = स्वर्ग
बा आँ के = यद्यपि
बा ईं हमा = तथापि
बाचश्म पुरआब = आंसूभरी आंखों से
बाज़पुर्स = दुबारा पूछताछ
बाज़ीगाह = क्रीड़ांगण
बातिन = गुप्त
बातिल = झूठा
बाब = विषय, अध्याय
बायस = कारण
बारिद = शीत
बारहा = कई बार
बालिग़ = वयस्क
बासरा = दृष्टि
बिदायत = प्रारंभ
बियाबान = जंगल
बिरद = पाठ
बिल फ़तह = 'आ' से युक्त
बिलफ़ैल = इस समय तो
बिलमुशाफ़ा = प्रत्यक्ष
बिलाद = नगर
बिस्त = बीस
बिही = एक तरह का सेव

बुक्ल = कंजूसी
बुत = मूर्ति
बुतलान = झूठ
बुरहान = तर्क
बुर्ज = राशि (ग्रह)
बुसूर = फोड़े-फुन्सी
बेऐनही = हूबं हू, यथापूर्व
बेकसी = विवशता
बेक़स्द = बिना संकल्प
बेख़ातमा = अपूर्ण
बेगाना = पराया
बेगिरह = बिना गांठ का
बेचिराग़ = निर्दीप
बेजा = अनुचित
बेनवा = दरिद्र
बेबारा = बिना वर्षा का
बेमक़दूर = निस्सहाय
बेमुबालिग़ानि = स्सन्देह
बेरिज़्क = बिना खाये
बेवसवास = निश्चिन्तता से
बेसई = अनायास
बेसरोपा = सर्वथा निस्सहाय
बेशतर = अधिकतर
बेह = अधिक
बेहिस्स = निष्क्रिय

बेहुरमत = अपमानित
बेहैफ़ोमेल = निष्पक्ष
बै = विक्रय
बैत = दो पंक्तियों का छन्द, इसमें अन्त्यानुप्रास भी रहता है
बैतुल खला = शौचालय
बोद = दूर
बौलो बराज़ = मूत्र-शौच

म

मंतिख़ = तर्कशास्त्र
मंशूर = संविधान
मंशूरे उलफ़त = कृपा करना
मइशत = आर्थिक स्थिति
मकतब = पाठशाला
मकतबनशीं = पाठ शाला में पढ़ने वाला
मकतूब = पत्र
मक़तूल = जिसे कत्ल किया गया
मक़दूर = सामर्थ्य
मक़बूल = प्रिय, स्वीकृत
मक़लूब = हृदय परिवर्तन
मक़सूद = अभीष्ट, उद्देश्य ब. व.
मक़सूम = भाग्य
मक़दूर = क्रोध भाजन
मख़ज़न = भंडार, कोश
मख़तल = निष्क्रिय, बाधा डालने वाला।
मख़दूम = सेव्य
मख़दूश = सन्दिग्ध
मख़नूक़ = जिसे फ़ांसी दी गई
मख़फ़ी = गुप्त
मख़मूस = विशिष्ट
मग़फ़रत = क्षमा
मग़फ़ूर = स्वर्गीय
मग़फ़ूरा = स्वर्गीया
मग़मूम = दु:खी
मग़रिब = पश्चिम
मग़रिबी = पश्चिमी
मग़शूश = मूर्च्छित
मज़कूर = उल्लिखित
मज़नून = अभीष्ट
मज़बल = घूरा
मज़मू = कुल, सम्पूर्ण
मज़मून = विषय ब. व. परमध्यमा
मज़मूम = पेशयुक्त (उर्दू लिपि) बुरा
मज़लूम = जिस पर अत्याचार किया गया
मजहूल = व्यर्थ, ए या ओ की मात्रा से युक्त अक्षर (उर्दू लिपि)

मजाज़ी = काल्पनिक, लौकिक
मजीद अलै = इसके अतिरिक्त
मतन = पाठ (पुस्तक)
मतब = दवाख़ाना
मतबा = मुद्रणालय
मतबूआ = मुद्रित
मतरूक = व्यक्त
मतला = गजल का अन्तिम शेर, जिसमें कवि का काव्य नाम रहता है
मतलूब = अभीष्ट, अपेक्षित
मतालिब = मतलब ब. व.
मदह = प्रशंसा
मदार = केन्द्र
मदारिज = पद, प्रतिष्ठा, स्तर
मद्दाह = प्रशंसक
मनसब = प्रतिष्ठा
मनसूरो कामयाब = सफल
मुनाफ़ी ए तबा = स्वभाव विरुद्ध
मन्जवी = एकान्तवासी
मन्दील = पगड़ी
मफ़क़ूद = लुप्त
माफ़्तूह ज़बर = युक्त (उर्दू लिपि)
मबजूलकरना = आकर्षित करना
मबनी = आधारित
मबसूता = मोटी
ममदूद = सहायक
ममदूह = प्रशंस्य
ममनू = निषिद्ध
ममनून = कृतज्ञ
मम्बा = उद्भवस्थल
मयख़ाना = मधुशाला
मयस्सर = उपलब्ध
मरई = पिछली सुविधा
मरक़ूम = लिखित
मरदूद = अपमानित
मरबूत = संयुक्त, सुसम्बद्ध
मरवारीद = मोती
मरहला = रास्ता
मरातिब = पद, प्रतिष्ठा
मराम = सफलता
मरासिम = रस्म ब. व.
मर्ग = मृत्यु
मलऊन = निन्द्य
मलफ़ूफ़ = लिफ़ाफ़े में बन्द
मलहूज़ = जिसका लिहाज रखा गया
मलाल = दुःख
मलिक ए मुअज्ज़िमा = साम्राज्ञी
मलिका = रानी
मलीह = सलोना

मलूल = दु:खी
मलेका = दक्षता
मवज्जह = कारण
मसदर = क्रियार्थक-संज्ञा
मसदूद = बन्द
मसनवी = आख्यानक काव्य
मसमू = सुना हुआ, प्रयुक्त
मसरूफ़ = व्यथित, व्यस्त
मसलन = उदाहरणतया
मसाकिन = निवास-स्थान ब. व.
मसविदा = प्रारूप
मसारिफ़ = व्यय ब. व.
मसूद = नेक, शुभ
मस्कन = निवास स्थान
मस्तूर = स्त्री
मशरब = धर्म
मशवरत = परामर्श
मशविश = सन्दिग्ध
मशायत = बिदाई
मशायख़ = शेख ब. व.
मश्शाक़ = अभ्यासी; दक्ष
महज़ूफ़ = लुप्त
महफ़ूज़ = सुरक्षित
महबस = कारागार
महबूबा = प्रेमिका
महरमियत = रहस्यज्ञान
महरूम = अभागा, वंचित
महल = स्थान, पत्नी
महलसरा = अन्त: पुर
महसूब होना = हिसाब में लिखा जाना
महारबत = युद्ध ब. व.
महासिबा = हिसाब
माक़ूल = पूर्ण
माकूस = उल्टा
माख़िज़ = उद्धरण
माख़ूज़ = बन्दी, अपमानित, उद्धृत
माजिद = पूज्य
माज़ी इस्तमरारी = अपूर्णभूत
माज़ी मुतलक़ = पूर्णभूत
माज़ूल = सिंहासनच्युत
मादूम = नश्वर, लुप्त
मादूमे महज़ = सर्वथा लुप्त
मानवी = अर्थ से संबन्धित (भाषा)
मानिका = मिलन
माने = बाधक
मारिज़ = अन्तर्गत
मारूज़ = प्राथित
मालिजा = उपचार
मालोमता = धन-सम्पत्ति
माविदत = पुनरागमन, वापसी

मा सिवा = इसके अतिरिक्त
मा़श = वृत्ति, आय
मा़शूक़ाने मजाज़ी = सांसारिक प्रेमिकाएँ
माह = चांद
माहज़ा = अतः, यही
माहबमाह = प्रतिमास
माहे सयाम = रमज़ान का महीना
मिज़दाक़ = उदाहरण
मिज़ह = पल, क्षण
मिज़ा = पलक
मिनज़ब्त = बन्धित
मिन्नतपिज़ीरी = अनुनय विनय
मिन्हाई = कटौती
मिराक़ी = प्रलाप
मिर्रीख़ = मंगल
मिसदाक़ = अनुकूल
मिसरा = पंक्ति, चरण (कविता)
मिस्ल = समान
मीज़ान = तराज़ू, तुला (राशि)
मुंजिज = दोष-पाचन के लिये यूनानी चिकित्सा का एक उपाय
मुअज़्ज़म = महान, बड़ा ब. व.
मुअन्नस = स्त्रीलिंग
मुअय्यन = नियुक्त
मुअल्लिम = अध्यापक
मुआफ़िक़त = अनुकूलता
मुआरिज़ = अपराध
मुआलिज = चिकित्सक
मुक़द्दम = श्रेष्ठ
मुकद्दर = विपण्ण
मुक़फ़्फ़िल = ताले में बन्द
मुकर्रम = दयालु
मुकर्रमतनामा = कृपापत्र
मुकर्रर = पुनः, दुबारा
मुकर्ररी = निश्चित (स्त्री लिंग)
मुक़र्रिब = निकटस्थ
मुक़स्सित = जिसकी किस्त बाँधी गई
मुकस्सिर = वंचित
मुकालिमत = वार्तालाप
मुकालिमा — वार्ता
मुक़ैयद = बन्दी
मुक़्तज़ब = झूठा
मुक़्तज़ी = जिसका तगादा हो
मुख़्तम = समाप्त
मुख़फ़्फ़फ़ = संक्षिप्त
मुख़बिर = समाचार देने वाला
मुख़मर = नशे में मस्त
मुख़ातिब = सम्बोधित
मुख़िल = बाधा

मुख्तलिफ़ = विविध
मुख्तसिर = संक्षिप्त
मुग़्तनमात = जिसका अस्तित्व ही गनीमत हो
मुज़क्कर = पुल्लिंग
मुजतमा = एकत्रित
मुज़तरिब = उद्विग्न
मुज़्दा = शुभ समाचार
मुज़बज़ब = सन्दिग्ध
मुज़महिल = निर्बल
मुजमिलन = संक्षेपतः, सब मिलाकर
मुजरिम = अपराधी
मुजल्लिद = सजिल्द
मुजस्सिम = मूर्तिमान
मुज़हिब = सुनहरा
मुज़ाफ़ = संयुक्त
मुज़ारे = विधि (व्याकरण)
मुज़ाहम = रुकावट
मुज़िर = हानिकारक
मुज्तहिद = आविष्कारक
मुज्तिर = उद्विग्न
मुतआरिफ़ = परिचित
मुतइय्यन = नियुक्त
मुतक़दमीन = प्राचीन लोग
मुततब्बा = अनुसरण
मुतनब्बह = सावधान, अवगत
मुतनाफ़त = अन्तर
मुतफ़र्रिक़ात = विविध
मुतबन्ना = दत्तक
मुतवफ़्फ़ा = स्वर्गीया
मुतवर्रम = शोथयुक्त
मुतवस्सित = मझला, मध्यमश्रेणी का
मुतवस्सिल = सम्बन्धी ब. व.
मुतवाज़े = नम्र
मुतवातिर = लगातार
मुतसव्विर = कल्पित
मुतहक्किक़ = अनुसन्धान कर्ता
मुतहम्मिल = सहन
मुतहय्यर = चकित
मुताक्क़िब = पीछे
मुताख्खिरीन = आधुनिक ब. व.
मुताबिक़ = अनुसार
मुताल्लक़ी = सम्बन्धी
मुताल्लिक़ = सम्बन्धित
मुती = भक्त, अनुयायी
मुत्सद्दी = लिपिक
मुत्सब्बिर = धैर्यशाली
मुत्सर्रिफ़ = व्ययशील
मुदब्बिर = विद्वान्, गम्भीर
मुद्दआ = इच्छा, उद्देश्य

मुनकर = अस्वीकार करनेवाला
मुनक़्क़ह् = स्पष्ट
मुनाफ़त = विरोध
मुनाफ़ी = प्रतिकूल
मुनासिफ़ा = समान (दो टुकड़े)
मुनीम = दाता
मुन्ज़बत = नियमबद्ध
मुन्तख़िब = संकलित
मुन्तबा = मुद्रित
मुन्दरिज = उल्लिखित
मुन्दर्जा = उल्लिखित
मुन्सरिफ़ = व्ययशील, प्रत्ययादि से विकृत होने वाला (शब्द)
मुन्हसिर = निर्भर
मुफ़क़्क़द = लुप्त
मुफ़रत = आधिक्य
मुफ़रिद = पृथक, एकवचन
मुफ़रिस = वर्गीकरण करने वाला
मुफ़लिस = दरिद्र
मुफ़सिद = उत्पाती
मुफ़स्सिल = विस्तृत, विवरण सहित
मुफ़ारिक़त = वियोग
मुफ़ीद = लाभप्रद
मुफ़्ती = सन्दिग्ध
मुबहमाँ = सन्दिग्ध
मुबारक = शुभ
मुबालिग़ा = अत्युक्ति
मुब्तदी = आरम्भकर्ता, सिक्खड़
मुब्हम = सन्दिग्ध
मुमताज़ = श्रेष्ठ
मुमानियत = निषेध
ममालिक = मुल्क ब. व.
मुरब्बा = चौकोन
मुरब्बी = अभिभावक
मुरव्विज = व्यवहृत
मुरसिला = प्रेषित
मुराद = वाञ्छा
मुरादिफ़ = पर्यायवाची
मुरासिला = पत्र (लिखित)
मुरसिलीन = ईश्वर के सन्देश वाहक
मुरीद = भक्त
मुर्तजवी = हजरत अली से सम्बन्धित
मुर्तफ़ा = ऊँचा
मुर्शद = दीक्षागुरु, गुरु
मुर्शदे कामिल = पूर्ण गुरु
मुलहक़ा = सम्मिलित
मुल्तवी = स्थगित
मुसन्ना = प्रतिलिपि
मुसल्लिम = प्रामाणिक
मुसव्विर = चित्रकार

मुसाअदत = अनुकूलता
मुसाब = पुण्यकर्ता, योग्य
मुस्तक़बिल = भविष्य
मुस्तक़ाज़ी = तगादा करने वाला
मुस्तग़र्क़ = तल्लीन
मुस्तनद = प्रामाणिक
मुस्तफ़वी = हज़रत मुहम्मद से संबंधित
मुस्तरिद = रद किया हुआ
मुस्तर्द करना = लौटाना
मुस्तस्की = तृषा रोग
मुस्तहक़ = अधिकारी, पात्र
मुस्तहसन = नेक, शुभ
मुस्तहाम = विषण्ण
मुस्तामिल = जिसका प्रयोग होता है
मुस्तार = अमानत, उधार
मुशख्ख़स = निर्णीत, निर्धारित
मुशतबीह = साकार
मुशद्दद = द्वित्वयुक्त (अक्षर)
मुशफ़िक़ = प्रेमी
मुशरिक = बहुदेववादी
मुशर्रफ़ = अनुगृहीत
मुशर्रह = व्याख्या सहित
मुशविश = परेशान
मुशाहिदा = दर्शन
मुशाहिरा = वेतन, वृत्ति
मुश्तक़ात = प्रातिपदिक
मुश्तरिक = सहयोगी, सम्मिलित
मुश्तहरा = विज्ञप्त
मुश्तहिर = प्रसिद्ध, विज्ञप्त
मुश्ताक़ = इच्छुक, प्रेमी
मुहकम = दृढ़
मुहक़िक़ = अनुसन्धानकर्त्ता
मुहतमिम = प्रबन्धक
मुहरकन = मुहर खोदने वाला
मुहर्रिर = लिखित
मुहल्लित = घातक
मुहव्वल = उद्धृत
महसिन = कृपा करने वाला, उपकारी
मुहीत = वृत्त
मूजिब = कारण, उचित
मेहरबानी नामा = कृपापत्र
मैमनत = शुभ
मोअय्यना = निर्धारित
मोइद = समर्थक
मोमीन = धार्मिक व्यक्ति
मोहमल = निरर्थक
मौक़ूफ़ = स्थगित
मौज = लहर
मौजिज़ा = चमत्कार
मौजिब = कारण

मौज्जिज़ = तंग, परेशान
मौज़्ज़िज़ = प्रिय
मौतमद = सचिव
मौतरिज़ = विरोधी, आक्षेपकर्ता
मौरिद = उपस्थित
मौरूसी = पैत्रिक
मौर्रिफ़ = परिचित
मौलूद = अस्तित्ववान्
मौल्लिफ़ = सम्पादक
मौसूफ़ = प्रशंसित
मौसूम = नामधेय
मौहूम = अस्पष्ट, भ्रान्त
मौहेदा = एक नुक्ते वाला (अक्षर-लिपि)

य

यककलम = सर्वथा
यकजा = एक स्थान पर
यकफ़न्नी = समव्यवसायी
यकशंबा = रविवार
यगमाई = चोर उचक्के
यगानगी = अपनापन
याद आवरी = स्मरण
याबिस = दोष (काव्य)
यावर = सहायक, मित्र
यास = निराशा

र

रंजूर = दुःखी
रक़म करना = लिखना
रक़मज़दा = लिखित
रक़ीब = प्रतिप्रेमी, एक प्रेमिका के दो प्रेमी हों, एक दूसरे के लिए रक़ीब
रख़्शिन्दा = चमकदार
रज़्ज़ाक = अन्नदाता, दानी
रज़्ज़ा क़े हक़ीक़ी = वास्तविक दाता, ईश्वर
रत्ब = दोष
रदीफ़ = अन्त्यानुप्रास
रफ़ीक़ = मित्र
रस्मोराह = सम्बन्ध
रशीद = नेक
रहज़नी = चोरी
रहम = दया
रहमत = कृपा
रहरवा = रास्ता चलना
राक़िम = लिखनेवाला

राज़ = रहस्य
रायगा = व्यर्थ
रावी = वक्ता, कहानी कहने वाला
राहतेजाँ = हर्षदायक
रिफ़ाक़त = साथ
रुख़सार = गाल
रुसवा = बदनाम
रूद = नदी
रूदाद = विवरण
रूपोश = मुँह छिपाने वाला
रूबकारी = सरकारीपत्र, अदालती कार्यवाही
रूबाई = चार चरण की कविता विशेष
रूसा = रईस ब. व.
रूशनास = परिचित, जान पहचान
रूशनासी = परिचय
रेख़्ता = खड़ी बोली में लिखी हुई कविता की विशेष शैली
रेहलत = मृत्यु
रैब = सन्देह
रोज़मर्रा = मुहावरा (भाषा)

ल

लगन = परात
लग़ो = झूठ, बनावटी, निराधार
लफ़ = अपह्नुति
लफ़्ज़ी = शाब्दिक
लब = होठ
लरज़ा = कम्प
लावबालियाना = वीतरागिता
लावलद = निस्सन्तान
लुग़त = शब्द
लुग़ात = शब्दकोश, शब्द ब. व.
लैलोनिहार = रातदिन
लौह = तख़्ती, लिखने का आधार
लौहे मज़ार = कबर का पत्थर जिस पर तिथि अंकित की जाती है

व

वक़ू = घटित
वक़्त = समय
वक़्ते सोम = नमाज पढ़ने का समय, धार्मिक कार्य का मुहूर्त
वजदान = परम-आनन्द
वजदानी = निरर्थक
वज़ला = व्यंग
वजुल सद्र = छाती का दर्द

वज़ू = नमाज से पहले अंगन्यास-करन्यास जैसी क्रिया
वजूद = अस्तित्व
वज्द = अभिवादन, मस्ती
वतन = देश
वफ़ात = मृत्यु
वबा = महामारी, दैवी विपत्ति
वरज़िश = व्यायाम
वर्दी = पोशाक
वली अहद = युवराज
वसवसा = दुविधा
वसी = विस्तृत
वस्फ़ = विशेषता
वहशत अंगेज़ = आतंकपूर्ण
वाक़आ = घटना
वागुज़ाश्त = छुटकारा, किसी चीज का बन्धन से छूटना, सरकारी वृत्ति का पुनः जारी होना
वाज़दीद = भेंट
वाजिब = उचित
वायज़ = उपदेशक
वारिद = आगत
वाला = दीवाना, उच्च
वालिद = पिता
वालिदा = माता
वालिदैन = माता-पिता
वालियान = शासक, स्वामी ब. व.
वाली = अधिपति, शासक
वाहद = एकमेव
विकला = वकील ब. व.
विलादत = जन्म
विसाल = मिलन
वुरूद = पहुँच

स

संग = पत्थर
सआदत = नेक
सआदत आसार = सुशील
सआदतमंदी = नेकी
सई = प्रयत्न
सईद = शुभ
सऊबत = दुःख, कठिनाई
सग = कुत्ता
सतायश = प्रशंसा
सनत = अलंकरण
सनद = प्रमाण
सना = प्रशंसा

सनाख़ां = प्रशंसक

सन्नाई = कारीगरी

सफ़ = पंक्ति

सफ़र = यात्रा

सबह = माला

सबात = सन्ताप

सबीहा = पुत्री

सब्ज़ाज़ार = हराभरा

सब्रा सबात = धैर्य

समर = फल

समाअत करना = सुनना

सयाहत = यात्रा

सय्यात = अपराध

सरजाम पाना = पूर्ण होना

सरगदां = परेशान

सरगिरां = अप्रसन्न, रुष्ट

सरगुज़िश्त = आत्मकथा

सरज़द = प्रकट

सरमायए इल्मी = ज्ञान सम्पत्ति

सरापा = शिखनख

सुराब = मृगमरीचिका

सरासीमगी = परेशानी

सरिश्तए आमेज़िश = सम्बन्ध

सरीर = ध्वनि

सरेमोर = चींटी का सिर, तुच्छ

सर्फ़ = व्यय

सर्फ़ोनह्व = व्याकरण

सलफ़ = पूर्वज

सलातीन = शासक ब.व.

सल्ब = खींच

सह्न = आँगन

सहरा = मरुभूमि

सह्व = भ्रम, भूल

सह्हाफ़ = जिल्द बाँधने वाला

सहीफ़ा = पुस्तक

साकिन = निवासी

साग़र = मधुप्याला

साद = सही का चिह्न

सादिक़ = सच्चा

सिदिक़ुल विदार = सच्चा मित्र

सानी = द्वितीय

साफ़ी = पवित्र

साबिक़ा मारिफ़त = पूर्व परिचय

सामिआ = श्रवण शक्ति

सामित = मौन

सायर = यात्री, सैर करनेवाला, जादूगर

सायल = प्रार्थी

साया = छाया

साये उलूफ़त = छत्र छाया

सालिक = साधक, पथिक (धर्म)

साहल = किनारा
साहरी = जादूगरी
सिश्रम = तीस
सिक़ालत = कर्कशता
सिजल = प्रमाणपत्र, तहरीर
सितमकशी = अत्याचार
सिद्क़ = सचाई
सिन = आयु
सिने कहोलत = वृद्धावस्था
सिनेनमू = युवावस्था
सिपास = अभिनन्दन
सिफ़त = विशेषता, गुण, विशेषण
सिबात = दृढता
सियादत = सैयद का पद
सियासत = दण्ड, राजनीति
सियाह = काला
सिला = प्रतिफल
सीम = चाँदी
सीरत = स्वभाव
सीलां = उत्तरीय, दुपट्टा
सुक़्म = कमी, त्रुटि, दोष (काव्य)
सुकून = विराम चिह्न
सुख़न फ़हम = काव्य मर्मज्ञ
सुख़न सराई = काव्य प्रशंसा
सुतूर = सतर ब. व.
सुदा = सिर दर्द
सुबुक = हलका
सुबूही = प्रातःकाल का
सुराह = निरुक्त
सुलहा = सदाचारी
सुलूक = उपकार
सुल्स = एक तिहाई
सूदमन्द = लाभकर
सूदी = ब्याजू
सेचन्द = तिगुना
सेदरह = तीन दरवाजों वाला
सेपहर = तीसरा पहर
सेमाहा = तीन मास का
सेहत = स्वास्थ्य
सेहर = जादू
सैद = शिकार
सैफ़ = तलवार
सोगवार = दुःखी
सोहबते मरग़ूब = संगति अनुकूल
सौदाई = पागलपन

श

शग़ल = चस्का
शदायद = आधिक्य

शदीद = अधिक, तेज
शफ़ा = स्वास्थ्य
शफ़ीक़ = प्रियकारी, मित्र
शफ़ीक़े दिली = सच्चा मित्र
शबाब = यौवन
शबे गुज़िश्ता = गत रात्रि
शमायल = नखशिख
शरा = इस्लामी धर्मशास्त्र
शर्क़ = पूर्व
शशमाही = छमाही
शाकी = शिकायत करने वाला
शागिर्द = शिष्य
शाद = प्रसन्न
शादमाँ = प्रसन्न
शादमानी = आनन्द
शाना = कंघा, कंधा
शाम्मा = घ्राणशक्ति
शिकनी = तोड़ने की क्रिया

शिकवा = शिकायत
शिकेब = सन्तोष
शिकेबाई = धैर्य
शिगुफ़्ताजबीं = प्रकाशमान् मस्तक वाला
शिताब = शीघ्र
शिद्दत = अधिकता
शीराज़ा = पृष्ठ (पुस्तक)
शीरीं = मीठा
शुतर = ऊँट
शुमूल = सम्मिलित
शुरका = सम्मिलित होने वाले
शुर्फ़ा = शरीफ़ ब. व.
शेवा = ढंग
शै = वस्तु
शैफ़्ता = परेशान
शोआ = किरण
शौहर = पति

ह

हक़्क़ेताला = ईश्वर
हकम = पंच
हक़ीक़ी = वास्तविक
हक़ीर = नीच
हक़्क़ो इस्लाह = संशोधन
हज़ = आनन्द

हज़फ़ = लोप
हजम = मोटाई (पुस्तक)
हज़ल = अपमान
हनोज = अभी
हफ़वात = बेहूदगी
हफ़्तसाला = सात वर्ष की

हफ़्ताद पुश्त = सात पीढ़ियाँ
हब्स = कारागार
हमउम्र = समवयस्क
हमकलाम = बातकीत करने वाला मित्र
हमक़ौम = सजातीय
हमागों = कुल, पूर्ण
हमज़ा = अरबी-फारसी का एक अर्द्ध-स्वर
हमज़ाद = अपने जैसा
हमताला = समान भाग्य रखने वाला
हमदिगर = परस्पर
हमनफ़्स = सम स्वभाव
हमबमानी = समानार्थक
हमराह = साथ
हमवार = अनुकूल
हमसाया = आश्रय
हमशीरा = बहन
हमादान = सर्वज्ञ
हम्माम = स्नान
हयात = आयु, जीवन
हरचन्द = सब प्रकार से
हरज़ा सराई = बकवास
हरम = अन्त:पुर, पत्नी
हरारत = गर्मी, हल्का ज्वर
हिरज़ा = व्यर्थ

हर्फ़ेनिदा = सम्बोधनवाचक अव्यय
हर्ब = शस्त्र
हलाकत = मृत्यु
हलालखोर = भंगी
हलीम = दयालु
हवसनाकाना = विवशता से
हवाख़ाह = शुभेच्छु
हसद = ईर्ष्या
हसनात = गुण ब.व.
हसरत = आकांक्षा
हस्ती = अस्तित्व
हस्बुल हुक्म = आदेशानुसार
हाजत = आवश्यकता
हादिस = नाशमान्
हाफ़िज़ा = स्मरणशक्ति
हायल = बाधक
हाल = वर्तमान
हासिद = ईर्ष्या करने वाला
हिकायत = कहानी
हिज्र = वियोग
हिद्दत = गर्मी
हिफ़्ज़ = रक्षा
हिफ़्ज़े सेहत = स्वास्थ्य-रक्षा
हिफ़्ज़ो अमान = सुरक्षा
हिरज़ा = व्यर्थ

हिलाल = शुक्ल द्वितीया का चांद
हुकमा = हकीम ब. व.
हुज्जत = तर्क
हुनूद = हिन्दू ब. व.
हुबूब = गोलियाँ (औषधि) ब. व.
हुमका = मूर्ख
हुमा = पौराणिक गाथाओं का एक पक्षी, जिस व्यक्ति के सिर पर इस पक्षी की छाया पड़ती है वह राजा बनता है
हुमायूँ = शुभ
हुलिया = आकृति
हुसूल = प्राप्त
हुसूले अज्र = फल प्राप्त
हुसूले सेहत = स्वास्थ्य प्राप्ति
हुस्ने इत्तफ़ाक़ = संयोग से होने वाला अच्छा कार्य
हुस्ने कलाम = काव्य सौष्ठव
हुस्ने ख़त = सुलेखन
हुस्नेज़न = नारी का सौन्दर्य, सद्भावना
हुस्ने तबा = सुस्वभाव
हुस्ने तलब = माँगने की अच्छी शैली
हूत = मीन (राशि)
हैरतज़दा = आश्चर्य चकित
हौलनाक = भयानक

———

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
मुरक्फ़फ़	मुख़फ़्फ़फ़	२५	१८
ससासर	सरासर	२६	१८
खने	ख़ूने	४६	७
ऐ मग	ऐ मर्ग	५४	१३
खांदाश्ता	रवांदाश्ता	५८	१०
मलिके आलिया	मलिक ए आलिया	६४	१
इबारद	इबारत	६६	५
ज़िल्दें	जिल्दें	६९	११
जनता	जानता	९७	७
बाब	वाव	९७	१८
हां रहूँ	वहां रहूँ	१०५	११
मौसूम मीर	मौसूम ए मीर	१०९	१
तयासद	तवारद	११२	५
रफ्तम	रफ़्तम	११२	७
कुहनाहसरत	कुहन ए हसरत	११२	१६
मालूस	मालूम	११७	५
बअली	बूअली	११७	१५
मुर्तरिफ़	मुतारिफ़	११८	१७
मद्व	मब्द	११९	२
ऊंचे	उँचे	१२८	१६

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
मुशाहिरेइ के लाक़े	मुशाहिरे के इलाक़े	१३७	१
ग़ौज़े	गौज़े	१४४	३
वद्दुआ	वद्दुआ	१५०	२
मेरहूम	मरहूम	१५७	८
तरद्दद	तरद्दुद	१६१	१४
सुक़ने	सुकूने	१६४	१०
क़व्वते	क़ुव्वते	१७४	११
मत्र	मूत्र	१७७	२१
हिज्री	हिज्र	१८०	१८
कोरब्त	को रब्त	१८०	७
हुस्ने आरिस	हुस्ने आरिज़	१८१	४
वो शैफ़्ता	व शैफ़्ता	१८१	२०
फ़िल बजूद	फ़िल वजूद	१८३	६
न बना	न बन	१८३	७
एहतियात हरसाल	एहतयात इरसाल	१९३	१६
मरक़ूम यकशंब	मरक़ूम ए यकशंबा	१९३	२१
शरीक़े ग़ालिब	शरीके ग़ालिब	१९४	७
अलफ़खा	अलफ़रबा	१९४	१०
माघोराम	माधोराम	१९४	१३
सुखन के गौल	सुखन के ग़ौल	१९४	१५
शानसाँ	शनासां	१९५	१
ग़नीम न जानिये	ग़नीमत न जानिये	१९७	१३
व अरबी और	व अरबी लिखी है	१९७	१७
सरत	सतर	१९७	१७

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
छुपने गई है	छपने गई है	१९७	१८
गोग ए	गोशए	१९८	१९
अपसे	आपने	१९९	१५
पुरक़ुद्रत	पुरकुद्रत	१९९	१७
मलिके मौज्ज़मे	मलिकए मौज़्ज़मए	२००	४
नामनिगार	नामानिगार	२००	१२
अला हाज़ल	अला हज़ल	२०२	४
खाजा	खाजा	२०४	२१, २२
नगय्युर	मुतग़य्यर	२०५	१६
अतिशे दोज़ख	आतिशे दोज़ख	२०६	७
मजारिज	मदारिज	२०६	१९
हुआ करता हूँ	दुआ करता हूँ	२०७	१९
अशरूफ़ुल	अशरफ़ुल	२०८	२
क़मल रू ए हिन्द	क़लम रू ए हिन्द	२१०	८
मरक़ूमा सहरगाहे	मरक़ूम ए सहरगाहे	२१०	१२
खाजा	खाजा	२११	२
खाजा	खाजा	२१४	१
मुन्शी साह के	मुन्शी साहब के	२११	२४
रिस्तेदारों से	रिश्तेदारों से	२१२	११
खनचाक़	खफ़चाक	२१२	१३
शर पर	शेर पर	२१४	१०
आज़ीज़ुद्दीन	अज़ीज़ुद्दीन	२१५	५
बराछियाँ	बरछियाँ	२१५	७
ये क़ायदे कल्लियात	क़ायदए कुल्लियात	२१८	१

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
मिराफ़	मिराक़	२१८	३
खफ़क़ाएनी	खफ़क़ानी	२१८	१०
मुताकरीन	मुताख़रीन	२१९	९
हुक़्म	हुक्म	२१९	१३
फ़ालिज़	फ़ालिज	२२०	४
वे ख़ौरो ख़ाब	बे ख़ौरो ख़ाब	२२०	८
ममनन	ममनून	२२१	५
मलिके मौज्ज़िमा	मलिक ए मौज्ज़िमा	२२४	९
खाज़ा	खाजा	२२५	६
निगाहबान	निगहबान	२२५	१८
बाज़पुरस	बाज़पुर्स	२२६	७
कई दिन उसके	कई दिन हुए के	२२६	८
वतजवीज़े	बतजवीज़े	२२६	१९
आवागाने	आवारगाने	२२७	१७
इक़बाले इज़्ज़त	इक़बालो इज़्ज़त	२२९	२०
मुर्हरिरा दो अम	मुर्हरिर ए दोअम	२२९	२१
बारे छि	बारे	२३०	११
मरियां लीं	मछियां लीं	२३०	११
रंज़ो राहत	रंजो राहत	२३६	२१
नबीस और	नवीस और	२३९	२२
मरक़ूमे दोशंबा	मरक़ूमए दोशंबा	२४०	५
खाज़ाजान	खाजाजान	२४१	४
अदायल	अवायल	२४४	१६
बोलन में	बोलने में	२४५	१४

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
उदू के	उर्दू के	२४६	१५
अहले सुखन	अहले सुख़न से	२४७	३
बाये मुद्देहा	बाये मुह्हेदा	२४७	१०
नज़्मो नस्रको	नज़्मो नस्र का	२४९	९
दस्तूंब	दस्तंबू	२४९	११
बफ़ज़े मुहाल	बफ़र्ज़े मुहाल	२५१	५
पदा हुए हैं	पैदा हुए हैं	२५३	३
दाह्रद	दारद	२५५	१९
औरा मेरा	और मेरा	२५६	४
बला क़ुव्वता	वला क़ुव्वता	२५७	१२
मानने वालों का	मारने वालों का	२५७	१८
महल इनाम	महले इनाम	२५८	११
गुपूतान्दन	गुश्तान्दन	२६४	२३
मुस्हदा	मौहदा	२६६	१२
वायदे के माफ़िक़	क़ायदे के माफ़िक़	२७०	३
बज़रिय मेरे	बज़रिये मेरे	२७१	१८
नज़र करो	नज़र करो	२७२	१
जुज़्वा को	जुज़्व का	२८४	२०
लतफ़सीब	बतफ़सील	२८५	१३
नमत आयए	नेमत आयए	२९१	१५
जान मुझसे	जाने मुझसे	३१८	१
सितम्बर को	सितम्बर के	३३१	८
मुस्तलाहातुश्शोरा	मुस्तलाहतुश्शोरा	३३६	१०
मालवी	मौलवी	३३७	३

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
कफ़ियत	कैफ़ियत	३३८	१६
पांचबद	पांचब्रेद	३४६	२
पिन्सदारो को	पिन्सनदारों को	३४८	४
अबादी	आबादी	३४८	७
फ़ने लग़ात	फ़ने लुग़ात	३५८	१६
भरोंनाथ	भैरोंनाथ	३५९	६
नाम अल्लाह	रहे नाम अल्लाह	३६३	१
चाँदनी चोक	चाँदनी चौक	३६४	१६
हर सुबह को	हम सुबह को	३६९	१५
को अम्र	कोई अम्र	३७०	१
रपये साल	रुपये साल	३७०	१२
वहैत	व हैत	३८२	६
हफ़्ते हैं	हफ़्ते में	३८३	११
कुछ फवायद	कुछ क़वायद	३८३	१४
माहब की	साहब की	३८८	३
जिल्दें मँगऊँ	जिल्दें मँगाऊँ	३८८	९
कातत‌ब्बो	का तत‌ब्बो	३९३	४
मलवा दें	मिलवा दें	४०३	१०
अमीनुउद्दीनख़ाँ	अमीनुद्दीनख़ाँ	४११	१६
दो तीन दिन	दो तीन	४१३	५
उमूर मुक़्तज़ो	उमूरे मुक़्तज़ी	४२१	१६
बात करने की	बात न करने की	४२८	१
बत ये है	बैत ये है	४३४	१८
तरद्दद	तरद्दुद	४४४	९

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
एकक्ता	एक क़ता	४४७	१७
बद्दुआ	वद्दुआ	४५६	९
के बल	केवल	४६२	२४
ख़य का	ख़त का	४६९	४
हुक्मा की	हुक्मा की	४७१	५
अच्छ हैं	अच्छे हैं	४७४	११
व ज़माना	वह ज़माना	४८४	८
ख़बचन्द	ख़ूबचन्द	४८४	९
नुबअत	नुबूअत	४८५	१९
मथुशाला में	मधुशाला	४८७	१६
छोड़ देना	छोड़ देनी	४८७	१६
मुआवएआ	युवावस्था	४८७	१६
सुरायान	सुरापान	४८७	१७
बूंद	बूद	४९५	१३
मह का मन्तज़र	मेंह का मुतज़र	४९७	१२, १३
कल्लियाते	कुल्लियाते	४९९	१०
मग़फ़र	मग़फ़ूर	४९८	२०
ताक्त	ताक़त	४९९	१८
क़वायल के	क़बायल के	५१०	७
उमर में	उमूर में	५११	१७
उतकी	उनकी	५१२	९
वेरब्ती	बेरब्ती	५१२	२१
मज़बात	मेज़मान	५१४	१७
और ख़द	और ख़ुद	५१५	११

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
सलास ऐ	सलास ए	५१६	१
उल्ताद	उस्ताद	५१६	१६
रुखसत	रूख़सत	५१९	६
चल चूके	चल चुके	५२०	५
अवसाधन	असावधान	५२०	१९
लुत्ज़ तो	लुत्फ़ तो	५२२	२
मेहर दीमरोज़	मेहरनीमरोज़	५४६	४
खुदबाने को	खुदवाने को	५५०	७
ए मेरा	ये मेरा	५५७	१७
मनक्क़ह	मुनक़्क़ह	५६४	५
जरनता हूँ	जानता हूँ	५६७	१
ख़ुदनदी	ख़ुशनूदी	५७०	१५
दरवार में	दरबार में	५७२	५

———